धर्मोपदेशक ग्रन्थमाला के द्वितीय भाग का प्रथमोपदेश

SANATAN DHARAM
स. ध. स
SINGAPORE
SHRI KRISHNA TEMPLE WAT
D-223

श्रीगणेशाय नमः

धर्मप्रकाशः

सत्यार्थप्रकाश दयानन्दतिमिरभास्कर भास्करप्रकाशैः संयुतः ।

तस्यैवायम्

प्रथम समुल्लासः ।

पण्डित कालूराम शास्त्रिणा लिखितः

सोऽयम्

कामताप्रसाद दीक्षितेन कर्णपुरनाम्निपत्तने
मर्चण्टाख्येमुद्रणागारे लाला रामनारायणस्यप्रबन्धेन
मुद्रापयित्वा प्रकाश्यंनीतः

द्वितीयवार १०००] फाल्गुन सम्वत् १९८५ [मूल्य ।) १)

नं० १२
मा० मु० पु० D-223

धर्मोपदेशक ग्रन्थमाला के द्वितीय भाग का प्रथमोपदेश

387

श्रीगणेशाय नमः

धर्मप्रकाशः

सत्यार्थप्रकाश दयानन्दतिमिरभास्कर भास्करप्रकाशैःसंयुतः ।

तस्यैवायम्

प्रथम समुल्लासः ।

पण्डित कालूराम शास्त्रिणा लिखितः

सोऽयम्

कामताप्रसाद दीक्षितेन करणपुरनाम्निपत्तने मर्चेण्टाख्येमुद्रणागारे लाला रामनारायणस्यप्रबन्धेन मुद्रापयित्वा प्रकाश्यंनीतः

द्वितीयवार १०००] फाल्गुण सम्वत् १९८५ [मूल्य ।॥=)

2)

धर्मप्रकाश पर मिश्रजी की सम्मति।

(जिस समय हम धर्मप्रकाश प्रकाशित करने लगे उस समय विद्यावारिधिजी ने इस ग्रन्थ के विषय में जो अपनी सम्मति भेजी थी वह यह है)

* धर्मप्रकाशः *

इस समय पं० कालूराम शास्त्रीजी सनातनधर्म जगत् में जो कुछ काम कर रहे हैं वह किसी विज्ञजन से छिपा नहीं है। आपकी निर्माण की हुई ग्रन्थमाला (जिसमें मूर्तिपूजा, अवतार, श्राद्ध, वर्णव्यवस्था, पुराणसिद्धि, आदि मुख्य ग्रन्थ हैं) पाठक अच्छी प्रकार देख चुके हैं, इस वर्ष से आपने इस ग्रन्थमाला में जिस ग्रन्थ का प्रकाश करना आरम्भ किया है वह सनातनधर्मियों के बड़े काम का ग्रन्थ होगा, कई वर्षों से मेरे पास बराबर सज्जनों के पत्र आते थे कि तुलसीराम रचित—

भास्करप्रकाश का खंडन

तैयार किया जाय। शास्त्रीजी का यह धर्मप्रकाश नामक ग्रन्थ भास्करप्रकाश के खण्डन में बड़े विचार के साथ आरम्भ हुआ है, इसमें सत्यार्थप्रकाश, फिर दयानन्दतिमिरभास्कर पश्चात् भास्करप्रकाश का लेख उद्धृत करके प्रमाणों के सहित उसका उत्तर देकर सनातनधर्म की पुष्टि इस प्रकार से की गई है कि आर्यसमाज की पोल जानने में और सनातनधर्म का गौरव समझने में यह एक ही ग्रन्थ बहुत होगा। प्रति मास ८० पृष्ठ अर्थात् प्रति वर्ष ९६० पृष्ठ इस ग्रन्थ के धर्मानुरागियों के पास पहुँचा करेंगे वार्षिक मूल्य महसूल सहित ३-) आशा है कि धर्मानुरागी सज्जन एक २ प्रति इस ग्रन्थ की लेकर शास्त्रीजी के उत्साह को बढ़ावेंगे—

अनुग्रहीत

पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र,

दीनदारपुरा—मुरादाबाद।

नं० ९३६ नं० १२
D-223
नं० १५
SANATAN DHARAM SABHA
स- ध- स-
SINGAPORE.
SHRI KRISHNATEMPLE WATERLOO ST.

* श्रीहरिः *

भूमिका ।

सृष्टि के प्रारम्भकाल से वैक्रमीय सम्वत् १९२० तक इस पवित्र भूमि भारतवर्ष के निवासियों का वेदों पर पूर्ण विश्वास रहा और धर्म्म में श्रद्धा रही । यद्यपि बीच बीच में चार्वाक, बौद्ध आदि आदि धर्मों का भी प्रादुर्भाव हुआ तथापि अन्त में इन धर्म्मों ने हिन्दूधर्म्म के आगे शिर झुकाया । इस कार्य्य से हिन्दू धर्म की कीर्ति और भी फैल गई । इसके बाद कई एक सज्जनों ने हिन्दूधर्म को तिलाञ्जली देकर मुसलिम आदि धर्म का ग्रहण भी किया किन्तु इस कोटी में वेही मनुष्य गये कि या तो जिनका मन किसी स्त्री पर आसक्त होगया था या जो संसारीसुख के पंजे में पड़ कर लक्ष्मीदेवी के सच्चे (अनन्य) सेवक बन चुके थे और जिन सज्जनों ने संसारीसुख को तुच्छ समझा मनुष्य शरीर के कर्त्तव्य पर दृष्टि रक्खी उनके गलों में खड्ग गिरे हाथी के पैरों के नीचे दबाये गये जीवित ही दीवारों में चुनवा दिये गये उन्होंने इन समस्त यातनाओं को स्वीकार किया किन्तु धर्म से स्वप्न में भी विमुख नहीं हुये । इस विषय में आर्य्यावर्त्त की हिस्ट्री के पन्ने के पन्ने भरे पड़े हैं ।

काल ने चक्कर खाया । सौभाग्यवश भारतवर्ष में बृटिश गवर्नमेण्ट की हुकूमत हुई, विद्या सीखने पर मनुष्यों की रुचि आई, थोड़े ही दिन बाद योरुप की हिस्ट्री और साइन्सविद्या के पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इस अवसर पर जिन मनुष्यों के अन्तःकरण में संस्कृतविद्या या हिन्दूधर्म के गूढ़ भावों का बीज नहीं बोया गया था उनको साइन्स की शिक्षा पाते ही धार्मिक सिद्धान्त ढकोसले प्रतीत होने लगे, रात दिन धार्मिककार्य्यों या मन्तव्यों पर शंकाओं की बौछार हुई । इन शंकाओं के समय में उस समय के किञ्चित् संस्कृत जाननेवाले स्वामी दयानन्दजी तक भी इन शंकाओं के गिरोह पहुँचने लगे अर्थात् जब से स्वामी दयानन्दजी का संसर्ग अंगरेजी शिक्षित समुदाय के साथ हुआ तब से

स्वामी दयानन्दजी के ऊपर भी रात दिन यही प्रश्न होने लगे कि मूर्त्तिपूजन से क्या लाभ और गंगास्नान से क्या फायदा, विधवावों के विवाह क्यों न किये जावें। स्वामी दयानन्दजी का दिमाग वह दिमाग नहीं था जो इन शंकाओं के अकाट्य उत्तर देता। उत्तर न आने के कारण स्वामीजी के चित्त की प्रवृत्ति भी उन्हीं के पीछे २ चली और इन्होंने भी समझ लिया कि यह हिन्दूधर्म एक ऐसा धर्म है कि जिसके ऊपर आनेवाली शंकाओं का कुछ उत्तर ही नहीं हो सकता। वास्तविक में स्वामी दयानन्दजी ने यह बड़ी भारी गलती की कि उन्होंने इन शंकाओं को संस्कृत के विद्वानों से न पूछा यदि वे ऐसा करते तो औरों को न बचा सकते तो कम से कम आप तो इस बहाव में बहने से बच जाते। अस्तु, स्वामीजी स्वतः भी उसी बहाव में बह चले जिसमें अंगरेजी शिक्षित समुदाय बह रहा था। जब इस बहाव में बहे फिर क्या था "गुरु तो गुड़ चेला चीनी होगये" की कहावत को सत्य किया। अंगरेज़ी शिक्षित समुदाय तो उस में आपही बहा किन्तु स्वामी दयानन्दजी ने हिन्दु साहित्य का बहाव भी उधरही को करना चाहा। किसी ग्रन्थ को लिखा कि यह मानने के लायक नहीं क्योंकि पोपों का बनाया है। किसी के लिये लिखा कि यह इतनाही मान्य है शेष अमान्य। किसी के लिये लिखा कि यह प्रमाण तो है किन्तु परतः प्रमाण है और किसी के लिये लिखा कि यह पुस्तक तो स्वतः प्रमाण है परन्तु इसका भाष्य गलत है इसका अर्थ वह ठीक है कि जो हम लिखेंगे। इस कतरब्योंत से फायदा यह निकला कि जिन विषयों को अंगरेजी शिक्षित समुदाय मान्य समझता था वे विषय हिन्दु साहित्य में मान्य निकले और जिनको उपरोक्त समुदाय अमान्य या अनुचित समझता था वे हिन्दु साहित्य में भी अमान्य या अनुचित ही मिले। अब क्या था अब तो अंगरेजी शिक्षित समुदाय पर स्वामीजी का प्रभाव पड़ा, माल मिलने लगा। जो स्वामी दयानन्दजी किसी जमाने में दिगम्बर रहते थे अब कोट बूट पहिन घड़ी छड़ी लेकर जण्टलमैन बने और हुक्का पीने लगे। आधुनिक साइन्स पर मनुष्यों के मनों को ले जाने के लिये "आर्यसमाज" नामक एक मत चलाया। लक्ष्मी के फन्दे में फँस सन्यासी होकर भी रुपया जमा करना आरम्भ किया। इन महात्मा ने अपने चलाये मत के प्रचारार्थं "सत्यार्थ-प्रकाश" नामक एक पुस्तक लिखी है कि जिसमें आरम्भ से लेकर अन्त तक खण्डन ही खण्डन भरा है और यही पुस्तक आर्यसमाज की धार्मिकपुस्तक है। इस पुस्तक से खण्डन को सीख कर बिना लिखे पढ़े मनुष्य भी पण्डितों

D-223

के सम्मुख आने लगे। झूठ थोड़े ही दिन चलता है। पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र कृत दयानन्दतिमिरभास्कर छपते ही सत्यार्थप्रकाश की कलई खुल गई, सैकड़ों समाजी दयानन्दतिमिरभास्कर को देख २ कर सनातनधर्मी होगये और होते जाते हैं। इस पुस्तक के खण्डन में पं० तुलसोराम ने भास्करप्रकाश लिखा। यद्यपि भास्करप्रकाश का लेख दयानन्दतिमिरभास्कर के खण्डन की शक्ति नहीं रखता तथापि सनातनधर्म पर यह कलंक आता है कि भास्करप्रकाश का उत्तरही सनातनधर्म नहीं दे सकता। इस कलंक को दूर करने और भास्कर-प्रकाशकर्त्ता की चालें दिखलाने के लिये मैं यह धर्मप्रकाश ग्रन्थ पाठकों के करकमलों में इस प्रकार तैयार कर समर्पण करता हूं कि प्रथम "सत्यार्थ प्रकाश द्वितीयावृत्ति" इसके नीचे "दयानन्दतिमिरभास्कर" इसके बाद "भास्कर-प्रकाश" इसके पश्चात् "धर्मप्रकाश"। अब पाठक सत्यासत्य का निर्णय स्वतःही कर सकेंगे। पाठकों के अवलोकन मात्र से ही मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा– इतिशम्।

मार्गशीर्ष शुक्ला ११ शनौ
सम्वत् १९७१ वैक्रमीय

कालूराम शास्त्री।

SINGAPORE.

383

THE NORTH INDIAN HINDU ASSOCIATION
BHARATIYA BHAWAN
LIBRARY
No. 47, Cuff Road, Singapore.

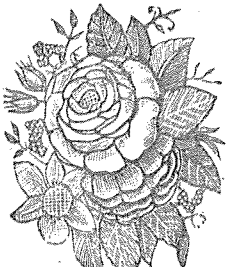

D-223

श्रीगणेशाय नमः

धर्मप्रकाश

THE NORTH INDIAN HINDU ASSOCIATION
BHARATIYA BHAWAN
LIBRARY
No. 47, Cuff Road, Singapore.

नमो नमो ब्रह्म सदा शिवाय
नमोनमः कारणकारणाय ।
नमो नमो वेदजगद्धिताय
नमो नमो धर्मसनातनाय ॥ १ ॥

शन्नो मित्रः शंवरुणः शन्नो भवत्वर्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ २ ॥

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु मामवतु वक्तारम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ३ ॥

भूमिका ।

द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश भूमिका पृष्ठ १ पंक्ति १ से—

ॐ सच्चिदानन्देश्वरायनमः जिस समय मैंने यह ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने पठन पाठन में संस्कृतही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था इससे भाषा अशुद्ध बनगई थी अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास होगया है इसलिये इस ग्रन्थ को भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरीबार छपवाया है कहीं २ शब्द वाक्य रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किये विना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी परन्तु अर्थ का भेद नहीं कियागया है प्रत्युत विशेष तो लिख गया है हां जो प्रथम छपने में कहीं २ भूल थी वह निकाल शोध कर ठीक २ करदी गई है ।

प्रथमावृत्ति तिमिरभास्कर पृ० २ पं० २१ से—

इस लेख से पहिला सत्यार्थप्रकाश गुजराती भाषा मिश्रित विदित होता है किन्तु उसमें कोई गुजराती भाषा का शब्द पाया नहीं जाता भला वह तो अशुद्ध होचुका पर अब यह तो आपके लेखानुसार सम्पूर्ण ही शुद्ध है क्योंकि इसके बनाने के पूर्व न तो आपको लिखना ही आता था न शुद्ध भाषाही बोलनी आती थी इससे यह भी सिद्ध होता है कि इस सत्यार्थप्रकाश से पूर्व रचित वेदभाष्य भूमिका, तथा यजुर्वेदादि भाष्यों की भाषा भी अशुद्ध होगी क्योंकि शुद्ध २ भाषा का ज्ञान तो आपको इस सत्यार्थ-प्रकाश के लिखने के समय हुआ है और इसी कारण आप इसको निर्भ्रान्त सत्य मानते हैं ।

तृतीयावृत्ति भास्करप्रकाश पृ० १० पं० १२ से—

स्वामीजी का आशय यह नहीं है कि जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने से इसमें उसका मेल होगया किन्तु वे स्पष्ट लिखते हैं कि मातृभाषा

D-223

गुजराती थी और सम्मति बोलने आदि का काम था क्योंकि इस देश के लोगों के साथ (जहां लेखकों को[1] सत्यार्थप्रकाश बोलकर तात्पर्य समझा कर लिखवाया) संस्कृत ही में काम चलाया जाता था अतः समझने समझाने में भूल होकर तात्पर्य ठीक २ न रहा बहुत लोगों ने देखा है वे अब तक वर्त्तमान हैं कि स्वामीजी महाराज आर्यसमाजों के स्थापन से पूर्व दिगम्बर हो गङ्गा तट पर विचरा करते और संस्कृत का ही भाषण करते तथा संस्कृत में ही सेवा सत्संगादि करने वालों को वैदिक धर्म का उपदेश तथा वेदविरुद्ध मतों का खण्डन भी किया करते थे उसी समय राजा जयकृष्णदासजी ने यह समझ कर कि इनके पवित्र विचार से लेखद्वारा दूरदेशवर्त्ती लोगों का भी उपकार होसकता है प्रथम सत्यार्थप्रकाश काशी में छपवाया था उस समय तक स्वामीजी गङ्गातटादि विविक्त स्थानों में ही प्रायः रहते थे यही कारण था कि भाषादि को अच्छे प्रकार न जांच पाये और यह भी विदित रहे कि प्रथम का सत्यार्थप्रकाश लेखके समय से बहुत पीछे छपा और भूमिका व वेदभाष्य एक तो लिखने के थोड़े ही काल पीछे छपे और वे पुस्तक (असल) मूल संस्कृत में स्वामीजी ने बोल २ कर लेखकों को लिखवाये फिर उनकी भाषा नौकर पण्डितों ने की इसलिये ऊपर लिखा आक्षेप निर्मूल है ।

समीक्षा— ये जो तीन सज्जनों के लेख आपने देखे ये सत्यार्थ प्रकाश पर नहीं किन्तु उसकी भूमिका (दिबाचा) मात्र पर हैं हम भी कुछ इसी विषय पर लिखना चाहते हैं और आगे लिखेंगे किन्तु प्रथम इस लेख से भिन्न जो इस भूमिका पर विवाद है उसको दिखलाना चाहते हैं। कई एक विचारशील सज्जनों का कथन है कि यह भूमिका और द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश ये दोनों ही स्वामी दयानन्दजी के लिखे हुये नहीं हैं किन्तु समाज ने भूमिका लिखकर नीचे स्वामी दयानन्दजी का नाम डाल दिया और प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश को काट छांट करके नया स्वरूप कर दिया अर्थात् जितना अच्छा लगा उतना रख लिया शेष उड़ा दिया ।

१—यह बात स्वामी दयानन्द नहीं लिखते ।

इसमें (१) प्रमाण यह है कि स्वामी दयानन्दजी का देहान्त सं० १९४० में होगया और यह भूमिका सम्वत् १९४१ में बनकर प्रेस में छपने को भेजी गई। "जो लोग इस भूमिका को स्वामी दयानन्दकृत मानते हैं वे इस प्रमाण पर यह कहा करते हैं कि भूमिका में सम्वत् १९३९ और बनने का स्थान उदयपुर लिखा है फिर अन्य कृत और सम्वत् १९४१ की बनी कैसे" इसके ऊपर इन सज्जनों को उधर से उत्तर मिलता है कि आजकल भी समाजी लोग प्रायः ऐसाही करते हैं कि जो कुछ जी में आता है लिख देते हैं और उस लेख के जिम्मेदार स्वामी दयानन्दजी को बना देते हैं अर्थात् लिखते ये हैं किन्तु लेखक में नाम स्वामी दयानन्दजी का जब भी लिखते थे और अब भी लिखते हैं प्रमाण के लिये आप देख सकते हैं कि "छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभा" यह सिद्धान्त-शिरोमणि का वचन ऐसा पाठ स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है किन्तु सन् १८९७ में जो सत्यार्थप्रकाश छपा उसमें "छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभा" यह "ग्रहलाघव के चौथे अध्याय का चौथा श्लोक है" ऐसा पाठ कर दिया, बदलनेवाले का पता नहीं चलता, इसका लेखक भी समाज ने स्वामीजी को बना दिया। ग्रहलाघव में अध्यायही नहीं हैं किन्तु अधिकार हैं इस अशुद्धता के जिम्मेदार स्वामी दयानन्दजी ही रहेंगे। ऐसे २ सैकड़ों लेख समाज बनाती है और उन २ लेखों के लेखक स्वामी दयानन्दजी को ही लिखती है बस इसी प्रकार इस भूमिका में किया है इत्यादि वादाविवाद के पश्चात् पक्ष सबल उन्हीं का रहता है कि जो भूमिका को स्वामीकृत नहीं मानते हैं।

(२) प्रमाण यह देते हैं कि सम्वत् १९३५ के विज्ञापन में स्वामी दया-नन्दजी ने साफ लिखा है कि मैं केवल मृतक पितरों के श्राद्धतर्पण को नहीं मानता इसको छोड़ कर और समस्त सत्यार्थप्रकाश मुझ को मान्य है। वह विज्ञापन यह है—

विज्ञापनम्।

"सब को विदित हो कि जो जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूँ विरुद्ध बातों को नहीं इससे जो जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश व संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्रों मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं वे उन २ ग्रन्थोंके मतोंको जताने के लिए लिखे हैं उनमेंसे वेदार्थ

के अनुकूलका साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ जो जो बातें वेदार्थ से निकलती हैं उन सबको प्रमाण करता हूँ क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है और जो ब्रह्माजी से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्त महात्माओंके बनाये वेदार्थ अनुकूल ग्रन्थ हैं उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूँ और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ठ और २६ पंक्ति पितर आदिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे और जितने मर गए हैं उनका तो अवश्य करे तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ मरे भये पितर आदिकों का तर्पण और[1] श्राद्ध करता है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो लिख गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छपगया है इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्र आदि का परमधर्म[2] है और जो २ मरगये हों उनका नहीं करना क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरेहुए जीवों के पास किसी पदार्थ को पहुँचा सकता है और न मरा हुआ जीव पुत्र आदि ने दिए पदार्थों को ग्रहण कर सकता है उससे यह सिद्ध है कि जीते पिता आदि को प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं इस विषय में वेदमंत्र आदि का प्रमाण भूमिका के ११ अङ्क के पृष्ठ २५१ से लेके १२ अंक के पृष्ठ २६८ तक छपा है वहां देख लेना"।

इस विज्ञापन में श्राद्ध तर्पण को छोड़ अन्य कोई लेख सत्यार्थप्रकाश का अशुद्ध नहीं बतलाया। किन्तु यह भूमिका जिस द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में लगी है वह प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश का ही खण्डन करती है अर्थात् उसको अशुद्ध बतलाती है।

(३) यह है कि स्वामीजी जिस मान्य विषय को अमान्य और जिस अमान्य विषय को मान्य ठहराते थे उसके लिये नोटिस निकाला करते थे स्वामी जी ने कोई नोटिस नहीं निकाला कि प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश अशुद्ध है केवल

१—इतनी भूल लेखक और संशोधक की नहीं होसकती स्वामीजी का सिद्धान्त बदल गया।

२—स्वामी दयानन्दजीने इस कपोलकल्पित युक्तिके पंजे में पड़कर श्राद्धके कहनेवाले पांचसौ मन्त्रों पर पानी फेरा है किन्तु समाज इस अन्धेर को कब तक छिपावेगी किसी दिन समाजी मनुष्य ही मरे पितरों का श्राद्ध मान कर स्वामी दयानन्दजी के लेख को अशुद्ध बतलावेंगे नहीं तो वेद से तो हाथ धोही बैठे हैं।

मृतक पितरों के श्राद्ध तर्पण अमान्य मानने लग गये थे उसके लिये उन्होंने ऊपर लिखे सम्बत् में नोटिस दे दिया था अतएव श्राद्ध तर्पण से भिन्न को अशुद्ध कैसे मान लें।

(४) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में स्वामी दयानन्दजी के सिद्धान्तों का कतल कर दिया गया है स्वामीजी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ४५ में सायं और प्रातः दोनों वक्त मांस से हवन करना लिखा उसको निकाल डाला। पृष्ठ ३०३ में बैल आदि पशुओं में नरों का यज्ञ में मारना धर्म लिखा इस सत्यार्थप्रकाश में ऐसा उड़ाया मानों सत्यार्थप्रकाश में लिखा ही न था। पृष्ठ ३०३ में स्वामीजी गोबध भी लिखते हैं दूसरी आवृत्ति में उसका पता भी नहीं जब कि द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में स्वामीजी के सिद्धान्तों का चकनाचूर कर दिया कि जिनके ऊपर स्वामीजी का पूर्ण विश्वास था फिर हम कैसे समझें कि यह सत्यार्थप्रकाश स्वामी कृत है इत्यादि अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं कि यह भूमिका और यह सत्यार्थप्रकाश स्वामीकृत नहीं है औरों को तो जाने दीजिये किन्तु इन दिये हुये उदाहरणों को देख कर भी इस भूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश को कोई भी स्वामीकृत नहीं मान सकता हाँ उनका हम जिक्र नहीं करते कि जो न तो निर्णय करना चाहते हैं और न किसी की सच्ची बात मानने को ही तैयार हैं जबर्दस्ती घोड़े की ३ टांगें बतला रहे हैं।

यह कथन केवल सनातनधर्मियों या मुसलमानों या ईसाई अथवा जैन लोगों का ही नहीं किन्तु इस बात को आर्यसमाजी भी स्वीकार करते हैं कि यह भूमिका और द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानन्दकृत नहीं है इस के लिये मैं समाज के एक प्रतिष्ठित पुरुष को उदाहरण में रखता हूं आर्यसमाज लाहौर के मन्त्री भी इसी बात को मानते हैं कि स्वामी दयानन्द का बनाया सत्यार्थप्रकाश प्रथमावृत्तिही है वह सत्यार्थप्रकाश मिलना कठिन था किन्तु आर्यसमाज को प्राप्ति के लिये उन्होंने सन् १९१२ में ज्यों का त्यों ऊर्दू अक्षरों में मुद्रित करवा दिया यह पुरुष साधारण पुरुष नहीं है सम्भव है कि साधारण पुरुष धर्म की बेपरवाही करके कुछ का कुछ लिख दे किन्तु यह पुरुष धर्मपाल है इसको सनातनधर्मी आदि धर्मपाल नहीं कहते किन्तु यह उपाधि आर्यसमाजियों ने इनको उस समय दी थी जब कि समाज ने इस

बात को अच्छी प्रकार से समझ लिया था कि इनका शरीर धर्म की रक्षा के लिये ही है फिर सनातनधर्म चाहे इनको भले ही मुसलमान की दृष्टि से देखता हो किन्तु समाज की दृष्टि में ये सज्जन महात्मा हैं इसी नाम से समाज इनको पुकारने और लिखने में याद करती है। जब कि आर्यसमाज के एक मान्यपुरुष प्रतिष्ठित पुरुष अपने छपवाये सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में यह सिद्ध कर गये कि स्वामी दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश तो प्रथमावृत्ति ही है फिर इनके बराबर में किसी द्वितीय समाजी को उदाहरण में देना जवाहिरात के साथ पैसे मिलाना समझता हूँ। इस विषय में इतना ही लिखकर अपने आर्यसमाजी भाइयों से प्रार्थना करता हूँ या तो वे इस बात को प्रकट करें कि स्वामी दयानन्दजी ने मांस का हवन आदि अपने सिद्धान्तों को छोड़ दिया था इसमें स्वामीजी का विज्ञापन आदि भी पेश करें और या फिर द्वितीयावृत्ति को छोड़ प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश को मानें। एक सन्यासी जो कि योग्य हो जोकि समाज की दृष्टि में महर्षि हो उसके सिद्धान्तों को कतल करना और उनके नाम से कुछ का कुछ लिखना यह अयोग्य है। यह लेख इस कारण नहीं लिखा कि किसी समाजी भाई का चित्त दुखित हो किन्तु प्रयोजन यह है कि वर्त्तमान समाज स्वामी दयानन्दकृत प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के न मानने का कारण बतलावे और साथ ही साथ यह भी बतलावे कि और २ मनुष्य जो लेख लिखते हैं वे लेख उनके नाम से न छापकर स्वामी दयानन्द के नाम से क्यों छापे जाते हैं और द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश और उसकी भूमिका किसने लिखी है।

अब हम उन आर्यसमाजियों के मत को उठाते हैं कि जो इस भूमिका को स्वामीकृत मानते हैं। पं० तुलसीरामजी ने लिखा है कि स्वामीजी का यह आशय ही नहीं कि सत्यार्थप्रकाश में गुजराती भाषा मिल गई किन्तु उनका यह आशय है कि मातृभाषा गुजराती थी और संस्कृत बोलते थे इस पर हमारा यह उज़्र है कि जब उनको हिन्दी भाषा नहीं आती थी तो प्रथमावृत्ति सत्यार्थ प्रकाश कौन लिख गया ? यदि कहो कि लेखकों ने लिखा, यह बात तो पं० तुलसीरामजी लिखते हैं स्वामीदयानन्दजी तो लेखकों का नाम भी नहीं लेते वह तो कहते हैं कि इसमें हिन्दीभाषा हमारी बनाई है और हम से अशुद्ध बनगई अब इन दोनों लेखों में जो परस्पर में विरोधी हैं कौन सत्य है

इसमें यदि स्वामी दयानन्द का लेख सत्य है तो पं० तुलसीराम का कैसा और यदि पं तुलसीराम का सत्य हो तो स्वामी दयानन्द का कैसा ठहरेगा इसका विचार करिये। वह कहते हैं कि भाषा बनने में अशुद्ध हो गई यह कहते हैं कि स्वामी दयानन्दजी लेखकों को संस्कृत बोलकर ही समझाते थे स्वामीजी तो हिन्दी का लिखना बोलना स्वीकार करते हैं किन्तु पं० तुलसीराम कहते हैं कि उनको बिल्कुल हिन्दी लिखना बोलना नहीं आती थी स्वामी दयानन्दजी तो कहते हैं कि हिन्दी अशुद्ध बन गई थी अब हिन्दी व्याकरणानुसार ठीक कर दी और पं० तुलसीराम कहते हैं नहीं तात्पर्य्य ही ठीक २ न रहा यहां तो "गुड़ तो गुड़ चेला चीनी होगये" पं० तुलसीरामजी निराली चाल पर यों चले कि जहां २ से सत्यार्थप्रकाश का लेख निकालना आवश्यकीय था और वह निकाल भी दिया गया अब कोई पूछेगा कि क्यों तो कह देंगे कि लेखकों के समझ से ऐसा होगया सिद्धान्त यह है कि लेख तो निकालाही गया किन्तु स्वामीजी उसके लिखने के जिम्मेदार भी न ठहरें यदि लेख के जिम्मेदार स्वामीजी ठहरगये तो समाज के दिये महर्षि पद पर आपत्ति आवेगी इस वास्ते कलंक का टीका लगाने के लिए भास्करप्रकाश में लेखक घसाये गए यदि ऐसाही है लेखकों परही दोष है तो कृपाकर समस्त सत्यार्थप्रकाश को ही क्यों नहीं कह देते कि सत्यार्थ-प्रकाश तो लेखकों का ही लिखा है बेशक ऐसा कहने से बिना अपराध किये भी लेखक अपराधी ठहरेंगे किन्तु इस सत्यार्थप्रकाश से धर्म का नाश जो होने वाला है वह तो बच जावेगा।

पण्डितजी महाराज स्वामीजी यही कह देते कि हमको हिन्दी भाषा नहीं आती थी तो क्या इतना लिखने से काम न चल जाता यदि चल जाता तो मेरी मातृभाषा गुजराती थी इसके लिखने का क्या प्रयोजन था क्या हेतु के लिए लिखी यहां पर तो बिना हेतुही काम चलता था जब बिना हेतु काम चलता था फिर हेतु देना क्या "प्रयोजनं बिना मन्दोपि न प्रवर्त्तते" न मानना पड़ेगा प्रयो-जन क्या है कहो कुछ नहीं जब कि इसका कोई खास प्रयोजन नहीं भला फिर पं० ज्वालाप्रसाद् का यह लेख कि इससे मालूम होता है कि प्रथमावृत्ति सत्यार्थ-प्रकाश गुजराती भाषा मिश्रित है क्या ठीक नहीं है पं० तुलसीरामजी इसको ठीक तो मान लेते किन्तु एक कमजोरी ने साफ इनकार करा दिया वह क्या वह

यह कि आगे पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र लिखते हैं कि उसमें तो एक भी शब्द गुजराती भाषा का नहीं यह जरा कठिन पड़ता था कि स्वामीजी का लेख तो गुजराती भाषा मिश्रित होना साबित करता है किन्तु उसमें कोई शब्द गुजराती का है नहीं फिर इसका क्या उत्तर होगा अतएव पं० तुलसीरामजी ने उसको हेतु बना दिया व्यर्थ हेतु देना क्या यह आग्रह में पूर्ण प्रमाण नहीं है।

फिर पं० तुलसीरामजी का यह लिखना है कि इस सत्यार्थप्रकाश के तैयार करने के समय तक स्वामीजी हिन्दी भाषा नहीं बोल सकते थे यह कहां तक सत्यता रखता है जब कि स्वामी दयानन्दजी इससे भी पहिले जब शैव मत का प्रचार करने जयपुर गये तब भी हिन्दी भाषा बोलते थे इसी के आस पास फर्रुखाबाद की पाठशाला में भी हिन्दी में बातचीत किया करते थे। अजी भाई साहब स्वामी विरजानन्द सरस्वतीजी के पास जब मथुरा में पढ़ते थे तब भी धड़ाके की हिन्दी बोलते थे फिर क्या बीच में भूल गये मुझको तो पं० तुलसीराम के लेख पर हँसी आती है पं० तुलसीरामजी इसमें बहादुरी समझते हैं कि खूब सिद्ध करदो कि स्वामी दयानन्दजी को हिन्दी ही नहीं आती थी।

पं० तुलसीरामजी जब तिमिरभास्कर के उत्तर में असमर्थ होगये तब स्वामी दयानन्दजी की बड़ाई पर उतर आये कि वे नग्न होकर गङ्गातट पर विचरा करते थे आप तो दिगम्बरों की प्रशंसा करते हैं और आप के छोटे भाई पं० छुट्टनलालजी "आर्यसमाज ने क्या किया" पुस्तक में महादेव की मसखरी इसी के ऊपर करते हैं कि वे नग्न रहते थे नग्न रहना अच्छा या बुरा हम छोटे भाई की बात मानें या बड़े की। गङ्गातट पर विचरने से यदि कोई स्वामी दयानन्द की इज्जत कर सकता है तो वह सनतानधर्म ही है न कि आर्यसमाज। आज आप स्वामी दयानन्दजी का तो नाम न लें और किसी कट्टर समाजी के आगे कहें कि एक महात्मा गङ्गातटपर ही विचरता है और गङ्गा को पवित्र मानता है इतना सुनते ही समाजी भाई कह देगा कि बेवकूफ है गङ्गा में क्या धरा है क्या गङ्गा से मोक्ष होती है यदि गङ्गा के जल से ही मोक्ष होती तो समस्त मगरमच्छ मोक्ष पद को चले जाते, गङ्गादि से मोक्ष मानना पोपों का चलाया वेद विरुद्ध धर्म है। समाजियों का यह कथन जो सबके लिये है क्या स्वामी दयानन्दजी के लिये नहीं। जो आर्यसमाज गङ्गा का खण्डन करना ही अपने जीवन का सार समझता

है वह इस कारण से कि स्वामी दयानन्दजी को गौरवता नहीं दे सकता कि वे गङ्गातट पर विचरा करते थे किन्तु गङ्गातट पर विचरना समाज की दृष्टि में उनकी गौरवता में धब्बा लगाता है इसके अतिरिक्त गङ्गाजी में श्रद्धा स्वामीजी की तबहीं तक रही कि जब तक वे सनातनधर्मी रहे। अङ्गरेजीवालों की संगति करते ही उन्होंने सनातनधर्म के सिद्धान्तों को दूर फेंका और पश्चिमीय धर्म को गौरवता की दृष्टि से देखते हुए वेदों के भाष्य आदि को उसी धर्मपथ पर पहुँचाने का परिश्रम किया। पुस्तकों में ही पश्चिमीभाव नहीं आये किन्तु शरीर पर भी आ गये। जो स्वामी दयानन्दजी दिगम्बर रहते थे फिर उन्हीं की यह दशा हुई कि "कोटश्च बूटश्च घड़ी छड़ी च चैनश्च चश्मा च लसन्ति देहे" सो पण्डितजो महाराज दिगम्बर रहने की प्रशंसा स्वामी दयानन्द की सनातनधर्मी करेंगे आप तो उस रूप की प्रशंसा करें जो आर्यसमाज में आते ही धारण किया था किन्तु आप उस रूप को दबाना चाहते हैं ऐसा न किया करें कि आर्यसमाज के विरुद्ध सनातनधर्म की पुष्टि में छिपी २ कलम चलाते हैं।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी बड़े अभिमान से कहते हैं कि सेवा सत्संगादि करनेवालों को वेदधर्म का उपदेश और वेदविरुद्ध मतों का खण्डन किया करते थे। क्या पं० तुलसीरामजी का यह लेख सर्वथाही सत्य है ? क्या स्वामी दयानन्दजी ने वेदों का किञ्चित् भी खण्डन नहीं किया ? पण्डितजी महाराज, और २ धर्मों का खण्डन करते २ स्वामी दयानन्दजी ने वेदों का ऐसा खण्डन किया है कि उनका एक अक्षर भी न छोड़ा। क्या पण्डितजी आप इसको नहीं जानते, अवश्य जानते हैं, यदि नहीं जानते तो लीजिये जानिये हम बतलाते हैं– ऋषि मुनि तथा पण्डित सभी इस बात को जानते हैं कि वेद तीन भागों में विभक्त हैं– प्रथम शाखा (मन्त्र भाग), द्वितीय ब्राह्मणभाग और तृतीय उपनिषद्भाग इन तीनों भागों को छोड़ कर (इससे भिन्न) कहीं वेद का एक अक्षर भी नहीं है और स्वामी दयानन्दजी इन तीनों ही भागों को स्वतः प्रमाण वेद नहीं मानते यह आप उत्तमरीति से जानते हैं यदि आप इस विषय में प्रमाण मांगते हैं तो प्रमाण भी लीजिये। स्वामीजी ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं मानते द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के पृ० २०५ पंक्ति ६ से लिखते हैं कि संहिता पुस्तक के आरम्भ में अध्याय की समाप्ति में "वेद" यह सनातन से लिखा रहता है और ब्राह्मण

पुस्तक के आरम्भ व अध्याय की समाप्ति में कहीं नहीं लिखा और निरुक्त में "इत्यादि निगमो भवति इति ब्राह्मणम् नि० अ० ५ खं० ३।४" "छन्दो ब्राह्मणानिच तद्विषयाणि अष्टाध्यायी ४ । २ । ६६" यह पाणिनीय सूत्र है इस से स्पष्ट विदित होता है कि वेद मन्त्रभाग और ब्राह्मण व्याख्याभाग है इससे विशेष देखना चाहै वह ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में देख ले इत्यादि कुछ लेख स्वामी जी ने आगे भी चलाया है इस लेख में यह अच्छी रीति से सिद्ध कर दिया गया कि ब्राह्मणभाग वेद नहीं इस पर चाहे सनातनधर्मी कुछ लेख भी लिखें या स्वामी दयानन्द के लेख को न मानें किन्तु आप को तो माननाही पड़ेगा क्योंकि यह लेख उनका है जो आर्यसमाजमत के जन्मदाता हैं या यों कहिये कि महर्षि हैं, महर्षि के लेख पर आप का क्या उज़्र हो सकता है यदि यही समझलें कि आपको उज़्रही है तो रहे किन्तु स्वामी दयानन्द तो ब्राह्मणों को वेद नहीं मानते फल यह निकला कि ब्राह्मणभाग वेदही नहीं हैं। अब उपनिषद्भाग की कथा सुनिये—प्रथम तो दशही माने फिर उनके लिये भी आर्डर दे दिया कि ये स्वतः प्रमाण नहीं जितना अंश से वेद न मिले उसको छोड़ दो उपनिषद्भाग को यों उड़ाया है इसको सत्यार्थप्रकाश के पृ० ६८ में देखिये। अब एक मंत्रभाग और रह गया, उसकी भी कथा सुन लीजिये—सत्यार्थप्रकाश स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश की संख्या २ में स्वामीजी लिखते हैं कि वेद की शाखा जोकि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रंथ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद विरुद्ध वचन हैं उनको अप्रमाण मानता हूँ। लीजिये इन्होंने तो शाखाओं को भी उठा दिया। यदि कहो कि शाखाओं से भिन्न भी तो चार संहिता हैं जो वैदिक यन्त्रालय अजमेर में छपी हैं जिनको आर्यसमाज वेद मानती है इसका उत्तर यह है कि यह भी चार शाखायें हैं जिसको दयानन्द ने ऋग्वेद लिखा है वह ऋग्वेद की शाकल शाखा और जिसको यजुर्वेद बनाया वह यजुर्वेद की वाजसनेही या माध्यंदिनी शाखा और जिसपर स्वामीजी[1] ने सामवेद लिखा वह सामवेद की कौथुमीशाखा और जिसको स्वामी दयानन्दजी ने अथर्ववेद लिखा वह अथर्ववेद की शौनकी शाखा है।

---

१ स्वामीजी ने नहीं लिखा तो समाज ने लिखा।

इनके शाखा होने में प्रमाण (१) आर्यसमाज को छोड़ कर जिस २ प्रेस में ये पुस्तकें छपीं उन पर साफ़ २ इनके नाम छपे हैं, (२) उव्वट महीधर सायण आदि भाष्यकारों ने शाखाओं के नाम लिखे हैं, (३) इन चारों शाखाओं के चार श्रौतसूत्र हैं उनमें साफ़ लिखा है कि यह अमुक शाखा का सूत्र है जैसे कातीय श्रौतसूत्र माध्यन्दिनीशाखा का है और उसमें सब कार्य माध्यन्दिनी के मन्त्रों से कराये हैं इत्यादि अनेक प्रमाण मौजूद हैं जो यह साबित करते हैं कि ये चारों शाखा हैं जब ये शाखा हैं तब तो स्वामी दयानन्दजी ने इनको भी उड़ा दिया। ब्राह्मणभाग, उपनिषद्भाग, शाखाभाग इन तीनों भागों को स्वामी दयानन्दजी वेद नहीं मानते और इनसे भिन्न वेद भी नहीं फिर पं० तुलसीरामजी किस अभिमान से कहते हैं कि स्वामीजी वेद विरुद्ध मतों का खण्डन करते थे यहां पर पं० तुलसीरामजी को यह लिखना चाहिये कि वेदविरुद्ध मतों का थोड़ा २ खण्डन करते २ वेद धर्म का बिल्कुलही खण्डन किया करते थे।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि स्वामी गङ्गातट पर रहते थे और सत्यार्थप्रकाश काशी में छपा इस कारण भाषा आदि को अच्छे प्रकार जांच न सके। इस लेख से दो बातें निकलती हैं एक तो यह कि प्रूफ तो देख लिया जांच लिया किन्तु वह सरसरी दृष्टि या लापरवाही से देखा अच्छी प्रकार जांच नहीं की अस्तु जब स्वामीजी ने जांच की तब उन विषयों को क्यों नहीं निकाल दिया जो लेखकों ने भर दिये थे और द्वितीयावृत्ति में निकालने पड़े द्वितीय हिन्दी भाषा की अच्छी तरह जांच न कर पाये यदि वे काशीजी में रहते तो अच्छी तरह जांच कर लेते जांच तो तभी करते जब उनको हिन्दी भाषा आती होती आप पहिले तो लिख आये कि उनको हिन्दी भाषा आतीही नहीं थी अब कहते हैं समय न मिलने से अच्छी प्रकार जांच नहीं की जब स्वामीजी को हिन्दी भाषा ही नहीं आती थी फिर मामूली जांच कैसे की और समय मिलने पर अच्छी कैसे कर लेते मालूम होता है कि इस वक्त में भी हिन्दी भाषा आती थी और पं० तुलसीरामजीने जो लिखा था कि उन्हें हिन्दी नहीं आती थी वह केवल इसलिये था कि सत्यार्थप्रकाश के अयोग्य लेखों का कलंक स्वामीजी को न लगे। अब आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि सत्यार्थप्रकाश बहुत पहिले बनाया था। क्या मथुरा में जब पढ़ते थे या उससे पहिले? यदि कहो कि नहीं उसके बाद तब तो

सत्यार्थप्रकाश बनने के समय हिन्दी जानते थे इसके अलावा प्रूफ के समय तो आपके लेख से भी हिन्दी जानना स्पष्ट है। पण्डितजी बातें न बनाइए या तो यह कहिये कि अब समाज उस सत्यार्थप्रकाश को ही नहीं मानती या यों कहिये कि स्वामीजी पहले उन्हीं सिद्धान्तों को मानते थे फिर उनको छोड़ कर दूसरे सत्यार्थप्रकाश के सिद्धान्तों पर आ गये।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि भूमिका और ऋग्वेदादि भाष्य एक तो लिखने से थोड़े ही काल पीछे छपे और वे मूल संस्कृत में लिखे गये फिर भाषा पण्डितों ने बनाई बनने से जल्दी छपे इस कारण शुद्ध रहे एक ग्रंथ लिखा हुआ दशवर्ष धरा रहे तो क्या वह धरा २ अशुद्ध हो जाता है यदि कहो कि नहीं यह नहीं इनके समय में स्वामीजी हिन्दी का लिखना बोलना सीख गये थे यह भी गलत क्योंकि स्वामी जी तो मरने के समय या मरने के बाद या द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश संशोधन के समय में स्वीकार करते हैं कि अब हमको ठीक हिन्दी आगई फिर कैसे वह शुद्ध बन गये पंडितों ने मूल संस्कृत से ऋग्वेदादि का भाषा बनाया तो क्या सत्यार्थप्रकाश मूल अर्बी से बना है।

यहां हमको कुछ विशेष भी कहना है वह यह है कि स्वामी दयानंद जी लिखते हैं कि भाषा व्याकरणानुसार हिन्दी भाषा ठीक करदी और वाक्य रचना का भेद कर दिया पाठक प्रथमावृत्ति और द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश लेकर मिलाते जाइये लेख में कहीं भी भाषा नहीं बदली जो प्रथमावृत्ति की भाषा है वही ज्यों की त्यों द्वितीयावृत्ति की है भाषा में फर्क एक अक्षर का भी नहीं केवल काटछांट की है अर्थात् प्रथमावृत्ति में से कुछ इबारत निकालनी थी निकाल डाली क्या इबारत का निकाल डालनाही तो व्याकरणानुसार शुद्ध नहीं कहलाता? फिर यह भी कहते हैं कि अर्थ का भेद नहीं किया प्रथमावृत्ति के दशम समुल्लास में जीव ब्रह्म की एकता लिखी थी उसको द्वितीयावृत्ति में निकाल डाला क्या इतने पर भी अर्थभेद नहीं हुआ? प्रथम सत्यार्थप्रकाश में जीव ब्रह्म एक और द्वितीयावृत्ति में भिन्न २ यह तो वह अर्थभेद हुआ कि जिससे सिद्धान्तही बदल गया।

स्वामीजी यह भी लिखते हैं कि उसमें बढ़ाया तो है किन्तु कम नहीं किया मृतक पितरों का श्राद्ध मांस के पिण्ड देना आदि सैकड़ों पंक्तियाँ निका-

लनेपर भी कमती[1] नहीं हुआ इसको तो वही मानेगा जो सत्यता का खून करने को तैयार बैठा हो। फिर स्वामीजी लिखते हैं छापे की अशुद्धियां ठीक करदीगईं प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में छापे की अशुद्धियांही नहीं थीं फिर ठीक क्या करदीं इसका भी तो पता चले। स्वामी दयानन्दजीने दोनों वक्त मांस से हवन करना, मांस खाना और मरे पितरों का श्राद्ध करना इत्यादि जो लेख लिखे थे और जिनको द्वितीयावृत्ति में निकाल डाला आज उन लेखों को स्वामीजी प्रेस की अशुद्धियों में दाखिल करना चाहते हैं क्या कोई विचारशील मनुष्य इस बात को मान लेगा कि वास्तविक में ये कम्पाजीटरों की अशुद्धियां हैं कम्पोज में एक दो अक्षर की अशुद्धता होती है या पंक्तियों की, फिर सम्भव है कि कोई पंक्ति कम्पोज करने से रह जावे किन्तु कम्पाजीटर अपनी तरफ से बनाकर लाइन की लाइन कम्पोज नहीं कर सकता कि जिसका अपराध स्वामीजी कम्पाजीटरों पर लगा रहे हैं शोक है कि स्वामीजी अपनी गलती छिपाने के लिये क्या लिख रहे हैं लोगों को धोखा दे रहे हैं। ताजुब है कि जिसको समाज धर्मरक्षक कहे, जिनको महर्षिकी पदवी दी जावे, जोकि संन्यासी हो वह सरासर दिन दुपहरी मनुष्यों की आंखों में धूल झोके। ऐसे २ लेखों से प्रतीत होता है कि सत्य बोलना स्वामी जी ने संसार को दिखलाने के लिये ही लिखा वास्तव में उन्होंने झूंठ बोलना झूंठ लिखना धोखा देना इसी को धर्म समझा था।

मुझे महान् आश्चर्य इस बात का है कि जिस धर्म में किंचित्मात्र भी सच्चाई नहीं, जो धर्म सच्चाई से कोसों दूर भागता है उसमें लिखी पढ़ी चिड़ियां कैसे फंसजाती हैं मालूम होता है कि इस पार्टी में दोही प्रकार के मनुष्य हैं एक तो जो सच्चाई से दूर रहना चाहते हैं दूसरे जो वेदशास्त्र या दयानन्द के लेख इन दोनों से अनभिज्ञ हैं और यह मोटी बात समझते हैं कि वेदों में अवतार, मूर्ति पूजा, मृतक पितरों का श्राद्ध, और छूत, नहीं है सब के हाथ का खाना और विधवा विवाह करना लिखा है। मैं प्रतिनिधियों से बड़े अदब के साथ प्रार्थना करता हूँ कि वे आर्यसमाज के धर्म की सच्ची छान-बीन करें और समाज में जाने से जो सच्चाई का खून होता है उसको रोकें। मैं पं० तुलसीरामजी से अपील करता हूँ कि आप जान बूझकर मनुष्यों को अन्धकार के गढ़े में न पटकें।

१—द्वितीयावृत्तिको प्रथमावृत्ति से मिलाकर देखिये बहुत पाठ द्वितीयावृत्ति में निकाला गया।

आगे पं० तुलसीरामजी यह लिखते हैं कि इसलिए यह आक्षेप निर्मूल है। एक भी बात का उत्तर नहीं फिर भी आक्षेप निर्मूल, क्या घर की मजिस्ट्रेटी बनाली पं० तुलसीरामजी ने सब कुछ लिखा किन्तु पं० ज्वालाप्रसाद् के असली आक्षेप पर लेखनी उठानेका साहस भी न किया मिश्रजी कहते हैं कि यह तो सही है इस द्वितीयावृत्ति को तो फिर अशुद्ध न कहोगे पं० तुलसीरामजी ने इसके ऊपर कुछ भी न लिखा लिखें तो तब जब कि वह शुद्ध हो वह भी तो अशुद्ध ही निकला आर्यसमाज ने तृतीयावृत्ति में कुछ कम कर दिया है कि यह अशुद्ध २ निकलगया फिरभी अशुद्ध ही रहा फिर चतुर्थावृत्ति में निकाला लोगों ने पूछा कि यह पाठ अबकी क्यों निकाला गया समाज ने कहा कि यह अशुद्ध था फिर पञ्चमावृत्ति छपी उसमें "गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के विषय में पुरुष व स्त्री से न रहा जावे तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति करदें" इत्यादि स्वामीजी के अनेक सिद्धान्तों को निकाल डाला। हमारा कथन इस विषय में यह है कि समाज को क्या अधिकार है जो स्वामीजी के लेख को निकाल डालें और इस निकालने से क्या साबित होता है यही होता है कि स्वामी दयानन्दजी का लेख वेद शास्त्र कथित धर्म और प्रत्यक्ष के भी विरुद्ध है बस यही तो सनातनधर्म पहिले ही से कह रहा है कि स्वामी दयानन्द का लेख ठीक नहीं बस यही आर्यसमाज कहरहा है कि स्वामीदयानन्द का लेख वेद शास्त्रादि के विरुद्ध है क्या मजे की बात है कि स्वामी दयानन्द के लेख को दोनोंही अशुद्ध बतला रहे हैं फिर जब स्वामी दयानन्द का ही लेख अशुद्ध है तब समाज में बाकी ही क्या रह गया अस्तु अब छठी आवृत्ति में भी सत्यार्थप्रकाश के लेख निकाल कर शुद्ध किया गया।

आश्चर्य यह है कि प्रथमावृत्ति भी सत्यार्थप्रकाश और द्वितीयादि आवृत्ति भी सत्यार्थप्रकाश ! समाज गलतियों को भी स्वीकार करती है और जिसमें अनेक अशुद्धियां भरी पड़ी हैं उसी को सत्यार्थप्रकाश भी कहती जाती है यदि सचही इसमें सत्य अर्थ का प्रकाश है तो फिर प्रत्येक आवृत्ति में उस सत्य अर्थ के प्रकाश को दूर क्यों किया जाता है क्या अब समाज असत्यार्थ को मानेगी अस्तु अब ईसाई मुसलमानों की शुद्धि के साथ २ सत्यार्थप्रकाश की शुद्धि भी समाज ने आरम्भ कर दी है और हम उन आर्यसमाजी भाइयों को धन्य

वाद भी देते हैं कि जिन्हों ने पक्षपात को छोड़ कर पबलिक पर यह प्रगट कर दिया कि स्वामी दयानन्द का लेख बिलकुल अशुद्ध है। यदि समाज के मत में स्वामी दयानन्दजी महर्षि थे तो महर्षि की अशुद्धी पकड़नेवाला क्या किसी पद का अधिकारी नहीं है या स्वामी दयानन्द से विद्वान् नहीं माना जावेगा। सं० १९०७ तक सत्यार्थप्रकाश की शुद्धि होती गई। भंगी चमार तो घण्टा भर में शुद्ध हो जाते हैं किन्तु यह सत्यार्थप्रकाश बीसियों बर्ष में भी शुद्ध न हुआ क्यों कि यह उनसे भी अधिक अशुद्ध है। जब इतने पर भी सत्यार्थप्रकाश शुद्ध न हुआ तब हार मान कर परोपकारिणी सभा ने मुसाफिर अखबार आगरा में ३१ जौलाई सन् १९०८ में एक विज्ञापन छपवाया उस विज्ञापन को भी पढ़िये यह है। सूचना दीजिये प्रायः समाजों से शिकायत आई है और आती रहती है कि सत्यार्थप्रकाश के प्रमाणों के पते आदि तथा छापे की अशुद्धियां रह गई हैं कई महाशय अन्य प्रकार की अशुद्धियां भी बतलाया करते हैं जो इन्हें विपक्षी लोगों से वादाविवाद के समय मालूम हुई हैं इस गड़बड़ को दूर करने के वास्ते सभा ने सत्यार्थप्रकाश के शुद्ध कराने का प्रबन्ध किया है इस लिये सब आर्यसमाजों, सामाजिक पुरुषों विशेष कर आर्य विद्वानों तथा उपदेशकों से प्रार्थना है कि वह अपनी २ सम्मति से शीघ्र सूचित करें कि उन्हें सत्यार्थ-प्रकाश में किस प्रकार संशोधन अभीष्ट है जिस प्रकार की अशुद्धियां उक्त ग्रन्थ में जिन महाशयों को मालूम हों शीघ्र सभा के दफ्तर में लिख भेजें अति कृपा होगी। निवेदक हरबिलास साडा सहायक मन्त्री परोपकारिणी सभा अजमेर। मेरा प्रश्न आर्यसमाजी भाइयों से यह है कि विज्ञापन में जो यह लिखा है कि अन्य प्रकार की भी अशुद्धियां बतलाया करते हैं इसके क्या माने हैं क्या इस लेख से स्वामीजी के लेख को अशुद्धता न लीजावेगी।

सत्यार्थप्रकाश की शुद्धि की फिर प्रार्थना—

वेदप्रकाश वर्ष १५ मा० ८ अगस्त सन् १९११ पृष्ठ १९८ सत्यार्थप्रकाश में खाडिया धौलेश्वर महादेव समीपे अहमदाबाद ता० ६-७-११। श्रीयुत वेद-मूर्त्ति पण्डितवर्य्य श्रीतुलसीरामजी सादर प्रणाम कोटि है निम्न लेख सर्व साधारण के ज्ञातार्थ वेदप्रकाश में अवश्य प्रकट करें (१) सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास के आरम्भ में ४ मंत्र छपे हैं परन्तु ५ मंत्र होने चाहिये जो पंचम मंत्र

छपना था वह लिखनेवाले वा छापनेवाले के प्रमाद से छूट गया है वह मंत्र अब छपना चाहिये क्योंकि हिंदी भाषा में जो लेख "हे मनुष्यो मैं सत्यभाषण रूप स्तुति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन देता हूं और धारण करनेवाला हूँ वह अनुवाद निम्न मंत्र का बराबर है" "अहंदाम गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् । अहं भवं यजमानस्य चोदिता यज्वनःसाक्षी विश्वस्मिन्भरे। ऋ० १०। ४९। ०१" (२) दशम समुल्लास में सप्तम श्लोक के अनन्तर अष्टम निम्न श्लोक "श्रुतिस्तुवेदोविज्ञेयोधर्मशास्त्रन्तुवैस्मृतिः। ते सर्वार्थेष्वमीमांसे ताभ्यांधर्मोहिनिर्वभौ । २। १०" होना चाहिये क्योंकि इस का अनुवाद हिन्दी में है जैसा कि श्रुतिवेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं इन से सब कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निश्चय करना चाहिये (३) षष्ठ समुल्लास में जो यह "प्रमाणानि कुर्वीत तेषां धर्मान्यथोदितानान्" पंक्ति लिखी है वह नहीं चाहिये उस के स्थान में—"स्थापयेत्तत्र तद्वश्यं कुर्य्याच्चसमयक्रियाम् ७।२०३" यह पंक्ति छपनी चाहिये क्योंकि हिन्दी में इसी का अनुवाद विद्यमान है। ऐसी २ छोटी २ भूलें सत्यार्थप्रकाश में रहगई हैं इसको शुद्ध करने में कुछ हानि नहीं है सिद्धान्त में फेर फार नहीं करना चाहियें सम्पादकजी आप ठीक समझें तो परोपकारिणी ऐसी अशुद्धि भविष्य में ठीक करें इसके विषय में कुछ थोड़ासा लेख अपनी ओर से लिखें फिर अन्य अशुद्धियां मैं लिख भेजूंगा। नारायणदास भक्त अहमदाबाद ता० ५। ८। ११ (टिपणी—इस प्रकार की अशुद्धियां अवश्य शुद्ध करानी चाहिये श्रीमती परोपकारिणी सभा ध्यान दे—सम्पादक)।

सत्यार्थप्रकाश फिर भी अशुद्धही रहा—

आर्यमित्र ता० १-८-१४ पृष्ठ २ में मं० जीवनदास पेन्शनर लाहौर ने सत्यार्थप्रकाश के संशोधन का एक नमूना पुस्तकाकार तैयार किया है इसमें सत्यार्थप्रकाश की कुछ मोटी २ अशुद्धियों का संशोधन दर्शाया गया है हम समझते हैं कि यदि सत्यार्थप्रकाश के सिद्धान्तों को बचाते हुए उसकी ऐसी भूलें शोध दीजांय जोकि लेखक के भ्रम अथवा प्रमाद से हुई हैं तो कोई हानि नहीं स्मरण रखना चाहिये कि स्वामीजी स्वयं कभी ग्रन्थ को अपने हाथ से नहीं लिखते थे।

फिर अशुद्धि की आवाज—

वेदप्रकाश अगस्त सन् १४ पृष्ठ २१६–कृपया इस पत्र को वेदप्रकाश में छाप दीजिये । महात्मन् ! आपको विदित है कि सत्यार्थप्रकाश में अनेकों ऐसी अशुद्धियां हैं जिनके सहारे विपक्षी नित्यप्रति आक्षेप करते रहते हैं और प्रायः आर्योपदेशक निरुत्तर होजाते हैं परन्तु आश्चर्य है कि आर्यनेता इसके संशोधनका कोई उपाय नहीं करते क्या ऋषि दयानन्द का यह मन्तव्य नहीं था कि पहिले अपनी भूल निकाल कर दूसरे की भूल जतलायें यदि यह मान्य है तो जब तक सत्यार्थप्रकाश में अशुद्धियां हैं तब तक आपको कोई अधिकार दूसरों पर अक्षेप का नहीं है स्वामी दर्शनानन्दजीने पहिले विज्ञप्त कराया था कि मैं सत्यार्थ-प्रकाशकी अशुद्धियां निकाल कर दूर कर दूंगा परन्तु वह कार्य न कर सके हमारी सम्मति में एक आर्यविद्वानोंको महती सभा हो और उसमें जो अशुद्धियां ऋषिग्रन्थों में अथवा सत्यार्थप्रकाश में हों वह सर्वसम्मति से वेदशास्त्रानुकूल शोध दी जायँ यदि आप आर्यविद्वानों को अपनी प्रभावशाली लेखनी द्वारा इस विषय पर आकर्षित करना चाहेंगे तो सम्भव है कि यह कार्य शीघ्र हो जाय रामनारायण सभासद् आर्यसमाज (भास्करप्रकाश के लेखको देखलेते तो ऐसा न लिखते) पं० तुलसीरामजी भास्करप्रकाश की धमकी देते हैं और भास्करप्रकाश में जो लिखाहै वह लेख सत्यार्थप्रकाश की त्रिकाल में रक्षा नहीं कर सकता ।

आजकल के विज्ञापन जो यह कहते हैं कि सिद्धान्तों को बचालो और सत्यार्थप्रकाश को शुद्ध कर लो यह इसलिये कहते हैं कि सिद्धान्तही गये तो फिर आर्यसमाज की ही अन्त्येष्टि हो जावेगी किन्तु स्वामीजी के जितने सिद्धान्त हैं सब वेदविरोधी हैं आज आर्यसमाज आग्रह में पड़ कर इनको भलेही सत्य माने किन्तु किसी दिन यह भी मानना पड़ेगा कि स्वामी दयानन्द के तो सिद्धान्तही वेदविरुद्ध हैं पहिले यही हाल सत्यार्थप्रकाश का था सनातनधर्म इसको अशुद्ध बतलाता था और आर्यसमाजी शुद्ध बाज २ आर्यसमाजी अब भी सत्यार्थप्रकाश को "सत्यार्थप्रकाश" ही मानते हैं किन्तु यह आनंद की बात है कि धर्मजिज्ञासु आर्यसमाजियों ने ही विज्ञापनों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि यह सत्यार्थप्रकाश नहीं किन्तु असत्यार्थप्रकाश है इसी प्रकार वे दिन भी नजदीक आनेवाले हैं कि जिनमें आर्यसमाजी स्वामी दयानन्दजी के सिद्धान्तों को अशुद्ध बतलावेंगे

नजदीक क्या किन्तु आचके इसका उदाहरण यह है कि पं० बद्रीप्रसादजी जोकि आर्यसमाज कानपुर में उपदेशक रहे हैं जिनका निवासस्थान काशीपुर है उन्होंने स्वामी दयानन्दजी के मान्य सिद्धान्त नियोग का बहुत उत्तम रीति से खण्डन किया है और वह खण्डन मर्यादा नामक मासिक पत्रिका इलाहाबाद में छपवा दिया है जिसकी तबियत चाहे मर्यादा और सनातनधर्मपताका मुरादाबाद में देख सकता है किन्तु शोक यह है कि आर्यसमाज की सभायें इसका विचारही नहीं करतीं स्वामी दयानन्द के शेष सिद्धान्त भी वेदविरोधी आर्यसमाजीही बतलावेंगे। जिस सत्यार्थप्रकाश को आर्यसमाज अपनी धार्मिक पुस्तक मानता है जिसके ऊपर आर्यसमाज की जड़ है वह सत्यार्थप्रकाश तो अदालतों में व्यभिचार फैलानेवाला साबित हो चुका है।

सन् १८९२ में एक सनातनधर्मी ने स्वामी दयानन्दजी के प्रिय सिद्धान्त नियोग के खण्डन में एक पुस्तक लिखी थी जब वह पुस्तक समाजियों ने देखी तब तो लेखक पर क्रोध आया, चाहिये था यह कि आर्यसमाजी उस पुस्तक का खण्डन करदेते भला यह शक्ति समाजमें कहांसे आई लाचारहोकर आर्यसमाजियों ने उस सनातनधर्मी पर अदालत में दावा कर दिया जब अभियोग चला तो उसकी काररवाई आरम्भ हुई साहिब मजिस्ट्रेट पेशावर ने बयान सुन कर यह फैसला लिखा है देखिये—

इस बात से इन्कार नहीं हो सकता कि दयानन्द की खास पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में व्यभिचार की तालीम मोजूद है मुद्दई खुद इस बात को स्वीकार करता है कि वह नियमों पर जिनमें विवाहिता स्त्री को अपने असली पति के जीतेजी किसी अन्य विवाहित पुरुष के साथ भोग करने की आज्ञा है विश्वास रखता है यह रिवाज बेशुभह व्यभिचार है इस वास्ते यह जिक्र करते हुये कि दयानन्द के शिष्य इन उपरोक्त नियमों पर विश्वास लाये हुये रस्म व्यभिचार का आरम्भ कर रहे हैं और अगर इन नियमों पर इनका विश्वास इसी तरह रहा तो यह इस व्यभिचार को ज्यादा उन्नति देंगे मुद्दालय ने सच्चाई से एक प्रकट बात को प्रकाश किया है।

भला समाजियों को कहां सन्तोष ये तो देशोन्नति पर कमर ही बांधे बैठे हैं इन्होंने साहब जज के यहां फौरन अपील किया साहब जज ने भी इस को ख़ारिज कर दिया और खारिज करते हुये यह रिमार्क दिया है—

दयानन्द के नियम ऐसे नियम हैं कि वे हिन्दूधर्म तथा दूसरे मजहबों की निन्दा करते हैं और इस किताब (सत्यार्थप्रकाश) के चन्द हिस्से खुद भी निहायत फुहश (घृणित) हैं । ये फैसले उसी सत्यार्थप्रकाश पर लिखे गये हैं जिसके लेख को समाज पवित्र शिक्षा कहती है जिसके लेखक को महर्षि के नाम से याद करती है हमारी राय में तो जब तक यह पुस्तक संसार में रहेगी तब तक परस्पर में विरोध और स्त्रियों में व्यभिचार फैलाती रहेगी पबलिक की शान्ति के लिये स्त्रियों के धर्म के लिये किसी दिन मजहबों का खण्डन और नियोग भी इसमें से अवश्य निकाला जावेगा। सत्यार्थप्रकाश सत्यार्थ नहीं इसको प्रायः सभी आर्यसमाजी पण्डित जान गये किन्तु उसको अब भी सत्य कहते हैं इसका कारण विचारणीय है। सत्यार्थप्रकाश पर जैसे विज्ञापन ये निकल चुके हैं ऐसे आगे को भी निकलते रहेंगे इस सत्यार्थप्रकाश की शुद्धि कोई कहां तक करेगा हमारा तो यह कथन है कि जब तक इस सत्यार्थप्रकाश में एक भी वाक्य रहेगा तब तक यह अशुद्ध ही होगा क्योंकि यह वास्तविक में सत्यार्थप्रकाश ही नहीं इसकी तो वही हालत है कि "गंगाधराणां स्नानं न दानम् । विद्याधराणां पठनं न पाठनम्" नाम इसका सत्यार्थप्रकाश है परन्तु आरम्भ से अन्त तक असत्यार्थप्रकाश ही है पं० तुलसीरामजी ने समझ लिया कि द्वितीयावृत्ति शुद्ध है इस बात को तो कोई विद्वान् स्वीकार ही नहीं कर सकता फिर हम क्यों स्वीकार करें यह समझ कर मिश्रजी के इस लेख पर कि अब द्वितीयावृत्ति तो शुद्ध है लेखनी ही नहीं उठाई पण्डितजी की इस सत्यता के ग्रहण का हम उनको धन्यवाद देते हैं किन्तु पूर्ण धन्यवाद के पात्र पण्डित जी उस समय हो सकते थे जब साफ अक्षरों में लिखते कि द्वितीयावृत्ति भी अशुद्ध है पण्डितजी ने इसको छिपाया किन्तु बार २ पाठ निकालने से सत्यार्थ प्रकाश का अशुद्ध रहना समाज को मानना ही पड़ा। सत्यार्थ पर यह थोड़ासा लेख एक इशारा मात्र है और यदि सत्यार्थप्रकाश पुस्तक अशुद्ध इस पर समाजियों की पूरी सम्मति लिखी जावे तो फिर यह लेख टाड राजस्थान से कम न होगा समझदारों को थोड़े से ही संतोष हो जाया करता है यह समझ इस लेख की समाप्ति यहां पर ही करता हूँ।

———:०:———

ब्रह्मादि निर्णय।

सत्यार्थप्रकाश आरम्भ से—

ओ३म् शन्नो मित्रः शंवरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णु रुरुक्रमः॥ नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः।

अर्थ–(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्यों कि इसमें जो अ उ और म तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आ जाते हैं जैसे अकार से विराट अग्नि और वश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है उसका ऐसा ही वेदादि[1] सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं। (प्रश्न) परमेश्वर से भिन्न अर्थों के वाचक विराट आदि नाम क्यों नहीं? ब्रह्माण्ड, पृथिवी आदि भूत इन्द्रादि देवता, और वैद्यकशास्त्र में शुण्ठ्यादि औषधियों के भी ये नाम हैं वा नहीं? (उत्तर) हैं परन्तु परमात्मा के भी हैं। (प्रश्न) केवल देवों का ग्रहण इन नामों से करते हो वा नहीं? (उत्तर) आप के ग्रहण करने में क्या प्रमाण है? (प्रश्न) देव सब प्रसिद्ध और वे उत्तम भी हैं इससे मैं उनका ग्रहण करता हूं। (उत्तर) क्या परमेश्वर अप्रसिद्ध और उससे कोई उत्तम भी है पुनः ये नाम परमेश्वर के भी क्यों नहीं मानते जब परमेश्वर अप्रसिद्ध[2] और उसके तुल्य भी कोई नहीं तो उससे उत्तम कोई क्यों कर हो सकेगा।

१–आर्यसमाज के स्वतः प्रमाण वेद में कहीं पर भी ओंकार का व्याख्यान नहीं यहां पर सनातनधर्म के ग्रन्थों को स्वतः प्रमाण माना जावेगा।

२–यहां दयानन्द ईश्वर को अप्रसिद्ध बतलाते हैं!

इससे आपका यह कहना सत्य नहीं क्योंकि आप के इस कहने में बहुत से दोष भी आते हैं जैसे "उपस्थित परित्यज्यानुपस्थितयाचत इति वाधितन्यायः" किसी ने किसी के लिये भोजन का पदार्थ रखके कहा कि आप भोजन कीजिये और जो वह उसको छोड़ के अप्राप्त भोजन के लिये जहां तहां भ्रमण करे उसको बुद्धिमान न जानना चाहिये क्योंकि वह उपस्थित नाम समीप प्राप्त हुए पदार्थ को छोड़ के अनुपस्थित अर्थात् अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति के लिये श्रम करता है इसलिये जैसा वह पुरुष बुद्धिमान नहीं वैसाही आप का कथन हुआ। क्योंकि आप उन विराट नामों के जो प्रसिद्ध प्रमाण सिद्ध परमेश्वर और ब्रह्माण्डादि उपस्थित अर्थों का परित्याग करके असम्भव और अनुपस्थित देवादि के ग्रहण में श्रम करते हैं इसमें कोई भी प्रमाण वा युक्ति नहीं जो आप ऐसा कहें कि जहां जिसका प्रकरण है वहां उसी का ग्रहण करना योग्य है जैसे किसी ने किसी से कहा कि "हे भृत्यत्वं सैन्धवमानय" अर्थात् तू सैन्धव को लेआ तब उसको समय अर्थात् प्रकरण का विचार करना अवश्य है क्योंकि सैन्धव नाम दो पदार्थों का है एक घोड़े का दूसरा लवण का जो स्वस्वामी का गमन समय हो तो घोड़ा और भोजन काल हो तो लवण को ले आना उचित है। और जो गमन समय में लवण और भोजन समय घोड़े को ले आवे तो उसका स्वामी उस पर क्रुद्ध होकर कहेगा कि तू निर्बुद्धि पुरुष है गमन समय में लवण और भोजनकाल में घोड़े के लाने का क्या प्रयोजन था तू प्रकरणवित् नहीं है नहीं तो जिस समय में जिसको लाना चाहिये था उसी को लाता जो तुझ को प्रकरण का विचार करना आवश्यक था वह तूने नहीं किया इससे तू मूर्ख है मेरे पास से चला जा इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहां जिसका ग्रहण करना उचित हो वहां उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिये तो ऐसाही हम और आप सब लोगों को मानना और करना ही चाहिये।

अथ मन्त्रार्थ। ओ३म् खम्ब्रह्म ॥ १ ॥ यजु० अ० ४० मं० १७ ॥ देखिये वेदों में ऐसे प्रकरणों में "ओ३म्" आदि परमेश्वर के नाम आते हैं। ओ३मित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥ २ ॥ छान्दोग्य उपनिषद मं० १ ॥ ओ३मित्येतदक्षर मिदꣳसर्वंतस्योपव्याख्यानम् ॥ ३ ॥ माण्डूक्य० मं० १ ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ ४ ॥ कठोपनिषद । वल्ली २ मं० १५ ॥ प्रशासितारं सर्वेषा मणीयां समणोरपि । रुक्माभं स्वप्न धी गम्यं विद्यातं पुरुषंपरम् ॥ ५ ॥ एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् । इन्द्र मेके परे प्राण मपरे ब्रह्म शास्ततम् ॥ ६ ॥ मनु० अ० १२ श्लोक १२२ व १२३ ॥

सत्यार्थप्रकाश पृ० ११ पं० ११ से—

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवस्सोऽक्षरस्सपरमः स्वराट् स इन्द्रस्सकालग्निस्सचन्द्रमाः (कैवल्योपनिषद) इन्द्रं मित्रं वरुण मग्नि माहु रथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा वहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वान माहुः ऋ० मं० १ अनु० २२ सू० १६४ मं० ४६ भूरसि भूमिरस्य दिति रसि विश्व धाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री पृथिवीं यच्छ पृथिवींदꣳह पृथिवीं माहिꣳसीः । यजु० अ० १३ मं० १८ इन्द्रो मह्ना रोदसीम प्रथच्छव इन्द्रः सूर्य मरोचयत् । इन्द्रेह विश्वा भुवनां नियेमिर इन्द्रेश्वानास इन्द्रः ॥ सामवेद ७ प्र० ३ अ० ८ सू० १६ अ० २ खं० ३ सू० २ मं० ८ ॥ प्राणाय नमोयस्य सर्वमिदंवशे । योभूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् । अथर्ववेद काण्ड ११ अ० २ सूत्र ४ मं० १ ॥

(अर्थ) यहां इन प्रमाणों के लिखने में तात्पर्य यही है कि जो ऐसे प्रमाणों में ओंकारादि नामों से परमात्मा का ग्रहण होता है यह लिख आये तथा परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं जैसे लोक में दरिद्री आदि के धनपति आदि नाम होते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि कहीं गौणिक कहीं

कार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक हैं ओ३म् आदि नाम सार्थक हैं जैसे (ओ३म् खं०) अवतीत्योम् आकाशमिव व्यापकत्वात् खम् सर्वेभ्यो वृहत्वाद् ब्रह्मरक्षा करने से (ओ३म्) आकाशवत् व्यापक होने से (खम्) और सबसे बड़ा होने से (ब्रह्म) ईश्वर का नाम है ॥ १ ॥ (ओ३म्) जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता उसी को उपासना करनी योग्य है अन्य की नहीं ॥ २ ॥ (ओमित्येत०) सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम (ओ३म्) को कहा है अन्य सब गौणिक नाम हैं (३) (सर्वे वेद०) क्योंकि सब वेद सब धर्मानुष्ठान्रूप तपश्चरण जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्य्याश्रम करते हैं उसका नाम ओ३म् है ॥ ४ ॥

(प्रसासिता) जो सबको शिक्षा देनेहारा सूक्ष्म से सूक्ष्म स्वप्रकाशस्वरूप समाधिस्थ बुद्धि से जानने योग्य है उसको परमपुरुष जानना चाहिये । और स्वप्रकाश होने से "अग्नि" विज्ञानस्वरूप होने से "मनु" सबका पालन करने और परमैश्वर्य्यवान् होने से "इन्द्र" सब का जीवनमूल होने से "प्राण" और निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम "ब्रह्म" है । (स ब्रह्मा स विष्णु०) सब जगत के बनाने से "ब्रह्मा" सर्वत्र व्यापक होने से "विष्णु" दुष्टों को दण्ड देके रुलाने से "रुद्र" मङ्गलमय और सबका कल्याणकर्त्ता होने से "शिव" "यः सर्व मश्नुते न क्षरति न विनश्यति तदक्षरम् । यः स्वयं राजते स स्वराट् योऽग्निरिव कालः कलियता प्रलयकर्ता स कालाग्निरीश्वरः" (अक्षर) जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी (स्वराट्) स्वयं प्रकाशस्वरूप और (कालाग्नि) प्रलय में सबका काल और कालका भी काल है इसलिये परमेश्वर का नाम कालाग्नि है (इन्द्र मित्र) जो एक अद्वितीय सत्यब्रह्म वस्तु है उसी के इन्द्रादि सब नाम हैं द्युषु शुद्धेषु पदार्थेषु भवो दिव्यः शोभनानि पर्णानि पालनानि पूर्णानि कर्माणि वा यस्य सः "यो गुर्वात्मा स गरुत्मान" "यो मातरिश्वा वायुरिव बलवान् समातरिश्वा" (दिव्य) प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थों में व्याप्त (सुपर्ण) जिसके उत्तम पालन और पूर्णकर्म हैं (गरुत्मान्) जिसका आत्मा अर्थात् स्वरूप महान् है (मात-

रिश्वा) जो वायु के समान अत्यन्त बलवान है इसलिये परमात्मा के दिव्य सुपर्ण गरुत्मान और मातरिश्वा ये नाम हैं शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे।

(भूमिरसि०) "भवन्ति भूतानि यस्यांसाभूमिः" जिसमें सब भूत प्राणी होते हैं इसलिये ईश्वर का नाम भूमि है शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे। (इन्द्रो मह्ना०) इस मंत्र में इन्द्र परमेश्वर का नाम है इसलिये यह प्रमाण लिखा है (प्राणाय) जैसे प्राण के बस सब शरीर और इन्द्रियां होती हैं वैसे ही परमेश्वर के बस में सब जगत रहता है इत्यादि प्रमाणों के ठीक २ अर्थों के जानने से इन नामों करके परमेश्वरही का ग्रहण होता है क्योंकि ओ३म् और अग्न्यादि नामों के अर्थ से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है जैसा कि व्याकरण निरुक्त ब्राह्मण सूत्रादि ऋषि मुनियों का व्याख्यानों से परमेश्वर का ग्रहण देखने में आता है वैसा ग्रहण करना सब योग्य है परन्तु (ओ३म्[1]) यह तो केवल परमात्माही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक हैं इससे क्या सिद्धि हुआ कि जहां २ स्तुति प्रार्थना उपासना सर्वज्ञव्यापक शुद्ध सनातनधर्म और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं वहीं २ इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है और जहां २ ऐसे प्रकरण हैं कि-ततो विराट् जायत विराजो अधिपुरुषः। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखदग्निरजायत। तेन देवा अजयन्त पश्चाद्भूमि मथो पुरः॥ यजु० अ० ३१ तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम् अन्नाद्रेतः॥ रेत सः पुरुषः सवाएष पुरुषोऽन्नरसमयः। यह तैत्तिरीयोपनिषद ब्रह्मानन्दबल्ली प्रथमानुवाक का वचन है ऐसे प्रमाणों में विराट पुरुषदेव आकाश वायु अग्नि जल भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं क्योंकि जहाँ २ उत्पत्ति स्थिति प्रलय अल्पज्ञ जड़ दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहां २ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता वह उत्पत्ति आदि व्यवहारों से पृथक् है और उपरोक्त मंत्रों में उत्पत्ति स्थिति व्यवहार हैं इसी से यहां विराट आदि नामों से परमात्मा का

१ स्वीकारता का नाम भी है यज्ञ में जीहां के स्थान में "ओ३म्" ही बोला जाता है दयानन्द यज्ञ जानते तो यह न लिखते।

ग्रहण न होके संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है किन्तु जहाँ २ सर्वज्ञादि विशेषण हों वहाँ २ परमात्मा और जहाँ २ इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहाँ २ जीव का ग्रहण होता है ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये क्योंकि परमेश्वर का जन्म मरण कभी नहीं होता इससे विराट् आदि नाम और जन्मादि विशेषणों से जगत के जड़ और जीवादि पदार्थों का ग्रहण करना उचित है परमेश्वर का नहीं अब जिस प्रकार विराट् आदि नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता वहप्रकार नीचे लिखे प्रमाण जानो अथ ओङ्कारार्थः (वि) उपसर्ग पूर्वक (राजृदीप्तौ) इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने से विराट् शब्द सिद्ध होता है "योविविधंनाम चराचरं जगद्राजयति प्रकाशयति सा विराट्" विविध अर्थात् जो बहु प्रकार के जगत को प्रकाशित करे इससे विराट् नाम से परमेश्वर का ग्रहण होता है (अञ्चुगति पूजनयोः) अग अगि इण गत्यार्थक धातु हैं इनसे "अग्नि" शब्द सिद्ध होता है "गतेस्त्रयोऽर्थाः" "ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चोति पूजनं नाम सत्कारः" योऽञ्चति अच्यतेऽगत्यङ्गत्येति सोऽयमग्निः" जो ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ जानने प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम अग्नि है (विश प्रवेशने) इस धातु से विश्व शब्द सिद्ध होता है "विशन्ति प्रविष्ठानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् योवाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः सः विश्व ईश्वरः" जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इन में व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम विश्व है इत्यादि नामों का ग्रहण अकारमात्र से होता है "ज्योतिर्वै हिरण्यं तेजो वै हिरण्यमित्यैतरेये शतपथे च ब्राह्मणे" "यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्ति निमित्त मधिकरणं स हिरण्यगर्भः जिसमें सूर्यादि तेजः वाले लोक उत्पन्न होके जिसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजस्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति और निवास स्थान है इससे उस परमेश्वर का नाम "हिरण्यगर्भ" है इसमें यजुर्वेद के मंत्र का प्रमाण है ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० अ० १२ । मं० ४ ॥

इत्यादि स्थलों मे हिरण्यगर्भ से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। (वा गति गन्ध नयोः) इस धातु से वायु शब्द सिद्ध होता है (गन्धनं हिंसनम्) "योवाति चराचरञ्जगद्धरति बलिनां बलिष्ठः स वायुः" जो चराचर जगतका धारण जीवन और प्रलय करता है और सब बलवानों से बलवान है इससे उस ईश्वर का नाम 'वायु' है (तिज निशाने) इस धातु से तेजः और इससे तद्धित करने से "तैजस" शब्द सिद्ध होता है जो आप स्वयं प्रकाश और सूर्यादि तेजस्वी लोगों का प्रकाश करने वाला है इससे उस ईश्वर का नाम तैजस है इत्यादि नामार्थ उकारमात्र से ग्रहण होते हैं (ईशऐश्वर्ये) इस धातु से ईश्वर शब्द सिद्ध होता है "य इष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वर" जिसका सत्य विचार शील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है इससे उस परमात्मा का नाम ईश्वर है (दो अव खण्डने) इस धातु से अदिति और इससे तद्धित करने से "आदित्य" शब्द सिद्ध होता है न विद्यते विनाशोयस्य सोऽयम दितिः अदिति रेव आदित्यः जिसका विनाश कभी न हो उसी ईश्वर की "आदित्य" संज्ञा है (ज्ञा अ व बोधने) 'प्र' पूर्वक इस धातु से प्रज्ञ और इससे तद्धित करने से 'प्राज्ञ' शब्द सिद्ध होता है "यः प्रकृष्टतया चराचरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः प्रज्ञ एव प्राज्ञः" जो निर्भ्रान्त ज्ञान युक्त सब चराचर जगत के व्यवहार को यथावत् जानता है इससे ईश्वर का नाम प्राज्ञ है इत्यादि नामार्थ मकार से ग्रहीत होते हैं जैसे एक २ मात्रा से तीन २ अर्थ यहां व्याख्यात किये हैं वैसे ही अन्य नामार्थ भी ओंकार से जाने जाते हैं जो (शन्नो मित्रः शं व०) इस मंत्र में मित्रादि नाम हैं वे भी परमेश्वर के हैं क्योंकि स्तुति प्रार्थना उपासना श्रेष्ठ ही की की जाती है श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो गुण कर्म स्वभाव और सत्य २ व्यवहारों में सबसे अधिक हो उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ उसको परमेश्वर कहते हैं जिसके तुल्य कोई न हुआ न है और न होगा जब तुल्य नहीं तो उससे अधिक क्योंकर हो सकता है जैसे परमेश्वर के सत्य न्याय दया सर्व सामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं वैसे अन्य किसी जड़ पदार्थ व जीव के नहीं हैं जो पदार्थ सत्य है उसके गुण कर्म्म स्वभाव भी सत्य होते हैं इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति प्रार्थना और उपासना करें

उससे भिन्न की कभी न करें क्योंकि ब्रह्मा विष्णु महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान् दैत्य दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्यों ने भी परमेश्वर ही में विश्वास करके उसी की स्तुति प्रार्थना और उपासना की उस से भिन्न की नहीं की । वैसे हम सब को करना योग्य है इसका विशेष विचार मुक्ति और उपासना विषय में किया जायगा ।

(प्रश्न) मित्रादि नामों से सखा और इन्द्रादि देवों के प्रसिद्ध व्यवहार देखने से उन्हीं का ग्रहण करना चाहिये (उत्तर) यहां उनका ग्रहण करना योग्य नहीं क्योंकि जो मनुष्य किसी का मित्र है वही अन्य का शत्रु और किसी से उदासीन भी देखने में आता है इससे मुख्यार्थ में सखा आदि का ग्रहण नहीं हो सकता किन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत का निश्चित मित्र न किसी का शत्रु और न किसी का उदासीन है इससे भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता इस लिये परमात्मा का ग्रहण यहाँ होता है हाँ गौण अर्थ में मित्रादि शब्द से सुहृदादि मनुष्यों का ग्रहण होता है। (ञिमिदा स्नेहने) इस धातु से औणादिक "क्त" प्रत्यय के होने से 'मित्र' शब्द सिद्ध होता है "मेद्यति स्निह्यति स्निह्यते वासमित्रः" जो सब से स्नेह करके और सब को प्रीति करने योग्य है इस से उस परमेश्वर का नाम मित्र है । (वृञ् वरणे वर ईप्सायाम्) इन धातुओं से उणादि "उनन्" प्रत्यय होने से 'वरुण' शब्द सिद्ध होता है "यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून्धर्मात्मनो वृणोत्यथवा यःशिष्टैर्मुमुक्षुभिर्धर्मात्माभि व्रियते वर्य्यते वास वरुणः परमेश्वरः" जो आत्मयोगी विद्वान् मुक्ति की इच्छा करनेवाले और धर्मात्माओं का स्वीकार करता अथवा जो शिष्ट मुमुक्षु और धर्मात्माओं से ग्रहण किया जाता है वह ईश्वर "वरुण" संज्ञक है अथवा "वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः" जिस लिये परमेश्वर सब से श्रेष्ठ है इसी लिये उसका नाम "वरुण" है (ऋ गतिप्रापणयोः) इस धातु से "यत्" प्रत्यय करने से "अर्य्य" शब्द सिद्ध होता है। और "अर्य्य" पूर्वक (माङ् माने) इस धातु से "कनिन्" प्रत्यय होने से "अर्यमा" शब्द सिद्ध होता है "योऽर्यान् स्वामिनो न्यायाधीशान मिमीते मान्यान करोति सोऽर्यमा" जो सत्य न्याय के करनेहारे मनुष्यों का मान्य

और पाप तथा पुण्य करनेवालों को पाप और पुण्य के फलों का यथावत् सत्य २ नियमकर्ता है इसी से उसी परमेश्वर का नाम "अर्यमा" है (इदि परमैश्वर्ये) इस धातु से 'रन्' प्रत्यय करने से 'इन्द्र' शब्द सिद्ध होता है "य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः" ॥ जो अखिल ऐश्वर्ययुक्त हैं इससे उस परमात्मा का नाम इन्द्र है "बृहत्" शब्द पूर्वक (पालने इस धातु से डति प्रत्यय बृहत् के तकार का लोप और सुडागम होने से "बृहस्पति" शब्द सिद्ध होता है "यो बृहतामाकाशादीनापतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः" ॥ जो बड़ों से भी बड़ा और बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डों का स्वामी है इससे उस परमेश्वर का नाम बृहस्पति है (विष्लृ व्याप्तौ) इस धातु से (नु) प्रत्यय होकर 'विष्णु' शब्द सिद्ध हुआ है "वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरंजगत् स विष्णुः" चर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है "उरुर्महानक्रमः पराक्रमो यस्य स उरुक्रमः" अनन्त पराक्रमयुक्त होने से परमात्मा का नाम 'उरुक्रम' है। जो परमात्मा (उरुक्रमः) महा पराक्रमयुक्त (मित्रः) सब का सुहृत अविरोधी है वह (शम्) सुखकारक वह (वरुणः) सर्वोत्तम वह (शम्) सुखस्वरूप वह (अर्यमा) न्यायाधीश वह (शम्) सुखप्रचारक वह (इन्द्रः) जो सकल ऐश्वर्य्यवान् और (शम्) सकल ऐश्वर्य्यदायक वह (बृहस्पतिः) सब का अधिष्ठाता वह (शम्) विद्याप्रद और (विष्णु) जो सब में व्यापक परमेश्वर वह (नः) हमारा कल्याणकारक (भवतु) हो ।

(वायो ते ब्रह्मणे नमोऽस्तु) (बृह बृहि वृद्धौ) इन धातुओं से 'ब्रह्म' शब्द सिद्ध होता है जो सब के ऊपर विराजमान सब से बड़ा अनन्तयुक्त परमात्मा है उस ब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं हे परमेश्वर (त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि) आपही अन्तर्यामिरूप से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो (त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि) मैं आपही को प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा क्योंकि आप सब जगह में व्याप्त होके सबको नित्यही प्राप्त हैं (ऋतंवदिष्यामि) जो आप की वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है उसीका मैं सब के लिये उपदेश और आचरण भी करूंगा (सत्यं वदिष्यामि) सत्य बोलूँ सत्य मानूं और सत्यही करूँगा (तन्मा

मवतु) सो आप मेरी रक्षा कीजिये (तद्वक्तारमवतु) सो आप मुझ आप्त सत्यवक्ता की रक्षा कीजिये कि जिससे आपकी आज्ञा में मेरी बुद्धि स्थिर होकर विरुद्ध कभी न हो क्योंकि जो आप की आज्ञा है वही धर्म और जो उससे विरुद्ध वही अधर्म है "अवतुमामवतुवक्तारम्" यह दूसरी बार पाठ अधिकार्थ के लिये है जैसे 'कश्चित् कश्चित् प्रतिवदतित्वंग्रामं गच्छ २" इस में दो बार क्रिया के उच्चारण से तू शीघ्रही ग्राम को जा ऐसा सिद्ध होता है ऐसेही यहां कि आप मेरी अवश्य रक्षा करो अर्थात् धर्म से सुनिश्चित और अधर्म से घृणा सदा करूं ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये मैं आप का बड़ा उपकार मानूँगा (ओं शान्ति शान्ति शान्ति) इसमें तीन बार शान्ति पाठ का यह प्रयोजन है कि त्रिविधताप अर्थात् इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं एक "आध्यात्मिक" जो आत्मा शरीर में अविद्या रागद्वेष मूर्खता और ज्वर पीड़ादि होते हैं। दूसरा "आधिभौतिक" जो शत्रु व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है। तीसरा "आधिदैविक" अर्थात् जो अतिवृष्टि अतिशीत अतिउष्णता मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है इन तीन प्रकार के क्लेशों से आप हम लोगों को दूर करके कल्याणकारक कर्मों में सदा प्रवृत्त रखिये क्योंकि आपही कल्याणस्वरूप सब संसार के कल्याणकर्त्ता और धार्मिकमुमुक्षुओं को कल्याण के दाता हैं इसलिये आप स्वयं अपनी करुणा से सब जीवों के हृदय में प्रकाशित हूजिये कि जिससे सब जीव धर्म का आचरण और अधर्म को छोड़ के परमानन्द को प्राप्त हों और दुःखों से पृथक् रहैं "सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इस यजुर्वेद के वचन से जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते फिरते हैं "तस्थुषः" अप्राणी अर्थात् स्थावर जड़ पदार्थ पृथिवी आदि हैं उन सब के आत्मा होने और स्वप्रकाशरूप सबके प्रकाश करने से ईश्वर का नाम "सूर्य्य" है।

तिमिर भास्कर—

धन्य है स्वामीजी! आप तो दशही उपनिषद् मानते थे आज मतलब पड़ा तो कैवल्य भी मान बैठे और प्रमाण से ब्रह्मा विष्णु शिव को ईश्वर बताया और यहां उनको पूर्वज विद्वान् बतलाते हो इसमें कोई प्रमाण दिया होता कि यह मनुष्य थे

यदि प्रमाण नहीं मिला था तो कोई उलटी सीधी संस्कृतही गढ़ी होती आपके चेले उसे पत्थर की लकीर समझ लेते यह आपही को योग्य है ब्रह्मादिक ईश्वर के नाम बता कर फिर इन्हें एक विद्वान् बता दिया और यह अर्थ भी आपका अशुद्ध है इस का अर्थ यह है कि वह ब्रह्मारूप होकर जगत की रचना करता विष्णुरूप होकर पालन करता रुद्ररूप हो दुष्टों को कर्म फल भुगाकर रुलाता शिव हो मंगल करता है वही अक्षर स्वराट् इन्द्र चन्द्रमा है और कालाग्निरूप धारण कर प्रलय करता है यह सब देवता उसी के रूप हैं नहीं तो आप बताइये कि यह तीनों विद्वान् किनके पुत्र थे? जो कहो कि स्वयं उत्पन्न होगये थे तो आपका सृष्टिक्रम जाता रहेगा कि माता पिता के बिना कोई मनुष्य नहीं उत्पन्न होता यही तो आपकी भंग की तरंग है जो जीवनचरित्र में लिखा है कि मुझे भंग पीने की ऐसी आदत थी कि दूसरे दिन होश आता था।

भास्करप्रकाश—

कैवल्यउपनिषद क्या आप के सन्मुख तो अल्लोपनिषद का भी प्रमाण दिया जासकता है क्योंकि आप उसको मानते हैं जब कि "इन्द्रं मित्रं वरुण मग्नि माहुः" इत्यादि वेद मंत्रों से स्वामीजी सिद्ध कर चुके कि ये सब नाम प्रार्थनोपासना प्रकरण में ईश्वर के हैं तो फिर वेद के अनुकूल चाहे जिस उपनिषद वा अन्य किसी ग्रन्थ का प्रमाण अमान्य नहीं हो सकता और आप का तो स्वत्वही नहीं है कि जिन पुस्तकों को आप मानते हैं उन में से किसी के वाक्य को भी न मानें क्योंकि आपके मत में तो "संस्कृतं प्रमाणम्" है दूसरी बात का समाधान यह है कि ब्रह्मा विष्णु आदि पूर्वज पुरुष विशेष देहधारी थे—

यह बात तो सब हिन्दू मानते ही हैं पुराणों और इतिहासों में उनके जन्मादि चरित्र वर्णितही हैं इस विषय में स्वामीजी को प्रमाण देने की आवश्यकता न थी क्योंकि सिद्ध को सिद्ध करना पिष्टपेषण है ब्रह्माजी आदि को

देहधारी तो स्वयंही लोग मानते हैं हां ब्रह्मादि नाम परमात्मा के भी हैं इस विषय को लोग नहीं मानते थे अतः स्वामीजी ने वेदों मनुस्मृति और लोगों के माने हुये कैवल्योपनिषद् से भी यह सिद्ध कर दिया कि यह नाम परमात्मा के भी हैं आप जो अर्थ करते हैं कि वह ब्रह्मारूप होकर जगत को उत्पन्न करता है इत्यादि यह आपका अर्थ अक्षरार्थ में नहीं मिलता क्योंकि "स ब्रह्मा स विष्णु" इत्यादि का सीधा अक्षरार्थ यह है कि सः वह ब्रह्मा-ब्रह्मा है सः वह विष्णुः-विष्णु है इत्यादि आप बताइये कि "सः ब्रह्मा" का यह अर्थ कैसे होगया कि वह ब्रह्मारूप होकर जगत् को उत्पन्न करता है क्योंकि मूल में रूप होकर यह अर्थ किसी पद से नहीं निकलता अतः स्वामीजी का ठीक और आपही का बे ठीक है और बिना पिता के पुत्र नहीं होता यह नियम सृष्टि की उत्पत्ति के पश्चात् का है किन्तु सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ही सृष्टि के पिता होते हैं और आरम्भ का वही नियम है स्वामी जी का लेख भंग की तरंग नहीं है किन्तु जीवन चरित्र में यदि बाल्यावस्था का भंग पीने का वृत्तान्त लिखा होगा तो वह आपही के माननीय भोलानाथ पार्वतीश की सामयिक उपासना का फल होगा जिसके लिये पार्वतीजी १२ वर्ष तक घोटती हैं तब भी फोक अवश्य रहता है यदि प्रमाण की आवश्यकता हो तो भांग चरस आदि पीनेवाले अपने पौराणिकों से पूछ लीजिये।

समीक्षा—पं० तुलसीराम क्या सफाई से लिखते हैं कि कैवल्योपनिषद क्या आपके सन्मुख तो अल्लोपनिषद भी प्रमाण है क्यों साहब भला सनातनधर्म के लिये तो अल्लोपनिषद या कैवल्योपनिषद का प्रमाण है किन्तु समाजियों के लिये क्या प्रमाण है यदि आर्यसमाज पूछ बैठे कि ब्रह्मा ईश्वर का नाम है इस का प्रमाण दो फिर तुलसीरामजी क्या उत्तर देंगे बस अब तो चाल बन्द हो जावेगी क्योंकि "स ब्रह्मा स विष्णु" जिस कैवल्योपनिषद पर पण्डित ज्वालाप्रसादजी एतराज करते हैं उसके लिये सत्यार्थप्रकाश में समाजी वेद का प्रमाणही नहीं दिया और न पंडित तुलसीराम से ही देते बना पंडित तुलसीराम ने यह उत्तर दिया है कि "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुः" इत्यादि वेद मंत्रों से स्वामीजी सिद्ध कर चुके कि वे सब नाम ईश्वर के हैं

यह इतना अंधेर कबतक चलेगा पं० जी महाराज कैवल्योपनिषद् के कहे ब्रह्मा विष्णु रुद्र शिव आदि नामों में स्वामी दयानन्द ने एक भी प्रमाण नहीं दिया इन नामों को सब में मिलाकर लोगों को आंखों में पट्टी न लगाइये। हम को इतना शोक प्रमाण न होने का नहीं जितना कि पं० तुलसीराम के धोका देने का है आज भी यदि कोई मनुष्य यह दिखला दे कि कैवल्योपनिषद् के कहे नामों में स्वामी दयानन्दजी ने यह प्रमाण दिया तो हम उसके चरणों में शिर झुकाने को तैयार हैं किन्तु प्रमाण तो दिया ही नहीं जब प्रमाण नहीं दिया तब वेद मनु का प्रमाण देदिया ऐसा लिखना क्या पं० तुलसीराम जी इसको पाप नहीं समझते समाजियों को यह अच्छे प्रकार सोच लेना चाहिये कि चालबाजी या मिथ्या लेखों से आर्यसमाज उन्नति नहीं कर सकती किन्तु दिनोंदिन रसातल को जावेगी यहां पर स्वामीजी ने "स ब्रह्मा" आदि में कैवल्योपनिषद् प्रमाण माना है। बलिहारी है स्वामी दयानन्द की जिस कैवल्योपनिषद् को स्वतः प्रमाणिक नहीं मानते आज कार्य सिद्धि के लिये उसी कैवल्योपनिषद् को प्रमाण मानते हैं स्वामी दयानन्दजी ने कैवल्योपनिषद् को यहां पर प्रमाण माना है अब समाज को शास्त्रार्थ में कैवल्योपनिषद् मानना पड़ेगा अब यह चालाकी न चल सकेगी कि हम दशही उपनिषद् मानते हैं नहीं तो साफ लिख देना पड़ेगा कि हम स्वामी दयानन्द के लेख को इस कारण से नहीं मानते कि इनका लेख ठीक नहीं ये महात्मा जो चाहते हैं वही लिख देते हैं अतएव इन के विचार हम वेद विरोधी समझते हैं।

अब रहा अल्लोपनिषद् का मानना प्रथम तो अब आर्यसमाजी और सनातनधर्मी दोनों ही बराबर होगये क्योंकि अल्लोपनिषद् को भी स्वामी दयानन्द जो मान्यकोटी में ले आये अब क्या बहस रह गई द्वितीय कहां है वह अल्लोपनिषद् ज़रा समाज को दिखलानी चाहिये क्यों नहीं दिखलाती तृतीय उसका प्रमाण मानना कहां लिखा है यदि है तो दिखलाइये नहीं है तो फिर क्या सनातनधर्म पर झूठेही कलंक लगा कर समाज अपनी विजयवैजयन्ती उड़ाना चाहती है हर्गिज न उड़ेगी यदि समाज किंचितमात्र भी सचाई रखती है तो उसको चाहिये कि दोनों बातें दिखला कर अर्थात् समस्त अल्लोपनिषद् और वह प्रमाणिक है इसका लेख देखकर हम लोगों का शिर नीचा करें और साथही साथ यह भी दिखलावें कि दयानन्द ने वे कौन २ वेदमन्त्र मनुके

श्लोक लिखे कि जिनमें ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर के नाम दिखलाये गये हों, भला यह कब आशा होसकती है कि समाज लेखनी उठा सकेगी। आगे यह भी लिखते हैं कि आपके मत में तो "संस्कृतं प्रमाणम्" प्रथम तो यह कहां से लिखा है कि सनातनधर्म के मत में सब संस्कृत प्रमाण है कि आप अपने मनसे ही गढ़ते हैं यदि इसका प्रमाण मांगा जावे तो पं० तुलसीराम जी तो क्या समाज के छक्के छूट जावेंगे और प्रमाण न मिलेगा यदि मान भी लें कि "संस्कृतं प्रमाणम्" है तो फिर अपनी भाषा की कद्र करना देवभाषा को उच्चदृष्टि से देखना वेदकी भाषा का प्रमाण मानना कोई ऐब नहीं है किन्तु संस्कृत के सच्चे सेवक होने का प्रमाण है शोक है कि आप पं० तुलसीराम जैसे संस्कृतज्ञोंको भी संस्कृतभाषा से नफरत होगई अजी जनाब यदि इतने पर भी आप संस्कृत प्रमाण मानने को बुरा समझते हैं तो भी सनातनधर्मी समाज से अच्छे हैं समाज में तो इससे भी बुरा होगया वह क्या वह यह कि "आधुनिक साइन्स प्रमाणम्" ।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने लिखा था कि यहां पर तो स्वामीजी ब्रह्मा ईश्वर का नाम बतलाते हैं और आगे चलकर पृ०५ पं०७ फिर पृ०१५ पं०११ में लिखते हैं कि इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर की ही स्तुति प्रार्थना उपासना करें उससे भिन्न की कभी न करें क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान् हुए हैं यहां पर पूर्वज बतलाते हैं यदि ये पूर्वज महाशय थे तो बतलावें यह किसके पुत्रथे। इसके उत्तर में पं० तुलसीरामजी कहते हैं कि पुराण इतिहासों में उनके जन्म और चरित्र वर्णित हैं कैसा उत्तर देगये कि उत्तर भी होजावे और चाड़ भी न परखी जावे हां सत्यता का नाश होनाहो तो भलेही हो इसकी पं० तुलसीरामजी को कुछ परवा भी नहीं है अच्छा अब इसको यों समझो कि एक समाजी पं० तुलसीराम जी के पास आया और उसने यह कहा कि स्वामी दयानन्दजी ने जो ब्रह्मा विष्णु महादेव ये पूर्वज महाशय हुए लिखा इनका प्रमाण दो इसके उत्तर में पं० तुलसीरामजी ने यही कहा कि पुराण इतिहास में लिखा है अब उस आर्य्यसमाजी ने कहा कि हम पुराण इतिहास को प्रमाण नहीं मानते हमारे मानने लायक प्रमाण दो बस अब क्या प्रमाण है कुछ नहीं शाबास आर्यसमाज को जो पुराणों का खण्डन रात दिन करती है आज उसको भी पुराणों के आगे शिर झुकाना पड़ा हम पं० तुलसीराम जी को पुराण मानने का धन्यवाद देतेहुए यह भी पूछते हैं कि अब आगे को तो पुराणों

को झूठ न कहोगे यदि झूंठ कहो तो कृपा कर यहां भी झूँठही कहदो पुराणों के मानने से कुछ आनन्द हुआ किन्तु उससे शतगुणा दुःखभी हुआ है क्योंकि पंडित तुलसीरामजी ने यहां पर वेदों को तिलाञ्जलि देकर पुराणों को स्वतः प्रमाण माना है।

यदि पं० तुलसीराम वेदों को प्रमाण मानते हैं तो वेद से ब्रह्मादि ईश्वरावतार सिद्धि होते हैं, ब्रह्मावतार देखिये—

यो देवेभ्य आतपति योदेवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥

यजुर्वेद ३१। २०

(यः) जो (देवेभ्यः) देवताओं के लिये (आतपति) तपता है (यः) जो (देवानाम्) देवताओं के (पुरः) पहिले (हितः) स्थित था और (यः) जो (देवेभ्यः) देवताओं से (पूर्वः) पूर्व (जातः) प्रकट हुआ (तस्मै) उस (रुचाय) तेजवाले (ब्राह्मये) ब्रह्माके लिये (नमः) नमस्कार है।

कहिये वेद में ब्रह्मा का अवतार है या विद्वान् महाशय है इस मंत्र के इसी अर्थ को उव्वट और महीधरजी ने मान कर ब्रह्मा अवतार बतलाया है "तदण्डमभवद्धैमम्" इस श्लोक में मनुने ब्रह्मा का अवतार माना "ब्रह्मादेवानां प्रथमः संबभूव। विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता" यह मुण्डकोपनिषद् ब्रह्मा को ईश्वर का अवतार मानता है इत्यादि बीसियों प्रमाण ब्रह्मा अवतार में मौजूद हैं जिसको देखना हो हमारे बनाये "अवतार" नामक पुस्तक में देखे किन्तु आज पं० तुलसीराम इन सब ग्रन्थों को प्रमाण कोटी से निकालते हैं क्योंकि यदि इनको प्रमाण मानलें तो पूर्व महाशयवाला लेख रसातल को चला जावे। मुझे हँसी आती है इस दयानन्दी धर्म पर, यह धर्म है या बच्चों का खेल, चाहे जैसा मान बैठे, पुराणों को मानकर वेद कोही तिलाञ्जलि देदी। पुराण आज क्यों माने इस कारण से कि उनसे ब्रह्मादि पूर्वज महाशय सिद्ध होजावेंगे किन्तु पुराणों के मानने पर भी तो ब्रह्मादि पूर्वज महाशय न ठहरेंगे ये वेद और पुराण सभी में ईश्वरावतार रहेंगे।

हमको इस बात की आवश्यकता न थी कि पुराण का प्रमाण दें किन्तु आज समाज पुराणों को प्रमाण मानती है और पं० तुलसीराम पुराणों से ब्रह्मा को पूर्वज महाशय बतलाते हैं अतएव हम उन्हीं के स्वतः प्रमाण पुराण का प्रमाण देते हैं पढ़िये—

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्राविनत्वतः ।
नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजांपतिः ॥

(श्रीमद्भागवत)

योगनिद्रा का आश्रय लेकर जल में शयन करने वाले ब्रह्म के नाभि से कमल हुआ और उससे समस्त विश्व का और विश्व रचने वालों का पति ब्रह्मा प्रकट हुआ और भी—

योब्रह्मासतुवैविष्णुर्योविष्णुःसमहेश्वरः ।
एकामूर्तित्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥

(हरवंश)

हमने तो ब्रह्मा आदि के ईश्वरावतार होने का प्रमाण दे दिया यदि आर्यसमाज इतने प्रमाणों में संतुष्ट न हो तो और भी सौ दो सौ प्रमाण दिये जा सकते हैं और काम पड़ने पर हम देंगे किन्तु पं० तुलसीराम ने जो कहा कि ये पूर्वज महाशय थे सत्य पर पानी फेरकर दयानन्द के मिथ्या लेख की साक्षी दे दी क्या पं० तुलसीरामजी इस का भी प्रमाण देंगे पंडितजी तो क्या समस्त समाजी भी खोज करें तब भी इनके पूर्वज महाशय विद्वान् होने का पता न चलेगा। अजी भाई साहब कुछ सोच विचारकर लिखा करो इतना अंधेर मत करो कि दयानन्द की गपों में प्रमाण मिले हर्गिज एक भी प्रमाण न मिलेगा और सर्वदा के लिये आर्यसमाज के महर्षि की असत्यता की पताका फहराती ही रहेगी।

यदि इतने पर भी समाज प्रमाण देने का साहस करे तो फिर बतलावे कि ब्रह्मा किसके पुत्र थे इनके कै भाई थे ये किस गुरुकुल में पढ़े थे और किस ज़माने में हुए और किसके यहां ब्याहे थे ? वास्तविक में यह लेख तो स्वामीजी ने भंग की तरंग में ही लिखा था।

अब पं० तुलसीरामजी कहते हैं ब्रह्मारूप हो कर, यह तो अक्षरों का अर्थ नहीं कहां से लाये लाये कहां से वेद से क्या पं० तुलसीरामजी "विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता" आदि श्रुतियों को भूल गये ब्रह्मा विष्णु रुद्र होकर वही निराकार ब्रह्म संसार की रचना पालना संहार करते हैं यह तो वेदशास्त्र सिद्ध है एक जगह नहीं हजारों स्थान में मिलेगा जब वेदशास्त्र में मौजूद है फिर शंका कैसी, क्या आज समाज वेदशास्त्र का एक अक्षर भी न मानेगी ?

फिर पं० तुलसीरामजी कहते हैं कि कभी वाल्यावस्था में भंग पी ली होगी और वह पौराणिकों की कृपा है। पं० जी महाराज वाल्यावस्था तक नहीं हुक्का भंग का तो स्वामीजी मृत्युकाल तक भी शौक करते रहे यहां पर पौराणिकों से घृणा की गई है हम यह पूछते हैं कि यह भी कुछ लायकी या विद्वता है कि अपने बुज़ुर्गों को नफरत की दृष्टि से देखना फिर कौन से पुराण में भंग पीना लिखा है फिर यह भी किस पुराण में किस स्थान में लिखा है कि पार्वतीजी ने १२ वर्ष घोटी फिर भी फोक बाकी रहा। आर्यसमाज को सनातनधर्म में कहीं त्रुटियां तो मिलतीं नहीं फिर क्या करे हारकर झूठेही कलङ्क लगाने लगती है क्या आर्यसमाज बारह वर्ष भंग पीसना पुराणों में दिखलाकर पं० तुलसीराम के लेख को सत्य करेगी ? भला समाज में यह शक्ति कहां इसमें तो झूठे कलंक लगाने की ही शक्ति है और कुछ नहीं इसको पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि ब्रह्मा विष्णु पूर्व गुजरे महाशयों का नाम था इसको तो सभी जानते थे किन्तु यह नहीं जानते थे कि ये नाम ईश्वर के भी हैं यहां पं० तुलसीरामजी ने गजब कर दिया इन्होंने सनातनधर्मियों को भी वैसाही समझा कि जैसे आर्यसमाजी। आर्यसमाजियों का यह अटल नियम है कि वे सनातनधर्म के ग्रन्थ तो क्या आर्यसमाज के ग्रन्थों को भी नहीं देखते जो चित्त में आता उसको वैसाही मान लेते हैं ये लोग अपने मन की कल्पना को ही वेद मानते हैं यदि यह स्वामी दयानन्द के ही ग्रन्थों को देखलें तो फिर ये आर्यसमाजी नहीं रहसकते क्योंकि स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों में मृतक पितरों का श्राद्ध तर्पण और ओखली मूसल आदि मूर्तियों का पूजन और ईश्वर को साकार बनाकर घोड़ों की लीद भी उसी से बिनवाई है ईश्वर को शरीरी भी माना है यदि ये बातें विस्तार पूर्वक देखनी हों तो हमारी बनाई "मूर्तिपूजा" तथा "श्राद्ध" और "अवतार" की

पुस्तकें मँगाकर देखें समाजी अपनी पुस्तकों से इतने अनभिज्ञ हैं कि कोई सौ में एक अपनी पुस्तकों के सिद्धान्तों को नहीं जानता और इसी कारण से ये आर्यसमाजी बने रहते हैं यह बात हमहीं नहीं लाला लाजपतराय ने भी लिखो है कि जो मनुष्य समाज के ग्रन्थों से अभिज्ञ है वही आर्यसमाज का द्वेषी है पं० तुलसीराम ने सनातनधर्मियों को भी अनभिज्ञ समझा है किन्तु यह बात नहीं है सनातनधर्मी वेदों से अभिज्ञ हैं वे जानते हैं कि ब्रह्मा विष्णु रुद्र कोई पूर्वज महाशय नहीं हैं किन्तु ईश्वर का अवतार हैं जो वेद नहीं जानता वह पुराण सुनता है कि ब्रह्मा विष्णु रुद्र ये तो साकार ईश्वर हैं, जिसकी पहुँच पुराणों तक नहीं है वह भाषा के पुस्तक विश्रामसागर रामायण आदि पढ़ते हैं कि ब्रह्मादि निराकार ब्रह्म के स्वरूप हैं, जो बिलकुल नहीं पढ़े वे रामलीला देखकर ही जान जाते हैं फिर नहीं मालूम पं० तुलसीराम ने न जानना क्यों लिखा अनुमान से दोही बातें मालूम होती हैं कि या तो सनातनधर्मियों को समाज के घाट उतारा और नहीं तो पक्षपात ने भुला दिया।

पं० तुलसीराम यह भी कहते हैं कि मा बाप से मनुष्यों का उत्पन्न होना यह सृष्टि के बाद का नियम है सृष्टि के आरम्भ का वही नियम है जो स्वामीने माना अब यदि हम यह पूछ बैठें कि इसमें प्रमाण दो बस अब क्या था अब वेद स्मृति को उठाकर रखदेंगे और दो दो बातें मनगढ़न्त करेंगे यहां पर वेद के प्रमाण को न छुवेंगे स्वामी दयानन्द ने जैसा सत्यार्थप्रकाश में लिखा वैसाही पं० तुलसीराम ने भास्करप्रकाश में लिख दिया परन्तु एक बात का फर्क रह गया वह यह है कि स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद के नाम से एक मंत्र "ततो मनुष्या अजायन्त" लिख दिया किन्तु पं० तुलसीराम ने नहीं लिखा सम्भव है कि वह भी इसी मंत्र से काम चलावेंगे भला जो वेद के नाम से झूठ मंत्र लिखदे उस से कोई कैसे जीत सकेगा किन्तु इस दयानन्द के उस मंत्र को छोड़कर जिसके लिये लिखा कि यजुर्वेद में ऐसा है स्वतः प्रमाण वेद में अन्य प्रमाण तीन काल में न मिलैगा जब वेद में इसका प्रमाणही नहीं फिर पं० तुलसीराम के इस लेख को समाजी कैसे मानेंगे क्योंकि इनका तो यह दावा है कि हम सब काम वेद से ही मानते हैं । पाठकवर्ग इस लेख में कैवल्योपनिषद का स्वतः प्रमाण मानना तथा ब्रह्मा विष्णु रुद्र का ईश्वरावतार होना

सिद्ध होगया साथही साथ यह भी सिद्ध होगया कि ब्रह्मादि पूर्व महाशय नहीं थे और ब्याज में समाज का पुराणों को मानना और भंग पीसना आदि सनातनधर्म को झूठे कलंक लगाना भी सिद्ध है अब देखिये इसके ऊपर किसी समाजी की लेखनी उठती है या मौनव्रत का धारण होता है ।

मित्रादि देव निर्णय ।

SHRI KRISHNA TEMPLE WAT SINGAPORE

दयानन्द तिमिरभास्कर पृष्ठ २ टिप्पणी—

ये मित्रादि शब्द पृथक् देवताओं के वाचक हैं इसमें प्रमाण "महित्रीणामवोस्तुद्युक्षम्मित्रस्यार्यम्णः ॥ दुराधर्षं वरुणस्य यजु० अ० ३ मं० ३१" (मित्रस्य) प्राणवृत्ति और दिवस के अधिष्ठात्री देवता मित्र (अर्यम्णः) चक्षु वा सूर्य्य के अधिष्ठात्री अर्यमा देवता (वरुणस्य) अपान और जलों के अधिष्ठात्री देवता वरुण (त्रीणाम) इन तीनों देवताओं से सम्बन्ध रखनेवाली (महि) बड़ी (द्युक्षम्) कान्तिमान् सुवर्णादि द्रव्यों से युक्त (दुराधर्षम्) तिरस्कार पाने को आशक्य (अवः) पालना वा रक्षा (अस्तु) हम को प्राप्त हो इससे अगले मंत्र में लिखा है "तेहि पुत्रासो अदितेःप्रजीवसेमर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ यजु० अ० ३ मं० ३३" यह तीनों देवता अदिति के पुत्र हैं यजमान को अखण्ड तेज और दीर्घायु देते हैं दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में मित्र का प्राणवायु अर्यमा का सूर्यलोक वरुण का जल अर्थ किया है प्राचीन अर्थों में इनके अधिष्ठात्री देवता लिखे हैं इससे मित्रादिक ईश्वर से भिन्नही देवता हैं और यच्छन्ति देते हैं यह बहुवचन है इससे सत्यार्थप्रकाश का अर्थ जो स्वामीजी ने किया है वह अशुद्ध ही है।

भास्करप्रकाश पृ० ९ टिप्पणी—

द० ति० भा० पृष्ठ २ में यजु० । ३ । ३१ व ३३ के प्रमाण से मित्रादि ३ देवता लिये हैं सो तो प्रकरण में स्वामीजी भी

प्रकरणादि का नाम मानते हैं किन्तु स्वामीजी कृत ईश्वरार्थ में शंकरभाष्य सहित वेदान्तसूत्र १। १ । २२ । २३। २८ तथा १ । २ । ६ । २४ । २८ तथा १ । ३ । ८ । १० और इनका शारीरिक भाष्य भामतीरत्नप्रभा और न्यायनिर्णय सब एक स्वर से "न देवता भूतंच" का व्याख्यान करके देवतार्थ का निषेध करते हैं विस्तार से हमारा बनाया वेदान्त भाष्य देखिये।

समीक्षा—वेद में यह नाम देवताओं के हैं चाहे किसी भी प्राचीन भाष्य को देख लें (यजुर्वेद अ० ३ मं० ३३ के मूल में जीव से ज्योतिः "यच्छन्ति" लिखा है जिसका भाषा यह है कि यह देवता मनुष्य को जीने के लिये तेज देते हैं यदि इस मंत्र में इन नामों से ईश्वर का ग्रहण करोगे तो यच्छन्ति क्रिया बहुवचनान्त होने से कर्त्ताओं की संख्या भी बहुत होगी फल यह निकलेगा कि बजाय एक ईश्वर के समाज को बहुत से ईश्वर मानने पड़ेंगे इस भय से घबराकर स्वामी दयानन्दजी इस मंत्र के अर्थ में इन्हीं नामों से ईश्वर का ग्रहण नहीं करते जब इन नामों से स्वामी दयानन्दजी ही ईश्वर का ग्रहण नहीं करते किन्तु ईश्वर से भिन्न देवताओं का करते हैं फिर यह कहना कि स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त का स्वामी दयानन्द ने ही चकनाचूर कर दिया क्या कुछ दूषित है स्वामी दयानन्दजी यहां पर अधिष्ठातृ देवताओं का ग्रहण इस भय से नहीं करते कि देवयोनि सिद्ध हो जावेगी किन्तु प्राण सूर्य्यलोक पवन तथा जल अर्थ करके इन्हीं को देवता मानते हैं अब दोष इस अर्थ में यह आवेगा कि यज्ञ में उन देवताओं के स्थान में सूर्य आदि का पूजन समाज को करना पड़ेगा बस मूर्तिपूजा वेद में नहीं है स्वामीजी के इस सिद्धान्त का खंडन यहां पर ही हो गया है।

स्वामी दयानन्दजी ने तो जो कुछ लिखा था वह लिखा ही था किन्तु पं० तुलसीरामजी यहां पर मज़ा कर गये आपने यहां पर वेद को तिलाञ्जलि देदी पंडित ज्वालाप्रसादजी के दिये वेदमंत्र को छोड़ कर उसका कुछ भी उत्तर न लिख कर एक दौड़ वेदान्तदर्शन के भाष्यों पर लगाई है। आप लिखते हैं कि वेदान्त दर्शन के शारीरिकभाष्य भामतीरत्नप्रभा न्यायनिर्णय में इन नामों से ईश्वर का ही ग्रहण किया है आर्यसमाज वेद को कैसा मानती है इसकी बानगी तो यहां

परही टपक गई पं० तुलसीरामजी ने देखा कि वेद के मानने से स्वामी दयानन्द का सिद्धान्त ऐसा जाता है कि जैसे वानरों के शिर से सींग, इसलिये वेद को छोड़ कर वेदान्तदर्शन के टीकाओं की शरण ली इस स्थान में पंडित तुलसीराम वेद को प्रमाणकोटी से निकालते हैं और वेदान्त दर्शन के टीकाओं को प्रमाण कोटी में रखते हैं ऐसी २ हालतों को ही देख कर संसार कहता है कि वास्तविक में समाज वेद का एक अक्षर भी नहीं मानती है किन्तु वेद के नाम का वाय-बेला मचाकर अँगरेजी शिक्षा के सिद्धान्तों की तरफ ले जा रही है।

प्रथम तो आर्य्यसमाज वेदान्तदर्शन को ही स्वतः प्रमाण नहीं मानती फिर उसके भी टीकाओं पर धावा लगाना कितनी सत्यता लिये है इसका निर्णय समाज पर ही छोड़ता हूँ। क्यों साहब क्या शारीरिकभाष्य को समाज प्रमाण मानती है यदि कहो कि हां मानती है तो हम पूंछते हैं कि उस शारीरिक भाष्य में लिखी जीव ब्रह्म की एकता समाज को मंजूर है इसका क्या जवाब है? इसको सुनते ही समाजी कह उठाते हैं कि शारीरिकभाष्य किसी ऋषि महर्षि का लिखा नहीं कि जिसको समाज प्रमाण मान ले वह तो शंकर लिखित है वह प्रमाणिक नहीं हो सकता अच्छा अब यह मानलो कि समाज शारीरिक भाष्य को प्रमाण नहीं मानती जब कि समाज शारीरिकभाष्य को प्रमाणिक कहीं नहीं मानती तो फिर पं० तुलसीराम ने किस प्रमाण से शारीरिकभाष्य को वेद से बड़ा माना कोई इसका उत्तर है इसको दूसरी भांति से यों समझ सकते हैं कि फर्ज करो कि कोई समाजी पं० तुलसीराम के पास आया और उसने यह प्रश्न किया कि स्वामी दयानन्द ने जो "शन्नो मित्रः" इस मंत्र में मित्रादि नामों से ईश्वर का ग्रहण किया इसमें क्या प्रमाण है पं० तुलसीराम ने उत्तर दिया कि वेदान्तदर्शन के शारीरिकभाष्य और भामतीरत्नप्रभा न्याय-निर्णय इन टीकाओं में लिखा है कि इन नामों से ईश्वर का ग्रहण होता है इसको सुनकर समाजी हँसा और हँस कर कहा कि ये तो चारों ही टीका अप्रमाणिक हैं इनको समाज प्रमाण नहीं मानती स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में तृतीय समुल्लास पठनपाठन विधि में साफ लिखा है कि वेदान्त दर्शन पर वात्स्यायन और बौधायन मुनि कृत भाष्य पढ़े पढ़ावे वेदान्तदर्शन के इन दो टीकाओं को छोड़कर शेष सब टीकाओं को स्वामीजी ने जालग्रन्थ माना है स्वामीजी जिन

ग्रंथों का पठनपाठन भी रोकते हैं उनको आप प्रमाणकोटी में देते हैं मालूम होता है कि आप इस विषय में वैदिक प्रमाण नहीं दे सकते केवल टालना चाहते हैं और अब हम प्रमाण देते हैं कि देवताओं का ग्रहण इन नामों से होता है इसके लिये आप यजुर्वेद अ० ३ मं० ३३ पर दयानन्द कृत भाष्य देखें इस भाष्य में इन नामों से ईश्वर से भिन्न देवताओं का ग्रहण किया है बस अब पं० तुलसीरामजी की चाल बन्द अब कुछ भी उत्तर नहीं देसकते पं० तुलसीराम ही पर क्या निर्भर है यदि इसके उत्तर को खोज में समस्त आर्यसमाज लगे और बराबर दशपांच हजार वर्ष लगी रहे तब भी तो इसका उत्तर नहीं मिल सकता।

पं० तुलसीरामजी इसको अच्छी प्रकार जानते हैं कि समाज के कपोल कल्पित सिद्धान्तों में से किसी में भी वेद प्रमाण नहीं है इतना समझ कर भी उसी महाअन्धकार में पड़े हैं यही शोक है और इन शारीरिकभाष्य आदि में भी इन नामों से ईश्वर का ग्रहण करना कहीं नहीं लिखा बिना लिखे भी पं० तुलसीरामजी का लिख देना इसको निरी गप्प को छोड़ कर और क्या कह सकते हैं मित्रादि देवताओं के नाम हैं ईश्वर के नहीं इसके लिये मैं समाज को ऐसा प्रमाण देता हूं कि फिर समाज को कुछ उजूही न रहे और वास्तविक में समाज को वही प्रमाण देना ठीक है कि जिस को समाज मानले और फिर लेखनी उठाने का परिश्रम भी न करना पड़े स्वामी दयानन्दकृत संस्कारविधि के नामकरण प्रकरण में हवन करते हुये "ओ३म् प्रतिपदे स्वाहा" "ओ३म् अश्विन्यै स्वाहा" इन आहुतियों पर स्वामी दयानन्दजी अपनी लेखनी से टिप्पणी में लिखते हैं कि तिथि देवताः १ ब्रह्मन् २ त्वष्टृ ३ विष्णुः ४ यम ५ सोम ६ कुमार ७ मुनि ८ वसु ९ शिव १० धर्म ११ रुद्र १२ वायु १३ काम १४ अनन्त १५ विश्वेदेव ३० पितर ये इतने देवता तिथियों के स्वामी लिखकर इसके आगे दयानन्दजी नक्षत्रों के देवता लिखते हैं पढ़िये नक्षत्र देवता अश्विनी–अश्वी। भरणी–यम। कृतिका–अग्नि। रोहिणी–प्रजापति। मृगशिर–सोम। आर्द्रा–रुद्र। पुनर्वसु–अदिति। पुष्य–बृहस्पति। अश्लेषा–सर्प। मघा–पितृ। पूर्वाफाल्गुणि–भग। उत्तराफाल्गुणि–अर्यमन्। हस्त–सवितृ। चित्रा–त्वष्टृ। स्वाति–वायु। विशाखा–इन्द्राग्नी। अनुराधा–मित्र। ज्येष्ठा–इन्द्र। मूल–निर्ऋति। पूर्वाषाढ़–अप्। उत्तराषाढ़–विश्वेदेवा। श्रवण–विष्णु। धनिष्ठा–वसु। शतभिषज–

वरुण । पूर्वाभाद्रपद–अजपाद । उत्तराभाद्रपद–अहिर्बुध्न्य । रेवती–पूषन । स्वामी दयानन्दजी ने जो ये तिथि और नक्षत्रों के देवता लिखे इनमें "शन्नो मित्रः" मंत्र के कहे समस्त देवता आगये यहां पर समाज इनके नाम पर आहुति देती है और उस मंत्र में इनसे कल्याण की प्रार्थना की है हम वेद और स्वामी दयानन्द जी दोनों का सिद्धान्त लिख चुके कि इन नामों से देवताओं का ग्रहण होता है निर्णय (इन्साफ) के लिहाज से अब समाज को यह मान लेना चाहिये कि वास्तविक में इन नामों से देवताओं का ग्रहण होता है और "शन्नो मित्रः" इस मंत्र के अर्थ में स्वामी दयानन्द ने जान बूझकर भूल की है यह कैसी आर्यसमाज है जो वेद और स्वामी दयानन्द के लेख दोनों को ही झूठ मानती है।

यदि वेद को समाज न मानै तो न सही किन्तु स्वामी दयानन्द के लेख को तो मानै, मानै तो तब जब कि समाज वेद या स्वामी दयानन्दजी के लेख को कुछ महत्व की दृष्टि से देखती हो वह तो अंग्रेजी सिद्धान्तों में बँधगई कि मनुष्य से भिन्न देवता होते ही नहीं अब स्वामीजी कहैं वेद कहैं सब चिल्लावैं किन्तु समाज एक न सुनेगी यदि ऐसा ही है तो फिर स्वामी दयानन्दजी को महर्षि पदवी नहीं देनी थी अब ये समाज के कैसे महर्षि हैं कि जिनकी एक भी बात आर्यसमाज नहीं मानती और बात २ में स्वामी दयानन्द के लेख की सत्यता पर कुठार चलाती है समाज मानै या न मानै किन्तु समझनेवाले ताड़ गये कि कुछ दाल में काला जरूर है इन नामों से जो देवताओं का ग्रहण है उसके खण्डन करने की शक्ति आर्यसमाज में न थी न है और न आगे को हो सकती है रहे तुलसीराम पं० तुलसीरामजी देवयोनि को ऐसी गपड़चौथ में मिलाते हैं कि जिसका पताही नहीं चलता आप कहते हैं कि देवता तो स्वामीजी ने भी माने हैं कौन माने हैं जल पवन सूर्य हम पं० तुलसीराम से यह पूछते हैं कि तुम क्यों डरते हो तुम तो चैतन्य देवता मान चुके हो पते के लिये नीचे देखिये वेदप्रकाश वर्ष १ मास ५ पृ० ७३ जब कोई पुरुष संन्यास धारण करके मोक्ष के लिये प्रयत्न करता है तो पूर्व आश्रम में जिन देवों का वह यजन करता रहा है वे मुंह लगाये देवता उस के चक्षु रसना आदि इन्द्रियों में उस २ की शक्तिरूप से बैठे हुये बड़े २ विघ्न करते हैं और कितनों को तो फिर अपनी ओर खींच लेते हैं यह लेख पं० तुलसीराम की लेखनी का है इसमें पं० तुलसीरामजी ने देवताओं

को चैतन्य माना या जड़ इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ता हूँ अब हम इतना और लिखना चाहते हैं कि पं० तुलसीरामजी इधर उधर क्यों भागते हैं "शन्नो मित्रः" इस मंत्र के ही अर्थ को क्यों नहीं देख लेते कि इसके अर्थ में ईश्वरका ग्रहण है या अधिष्ठातृ देवों का इस मंत्र के किसी भी भाष्य को देखलें सभी भाष्यों में अधिष्ठातृ देवों का ग्रहण है यदि आप सब भाष्यों को नहीं देख सकते थे तो शंकरभाष्य को ही देख लेते जब सभी भाष्यों में अधिष्ठातृ देवों का ग्रहण है तब फिर वहां पर ये नाम ईश्वर के कैसे मान लिये जावें।

ईश्वर के सौ नाम।

सत्यार्थप्रकाश—

(अत सातत्यगमने) इस धातु से "आत्मा" शब्द सिद्ध होता है "योऽतति व्याप्नोति स आत्मा" जो सब जीवादि जगत् में निरन्तर व्यापक होरहा है "परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्मः स परमात्मा" जो सब जीव आदि से उत्कृष्ट और जीव प्रकृति तथा आकाश से भी अतिसूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा है इससे ईश्वर का नाम "परमात्मा" है। सामर्थ्यवाले का नाम ईश्वर है "य ईश्वरेषु समर्थेषु परमः श्रेष्ठः स परमेश्वरः" जो ईश्वरों अर्थात् समर्थों में समर्थ, जिसके तुल्य कोई भी न हो उस का नाम "परमेश्वर" है। षुञ् अभिषवे, षूङ् (प्राणिगर्भविमोचने) इन धातुओं से "सविता" शब्द सिद्ध होता है "अभिषवः प्राणिगर्भविमोचनं चोत्पादनम्। यश्चराचरं जगत् सुनोति सूते वोत्पादयति स सविता परमेश्वरः" जो सब जगत् की उत्पत्ति करता है इसलिये परमेश्वर का नाम "सविता" है। (दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु) इस धातु से "देव" शब्द सिद्ध होता है (क्रीड़ा) जो शुद्ध जगत् को क्रीड़ा कराने (विजिगीषा) धार्मिकों को जिताने की इच्छायुक्त (व्यवहार) सब को चेष्टा के साधनोपसाधनों का दाता (द्युति) स्वयंप्रकाश स्वरूप सब का प्रकाशक (स्तुति) प्रशंसा के योग्य (मोद) आप आनन्द स्वरूप और दूसरों को आनन्द देनेहारा (मद) मदोन्मत्तों का ताड़नेहारा

(स्वप्न) सब के शयनार्थ रात्रि और प्रलय का करनेहारा (कान्ति) कामना के योग्य और (गति) ज्ञानस्वरूप है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "देव" है। अथवा "यो दीव्यति क्रीड़ति स देवः" जो अपने स्वरूप में आनन्द से आपही क्रीड़ा करे अथवा किसी के सहाय के बिना क्रीड़ावत् सहज स्वभाव से सब जगत् को बनाता वा सब क्रीड़ाओं का आधार है "विजिगीषते स देवः" जो सब का जीतनेहारा स्वयं अजेय अर्थात् जिसको कोई भी न जीत सके "व्यवहारयति स देवः" जो न्याय और अन्यायरूप व्यवहारों का जनाने हारा और उपदेष्टा "यश्चराचरं जगत् द्योतयति" जो सब का प्रकाशक "यः स्तूयते स देवः" जो सब मनुष्यों को प्रशंसा के योग्य और निन्दा के योग्य न हो "यो मोदयति स देवः" जो स्वयं आनन्द स्वरूप और दूसरों को आनन्द कराता जिसको दुःख का लेश भी न हो 'यो माद्यति स देवः' जो सदा हर्षित, शोकरहित और दूसरों को हर्षित करने और दुःखों से पृथक् रखने वाला "यः स्वापयति स देवः" जो प्रलय के समय अव्यक्त में सब जीवों को सुलाता "यः कामयते काम्यते वा स देवः" जिसके सब सत्य काम और जिसकी प्राप्ति की कामना सब शिष्ट करते हैं तथा "यो गच्छति गम्यते वा स देवः" जो सब में व्याप्त और जानने के योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम "देव" है। (कुवि आच्छादने) इस धातु से "कुबेर" शब्द सिद्ध होता है "यः सर्वं कुवति स्वव्याप्त्याच्छादयति स कुबेरो जगदीश्वरः" जो अपनी व्याप्ति से सब का आच्छादन करे इससे उस परमेश्वर का नाम "कुबेर" है। (प्रथ विस्तारे) इस धातु से "पृथिवी" शब्द सिद्ध होता है "यः प्रथते सर्वजगद्विस्तृणाति स पृथिवी" जो सब विस्तृत जगत् का विस्तार करनेवाला है इस लिये उस परमेश्वर का नाम पृथिवी है। (जल घातने) इस धातु से 'जल' शब्द सिद्ध होता है "जलति घातयति दुष्टान्, संघातयति अव्यक्तपरमाण्वादीन् तद्ब्रह्म जलम्" जो दुष्टों का ताड़न और अव्यक्त तथा परमाणुओं का अन्योऽन्य संयोग वा वियोग करता है वह परमात्मा "जल" संज्ञक कहाता है (काशृ दीप्तौ) इस धातु से "आकाश" शब्द सिद्ध होता है "यः सर्वतः सर्वं जगत् प्रकाशयति स आकाशः" जो सब ओर से जगत् का प्रकाशक है इस लिये उस परमात्मा का नाम "आकाश" है। (अद भक्षणे) इस धातु से "अन्न" शब्द सिद्ध होता है।

अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते ॥ १ ॥ अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् ॥ अहमन्नादोहमन्नादोहमन्नादः ॥ २ ॥ तैत्ति० उपनि० । अनुवाक २ । १० ॥ अत्ताचराचरग्रहणात् ॥ वेदान्त दर्शने । अ० १ । पा० २ । सू० ६ ॥

जो सबको भीतर रखने सबको ग्रहण करने योग्य चराचर जगत् का ग्रहण करने वाला है इससे ईश्वर के "अन्न" "अन्नाद" और "अत्ता" नाम हैं । और जो इसमें तीन बार पाठ है सो आदर के लिये है जैसे गूलर के फल में कृमि उत्पन्न होके उसी में रहते और नष्ट होजाते हैं वैसे परमेश्वर के बीच में सब जगत् की अवस्था है । (वस निवासे) इस धातु से "वसु" शब्द सिद्ध हुआ है । "वसन्ति भूतानि यस्मिन्नथवा यः सर्वेषु वसति स वसुरीश्वरः" जिसमें सब आकाशादि भूत बसते हैं और जो सब में वास कर रहा है इस लिये उस परमेश्वर का नाम "वसु" है (रुदिर अश्रुविमोचने) इस धातु से "णिच्" प्रत्यय होने से "रुद्र" शब्द सिद्ध होता है । "यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः" जो दुष्टकर्म करनेहारों को रुलाता है इस से उस परमेश्वर का नाम "रुद्र" है ।

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते ॥

यह यजुर्वेद के ब्राह्मण का बचन है । जीव जिसका मनसे ध्यान करता उसको वाणी से बोलता जिसको वाणी से बोलता उसको कर्म से करता जिसको कर्म से करता उसीको प्राप्त होताहै । इससे क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है । जब दुष्टकर्म करनेवाले जीव ईश्वर की न्यायरूपी व्यवस्था से दुःख रूप फल पाते तब रोते हैं और इसी प्रकार ईश्वर उनको रुलाता है इसलिये परमेश्वर का नाम "रुद्र" है ।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥

मनु० अ० १ । श्लोक १० ॥

जल और जीवों का नाम नारा है वे अयन अर्थात् निवासस्थान हैं जिसके इसलिये सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम "नारायण" है। (चदि आह्लादे) इस धातु से "चन्द्र" शब्द सिद्ध होता है। "यश्चंदति चन्दयति वा स चन्द्रः" जो आनन्द स्वरूप और सब को आनन्द देनेवाला है इसलिये ईश्वर का नाम "चन्द्र" है। (मगि गत्यर्थक) इस धातु से "मंगेरलच्" इस सूत्र से "मङ्गल" शब्द सिद्ध होता है "यो मङ्गति मङ्गयति वा स मङ्गलः" जो आप मङ्गलस्वरूप और सब जीवों के मङ्गल का कारण है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "मङ्गल" है। (बुध अवगमने) इस धातु से "बुध" शब्द सिद्ध होता है "यो बुध्यते बोधयति वा स बुधः" जो स्वयं बोधस्वरूप और सब जीवों के बोध का कारण है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "बुध" है। "बृहस्पति" शब्द का अर्थ कह दिया। (ईशुचिर् पूतीभावे) इस धातु से "शुक्र" शब्द सिद्ध हुआ है "यः शुच्यति शोचयति वा स शुक्रः"। जो अत्यन्त पवित्र और जिसके सङ्ग से जीव भी पवित्र होजाताहै इसलिए ईश्वर का नाम 'शुक्र' है। (चर गतिभक्षणयोः) इस धातु से "शनैस्" अव्यय उपपद होने से "शनैश्चर" शब्द सिद्ध हुआ है "यः शनैश्चरति स शनैश्चरः" जो सब में सहज से प्राप्त धैर्यवान् है इससे उस परमेश्वर का नाम "शनैश्चर" है। (रह त्यागे) इस धातु से "राहु" शब्द सिद्ध होता है "यो रहति परित्यजति दुष्टान राहयति त्याजयति वा स राहुरीश्वरः" जो एकान्त स्वरूप जिसके स्वरूप में दूसरा पदार्थ संयुक्त नहीं जो दुष्टों को छोड़ने और अन्य को छुड़ानेहारा है इससे परमेश्वर का नाम "राहु" है। (कित निवासे रोगापनयने च) इस धातु से केतु शब्द सिद्ध होता है "यः केतयति चिकित्सति वा स केतुरीश्वरः" जो सब जगत् का निवासस्थान सब रोगों से रहित और मुमुक्षुओं को मुक्ति समय में सब रोगों से छुड़ाता है इसलिये उस परमात्मा का नाम 'केतु' है। (यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु) इस धातु से "यज्ञ" शब्द सिद्ध होता है 'यज्ञो वै विष्णुः' यह ब्राह्मणग्रन्थ का वचन है। "यो यजति विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञः" जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा इससे उस परमात्मा का नाम "यज्ञ" है क्योंकि वह सर्वत्रव्यापक है। (हु

दानादनयोः, आदाने चेत्येके) इस धातु से 'होता' शब्द सिद्ध हुआ है "यो जुहोति स होता" जो जीवों को देने योग्य पदार्थों का दाता और ग्रहण करने योग्यों का ग्राहक है इससे उस ईश्वर का नाम "होता" है । (बन्ध बन्धने) इससे "बन्धु" शब्द सिद्ध होता है "यः स्वस्मिन् चराचरं जगद् बध्नाति बन्धुवद्धर्मात्मनां सुखाय सहायो वा वर्त्तते स बन्धुः" जिसने अपने में सब लोक लोकान्तरों को नियमों से बद्ध कर रक्खे और सहोदर के समान सहायक है इसी से अपनी २ परिधि वा नियम का उल्लंघन नहीं कर सकते। जैसे भ्राता भाइयों का सहायकारी होता है वैसे परमेश्वर भी पृथिव्यादि लोकों के धारण रक्षण और सुख देने से "बन्धु" संज्ञक है । (पा रक्षणे) इस धातु से "पिता" शब्द सिद्ध हुआ है "यः पाति सर्वान् स पिता" जो सब का रक्षक जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है इससे उसका नाम "पिता" है। "यः पितॄणां पिता स पितामहः" है। जो पिताओं का भी पिता है इससे उस परमेश्वर का नाम "पितामह" है। "यः पितामहानां पिता स प्रपितामहः" जो पिताओं के पितरों का पिता है इससे परमेश्वर का नाम "प्रपितामह" है। "यो मिमीते मानयति सर्वाञ्जीवान् स माता" जैसे पूर्ण कृपायुक्त जननी अपने सन्तानों का सुख और उन्नति चाहती है वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है इससे परमेश्वर का नाम "माता" है। (चर गतिभक्षणयोः) आङ्पूर्वक इस धातु से "आचार्य्य" शब्द सिद्ध होता है "य आचारं ग्राहयति सर्वा विद्या वा बोधयति स आचार्य ईश्वरः" जो सत्य आचार का ग्रहण करानेहारा और सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु होके सब विद्या प्राप्त कराता है इससे परमेश्वर का नाम "आचार्य" है । (गृशब्दे) इस धातु से 'गुरु' शब्द बना है "यो धर्म्यान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः" ॥

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ योगसू० समाधि पादे सू० २६ ॥

जो सत्यधर्मप्रतिपादक सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाश कभी नहीं होता इस लिये उस परमेश्वर का नाम "गुरु" है। (अज गतिक्षेपणयोः, जनी प्रादुर्भावे) इन धातुओं से "अज" शब्द बनता है "योऽजति सृष्टिं प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन् पदार्थान् प्रक्षिपति जानाति वा कदाचित् न जायते सोऽजः" जो सब प्रकृति के अवयव आकाशादि भूत परमाणुओं को यथा योग्य मिलाता शरीर के साथ जीवों का सम्बन्ध करके जन्म देता और स्वयं कभी जन्म नहीं लेता इससे उस ईश्वर का नाम "अज" है (बृहि वृद्धौ) इस धातु से "ब्रह्मा" शब्द सिद्ध होता है "योऽखिलं जगन्निर्माणेन बृंहति वर्द्धयति स ब्रह्मा" जो सम्पूर्ण जगत् को रचके बढ़ाता है इसलिये परमेश्वर का नाम "ब्रह्मा" है "सत्यं ज्ञानमनन्तंब्रह्म" यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचनहै "सन्तीति सन्तस्तेषु सत्सु साधु तत्सत्यम् यज्जानाति चराऽचरं जगत्तज्ज्ञानम्। न विद्यतेऽन्तोऽवधिर्मर्यादा यस्य तदनन्तम्। सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म" जो पदार्थ हों उनको सत् कहते हैं उनमें साधु होने से परमेश्वर का नाम सत्य है। जो चराऽचर जगत् का जाननेवाला है इससे परमेश्वर का नाम "ज्ञान" है। जिसका अन्त अवधि मर्यादा अर्थात् इतना लम्बा चौड़ा, छोटा, बड़ा है ऐसा परिमाण नहीं है इसलिये परमेश्वर का नाम "अनन्त" है। (डुदाञ् दाने) आङ्पूर्वक इस धातु से "आदि" शब्द और नञ्पूर्वक "अनादि" शब्द सिद्ध होता है "यस्मात् पूर्वं नास्ति परं चास्ति स आदिरित्युच्यते, न विद्यते आदिः कारणं यस्य सोऽनादिरीश्वरः" जिसके पूर्व कुछ नहीं और परे हो उसको आदि कहते हैं, जिसका आदि कारण कोई भी नहीं है इसलिये परमेश्वर का नाम अनादि है (टुनदि समृद्धौ) आङ् पूर्वक इस धातु से "आनन्द" शब्द बनता है "आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन् यद्वा: यः सर्वाञ्जीवानानन्दयति स आनन्दः" जो आनन्दस्वरूप जिस में सब मुक्त जीव आनन्दको प्राप्त होते और जो सब धर्मात्मा जीवोंको आनन्दयुक्त करता है इससे ईश्वर का नाम "आनन्द" है। (अस भुवि) इस धातुसे "सत्" शब्द सिद्ध होता है "यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत्सद् ब्रह्म" जो सदा वर्त्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालों में जिसका बाध न

हो उस परमेश्वर को "सत्" कहते हैं। (चिती संज्ञाने) इस धातुसे "चित्" शब्द सिद्ध होता है "यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनस्तच्चित्परं ब्रह्म" जो चेतनस्वरूप सब जीवों को चिताने और सत्याऽसत्य का जनानेहाराहै इसलिये उस परमात्मा का नाम चित्है इन तीनों शब्दोंके विशेषण होनेसे परमेश्वर को "सच्चिदानन्दस्वरूप" कहते हैं। "यो नित्यध्रुवोऽचलोऽविनाशी स नित्यः" जो निश्चल अविनाशी है सो नित्य शब्द वाच्य ईश्वर है। (शुंध शुद्धौ) इससे "शुद्ध" शब्द सिद्धहोता है "यः शुन्धति सर्वान् शोधयति वा स शुद्ध ईश्वरः" जो स्वयं पवित्र सब अशुद्धियों से पृथक् और सबको शुद्ध करनेवाला है इससे उस ईश्वर का नाम शुद्ध है। (बुध-अवगमने) इस धातु से क्त प्रत्यय होनेसे "बुद्ध" शब्द सिद्धहोता है "यो बुद्धवान् सदैव ज्ञाताऽस्ति स बुद्धो जगदीश्वरः" जो सदा सबको जाननेहारा है इससे ईश्वर का नाम बुद्ध है। (मुच्लृ मोचने) इस धातु से मुक्त शब्द सिद्ध होता है "यो मुञ्चति मोचयति वा मुमुक्षून स मुक्तो जगदीश्वरः" जो सर्वदा अशुद्धियों से अलग और सब मुमुक्षुओं को क्लेश से छुड़ा देता है इसलिये परमात्मा का नाम "मुक्त" है 'अतएव नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभावो-जगदीश्वरः' इसी कारण से परमेश्वर का स्वभाव नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त है निर और आङ्पूर्वक (डुकृञ् करणे) इस धातु से "निराकार शब्द सिद्ध होता है। "निर्गत आकारात्स निराकारः" जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है इसलिये परमेश्वर का नाम "निराकार" है। (अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु) इस धातु से "अञ्जन" शब्द और निर् उपसर्ग के योग से "निरञ्जन" शब्द सिद्ध होता है "अञ्जनं व्यक्तिम्रक्षणं कुकाम इन्द्रियैः प्राप्तिश्चेत्यस्माद्यो निर्गतः पृथग्भूतः स निरञ्जनः" जो व्यक्ति अर्थात् आकृति, म्लेच्छाचार, दुष्ट कामना और चक्षुरादि इन्द्रियों के विषयों के पथ से पृथक्है इससे ईश्वरका नाम "निरञ्जन" है। (गण संख्याने) इस धातुसे "गण" शब्द सिद्ध होता है और इसके आगे "ईश" वा "पति" शब्द रखने से "गणेश" और "गणपति" शब्द सिद्ध होते हैं "ये प्रकृत्यादयो जड़ाजीवाश्चगण्यन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः स्वामी पतिः पालको वा" जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करने-

हारा है इससे उस ईश्वर का नाम "गणेश" वा "गणपति" है। "यो विश्वमीष्टे स विश्वेश्वरः" जो संसार का अधिष्ठाता है इससे उस परमेश्वर का नाम "विश्वेश्वर" है। "यः कूटेऽनेकविधव्यवहारे स्वस्वरूपेणैव तिष्ठति स कूटस्थः परमेश्वरः" जो सब व्यवहारों में व्याप्त और सब व्यवहारों का आधार होके भी किसी व्यवहार में अपने स्वरूप को नहीं बदलता इससे परमेश्वर का नाम "कूटस्थ" है। जितने देव शब्द के अर्थ लिखे हैं उतने ही "देवी" शब्द के भी हैं। परमेश्वर के तीनों लिङ्गों में नाम हैं जैसे "ब्रह्म चितिरीश्वरश्चेति" जब ईश्वर का विशेषण होगा तब "देव" जब चिति का होगा तब "देवी" इस से ईश्वर का नाम "देवी" है। (शक्लृ शक्तौ) इस धातु से "शक्ति" शब्द बनता है "यः सर्वं जगत् कर्त्तुं शक्नोति स शक्तिः" जो सब जगत् के बनाने में समर्थ है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "शक्ति" है। (श्रिञ् सेवायाम्) इस धातु से "श्री" शब्द सिद्ध होता है "यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता "विद्वद्भिर्योगिभिश्च स श्रीरीश्वरः" जिसका सेवन सब जगत्, विद्वान् और योगीजन करते हैं इससे उस परमात्मा का नाम "श्री" है (लक्ष दर्शनाङ्कनयोः) इस धातु से "लक्ष्मी" शब्द सिद्ध होता है "यो लक्षयति पश्यत्यङ्कते चिन्हयति चराचरं जगदथवा वेदैराप्तैर्योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः" जो सब चराचर जगत् को देखता चिन्हित अर्थात् दृश्य बनाता जैसे शरीर के नेत्र, नासिका और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र सूर्यादि चिन्ह बनाता तथा सबको देखता सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम "लक्ष्मी" है। (सृ गतौ) इस धातु से "सरस्" उससे मतुप् और ङीप् प्रत्यय होने से "सरस्वती" शब्द सिद्ध होता है "सरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरस्वती" जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ सम्बंध प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे इससे उस परमेश्वर का नाम "सरस्वती" है। "सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वरः" जो अपने कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा नहीं करता अपने ही सामर्थ्य से अपने सब काम पूरे करता है इसलिये उस परमात्मा का नाम "सर्वशक्ति

मान्" है। (णीञ् प्रापणे) इस धातु से "न्याय" शब्द सिद्ध होता है "प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः" यह वचन न्यायसूत्रों पर वात्स्यायनमुनिकृतभाष्य का है "पक्षपातराहित्याचरणं न्यायः" जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों की परीक्षा से सत्य २ सिद्ध हो तथा पक्षपात रहित धर्मरूप आचरण है वह न्याय कहाता है "न्यायं कर्त्तुं शीलमस्य स न्यायकारीश्वरः" जिसका न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने ही का स्वभाव है इससे उस ईश्वर का नाम "न्यायकारी" है। (दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु) इस धातु से "दया" शब्द सिद्ध होता है "दयते ददाति जानाति गच्छति रक्षति हिनस्ति यया सा दया बह्वी दया विद्यते यस्य स दयालुः परमेश्वरः" जो अभय का दाता सत्याऽसत्य सर्व विद्याओं का जानने सब सज्जनों की रक्षा करने और दुष्टों को यथायोग्य दण्ड देनेवाला है इससे परमात्मा का नाम "दयालु" है। "द्वयोर्भावो द्विता द्वाभ्यामितं द्वीतं वा सैव तदेव वा द्वैतम्, न विद्यते द्वैतं द्वितीयश्वरभावो यस्मिंस्तदद्वैतम्" अर्थात् "सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं ब्रह्म" दो का होना वा दोनों से युक्त होना वह द्विता वा द्वीत अथवा द्वैत इस से जो रहित है, सजातीय जैसे मनुष्य का सजातीय दूसरा मनुष्य होता है, विजातीय जैसे मनुष्य से भिन्न जातिवाला वृक्ष, पाषाणादि, स्वगत अर्थात् शरीर में जैसे आंख, नाक, कान आदि अवयवों का भेद है वैसे दूसरे स्वजातीय ईश्वर विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक परमेश्वर है इस से परमात्मा का नाम "अद्वैत" है। "गण्यन्ते ये ते गुणा वा यैर्गणयन्ति ते गुणाः, यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वरः" जितने सत्त्व, रजस्, तपः, रूप, रस, स्पर्श, गंधादि जड़ के गुण, अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष और अविद्यादि क्लेश जीव के गुण हैं उनसे जो पृथक् है, इसमें "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" इत्यादि उपनिषदों का प्रमाण है जो शब्द, स्पर्श, रूपादिगुणरहित है इससे परमात्मा का नाम "निर्गुण" है। "यो गुणैः सह वर्त्तते स सगुणः" जो सबका ज्ञान सर्वसुख पवित्रता अनन्त बलादि गुणों से युक्त है इसलिये परमेश्वर का नाम "सगुण" है जैसे पृथिवी गन्धादि गुणों से सगुण और इच्छादि गुणों से रहित होने से "निर्गुण" है वैसे जगत् और जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर निर्गुण और सर्वज्ञादि गुणों सहित होने से "सगुण" है। अर्थात् ऐसे कोई भी पदार्थ

नहीं जो सगुणता और निर्गुणता से पृथक् हो जैसे चेतन के गुणों से पृथक् होने से जड़ पदार्थ निर्गुण और अपने गुणों से सहित होने से सगुण वैसे ही जड़ के गुणों से पृथक् होने से जीव निर्गुण और इच्छादि अपने गुणों से सहित होने से सगुण। ऐसे ही परमेश्वर में भी समझना चाहिये। "अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलंयस्य सोऽयमन्तर्यामी" जो सब प्राणि और अप्राणिरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सब का नियम करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "अन्तर्यामी" है। "यो धर्मेराजते स धर्मराजः" जो धर्महीमें प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्महीका प्रकाश करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "धर्म्मराज" है। (यमु उपरमे) इस धातु से "यम" शब्द सिद्ध होता है "यः सर्वान् प्राणिनो नियच्छति स यमः" जो सब प्राणियों को कर्मफल देने की व्यवस्था करता और सब अन्यायों से पृथक् रहता है इसलिये परमात्मा का नाम "यम" है। (भज सेवायाम्) इस धातु से "भग" इस से मतुप होने से "भगवान्" शब्द सिद्ध होता है "भगः सकलैश्वर्यं सेवनं वा विद्यते यस्य स भगवान्" जो समग्र ऐश्वर्य से युक्त वा भजने के योग्य है इस लिये उस ईश्वर का नाम "भगवान्" है। (मन ज्ञाने) इस धातु से 'मनु' शब्द बनता है "यो मन्यते स मनुः" जो मनु अर्थात विज्ञानशील और मानने योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम "मनु" है। (पॄपालनपूरणयोः) इस धातु से "पुरुष" शब्द सिद्ध हुआ है "यः स्वव्याप्त्या चराऽचरं जगत् पृणाति पूरयति वा स पुरुषः" जो सब जगत् में पूर्ण होरहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "पुरुष" है। (डुभृञ् धारणपोषणयोः) "विश्व" पूर्वक इस धातु से "विश्वम्भर" शब्द सिद्ध होता है "यो विश्वं बिभर्त्ति धरति पुष्णाति वा स विश्वम्भरो जगदीश्वरः" जो जगत् का धारण और पोषण करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "विश्वम्भर" है। (कल संख्याने) इस धातु से काल शब्द बना है "कलयति संख्याति सर्वान् पदार्थान् स कालः" जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "काल" है। (शिष्लृ विशेषणे) इस धातु से "शेष" शब्द सिद्ध होता है "यः शिष्यते स शेषः" जो उत्पत्ति और प्रलय से शेष अर्थात् बच रहा है इसलिये उस परमात्मा का नाम "शेष" है। (आप्लृव्याप्तौ) इस धातु से

"आप्त" शब्द सिद्ध होताहै "यः सर्वान् धर्मात्मन् आप्नोति वा सर्वैर्धर्मात्मभि राप्यते छलादिरहितः स आप्तः" जो सत्योपदेशक सकल विद्यायुक्त सब धर्मात्माओंको प्राप्त होता और धर्मात्माओंसे प्राप्त होनेयोग्य, छल कपटादिसे रहितहै इसलिये उस परमात्माका नाम "आप्त" है। (डुकृञ् करणे) "शम्" पूर्वक इस धातुसे "शङ्कर" शब्द सिद्ध हुआहै "यःशङ्कल्याणं सुखं करोति स "शङ्करः" जो कल्याण अर्थात् सुखका करनेहारा है इससे उस ईश्वरका नाम "शङ्कर" है। "महत्" शब्द पूर्वक "देव" शब्द से "महादेव" सिद्ध होताहै "योमहतां देवः स महादेवः" जो महान् देवोंका देव अर्थात् विद्वानोंका भी विद्वान् सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है इसलिये उस परमात्माका नाम "महादेव" है (प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च) इस धातुसे "प्रिय" शब्द सिद्ध होता है "यः पृणाति प्रीयते वा स प्रियः" जो सब धर्मात्माओं मुमुक्षुओं और शिष्टों को प्रसन्न करता और सबकी कामना के योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम "प्रिय" है। (भू सत्तायाम्) "स्वयं" पूर्वक इस धातुसे "स्वयम्भू" शब्द सिद्ध होता है "यः स्वयं भवति स स्वयम्भूरीश्वरः" जो आपसे आपही है किसीसे कभी उत्पन्न नहीं हुआ है इससे उस परमात्माका नाम "स्वयम्भू" है। (कुशब्दे) इस धातु से "कवि" शब्द सिद्ध होता है। "यः कौति शब्दयति सर्वा विद्या स कविरीश्वरः" जो वेदद्वारा सब विद्याओं का उपदेष्टा और वेत्ता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "कवि" है। (शिवु कल्याणे) इस धातु से "शिव" शब्द सिद्ध होता है "बहुलमेतन्निदर्शनम्" इस से शिवु धातु माना जाता है, जो कल्याणस्वरूप और कल्याण का करने हारा है इस लिये उस परमेश्वर का नाम "शिव" है।

ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं परन्तु इनसे भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण कर्म स्वभाव हैं वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं उनमें से प्रत्येक गुण कर्म्म और स्वभाव का एक २ नाम है इससे यह मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने बिन्दुवत् हैं क्योंकि वेदादि शास्त्रों में परमात्मा असंख्य गुण कर्म स्वभाव व्याख्यात किये हैं, उनके पढ़ने पढ़ाने से बोध होसकता है और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा २ होसकता है जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ते हैं।

तिमिरभास्कर पृ० ३ पं० १८ से—

स्वामीजी के सत्यार्थप्रकाश से नारायणादि परमेश्वर के १०० नामों में की व्याख्या उद्धृत की है जिस पर पं० ज्वालाप्रसादजी ने कुछ उत्तर स्वयं ही नहीं दिया मानों उसको स्वीकार ही कर लिया है इस लिये प्रत्युत्तर की आवश्यकता ही नहीं।

समीक्षा—पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो यह दिखलाया है कि "मदोन्मत्त को ताड़न करै" यह अर्थ तो व्याकरण विरुद्ध है इस पर आपने क्या समाधान दिया जो यह कहते हैं कि कुछ नहीं लिखा जब आप उत्तर ही नहीं देसकते तब फिर खंडनही करवाकर क्या करेंगे। पं० तुलसीराम जो यहाँ पर पबलिक को यह धोका देना चाहते हैं कि पं० ज्वालाप्रजादजी कुछ न लिख सके और स्वामी दयानन्दजी का लेख सत्य रहा हमारा तो यह कथन है कि चाहे कोई खंडन करे या न करे किन्तु स्वामी दयानन्द का लेख तो असत्यही रहेगा क्योंकि ये एक २ अक्षर वेदविरुद्ध लिखते हैं आपके कहने पर अब थोड़ासा खंडन हम दिखलाकर दावा करते हैं कि जब तक समाजी मत पृथिवी पर रहेगा तब तक इस मत का कोई भी मनुष्य उत्तर नहीं देसकेगा।

स्वामी दयानन्दजी ने मंत्रों के जो अर्थ किये हैं या ईश्वर के नामों की जो व्युत्पत्तियाँ की हैं सब मनमानी की हैं प्रायः सभी अर्थ अशुद्ध हैं उदाहरण के लिये आप "त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि" के अर्थ को देखिये इसका अर्थ यह होता था कि तुम प्रत्यक्ष ब्रह्म हो अब यदि प्रत्यक्ष ब्रह्म मानते हैं तो ईश्वरावतार सिद्ध होता है इस कारण से स्वामीजी लिखते हैं कि अन्तर्यामी रूप से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो अन्तर्यामी मिलाने पर भी कार्य सिद्ध न हुआ फिरभी रूप लिया ही गया रूप के निषेध के लिये अर्थ बदला किन्तु ईश्वर के रूप का अभाव न होसका अच्छा अब हम समाजियों से पूछते हैं कि ईश्वर का अन्तर्यामी रूप कैसा है काला या लाल या पीला या नीला और वह कितना लम्बा चौड़ा मोटा या दुबला है यदि अन्तर्यामी रूप है तब तो ईश्वर साकार होगया यदि नहीं है तो स्वामीजी के इस झूठे लेख को समाज खंडन क्यों नहीं कर

सकती फिर वह प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष तो उसको कहते हैं जो इन्द्रियों से ग्रहण होता हो अब समाजी लोग बतलावें अन्तर्यामी ईश्वर को उनकी आंख देखती है कि कान सुनता है या नाक सुगन्धी लेती है यदि ऐसा नहीं तो फिर प्रत्यक्ष कैसा ।

इसी प्रकार जो व्युत्पत्तियाँ स्वामी दयानन्दजी ने की हैं यदि वे किसी वैयाकरण के आगे रखदी जावें और यह पूंछा जावे कि इन व्युत्पत्तियों के लिखने-वाला कितना विद्वान् है इसके उत्तर में वैयाकरण से यही कहते बनेगा कि इन व्युत्पत्तियों का लिखनेवाला व्याकरण नहीं पढ़ा वह कौन व्युत्पत्ति है आप देखना चाहते हैं तो देखिये "पुष्पुशुद्धेषु पदार्थेषु भवोदिव्यः शोभनानि पर्णानि पलानानि पूर्णानि कर्माणि वा यस्य सयोगुरुः आत्मा सगुरुत्मान" "यो मातरिश्वा वायुरिव बलवान् समातरिश्वा" इत्यादि समास और ये व्युत्पत्तियाँ तो वही ठीक मानेगा जो पुरुष व्याकरण से सोलह आने चौसठ पैसे अनभिज्ञ होगा मुझे शोक है इस बात का कि विद्वान् लोग पक्षपात के फेर में पड़कर शुद्ध अशुद्ध का भी संशोधन नहीं करसकते मैं प्रतिनिधि से आशा रखता हूं कि वह "गुरुत्मान्" और "मातरिश्वा" का समास और व्युत्पत्ति स्वामी दयानन्द की लिखी अशुद्ध है या शुद्ध इसपर विचार करेगी किन्तु यह कब होसकता है कि मेरी आशा को प्रतिनिधि पूर्ण करै करती तो सही किन्तु प्रतिनिधि को यह भय लगा है कि ऐसा करने से समाजरूपी महल की बालू की भीत धम से नीचे गिरजावेगी ।

(३) स्वामी दयानन्दजी ने जैसी व्युत्पत्तियाँ की हैं वैसी व्युत्पत्तियाँ दो चार मैं करता हूं लीजिये पढ़िये "गृह्णाति धान्यादिकं गृहम्" ईश्वर सब धान्यादि को अपने बस में किये है इससे उस ईश्वर का नाम "घर" है । "काया सुतिष्ठतीति कायस्थः" ईश्वर जड़ चैतन्य सभी के शरीर में व्याप्त है इससे ईश्वर का नाम "कायस्थ" है । "दयया आनन्द यतीति दयानन्दः" ईश्वर अपनी दया से सबको आनन्द देता है इससे उस परमात्मा का नाम "दयानन्द" है। "सत्यस्य अर्थस्य प्रकाशो भवति यस्मातलः सत्यार्थप्रकाशः" ईश्वर वेद के द्वारा सत्य अर्थको प्रकाशित करता है इससे उसका नाम "सत्यार्थप्रकाश" है। "आर्याणां समाजः समूहो यत्र स आर्यसमाजः" सर्वत्र व्यापक होने से श्रेष्ठ पुरुषों का समुदाय ईश्वर में ही रहता है इससे उसका नाम "आर्यसमाज" है। ऐसी व्युत्प-

त्तियों को लेकर समाज स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों की कब तक रक्षा करेगी आखिरकार एक दिन तो कन्धे से जुवा डालना ही पड़ेगा यदि स्वामी दयानन्द प्रमाण देते तो येही नाम सबको मान्य होते प्रमाण न देने का एक तो कारण यह है कि "शनिश्चर" राहु, केतु, आदि जो स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के नाम बतलाये इनमें प्रमाण त्रिकाल में भी नहीं मिल सकता दूसरे इन नामोंमें जो कोष आदि के प्रमाण मिलते हैं उनको समाज प्रमाण नहीं मानती इस कारण स्वामी दयानन्दजी ने एक नये प्रकार की ही घड़न्त को स्वीकार किया है इसप्रकारकी व्युत्पत्तियों में कोई दोष तो नहीं होता।

मुझे याद आगया एक बाबाजी किसी मन्दिर का पुजारी था और वह कुछ व्याकरण भी पढ़ा था इस कारण वह उसी मन्दिरमें कुछ विद्यार्थियोंको भी पढ़ाया करता था एकदिन वह बाबाजी एक विद्यार्थी से बोला कि हमारी गौ गोलमूह में चरने को जाती है और यदि समय पर उसको लेने न जाओ तो वह मनुष्यों के खेतों में खेती चरने चली जाती है आज मुझे काम है तुम जाकर गौ को ले आओ इसको सुनकर वह लड़का बोला कि "गौ" किसको कहते हैं बाबाजी बोले अबे बेवकूफ तू समस्त कृदन्त पढ़ गया किन्तु तुझको यह न याद रहा कि "गच्छतीति गौः" जो चले उसका नाम गौ है इसको सुन कर वह लड़का गौ लेनेको चलदिया और घर से बाहर आकर क्या देखा कि एक चमार का लड़का भागा चला जाता है इस विद्यार्थी ने उस चमार के लड़के से तेज दौड़ कर उसको पकड़ लिया और उसको बाबाजी के पास लेगया मन्दिर में जाके बाबाजी को आवाज दी कि बाबाजी लीजिये बांधिये यह आप की गौ आगई यह सुन कर बाबाजी रस्सी लेकर फौरन आगये आकर बोले कहां है विद्यार्थी ने एक घूंसा उस लड़के की कमर में मारकर बतलाया कि यह रही। बाबाजी बोले अबे बेवकूफ यह लड़का है कि "गौ" इसको सुनकर विद्यार्थी बोला कि बाबाजी आप का बतलाया लक्षण (डिफनेशन) इसमें घटता है आपने कहा था कि जो गमन करे उसका नाम गौ है यह भगा जाता था इसको सुनकर बाबाजी बोले कि गौ के चार पैर होते हैं विद्यार्थी बोला कि बाबाजी यह तो आप अब कहते हैं पहले नहीं कहा अच्छा अब लाता हूँ यह कह कर विद्यार्थी चलागया और थोड़ीसी देर में एक गधे को लेकर आगया मन्दिर में गधे को खड़ा कर बाबाजी को आवाज दी कि आइये यह आपकी

गौ खड़ी है बांध लीजिये बाबाजी बोले कि पूजा में लगे हैं तुमहीं बांध दो इस को सुन कर विद्यार्थी बोला कि बाबाजी यह तो दुलत्ती मारती है जब बाबाजी के कान में दुलत्ती का शब्द गया तब तो चौकन्ने हुये और फौरन बाहर आये देखकर बोले कि यह गौ है यह तो गधा है विद्यार्थी बोला कि महाराज यह मैं कुछ नहीं जानता आप ध्यान देकर गिन लें पैर इसके चारही हैं तब बाबाजी को होश आया कि तुम्हारे लक्षण में अतिव्याप्ति दोष है उस समय बाबाजी ने कहा कि यह मेरी भूल होगई गौ का ठीक लक्षण तो "शासनामत्वं गोत्वं" ही है अर्थात् जिसके गले में खाल लटकती हो उसको गौ कहते हैं जिस प्रकार इस बाबाजी के लक्षण में अतिव्याप्ति दोष था उसी प्रकार समाजियों के लक्षणों में अतिव्याप्ति या अव्याप्ति आदि दोष सर्वदा रहते हैं और यदि ये दोष निकालते हैं तो फिर इनका धर्म रफूचक्कर होता है।

उदाहरण के लिये मैं आपको बतलाता हूँ—एक स्थान में आर्यसमाज और सनातनधर्म इन दोनों में शास्त्रार्थ होने लगा नियम बन गये शास्त्रार्थ पर बैठ गये आरम्भ में सनातनधर्मी पण्डितों ने कहा कि "लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः" लक्षण और प्रमाण से वस्तु की सिद्धि होती है अतएव तुम पहिले वेद का लक्षण कहो वेद किसको कहते हैं इसको सुन कर आर्यसमाजी पण्डितों में कानाफूसी होने लगी कुछ कानाफूसी करने के बाद एक पण्डित ने कहा कि "अपोरुषेयं वाक्यं वेदः" जिसका अर्थ यह है कि जो वाक्य मनुष्य (नर) का बनाया न हो उसको वेद कहते हैं इसको सुन कर सनातनधर्मी पण्डितों ने यशोदादेवी की बनाई चार पुस्तकें आर्यसमाजी पण्डितों के आगे रखदीं और कहा कि यह लो अपने चारों वेद आप लोगों का बतलाया लक्षण इनमें ठीक घट गया ये पुस्तकें किसी भी पुरुष की बनाई हुई नहीं हैं इसको देखकर समाजी पण्डित देखते ही रहगये फिर यहां तक भी कहा गया कि जब आप लोग वेदों का लक्षणही नहीं जानते तो फिर वेद मन्त्रों का अर्थ क्या करोगे सब सुना किन्तु फिर वेद का शुद्ध लक्षण न किया जब तो क्या करते आज तक भी किसी पण्डित ने नहीं किया और न अब कर सकते हैं आपत्ति यह है कि यदि वेद का शुद्ध लक्षण करते हैं तो दयानन्दजी ने वेदों को जैसा लिखा वह उड़ता है इसी प्रकार ये लोग जितने लक्षण करते हैं वे सब दोषग्रसित रहते हैं इसी प्रकार दयानन्द ने व्युत्पत्तियां की हैं इसी प्रकार

स्वामी दयानन्द की व्युत्पत्तियां हूबहू वैसी ही हैं जैसी कि "गच्छतीति गौः" इन व्युत्पत्तियों को वही लोग मानेंगे जो आर्यसमाज के रजिस्टर में नाम लिखवाकर वेदपाठी बने हैं और जिन्होंने कुछ पढ़ा है वह समझते हैं कि ये सब लेख भंग के नशे में लिखा है अब देखेंगे पं० तुलसीराम या आर्यसमाज इस व्युत्पत्ति समुदाय को सत्यार्थप्रकाश से निकालती है या कुछ हमको तोषदायक उत्तर देती है जान पड़ता है कि दोनों ही मौनव्रत का ग्रहण करेंगे ।

मंगलाचरण ।

सत्यार्थप्रकाश पृ० २६ पं० ८ से—

(प्रश्न) जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि मध्य और अन्त में मंगलाचरण करते हैं वैसे आपने कुछ भी लिखा न किया (उत्तर) ऐसा हमको करना योग्य नहीं क्योंकि जो आदि मध्य और अन्त में मंगल करेगा तो उस के ग्रन्थ में आदि मध्य तथा अन्त के बीच में जो कुछ लेख होगा वह अमंगल ही रहेगा इसलिये मंगलाचरण "शिष्टाचारात् फल दर्शनाच्छ्रुतिश्चेति" यह सांख्यशास्त्र के अ० ५ का पहिला सूत्र है इसका यह अभिप्राय है कि जो न्याय पक्षपात रहित सत्य वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है उसी का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मंगलाचरण कहाता है ग्रन्थ के आरम्भ से लेके समाप्ति पर्यन्त सत्याचार का करनाही मंगलाचरण है न कि कहीं मंगल और कहीं अमंगल लिखना देखिये महाशय महर्षियों के लेख को "न्याय वद्यानिकर्माणि तानिसेवितव्यानिनो इतराणि" यह तैत्तिरीयोपनिषद्ध प्रपाठक ७ अनु० ११ का वचन है हे संतानों जो "अनवद्य" अनिन्दनीय अर्थात् धर्मयुक्तकर्म हैं वेही तुम को करने योग्य हैं अधर्मयुक्त नहीं ।

तिमिरभास्कर पृ० ५ ।

धन्य है स्वामीजी आपके अर्थ और अभिप्राय को आप तो मंगलाचरण करते जांय और पूछने पर नहीं कहें यदि आप मंगलाचरण नहीं करते तो बतलाइये कि सत्यार्थप्रकाश भूमिका

के पहिले "ओ३म् सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः" और "अथ सत्यार्थप्रकाशः" और "शन्नो मित्रादि" सत्यार्थप्रकाश के प्रारम्भ में और अन्त में ५६२ पृष्ठ में फिर "शन्नो मित्रः" इत्यादि और ये नाम परमेश्वर के किस आशय से लिखे हैं तथा आपने वेद भाष्य के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में "विश्वानि देव" इत्यादि क्यों लिखा है इससे आपके लेखानुसार यह विदित होता है कि आपके वेदभाष्य तथा सत्यार्थप्रकाश में बीच २ में अमंगलाचरणही हैं और सत्य भी है ऊपर के सांख्यसूत्र के टीके में सत्य वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा कहनी मंगलाचरण है और आपने पोपादि बहुत से अपशब्द और दुर्वचन आगे इस पुस्तक में लिखे हैं जिनके उच्चारण की आज्ञा वेद में कहीं नहीं पाई जाती न उन शब्दों का उच्चारण करना न्याय और निष्पक्षता सम्पादन करता है इस लिखने से जाना जाता है कि स्वामीजी प्रगट में मंगलाचरण से हिचकते हैं और स्वयं वोही परिपाटी ग्रहण करते हैं यदि ऐसा न करते तो यह इनका मत भिन्न कैसे प्रतीत होता और सांख्य वचन का अर्थ यह है कि मंगलाचरण से मङ्गल होता है यह शिष्टाचार है और इसका फल भी दीखता है श्रुति प्रमाण है ।

भास्करप्रकाश पृ० १२ पं० २२—

स्वामी जी तान्त्रिकादि लोगों की परिपाटी "भैरवायनमः, दुर्गायै नमः हनुमतेनमः इत्यादिका खंडन करते हैं ऋषि लोगों की परिपाटी "अथ" आदि से मंगलाचरण करना अच्छा मानते हैं अतः ऋषि परिपाटी से उन्होंने मंगलाचरण किया स्वामीजी ने आदि मध्य अन्तमें ऋषि परिपाटीसे मंगलाचरण किया और बीच २ में भी सर्वत्र असत्य खंडन और सत्यमंडन रूप मंगलाचरण ही कियाहै उन्हों ने पोपादि शब्दों का प्रयोग भी सर्वसाधारण को धोके से बचाने के लिये किया है अतः वह भी मंगलाचरण ही है ।

समीक्षा—स्वामी दयानन्दजी तो मंगलाचरण का बिलकुल ही निषेध करते हैं यह तो लिखते हैं कि हमको ऐसा करना ही योग्य नहीं जब योग्य ही नहीं तो फिर परिपाटी का क्या जिकर है जब इस जगह स्वामी मंगलाचरण को कतई उड़ाते हैं और पं० तुलसीराम इसको छोड़ कर परिपाटी पर दौड़ लगाते हैं तब इस लेख का क्या होगा इसको सत्य मानें या झूठ यदि यह लेख सत्य है तब तो किसी प्रकार का भी मंगलाचरण न होना चाहिये और यदि परिपाटी से मंगलाचरण करते हैं तो फिर इस लेख का क्या होगा और मंगलाचरण का सर्वथा निषेध करता है और "शिष्टाचारात्फल दर्शनात्छ्रुतिश्चेति" इस सांख्य का अर्थ स्वामी दयानन्दजी ने "जो न्याय पक्षपातरहित सत्यवेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है उसको यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मंगलाचरण कहाता है" यह किया क्या सचही इस सांख्य का यह अर्थ होसक्ता है यदि होता है तो किस व्याकरण कोष निघंटु से क्या कोई समाजी दस बीस लाख जन्म लेकर भी इसको सिद्ध कर सकता है यदि यह शक्ति किसी में हो तो बतलावे नहीं तो मानना पड़ेगा कि समाज में संस्कृत जाननेवालों का अत्यन्ताभाव होगया ऐसे २ ऊटपटाँग अर्थों के मानने से साफ प्रगट होता है कि समाजी लोग "बाबा वचनं प्रमाणम्" में बँधगये यहाँ तो यही घटता है कि काफ लाम जबर कल लाम वाव पेश लू क्या हुआ कि मौलाबख्श हिज्जे कल्लू के और होगया मौलाबख्श ऐसे अयुक्त लेख को समाज का मानना अबोध या आग्रह में यह एकही प्रमाण सिद्ध करता है कि अब समाज युक्तायुक्त को बात को न सुन कर स्वामी दयानन्द के मिथ्या लेख को ही मानती रहेगी इसका अर्थ तो यही था कि मंगलाचरण करना शिष्टाचार है और इसका फल देखा जाता है अर्थ को अशुद्धता और मंगलाचरण के सर्वथा निषेध का उत्तर क्या समाज कभी देसकेगी कदापि नहीं अब शेष भास्करप्रकाश का उत्तर आगे देखिये।

सत्यार्थप्रकाश पृ० २६ पं० २०—

इसलिये जो आधुनिक ग्रन्थों में "श्रीगणेशायनमः" सीतारामाभ्यांनमः" "राधाकृष्णाभ्यांनमः" "श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यांनमः" "हनुमतेनमः" "दुर्गायैनमः" "वटुकायनमः" "भैरवायनमः"

"शिवायनमः" "सरस्वत्यैनमः" "नारायणायनमः" इत्यादि लेख देखने में आते हैं इनको बुद्धिमान लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्याही समझते हैं क्योंकि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मंगलाचरण देखने में नहीं आता और आर्ष ग्रन्थों में "ओ३म्" तथा "अथ" शब्द तो देखने में आता है देखो "अथ शब्दानुशासनम" अथेत्ययंशब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते यह व्याकरण महाभाष्य "अथातो धर्म जिज्ञासा" अथेत्यानन्तर्यें वेदाध्ययनानन्तरम् यह पूर्व मीमांसा "अथातोधर्मंव्याख्यास्यामः" अथेति धर्म कथनानन्तरं धर्म लक्षणं विशेषेण व्याख्यास्यामः यह वैशेषिक दर्शन "अथ योगानुशासनम्" अथेत्यय मधिकारार्थः यह योग शास्त्र "अथत्रिविध दुखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थ" सांसारिक विषय भोगानन्तरं त्रिविध दुखात्यन्त निवृत्यर्थः प्रत्यन्तः कर्त्तव्यः यह सांख्यशास्त्र "अथातोब्रह्मजिज्ञासा" यह वेदान्त सूत्र है "ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत" यह छान्दोग्य उपनिषद का वचन है "ओमित्ये तदक्षरमिदꣳसर्वं तस्योपव्याख्यानम्" यह मांडूक्य उपनिषदके आरम्भ का वचन है ऐसेही अन्य ऋषि मुनियोंके ग्रन्थों में "ओम्" और "अथ" शब्द लिखे हैं वैसेही (अग्निइट अग्निये त्रिसप्ता परियन्ति) ये शब्द चारो वेदों के आदि में लिखे हैं "श्रीगणेशायनमः" इत्यादि शब्द कहीं नहीं और जो वैदिक लोग वेद के आरम्भ में "हरिःओम्" लिखने और पढ़ते हैं यह पौराणिक और तांत्रिक लोगों की मिथ्या कल्पना से सीखे हैं वेदादि शास्त्रों में "हरि" शब्द आदि में कहीं नहीं इस लिये "ओ३म्" वा "अथ" शब्दही ग्रन्थकी आदि में लिखना चाहिये यह किंचित्मात्र ईश्वर के विषय में लिखा इसके आगे शिक्षा के विषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषा विभूषित ईश्वर नाम विषये प्रथमःऽसमुल्लासः सम्पूर्णः।

तिमिरभास्कर पृ० ७—

विदित होता है कि स्वामीजी को परमेश्वर के नाम कुछ तो प्रिय हैं और कुछ अप्रिय हैं इसमें जो प्राचीन लोगों की परिपाटी है इसका तो मेटना मानो इन्होंने नियम ही कर लिया है देखिये प्रथम तो गणेश गुरु शिव सरस्वती नारायण शिव आदि नाम परमात्मा के लिखे जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं और अब यह कहते हैं कि इनको विद्वान् मिथ्या ही समझते हैं तौ आप उनको दोष मत दीजिये योंही कह दीजिये मैं मिथ्या समझता हूं डरिये नहीं आप तौ रीछ को डराचुके हैं (जीवन०) क्या यह आप परमेश्वर के नाम नहीं मानते जो मानते हो तो मिथ्या कैसे जो नहीं मानते तो परमेश्वर के १०० नामों में यह शब्द क्यों लिखे इन्हें भी वेद में से निकाल डाला करिये यदि आपकी चलती तो प्राचीन महात्माओं ने जो सत्य बोलना परम धर्म लिखा है आप उनका भी निषेध करते परन्तु इसमें चल नहीं सकती और जैसे आपने धातुओं से परमेश्वर के नाम सिद्ध किये हैं क्या "रमुक्रीडायां" इस धातु से राम और हरति दुखानीति हरिः" जो सबमें रमरहा है वह राम है भक्तों के दुख हरने से परमेश्वरका नाम हरि है हृञ् हरणे सर्वधातुभ्य इन्उणा० पा० ४ और "कृषिर्भूवाचकः शब्दोणश्चनिर्वृत्तिवाचकः । तयोरैक्यंपरंब्रह्म कृष्णइत्यभिधीयते" इस प्रकार कृष्ण के अर्थ भी तो ईश्वर ही के हैं या परमेश्वर को कोई अपना नाम प्यारा है कोई नहीं जो आप निषेध करते हो आप तो विद्वत्ता का दम भरते हो ईश्वर को पक्षपाती मत बनाओ कहिये परमेश्वर के यह नाम लेनेसे कौन सी देशोन्नति में हानि होती है यदि विचारा जाय तो जैसे प्राचीन ग्रन्थों में विष्णुसहस्रनाम शिवसहस्रनाम हैं वही आशय उभारकर यह आपनेभी शतनाम लिखेहैं भला जो ग्रन्थ की आदि में १०० नाम ईश्वरके लिखना यह कौनसा वेदानुकूल है प्रत्यक्ष लिखदेते कि विष्णुसहस्रनाम के स्थान में हमारे शिष्य शतनाम

का पाठ किया करैं फिर यह कैसी बात है कि अपने नामों को आपही मिथ्या करते हो शोक है आपकी बुद्धि पर आप लिखते हैं कि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में ऐसा मङ्गलाचरण देखने में नहीं आता इससे भी विदित होता है कि ऐसा नहीं तो और प्रकार का तो देखने में आता है सो आपने लिखा ही है कि अथ ओम् देखने में आते हैं सो उसी प्रकार आपने भी अथ और ओ३म् लिखा है तो आपने भी मङ्गलाचरण किया (अब आपके ग्रन्थ के मध्य और अन्त में क्या है) मुकरते क्यों हो मङ्गलाचरण करना कोई चोरी नहीं है और वेदकी आदि में तो अग्निमीले इषेत्वा० अग्न आयाहि० पद पड़े हुए हैं आप वेदानुकूल ही चलते हैं फिर अथ और ओ३म् मन्त्रसंहिताओं में से किसके अनुकूल लिखा है और हरि शब्द से तो कोई आपका बड़ा भारी द्वेष है कदाचित् कहीं इसके दूसरे अर्थवाले से भेंट तो नहीं होगई (जीवनचरित्र में तो भालु मिला था) भय के मारे आपको परित्राण पाना कठिन होगया होगा तब से उस नाम से ऐसा जी खट्टा हुआ कि वह शब्द जिस २ में आरूढ़ हो उस २ से भी भयभीत हो द्वेष करने लगे जैसा मारीच को भय हुआ था (रा अस नाम सुनत दशकंधर। रहत प्राण नहिं मम उर अन्तर) और इसी कारण आप तांत्रिक पौराणिक लोगों के ऊपर डालकर उसे मिथ्या बताते हो।

भास्करप्रकाश पृ० १२ पं० १०—

निस्संदेह ये नाम परमेश्वर के भी हैं परन्तु स्वामीजीके समय में लोक में इन नामों से विशेष करके पूर्वज पुरुष विशेषों का और वेदविरुद्ध अवतारों का ग्रहण करने का बहुत प्रचार था और है अतः स्वामीजी ने यह समझ कर इन नामों से मङ्गलाचरण को रोका कि लोक में अवतारादि की कथा प्रचरित होकर वेदविरुद्ध मतमतांतर फैलते गये और फैलते जाते हैं जहां तक हो सके मंगलाचरणादि से वैसे अशुद्ध संस्कारों की पुष्टि न हो इसलिये ऐसा किया उनको परमात्मा का कोई अप्रिय नाम न था रामकृष्ण हरि

आदि शब्द चाहे व्याकरण से किसी प्रकार खैंचातानी करके ईश्वरार्थवाचक सिद्ध भी होजावें परन्तु इन शब्दों से वेदादि प्राचीन ग्रंथों में ईश्वर का ग्रहण नहीं करते आये हैं इसलिये स्वामीजी ने ऐसा किया और "कृष्ण" शब्द की व्युत्पति तौ आपने किसी व्याकरण से की भी नहीं क्या आप किसी व्याकरण वा निरुक्त में "कृषिर्भूवाचकः" आदि अपनी लिखी कारिका को दिखा सकते हैं विष्णुसहस्रनाम के साथ गोपालसहस्रनाम भी तौ है उसे क्यों छोड़ते हो क्या इस लिये कि उसमें तौ "चोरजारशिखामणिः" यह भी परमेश्वर का नाम है बस रहने दीजिये विष्णुसहस्रनाम गोपाल सहस्रनाम गीतगोविन्द आदि का भेद न खुलवाइये और विदेशियों से हँसी न कराइये स्वामीजी तौ आपके घर का भेद खूब जानते थे और आपकी शुभचिंतकता से केवल दिग्दर्शनमात्रही से पोल खोली है यदि स्वामीजी वा हम लोग आपकी तरह करते वा करें तौ वही दशा हो जो "स्वर्ग में सब्जेक्ट कमेटी" से भले प्रकार झलकती है बस इन्हीं बखेड़ों को स्वामीजी उघाड़ना नहीं चाहते थे अतएव उन्होंने गोपालसहस्रनामादि पर उपेक्षाही की यह आप का काम है कि आप इन शब्दों को वेदविरुद्ध सिद्ध करें। ओं खं ब्रह्म। यजुः अध्याय ४० आदि शतसः प्रकरणों में ओमादि नाम जो आर्ष ग्रंथों में आये हैं उपस्थित हैं नहीं तौ आप बतलाइये कि रामकृष्ण हरि आदि नाम वेद में कहां ईश्वरवाचक आये हैं।

समीक्षा—पृष्ठ २६ पंक्ति २० से सत्यार्थप्रकाश में जो यह लेख है इस का उत्तर पं० तुलसीराम को अलाहिदा देना उचित था क्योंकि तिमिरभास्करने अलाहिदाही खंडन किया है किन्तु पं० तुलसीराम ने ऐसा नहीं किया बल्कि सत्यार्थप्रकाश पृ० २५ पं० ८ के उत्तर में मिला दिया ऐसा करने से यह लाभ हुआ कि पृ० २६ पं० ८ में जो स्वामी दयानन्दने मंगलाचरण का कतई निषेध किया था वह दब गया पं० तुलसीराम दोनों को मिलाकर यह सिद्ध कर रहे हैं कि स्वामीजी मंगलाचरण का निषेध नहीं करते किन्तु तान्त्रिक लोगों की परिपाटी का निषेध करते हैं पं० तुलसीराम के इस लेख पर किसी भी समाजी की दृष्टि न पहुँची यदि एक की भी दृष्टि यहां पर पहुँची होती तो क्या समाजी पुरुष इस पर कोलाहल न मचाते

कि स्वामीजी ने तो मंगलाचरण का कतई निषेध किया है और पं० तुलसीराम उसको नहीं मानते स्वामी दयानन्द के कतई निषेध का न मानना प्रमाण देरहा है कि पण्डित तुलसीराम स्वामीदयानन्द के कुछ लेख को वेदविरुद्ध समझकर और उसको न मानकर इस गलती को छिपाते हैं और इसका उत्तर नहीं देते क्या समाजी लोग इसको कभी देखेंगे या ऐसेही अंधेरखाता चलता रहेगा इसके आगे स्वामी दयानन्द ने परिपाटी से मंगलाचरण करके कतई निषेध को अपने आपही खंडन कर दिया अस्तु स्वामी दयानन्द जो परिपाटी बतलाते हैं यह कहां तक सच है वास्तविक में परिपाटी भेद है ही नहीं इसको हम आगे कहेंगे यहां पर इतनाही कहना काफी समझते हैं कि स्वामी दयानन्द ने लेखनी उठाते ही परिपाटी (पार्टी) करना आरम्भ कर दिया जिसका प्रभाव पड़ते ही समाज में घास मांस अर्धी कृपारामी कन्नौजिया पंडित बाबू आदि आदि पार्टियां बनगईं और आगे भी बनती जाती हैं जिन पार्टियों के फल से समाज में प्रत्येक मनुष्य डेढ़ चावल की खिचड़ी अलाहिदा ही पकाता है और एक पार्टी का मनुष्य दूसरी पार्टी के नेता की इज्जत लेना चाहता है दूसरी पार्टी को गिराने के लिये सैकड़ों समाजियों का अमूल्य समय खर्च होता है एकही वर्ष के अन्दर मनों स्याही और कागज की गांठें की गांठें इसी काम में खर्च होती हैं इसका कारण यही है कि स्वामी दयानन्दजी ने मंगलाचरण में ही परिपाटी डालदी यदि समाजी लोग समाज के भेद (पार्टियां) मिटाना चाहते हैं तो कृपा कर मंगलाचरण में से पार्टी निकालदें कि जिसके फल से आज समाज में महाभारत हो रहा है ।

"श्रीगणेशायनमः" "भैरवायनमः" "दुर्गायैनमः" इत्यादि मंगलाचरण को स्वामी दयानन्द तांत्रिक परिपाटी कहते हैं और पं० तुलसीरामजी भी विचार का गला घोटकर हां में हां मिलातेही हैं मैं पंडित तुलसीराम तथा आधुनिक आर्यसमाजियों से यह पूछता हूं कि क्या सचही "गणानांत्वा" इस मंत्र में गणेश नाम ईश्वर का नहीं क्या स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश पृ० ९२ पं० २६ में गणेश नाम ईश्वर का नहीं लिखा जब दोनों ही स्थान में गणेश नाम ईश्वर का है तब फिर "श्रीगणेशायनमः" लिखने से घबराना क्या भूल नहीं है यदि तान्त्रिक लोग "श्रीगणेशायनमः" लिखते हैं तब तो उन

का मत वैदिक है क्योंकि वे लोग वेदप्रतिपाद्य गणेश को ही प्रणाम करते हैं वेदप्रतिपाद्य गणेश को नमस्कार करने से तो तान्त्रिक लोगों का अवैदिक होना त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं हो सकता वैदिक मंगलाचरण करने पर तान्त्रिक लोगों का वैदिक न मानना पूरी हठ है अब रहगया "भैरवायनमः" या "दुर्गायैनमः" जिस प्रकार स्वामी दयानन्द ने व्याकरण से व्युत्पत्ति करके पृथिवी कुबेर आदि परमेश्वर के वैदिक नाम सिद्ध किये हैं इसी प्रकार भैरव दुर्गा भी परमेश्वर के वैदिक नाम सिद्ध हो सकते हैं यदि न हो जावें तो हम जिम्मेदार क्या किसी समाजी में इतनी शक्ति है कि जो संस्कृत की व्युत्पत्ति से भैरव दुर्गा ईश्वर के नाम होने का खंडन कर सके यदि कोई भी समाजी इस पर लेखनी उठावेगा तो हम उसको धन्यवाद देंगे किन्तु लेखनी उठाते ही सत्यार्थप्रकाश में लिखे पृथिवी आदि ईश्वर के नाम पाताल को जाते रहेंगे और भैरव दुर्गा आदि फिर भी ईश्वर के नाम बने ही रहेंगे क्योंकि इनमें बीसियों कोष प्रमाण मिलेंगे। इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि "अथ" आदि ऋषि परिपाटी का खंडन स्वामीजी नहीं करते हम यह पूछते हैं कि ऋषियों की कौन २ बातें स्वामीजी मानते हैं बतलाइये वह कौन ऋषि है कि जिसने ११३१ शाखाओं को वेद न माना हो वह कौनसा ऋषि है कि जो मुसलमानों की शुद्धि लिखगया हो वह कौन ऋषि है जो चमारों को शर्मा पदवी का अधिकारी बतला गया हो जब कि आप एक भी सिद्धान्त ऋषियों का नहीं मानते फिर ऋषि परिपाटी से मंगलाचरण क्यों माना क्या मजबूरन तो मानना नहीं पड़ा कहीं भूल कर मंगलाचरण कर गये हों और उसकी पुष्टि के लिये ऋषि परिपाटी की शरण लेना पड़ी हो। यहां पर एक बात और भी पूंछना है कि मंगलाचरण में वेद परिपाटी और ऋषि परिपाटी में भी भेद है ऋषि लोग "अथ" आदि से मंगलाचरण करते हैं किन्तु वेद ने "अग्निमीले" इत्यादि शब्दों से मंगलाचरण किया है अब वेद परिपाटी को छोड़ कर आपने ऋषि परिपाटी को क्यों लिया क्या वेद परिपाटी में कोई दोष था और जब आप ऋषि परिपाटी को लेते हैं तब फिर आप वैदिक कैसे कहलावेंगे जब आपही वेद परिपाटी को छोड़ते हैं तो इस परिपाटी को कौन लेगा अजब लीला दिखलाई है कि जिस वेद परिपाटी की स्वामी दयानन्द रात दिन प्रशंसा करते रहे हैं आज उसी वेद परिपाटी को वही स्वामी दयानन्दजी घृणा की दृष्टि से

देखते हैं । फिर स्वामी दयानन्दजी ने भूमिका पर "सच्चिदानन्देश्वराय नमः" से मंगलाचरण किया है यह कौन परिपाटी है यह परिपाटी तो एक अद्भुत परिपाटी है जो वेद ऋषि तान्त्रिक तीनों परिपाटियों से भिन्न है ऐसा मंगलाचरण न तो वेद ने किया और न किसी ऋषि ने किया और न तान्त्रिक लोगों ने किया यह सब से भिन्न है अब इस परिपाटी का नाम क्या दयानन्दी परिपाटी रक्खें या कि समाजी परिपाटी कृपाकर कोई समाजी इस परिपाटी का नामकरणसंस्कार अवश्य करदें नहीं तो साधारण मनुष्य इस परिपाटी को 'नामालूमी" परिपाटी कहने लगेंगे जिस परिपाटी के लिये यह लेख लिखा जा रहा है यह दयानन्दी परिपाटी नं० १ है इसके ऊपर इतनाही लेख तोषदायक समझ कर दयानन्दी परिपाटी नम्बर २ का भी कुछ हाल लिखताहूँ सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ में "शन्नोमित्रः शंवरुणः" मंत्र से मंगलाचरण किया यह परिपाटी नम्बर २ है दूसरे पुरुष के बनाये वाक्य से मंगलाचरण करना यह भेद ऋषि तान्त्रिक दयानन्दी नम्बर १ चारों परिपाटियों से भिन्न है न तो ऐसा मंगलाचरण वेद ने किया और न किसी ऋषिही ने किया और सत्यार्थप्रकाश की भूमिका पर स्वतः स्वामी दयानन्दजी ने भी ऐसा नहीं किया अतएव यह चारों से विलक्षण है इससे इसका नाम दयानन्दी परिपाटी नम्बर २ समझो बस दयानन्दी परिपाटी नम्बर २ का लेख समाप्त होता है अब दयानन्दी परिपाटी नम्बर ३ पर भी कुछ अक्षर लिखताहूँ स्वामी दयानन्दजी ने अपने बनाये यजुर्वेद के भाष्य में प्रत्येक अध्याय के आदि में "विश्वानि देव" इस मंत्र से मंगलाचरण किया यह मंगलाचरण वेद ऋषि दयानन्द नम्बर १ तथा दयानन्द नम्बर २ इन चारों परिपाटियों से भिन्न है न तो अध्याय २ पर कहीं वेदने ही मंगलाचरण किया और न किसी ऋषि ने और स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के किसी समुल्लास में ऐसा नहीं किया अतएव यह परिपाटी सबसे पृथक् (भिन्न) है और इस मंगलाचरण का नाम दयानन्दी मंगलाचरण नम्बर ३ है अथवा दयानन्दी परिपाटी तृतीय है और इन परिपाटियों की गणना ही कौन करे यदि केवल स्वामी दयानन्द की परिपाटियों की गणना ठीक २ रीति से की जावे तो पांच सात परिपाटी तो स्वामी दयानन्द के ही लेख में निकलेंगी जिनमें से तीन परिपाटी मैं दिखला चुका और आप निकाल लें ।

पाठकवर्ग ! अब आप अच्छीरीति से समझगये होंगे कि स्वामी दयानन्दजी का मङ्गलाचरण न तो वेद परिपाटी में है और न ऋषिपरिपाटी में खुद भी कई परिपाटी कर गये इतने पर भी ऋषि परिपाटी की डींग मारना संसार को निर्णय से कोसों ले जाना नहीं तो और क्या है वास्तविक में स्वामी दयानन्द मङ्गलाचरण का खण्डन कर गये और आपही मङ्गलाचरण कर गये इन दोनों लेखों में एक दूसरे का खण्डन करता है परस्पर में विरोध रखता है इस विरोध के मिटाने के लिये स्वामी दयानन्द ने परिपाटी बनाई किन्तु वे ऐसी परिपाटी बनीं कि जिनकी संख्या दिनोंदिन उन्नति करती गई और स्वामी दयानन्द सब परिपाटियों से बाहर भाग गये स्वामी दयानन्द का किसी परिपाटी पर स्थिर न रहना साबित करता है कि दयानन्द का यह लेख केवल लेखद्वय के विरोध मिटाने के लिये है वास्तविक में परिपाटीभेद है ही नहीं मङ्गलाचरण तीन प्रकार का होता है प्रथम आशीर्वादात्मक द्वितीय नमस्कारात्मक तृतीय शब्द निर्देशात्मक इन तीन मङ्गलाचरणों में से किसी से मङ्गलाचरण करें कोई भी दोष नहीं और ऋषि परिपाटी तथा तान्त्रिक परिपाटी में जराभी भेद नहीं इस को आप इस प्रकार समझ सकते हैं कि वेदव्यासजी ने ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन) के आरम्भ में "अथातोब्रह्मजिज्ञासा" इस सूत्र से वस्तु निर्देशात्मक मङ्गलाचरण किया जिस व्यासजी ने ब्रह्मसूत्र के आरम्भ में वस्तु निर्देशात्मक मङ्गलाचरण किया उन्हीं व्यासजी ने योगशास्त्र के भाष्य करते समय तथा महाभारत के आरम्भ में नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण किया बस जिस नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण को स्वामी दयानन्द तांत्रिक बतलाते थे उसको तो ऋषि भी लेते हैं जब कि इस विषय में ऋषि और तान्त्रिक एक हैं तब भेद बतलाना संसार को धोके में डालना नहीं तो और क्या है।

अब इसके आगे की कथा सुनिये दयानन्दजी सत्यार्थप्रकाश में लिख आये हैं कि जो आदि मध्य अन्त्य में मंगलाचरण करता है उस के ग्रन्थ में आदि मध्य अन्त को छोड़कर शेष अमंगलही अमंगल रहता है इस पर पण्डित ज्वालाप्रसादजी ने यह लिखा कि आपके बनाये सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में भी आपके किये आदि मध्य अन्त्यके मंगलाचरणको छोड़कर शेष अमंगलही अमंगल होगा और वास्तविक में यह कानून स्वामी दयानन्द ने मनुष्य मात्र के लिये ही

बनाया है इसमें कहीं यह तो लिखा नहीं कि समाजियों के लेख को छोड़कर या दयानन्द के लेख से भिन्न लेख में अमंगल रहता है अब इस कानून में आपभी घिरगये तब तो सत्यार्थप्रकाशादि के आदि मध्य अन्त्य को छोड़ कर शेष अमंगलही रहा कृपाकर इस अमंगल को निकाल डालें इससे हानि होगी पं० तुलसीराम इसका निकालना स्वीकार नहीं करते किन्तु यह प्रमाण देते हैं बीच बीच में भी सर्वत्र असत्य खण्डन सत्य मंडनरूप मंगलाचरण ही है यह तुलसीरामी परिपाटी और निकली असत्य खण्डन और सत्यमडन को मंगलाचरण मानना वेदस्मृति पुराण आदि ग्रन्थों के कर्त्ता तथा स्वामी दयानन्द से विद्वान् होना है असत्य खण्डन सत्यमंडन को मंगलाचरण न तो वेद ने माना और न स्मृतियों ने और न पुराणों ने और न स्वामी दयानन्द ने ही माना है यह कौन परिपाटी है हार कर कहना पड़ेगा कि यह तुलसीरामी परिपाटी है अब यदि कोई मनुष्य वेद ऋषि तांत्रिक और स्वामी दयानन्द की परिपाटी से आरम्भ में मङ्गलाचरण न करे और इन परिपाटियों को छोड़ कर तुलसीरामी परिपाटी से मङ्गलाचरण करदे तो कोई दोष तो नहीं क्या दोष है कुछ नहीं केवल इतनाही दोष है कि आर्यसमाज में और नास्तिकों में कुछ भेद नहीं रहेगा दोनों एक हो सिद्धान्त माननेवाले हो जावेंगे तुलसीरामजी ने एक अद्भुत परिपाटी निकाली कि जिससे सब प्रकार के मंगलाचरणों का स्वाहा होगया मुझे बार २ यही विचार उठता है कि समाजी लोग यह क्या करते हैं जो लेख लिखते समय कुछ भी विचार नहीं करते और जो जी में आता है लिख देते हैं क्यों न हो जो गुरु करे वही तो चेला करेगा स्वामी दयानन्द ने जिस प्रकार के लेख लिखे पं० तुलसीराम भी तो उसी सड़क पर चलेंगे अब मैं सूर्योदय से सूर्यास्त तक के समाजियों से प्रार्थना करता हूँ कि पं० तुलसीराम के कहे मंगलाचरण में प्रमाण दें कि असत्य खण्डन और सत्य मण्डन को मंगलाचरण अमुक पुस्तक में लिखा है क्या इसका उत्तर समाज दे सकती है अजी साहब उत्तर देना तो और बात है समाज तो हाथ में लेखनी भी नहीं उठा सकती क्या किसी ग्रन्थ में लिखा है जो समाज उत्तर दे दे यदि इसको कोई भी ग्रन्थ का लेख सिद्ध नहीं कर सकता तो फिर मनगढ़ंत लेख लिखना क्या सभ्यता का उच्च पद देता है जब कि इसको कोई भी ग्रन्थ नहीं मानता तो फिर समाज ने क्यों माना जो जी में आया उसी को मान लिया क्या इसी का नाम तो वैदिकधर्म नहीं है । पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने यह

लिखा है कि सत्यार्थप्रकाश में अपने पूर्वजों को गालीगलोज दी है बेशक स्वामी दयानन्द के लेखानुसार यह बीच २ में अमंगलही है पं० तुलसीरामजी इसको भी मंगलाचरणही बतलाते हैं पं० तुलसीराम जी कहते हैं कि पोपादि शब्द कहके साधारण मनुष्यों को धोके से बचाया यह भी मंगलाचरणही है अजी जनाब पोपादि शब्द ही नहीं कहे किन्तु स्वामी दयानन्दजी ने तो यह लिखा है कि गुरु महात्म्य और गुरुगीता इन्हीं कुकर्मी लोगों ने बनाई है इसके अलावा एकादशीव्रत चलानेवाले को कसाई लिखा है इत्यादि अनेक कटु शब्द लिखे हैं जिनको आप छिपाते हैं क्या गालियां देना ही धोके से बचाना होता है यदि आप शुभ को मंगलाचरण मानते हैं तो हम जोर देकर कह सकते हैं कि बेशक यह अशुद्ध लेख पं० तुलसीरामजी के मंतव्यानुसार अमंगलाचरण है और यह मंगल एक परिपाटी पं० तुलसीराम ने समाजियों को और बतादी कि जहां दूसरों को दो चार गाली सुनाई कि समाजियोंका मंगलाचरण होगया जिसके मतमें गालियां भी मंगलाचरण हैं उस मत का कौन ठिकाना।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने लिखा था कि क्या परमेश्वर को कुछ नाम प्रिय हैं और कुछ अप्रिय जो ओ३म् नामसे मंगलाचरण करै तो प्रसन्न और "नारायणायनमः" इत्यादि करे तो रुष्ट हो इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि बेशक ये नाम तो ईश्वर के हैं किन्तु इन नामों से पूर्वज विशेष और वेद विरुद्ध अवतारों का ग्रहण होने लगा इस कारण से मंगलाचरण इन नामों से रोका है ये नारायणादि पूर्वज विशेष थे इन में कुछ प्रमाण नहीं केवल यही प्रमाण है कि पं० तुलसीरामजीने लिखदिया तुलसीराम का प्रमाण कौन मानेगा अजी कोई नहीं मानेगा तो समाज तो मानेगी जहां २ वेद और मनु आदि में नारायणादि का वर्णन है वहां २ पर इनको ईश्वर का शरीर बतलाया है और जहां कहीं पुराणों में वर्णन आया वहांपरभी इनको अवतार ही बतलाया फिर समाज सबको छोड़कर केवल तुलसीरामके ही प्रमाण को स्वतः प्रमाण कैसे मानेगी क्या पं० तुलसीराम जी वेदकर्त्ता ईश्वर से भी बढ़गये यदि ऐसा है तो फिर इनको ईश्वर के ईश्वर की उपाधि मिलनी चाहिये पं० तुलसीराम चाहे जो लिखें किन्तु इनके अवतार होने का खण्डन करना उतना कठिन है कि जितना सूर्यका उदय पश्चिम में करदेना पं० तुलसीराम की प्रसन्नता के लिये यदि हम ऐसा भी मानलें कि वे पूर्वजही थे ईश्वर के नाम यदि दूसरी जगह चले जावें

तो क्या वे इतने अशुद्ध होजाते हैं कि उनका ग्रहण करनाही छोड़दिया जावे यदि ऐसाही है तब तो स्वामी दयानन्द ने भूल करी जो इन नामों को सत्यार्थ-प्रकाश में लिखा यदि कहो कि धोका न हो इस कारण से निषेध किया है इसके ऊपर हमारा यह प्रश्न हैं कि यदि कोई नीच कौम का मनुष्य अपने लड़के का नाम तुलसीराम रखले तो क्या धोका मिटाने के लिये आप अपना नाम छोड़देंगे यदि ऐसाही है तो आपने आर्य शब्द क्यों नहीं छोड़ा क्योंकि इसमें भी तो घोड़े की पिछाड़ी का धोका होता है जितने स्थान में धोका होता है उन सबही को छोड़दोगे या केवल ईश्वर के नामों कोही छोड़ोगे इसका कुछ भी उत्तर है ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि राम कृष्णादि नाम भले ही व्याकरण की खैंचा-तानी से सिद्ध होजावें किन्तु वेद में इन नामों से काम नहीं है समाजियों में एक यह अद्भुत बात पाईजाती है कि अपनी बुद्धिके सन्मुख दूसरे की बुद्धि की कुछ गणनाही नहीं बस यही हाल पं० तुलसीराम ने यहांपर किया है जो अपनी बुद्धि के सन्मुख स्वामी दयानन्द के लेख पर पानी फेरदिया हम तुलसीरामजी से पूंछते हैं कि स्वामी दयानन्द ने जो प्रथम समुल्लास में "रामः" शब्द व्याकरण से सिद्ध करके दिखलाया है क्या सचही स्वामीदयानन्दने इसमें खैंचा-तानीकी है यदि ऐसा है तो इसको सत्यार्थप्रकाश से निकाल क्यों नहीं देते और जब स्वामी दयानन्द ने इसको सत्यार्थप्रकाश में लिखा तो क्या स्वामीजी ने कुरानशरीफ में ग्रहण होने के लिये लिखा इस स्थान में हम इतनाही कहेंगे कि यातो गुरुही भूलगया या चेला ही भूलता है जो दोनों के लेख में विरोध आया पण्डित तुलसीरामजी भी अजब सभ्य हैं कि जिनको ईश्वर का नाम "राम" अशुद्ध जान पड़ता है और पृथिवी राहु केतु शनिश्चर आदि ईश्वर के नाम सिद्ध प्रतीत होते हैं ।

पं० तुलसीराम ने कृष्ण नाम पर लिखा है कि मिश्र जी तो उसको व्याकरण सिद्ध करके नहीं बतलाते और क्यों साहब "कृषिर्भूवाचकः" आदि जो मिश्रजी ने कारका दी उसका आपने क्या उत्तर दिया जरा कोई बतलावे तो क्या उत्तर है ।

जिसका वादि उत्तर नहीं देता वह मान्य समझा जाता है जब आपने कारका मानली तब व्याकरण लिखें या न लिखें और यदि कहो कि नहीं मानी

तो फिर उसका खंडन क्यों नहीं लिखा और यदि आप व्याकरण से मानलें तो व्याकरण हम देते हैं "कर्षतिभक्तानिति कृष्णः" ईश्वर भक्तों को पापों से खैंच कर मोक्ष को पहुँचाता है इससे ईश्वर का नाम कृष्ण है।

मिश्रजो ने यह लिखा था कि स्वामी दयानन्द विष्णुसहस्रनाम आदि से ईश्वर के नाम ले लेते यह सौ नाम लिखकर नई चाल दिखलाई है इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि बस रहने दीजिये उनमें तो ईश्वर का नाम "चोर जार शिखामणिः" भी है पं० तुलसीरामजी के लेख पर हँसी आती है यथा तुलसीराम को यह मालूम नहीं कि आर्याभिविनय में "मानोवधीरिन्द्रमा' मंत्र ४९ के अर्थ में स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है कि हे ईश्वर हमारे भोगों को न तो तू चोर और न और से चुरवा स्वामीजी के इस लेख से मालूम होता है कि ईश्वर एकलाही चोरी नहीं करता बल्कि एक गिरोह और भी साथ में ऐसा रखता है कि जब ईश्वर को समय न मिले तो उससे कार्य करवा लेता है जब कि आर्यसमाज के मत में ईश्वर रोटी दाल कपड़े तक नहीं छोड़ता जब कि इस ईश्वर के मारे आर्यसमाज के नाक में दम आगया है जब कि ईश्वर को आर्यसमाज के जन्मदाता दयानन्द ही चोर बतलाते हैं जब कि आर्यसमाजही ईश्वर को चोर मानती है फिर यदि कोई दूसरा मनुष्य ईश्वर को चोर मानले तो उस पर कटाक्ष कैसा यदि आप कहें कि नहीं वह तो केवल प्रार्थना है हमारे भोगों को मत चुरा यह प्रार्थना उसी दशा में हो सकती है जब कि वह चोरी करता है और जो चोरी नहीं करता उस से यह प्रार्थना कभी हो नहीं सकती कि तू हमारी चोरी न करना यदि तुलसीराम यह कहें कि तुम भी तो ईश्वर को चोर मानते हो फिर स्वामी दयानन्द के इस लेख पर कटाक्ष क्यों करते हो इसके ऊपर हमारा यह उत्तर है निःसन्देह हम ईश्वर को चोर मानते हैं किन्तु हम उसको ऐसा चोर नहीं मानते कि वह हमारे भोग के पदार्थही चुरा लेजाता है किन्तु हम उसको जैसा चोर मानते हैं उसको भी देखिये—

अकिंचनीकृत्यपदाश्रितंयः
करोतिभिक्षुंपथिगेहहीनम्।

केनाऽप्यहोभीषणचौरईदृग्
दृष्टःश्रुतो वा नयमाकदापि ॥ १ ॥

अर्थ जो मनुष्य संसारसुख पर लात मार संसारी भोगों को शत्रु समझ परमात्मा के चरणार्विन्द में जाकर गिरता है परमात्मा उसको घरहीन मार्ग का भिखारी बनादेते हैं यह एक भयंकर चोर है ऐसा चोर न तो हमने कभी आज तक देखा और न सुना ।

कहिये हमारे यहां तो संसारी विषय को छुड़ाने का चोरही ईश्वर को माना है न कि रोटी ओर दाल की हँडिया का चोर और इस बात को संसार के समस्तधर्म स्वीकार करते हैं कि जब तक ईश्वर मनुष्य के कर्मों को न चुरालें तब तक मोक्षही नहीं होती इसी को हमारे ग्रन्थों में कहा है कि "अनेकजन्मार्जितपापचौरं चौराग्रगण्यंपुरुषंनमामि" यह चोरी इल्जाम नहीं चोरी नहीं किन्तु भक्त के पाप के नाश को चोरी की उपमा दी है यदि यह भाव पं० तुलसीराम के हृदय में होता तब तो इस पर लेखनीही न उठाते अस्तु हम यह सिद्ध करचुके कि ईश्वर संसारी पदार्थों का चुरानेवाला सनातनधर्म नहीं मानता किन्तु आर्यसमाज मानता है। अब आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं स्वामी तुम्हारे घरका सब भेद जानते हैं इसको खुलवा कर दूसरों से हँसी न कराइये इसके ऊपर हमारा उत्तर यह है कि स्वामी दयानन्द हमारे घरका ही हाल तो नहीं जानते इसी का तो हमको शोक है यदि स्वामी दयानन्द वेदों को जानते तो क्या 'अवतार" 'मूर्त्तिपूजा" मृतकपितरों के श्राद्ध आदि वैदिक विषयों का खंडन कर सकते थे जो विषय वेदों में ठसाठस भरे पड़े हैं क्या स्वामी दयानन्द स्मृति जानते थे यदि स्मृतियों को जानते होते तो क्या "साचेत्क्षतयोनिः" आदि श्लोकों के अंडबंड अर्थ करके विधवाविवाहका रेजूलेशन पास करसकते जिसका निषेध मनुके बीसियों श्लोक कहरहे हैं मनुका पंचमअध्याय देखिये क्या स्वामी दयानन्द दर्शन भी जानते थे कोई भी दर्शन वाला जीव का मोक्ष से लौटना मानता है क्या स्वामीजी अंग भी जानते थे क्या उन्हों ने व्याकरण के जोर से ही वेदभाष्य में नर (बकरे) के घी, दूध की आज्ञा दी है क्या स्वामीजी इतिहास जानते थे कोईभी इतिहास जानने वाला बाल्मीकोय

रामायण और महाभारत को ईश्वर प्रणीत कह सकता है जिसको दयानन्द ने शोलापूर के विज्ञापन में छपवाया है क्या स्वामीजी पुराण जानते थे क्या पुराण जान करही "रथेनवायुवेगेन जगामगोकुलंप्रति" लिखा है जिसको समाज ने अशुद्ध समझ टुकड़े किये किन्तु अबभी अशुद्धही रहा यदि इसीको विस्तार से लिखाजावे तो एक पुस्तक टाड राजस्थान के बराबर बनकर तैयार हो किन्तु माननेवाले को इतनाही बहुत है और दूसरे हँसे क्या आपने सनातनधर्म की पुस्तकों को स्वामी दयानन्द का लेख समझा है यह बात तो स्वामी दयानन्द के ही लेख में है जरा पेशावर का फैसला पढ़िये पढ़तेही मालूम होजावेगा कि सत्यार्थप्रकाश धार्मिक पुस्तक नहीं किन्तु व्यभिचार फैलानेवाली पुस्तक है दूसरे स्वामी दयानन्द ब्राह्मण भाग को वेद नहीं मानते थे इस पर राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द से लेखक शास्त्रार्थ चला जिसमें बराबर राजासाहब की ओर से सभ्यता परिपूर्ण पंडिताई से भरे दिव्य लेख जातेथे और स्वामीजी की ओर से बिल्कुल बैठकबाजी के गाळीभरे युक्ति और पण्डिताई की चर्चा से रहित लेख जाते थे इस विषय को क्रमशः जिसे पढ़ना हो वह राजासाहब का छपवाया निवेदन नामक ग्रन्थ मँगवाले निःसन्देह राजा शिवप्रसाद साहब के आगे दयानन्दजी को अवाक् होना पड़ा था और ब्राह्मणभाग के वेद न मानने से हमारे देशीही क्या फ्रांस अमेरिका इङ्गलैण्ड आदि के निवासी विमतावलम्बी विद्वान् भी इनको डफोलशंख समझते थे राजासाहब ने दूसरे निवेदन के पृ० ४ पं० ६ में लिखा है "फिरंगिस्तान के विद्वज्जनमण्डलीभूषण काशिराज स्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबो साहब बहादुर को दिखलाया बहुत अचरज में आये और कहनेलगे कि हम तो स्वामीजी महाराज को बड़ा पण्डित जानतेथे पर अब उनके मनुष्य होनेमें भी सन्देह होता है" राजासाहब ने अपने ग्रन्थ पर टीबो साहबकी एक चिट्ठी भी छापी है।

*वह चिट्ठी यह है :—"The question at issue between Raja Sivaprasad and Dayanand is the authoritativeness of the several parts of what is cammonly comprised under the name "Veda." Dayanand Sarasvati rejects the Brahmans and Upnishads (with one exception) and acknowledges the authority of the Sanhitas only. As this procedure is not

in agreement with the religious belief of the Hindus of the present day as well as of past ages of which we have records, Dayanand Sarasvati is bound to produce convicting poorfs for the validity of the distinction he makes. He mentions that the Sanhitas are "ईश्वरोक्त," while the Brahmans and Upnishads are nearly "जीवोक्त" but how does he prove this assertion? (For as it stands it cannot be called anything but a mere assertion.) The assertion of Sanhitas being स्वतः प्रमाण while the Brahmans and Upnishads are merley परतः प्रमाण can likewise not be admitted before it is supported by arguments stronger than those which Dayanand Sarasvati has brought forward up to the present. Raja Sivaprasad is right to ask "why should not both the स्वतः प्रमाण if one is so?" or again "why should not both be परतः प्रमाण if one is so?" And this reasoning could certainly not be employed by any one for proving that other non-vedic books as well are to be considered equal to the Veda; for the Veda alone (including Brahmans and Upnishads) enjoys the privilege of having since immemorial times been acknowledged by Hindus as sacred and revealed books.

With regard to the passage quoted by Dayanand Sarasvati from the Satapatha Brahmana (Brihadaranyak Upnishad) it must be admitted that the objection of Raja Sivaprasad is well founded; if one part of the passage is authoritative, the other part is so likewise. The assertation whether the whole passage is a वाक्य or a वाक्य समूह is wholly irrelevant to the point at issue.

Dayanand Sarasvati has certainly no right to declare the passage from Katyayana according to which the Veda consists of Mantra and Brahmana an interpolation. Acting in this way any body might declare any passage contrary to this preconceived opinions an interpolation.

Dayanand Sarasvati rejects the authority of the Brahmans. How then does he prepare to deal with Brahmana portions of the Taittiriya Sanhita, which in character nowise differ from other Brahmans like the Satapatha, Panchavinsa, &c., and on the other hand does he reject all the mantras contained in the Taittiriya Brahmana? G. THIBAUT.

घृणित लेख तो स्वामी दयानन्दने ही लिखने आरम्भ किये हैं हिन्दुओं के ग्रन्थ तो वे ग्रन्थ हैं कि जिन पर दूसरे हँसी नहीं करते किन्तु मुक्तकण्ठ होकर उनकी प्रशंसा करते हैं आर्यसमाज के ही उर्दू अखबार लाहौर में ऐसे कितने ही लेख निकल चुके जिनमें यह दिखलाया गया है कि अमुक पादरी लिखता है कि मनुष्य को सच्चरित्र बनने के लिये यदि संसार में कोई पुस्तक है तो वाल्मीकीय रामायण या महाभारत है जिन ग्रन्थों की दूसरे मनुष्य प्रशंसा करते हैं उनपर हँसी करना यह लेख कितना सार रखता है और इस लेख के माननेवाले आर्यसमाजियों में कितनी विचारबुद्धि है इसका निर्णय पबलिक पर छोड़ता हूँ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि हम और स्वामी यदि आपकी भांति करें तो वही हालत हो जैसे "स्वर्ग में सब्जेक्ट कुमेटी" स्वर्ग में सब्जेक्ट कुमेटी बनाकर क्या बहादुरी की वेद में लिखे अवतारों को नीचा दिखलाते हुये वेदों से घृणा कराई है वेदों से घृणा कराना यह बहादुरी है या भूल इसको आप विचारलें यदि कहो कि वेद में तो अवतार ही नहीं वेद में अवतार नहीं इस बात को तो वही मानेगा जिसने कभी वेद न देखा हो "स्वर्गमें सब्जेक्ट कुमेटी" में वाराह अवतार पर दिल्लगी की है वाराह अवतार मिश्र जी ने वेद के मन्त्रों में दिखलाकर तिमिरभास्कर में लिखा है जिसका उत्तर आपने भास्करप्रकाश में आजतक नहीं दिया और न किसी दूसरेही समाजी ने दिया है वाराह अवतार वेद से सिद्ध है वाराह अवतारवाले मन्त्रका अर्थ आजतक नहीं बदलसका जब वाराह अवतार वेद में है तब वेद में अवतार नहीं इतना कह देने से काम नहीं चलता फिर "सब्जेक्ट कुमेटी" में वाराह दिव्य अवतार के भोजन की कल्पना वेद पुराण दोनों के विरुद्ध की गई है फिर क्या सचही स्वर्ग में अवतारों की सभा लगी थी स्वर्ग में अवतारों की सभा लगना भी किसी

ग्रन्थ में लिखा है किसी में भी नहीं जैसे आर्यसमाज की तरफ से "स्वर्ग में सब्जेक्ट कमेटी" मनगढ़न्त लिखीगई है उसका उत्तर वैसाही किसी सनातन धर्मी की तरफ से "अन्तरिक्ष में निराकार का दर्बार" भी लिखागया है अब इन धमकियों से काम नहीं चलेगा ठीक २ लिखकर उत्तर दीजिये जिसको पढ़ कर तोष हो ऐसा उत्तर शास्त्र से अनभिज्ञ पुरुष भी दे सकता है।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी पं० ज्वालाप्रसादजी से कहते हैं कि "अथ" वा "ओ३म्" शब्द वेद के विरुद्ध सिद्ध करें पं० ज्वालाप्रसादजी पीछे दिखला चुके हैं कि चारों वेदों में "ओ३म्" "अथ" आदि से मंगलाचरण नहीं किया अतएव "ओ३म्" "अथ" आदि से मंगलाचरण करना वेद विरुद्ध है अब इसमें सिद्ध क्या किया जावे इसका भी तो पता लगे हां यहां पर पं० तुलसीराम को यह सिद्ध करना था कि अमुक वेदसंहिता में "ओ३म्" या "अथ" आदि से मंगलाचरण किया है यह सिद्ध करना काम पं० तुलसीराम का था सो यह तो पं० तुलसीराम या और कोई आर्यसमाजी त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं करसकता कि किसी वेद में "ओ३म्" या "अथ" से मंगलाचरण किया हो जब ऐसा कहीं मिलता ही नहीं तब फिर पं० तुलसीराम उत्तर ही क्या देंगे हार कर यही लिख दिया कि पं० ज्वालाप्रसाद सिद्ध करें कि "ओ३म्" "अथ" आदि से मंगलाचरण करना वेदविरुद्ध है फिर पं० तुलसीरामजी "ओ३म् खम्ब्रह्म" यजु० अ० ४० का यह मन्त्र भी लिखते हैं यहां पर पूछना यह है कि जब पं० ज्वालाप्रसादजी ने सिद्धही नहीं किया तो फिर आपने "ओ३म् खम्ब्रह्म" उत्तर क्यों लिखा आपका उत्तर लिखनाही सिद्ध करता है कि पं० ज्वालाप्रसाद सिद्ध कर चुके जब पं० ज्वालाप्रसाद सिद्ध कर चुके और पं० तुलसीराम उसका उत्तर देचुके फिरभी यह कहना कि तुम सिद्ध करो यह क्या बात है इस गूढ़ अभिप्राय को साफ़ क्यों न करदिया जावे ताकि पाठक समझलें। यदि आप यह कहें कि जब पं० ज्वालाप्रसादजी सिद्ध कर चुके और पं० तुलसीरामजी उत्तर भी देचुके तब तो झगड़ा समाप्त ही होगया फिर आप इसको क्यों बढ़ा रहे हैं इसका उत्तर यह है कि पं० तुलसीराम ने उत्तर देने का साहस भी किया और "ओंखम्ब्रह्म" भी लिखा तथापि उत्तर नहीं हुआ पं० ज्वालाप्रसादजी का कथन तो यह है "ओ३म्" वा "अथ" शब्द से वेद ने

कहीं भी मंगलाचरण नहीं किया इसका उत्तर तो यह था पं० तुलसीराम दिखलाते कि यह प्रमाण है यहां पर वेद के आरम्भ में "ओ३म्" या "अथ" से मंगलाचरण किया यह तो कुछ दिखलाया नहीं केवल "ओंखम्ब्रह्म" लिख दिया क्यों साहब यह "ओंखम्ब्रह्म" कौन वेद के आरम्भ में है किसी के नहीं जब यह किसी के भी आरम्भ में मंगलाचरण के स्थान में नहीं फिर इसके लिखने से क्या प्रयोजन निकला समस्त वेदों को छोड़कर केवल यजुर्वेद ही दिखलाया फिर उसका भी न प्रथमाध्याय और न द्वितीय कौन दिखलाया चालीसवां क्या चालीसवें अध्याय तक वेद में मंगलाचरण ही नहीं यदि ऐसा है तब तो मानना पड़ेगा कि वेद में मंगलाचरण ही नहीं है पं० तुलसीरामजी भी गुप्त २ मंगलाचरण का खण्डन कर रहे हैं यदि पं० तुलसीराम यह कहैं कि आरम्भ में न सही तो अन्त्य में सही प्रथम तो यह विचार करना होगा कि स्वामी दयानन्द ने "अथ" वा "ओ३म्" शब्द से मंगलाचरण कहां पर किया है कि जिस पर पं० ज्वालाप्रसाद जी आक्षेप करते हैं आरम्भ में या अन्त्य में "ॐसच्चिदानन्देश्वरायनमोनमः" यह तो भूमिका के आरम्भ में लिखा और "अथ सत्यार्थप्रकाशः" यह सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ में लिखा स्वामीदयानन्द ने अन्त्य में "अथ" वा "ओ३म्" से कहीं पर भी मंगलाचरण नहीं किया जब कि स्वामीदयानन्द समाप्ति में इन शब्दों से मंगलाचरण ही नहीं करते फिर पं० तुलसीराम का अन्त्य की तरफ खैंच लेजाना क्या कभी तोषदायक हो सकता है इसको छोड़कर यदि हम यह भी मानलें कि पं० तुलसीरामजी किसी भी वेद के आरम्भ में "अथ" या "ओ३म्" से मंगलाचरण नहीं दिखला सकते किन्तु अन्त्य में तो "ओ३म् खम्ब्रह्म" दिखलाते हैं पं० तुलसीराम ऐसा भी नहीं कर सकते "ओ३म्खम्ब्रह्म" इसके अन्त्य में न तो "ओ३म्" ही है और न अथही है किन्तु यहां पर तो अन्त्य में "ह्म" है जो कि "अथ" "ओ३म्" दोनों सेही भिन्न है यदि कहो कि पं० तुलसीरामजी ने वेदमंत्र में "ओ३म" तो दिखला दिया इसका उत्तर यह है कि पं० ज्वालाप्रसादजी का यह प्रश्नही नहीं कि वेद में सब अक्षर नहीं या वेद में थोड़े अक्षरों से काम चल जाता है या वेद में ओ३म् ही नहीं किन्तु उनका कथन तो यह है कि वेद में "ओ३म्" वा 'अथ" शब्द से मंगलाचरण नहीं समाज "ओ३म्" "अथ" से मंगलाचरण दिखलावें यदि नहीं है तो फिर स्वामी दयानन्द के "ओ३म्" "अथ" शब्द से

किये मंगलाचरण को वेदविरुद्ध समझ कर इसका खण्डन करें विरोध में या तो समाज वेदकी ही परिपाटी माने या वेदविरुद्ध "अथ" "ओ३म्" से मंगलाचरणकी ही परिपाटी को मानलें किन्तु परस्पर विरोधी दोनों परिपाटियों का मानना निर्णय नहीं कहा जासकता देखिये अब समाज किस परिपाटी को छोड़ती है और किसको मण्डन करती है।

——:o:——

ओंकार प्रकरणम्।

सत्यार्थप्रकाश पृ० १ पं० १०

(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इस में जो अ उ और म तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आजाते हैं जैसे अकार से विराट् अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ वायु और तेजसादि। मकारसे ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है उसका ऐसाही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है।

तिमिरभास्कर पृ० ७ पं० २६

स्वामीजी की वेदज्ञता तो इस ओंकार के अर्थ निरूपणसे ही सज्जन पुरुष जानलेंगे कि प्रथम ग्रास में ही मक्षिकापात हुआ अब देखना चाहिये कि प्रणव की व्याख्या अनन्तप्रकार से वेदादि शास्त्रों में प्रसिद्ध है परन्तु स्वामी ने अपने अर्थ की पुष्टि में एक भी प्रमाण नहीं लिखा भला वह कौनसा मन्त्र है जिसमें स्वामीजी के लिखे उक्त अर्थ लिखे हैं ओंकारके ऐसे अर्थ का प्रतिपादक मंत्र न ब्राह्मण न शास्त्र न पुराण में एक भी नहीं मिलने का ऋग्वेद में इस प्रकार कथन है "ऋचोअक्षरेपरमेव्योमन्यस्मिन्देवाअधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्नवेदकिमृचाकरिष्यति यइत्तद्विदुस्तइमे समासते॥ ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० ३९" इति विदुषउपदिशति कतमत्तदेतदक्षरमोमित्येषावागिति शाकपूणिर्ऋचोह्यक्षरे परमेव्यवनेधी-

यन्ते नानादैवतेषुच मन्त्रेष्वेतद्धवाएतदक्षरं यत्सर्वांत्रयींविद्यां प्रतिप्रतीति च ब्राह्मणम् निरुक्त अ० १३ पा० १ खं० १० परिशिष्ट प्र० भाष्यम् कतमततदक्षरम् इति ओ३म् इत्येषा वाक् इति शाकपूर्णिः अभिप्रायः ओंकारमृतेनह्यर्चयन्ति तस्याक्षरे परमे व्योमन् व्योम विविधमस्मिञ्छब्दजातमोतमिति व्योमतस्मिन् तिसृषु मात्रासु अकारोकारमकारलक्षणासूपशान्तासु यदव शिष्यते तदक्षरं परमं व्योम शब्द सामान्यमभिव्यक्तमित्यभिप्रायः ॥ यस्मिन्देवा अधिनिषण्णाः सर्वे ऋगादिषु ये देवाः ते मंत्रद्वारेणाक्षरे निषण्णाः तस्यशब्दकारणत्वात् अथवाप्रथमायां मात्रायां पृथिवीः अग्निः ऋग्वेदः पृथिवी लोक निवासिन इत्येवं द्वितीयायां मात्रायां अन्तरिक्षम् वायुः यजूँसि तल्लोकनिवासिनोजना इति तृतीयायां मात्रायां द्यौः आदित्यः सामानि तल्लोक निवासिनोजनाइति विज्ञायतेहि ओंकार एवेदं सर्वम् इति यस्तन्नवेद अनयाविभूत्याक्षरम् किमसौ ऋचा ऋगादिभिर्मंत्रैः करिष्यति यस्तन्नाक्षरात्मनापश्यति। यइत्तद्विदुस्तइमे समासते इति विदुषउपदिशन्ति तेहि तत्परिज्ञानात्ताद्भाव्यमुपगताःप्रणत्र विग्रहमात्मान मनुप्रविश्य समीकृतानिर्वान्ति शान्तार्चिष इवानला इति "पद-ऋचः अक्षरे परमेव्योमन् यस्मिन् देवाः अधिविश्वे निषेदुः यः तत् न वेद किम् ऋचाकरिष्यति ये इतत्त् विदुः ते इमे समासते ॥ ऋ० ॥ (भावार्थ) इस मन्त्रका व्याख्यान ओंकारपरत्व तथा आदित्यपरत्व तथा आत्मतत्व परता में है तिसमें से प्रथम शाकपूणिनामक निरुक्तकारके मत से ओंकार परता निर्णय करते हैं (प्रश्न) जिस परमव्योमसंज्ञक अक्षर में देवादि स्थित हैं सो अक्षर कौन है (उत्तर) ॐ यह वाक् नाम शब्द परम उत्कृष्ट (व्योमन्) नाम सर्वकी रक्षा करनेवाला जो ॐकारहै तिसमेंही सम्पूर्ण ऋग्वेदादि मन्त्र अध्ययन किये जाते हैं और नाना जो देवता हैं वे सर्वमंत्रों में स्थित हैं और मंत्रों में कारण होने से यह अक्षर व्याप्त है क्योंकि सर्ववेदत्रयी विद्या के

प्रति यह अक्षर व्याप्त है ऐसे ब्राह्मण भी प्रतिपादन करता है भाव यह है ओंकार बिना ऋगादि मंत्रों का उच्चारण नहीं होता इससे व्योमसंज्ञक जो अक्षर हैं तिसमें नानाविधि शब्द समूह स्थित हैं (प्रश्न) मंत्र तथा ओंकार शब्दरूप है इससे यह दोनों आकाश में स्थित हैं यावत् शब्दसमूह ओंकार में स्थित कैसे कहते हो (उत्तर) ओंकार नाम यहां अकारादि मात्रा के शान्त होते जो परिशेष रहता है शब्द सामान्य व्योमनामक अक्षर उसका है इससे तिस अक्षर शब्द सामान्य नादरूप ओंकार में यावत्मंत्र स्थित हैं और जिसमें सर्वदेवता स्थित हैं क्योंकि मंत्रों में देवता स्थित हैं और मंत्र पूर्वोक्त नादनामक अक्षर में स्थित हैं इससे मंत्र द्वारा सब देवता भी अक्षर में स्थित हैं अथवा प्रथम मात्रा में पृथ्वी लोक अग्नि ऋग्वेद और पृथ्वी लोक निवासीजन स्थित हैं और द्वितीय मात्रा में अन्तरिक्ष वायु यजुर्मंत्र औ अंतरिक्ष लोक निवासीजन स्थित हैं और तृतीयमात्रा में द्युलोक आदित्य साममंत्र और स्वर्ग लोक निवासीजन स्थित हैं इसी कारण मांडूक्य उपनिषद् में (ओंकार एवेदं सर्वम्) यह कहा है जो इस विभूति सहित अक्षर को नहीं जानता सो ऋगादि मंत्रों से क्या करेगा अर्थात् बिना ओंकार के जाने और उसके अर्थ जाने उसे वेद के मंत्र फल नहीं देंगे और जो पुरुष उक्तरूप नाद विभूति सहित अक्षर को जानते हैं वे पुरुष (समासते) प्रणवज्ञान से अक्षरभाव को प्राप्त हुये अपने आत्मा को प्रणवरूप निश्चय करके प्रणव में प्रविष्ट होकर समता को प्राप्त हो शान्त ज्वाल अग्निवत् (निर्वान्ति नाम निर्वाणपदं मोक्षं प्राप्नुवन्ति) निर्वाण को प्राप्त होते हैं अर्थात् मुक्त होते हैं आदित्य पक्षमें यह अर्थ है कि जिस व्योमरूप परम अक्षररूप आदित्य में सब देवता स्थित हैं मंत्र द्वारा तिस आदित्य को जो नहीं जानते वे ऋगादि मंत्रों को क्या करेंगे वे इत् नाम एव तिस आदित्य को जानते हैं वे पुरुषही

विद्वज्जन भूमि में सुखपूर्वक रोगादि रहित भोग सम्पन्न चिर-काल जीवते हैं मांडूक्य उपनिषद् में इस प्रकार लिखा है। "ॐमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्य दिति सर्वमोंकार एव यच्चान्य त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव॥ मां० मं० १" (अर्थ) ओं इस प्रकार का यह अक्षर यह सर्व है ऐसे कहते हैं जो यह विषय रूप अर्थ का समूह है तिसको नाम से अभिन्न होने से और नाम को ओंकार से अभिन्न होने से ओंकारही यह सर्व है और जो परब्रह्म नाम के कथनरूप उपाय पूर्वकही जानने योग्य है सो ओंकारही है तिस इस पर और अपर ब्रह्मरूप ओं इस प्रकार के अक्षर का ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय होने से ब्रह्मके समीप होने से विस्पष्ट कथनरूप प्रसङ्ग विषे प्राप्त जो उपव्याख्यान है सो जानने के योग्य हैं उक्तन्याय से भूत भवि-ष्यत और वर्त्तमान इन तीनों कालों से परिच्छेद करने को योग्य जो वस्तु है सो भी यह ओंकार ही है और अन्य जो तीन काल से भिन्न कार्यरूप लिङ्ग से जानने योग्य और काल से परिच्छेद करने को अयोग्य अव्याकृत आदिक है सो भी ओंकार ही है यहां नाम (वाचक) और नामी वाच्य की एकता के हुए भी नामकी प्रधा-नता से यह निर्देश किया है "सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोंकारोधिमात्रम् पादामात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति" जो वाच्य की प्रधानतावाला ॐकार चारों पादवाला आत्मा है ऐसा पूर्व व्याख्यान किया है यथा (सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोय मात्मा चतुष्पात्) सर्व (कारण और कार्य) ही यह ब्रह्म है सर्व जो ॐकारमात्र है ऐसे श्रुति ने कहा है सो यह ब्रह्म है यह आत्मा ब्रह्म है सो यह ॐकारका (वाच्य) और पर (अधिष्ठान) और अपर (प्रत्यगात्मा) रूप होने से स्थित हुआ आत्मा चार पादवाला है सो यह आत्मा अध्यक्ष रहै वाचक की प्रधानता से अक्षर को आश्रय करके वर्ण किया है इससे अध्यक्षर कहा है फिर वह अक्षर क्या है इस पर कहते हैं सो अक्षर ॐकार है सो यह

ॐकार (पाद) चरणों से विभाग को पाया हुआ अधिमात्र है जिस कारण मात्रा को आश्रय करके वर्त्तता है इससे अधिमात्र कहते हैं (प्रश्न) आत्माही पादों से विभाग को प्राप्त होता है और मात्रा को आश्रय करके ॐकार स्थित होता है इस कारण पाद से विभागको प्राप्तहुए ॐकार का अधिमात्रपना कैसे है उसपर कहते हैं आत्मा के जो पाद हैं वे ॐकार की मात्रा हैं और ओंकार की जो मात्रा हैं वे आत्मा के पाद हैं इससे पाद और मात्रा की एकता से यह कथन अविरुद्ध है कौनसी वे ॐकारकी मात्रा हैं उस पर कहते हैं अकार उकार मकार यह तीन ॐकार की मात्रा हैं "जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्वाद्वाऽऽप्नोतिहवै सर्वान् कामानादिश्चभवति य एवं वेद ॥ मांडूक्य" जो जागरित स्थानवाला वैश्वानर है सो ॐकारकी अकाररूप प्रथम मात्रा है किस तुल्यता से दोनों की एकता है इस पर कहते हैं व्याप्ति सेवा आदिवाले होने से जैसे अकार से सर्व प्राणी व्याप्तहैं तैसे वैश्वानर से जगत् व्याप्त है तिस प्रसिद्ध इस वैश्वानररूप आत्माका मस्तक ही स्वर्ग है इत्यादि श्रुतियों के वाक्य से वाच्य वाचककी एकता को हम कहते हैं जिसकी आदि है सो आदिवाला कहाता है तैसे ही आदिवाला अकार नाम अक्षर है तैसे ही आदि वाला वैश्वानर है इस कारण तुल्यता होने से वैश्वानरको अकार-पना है अब इनकी एकता के ज्ञाता को फल कहते हैं जो ऐसे उक्त प्रकार की वैश्वानर और अकार की एकताको जानता है सो निश्चय ही सब भोगों को पाता है और वही बड़े पुरुषों के बीच में प्रथम होता है "स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति हवै ज्ञान सन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥ मांडूक्य" जो स्वप्नस्थानवाला तैजस है सो ॐकारकी उकाररूप द्वितीय मात्रा है दोनों की एकता कैसे है सो कहते हैं उत्कर्ष से वा उभय (द्वितीय) रूप होने से जैसे अकार से उकार पाठके क्रमसे उत्कृष्ट है तैसे स्थूल उपाधिवाले विश्वसे

सूक्ष्म उपाधिवाला तैजस उत्कृष्ट है तिस उत्कर्षसे इनकी एकता है वा जैसे अकार और मकार के मध्य विषे स्थित उकार है तैसे विश्व और प्राज्ञ के मध्य में तैजस है इससे तिनकी उभयरूपता की तुल्यता एकता है अब तिनकी एकता के ज्ञाता को जो फल होता है सो कहते हैं जो ऐसे जानता है सो ज्ञानकी सन्तति को बढ़ाता है और तुल्य होता है मित्र के पक्ष की नाईं शत्रु के पक्ष के मध्य भी द्वेष करने को अयोग्य होता है और इसके कुलमें अब्रह्मवेत्ता नहीं होते हैं "सुषुप्तस्थानः प्राज्ञोमकारस्तृतीयामात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोतिहवाइदं सर्व्वमपीतिश्चभवति य एवंवेद मांडूक्य" ॥ जो सुषुप्ति स्थानवाला प्राज्ञ है सो ॐकार की मकाररूप तृतीय मात्रा है इस तुल्यता से दोनों की एकता है उनमें कहते हैं कि परिमाण से वा एकता से यहां दोनों की समानता है प्रस्थ (धान्य परिमाण के पात्र) से यव धान्य के परिमाण (माप) की नाईं जैसे लय और उत्पत्ति में प्रवेश और निकलने से प्राज्ञ से विश्व और तैजस परिमाण किये की नाईं होते हैं तैसे अकार और उकार यह दोनों अक्षर ॐकार की समाप्ति में और फिर उच्चारण विषे मकार में प्रवेश करके निकलते हुए की समान होते हैं इससे वे मकार से परिमाण किये की समान होते हैं इससे इन दोनों की तुल्यता से एकता है अथवा जैसे ॐकार के उच्चारण किये मकार रूप अन्त के अक्षर में अकार और उकार यह दोनों एक रूप हुए की समान होते हैं इसी प्रकार विश्व और तैजस सुषुप्ति काल में प्राज्ञ विषे एकरूप हुए की नाईं होते हैं इससे तुल्य होने से प्राज्ञ और मकार की एकता है अब इनकी एकता के ज्ञाता को फल कहते हैं जो ऐसे जानता है सो निश्चय कर इस सर्व जगत् को यथार्थ जानता है और जगत का कारण रूप होता है यहां बीच के (अवांतर) फलका कथन मुख्य साधन की स्तुति अर्थ है "अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवंवेद" मांडूक्य ॥ जिसकी मात्रा नहीं है

ऐसा जो ॐकार सो अमात्र है और चतुर्थ अर्थात् तुरीयरूप हुआ केवल आत्मा ही है और वाच्यवाचकरूप वाणी और मनको मूल ज्ञान के क्षय से क्षीण होने से व्यवहार करने को अयोग्य है और प्रपंच के उपशमवाला है और शिव (कल्याणरूप) है और अद्वैत है ऐसे उक्त प्रकार के ज्ञानवाले पुरुष से उच्चारण किया हुआ ॐकार तीन मात्रावाला और तीन पादवाला आत्माही है जो ऐसे जानता है सो अपने ही आत्मा से अपने परमार्थरूप आत्मामें प्रवेश करता है अर्थात् सुषुप्ति नामक तीसरे स्थानरूप बीज भाव को दग्ध करके परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता पुरुषों के आत्मा के अर्थ प्रवेश पाया हुआ फिर जन्म नहीं पाता काहे से कि तुरीय को अबीजरूप होने से जैसे रज्जू और सर्प के विवेक के होने से रस्सीके विषे प्रवेश को पाया सर्प फिर तिन विवेकी पुरुषों को भ्रांति ज्ञानके संस्कार से पूर्व की समान नहीं होता तैसे यहां भी जानना साधक भावको प्राप्त हुए और सन्मार्ग में वर्त्तनेवाले मात्रा और पादों को निश्चित तुल्यता जाननेवाले संन्यासीजनों को तो यथार्थ उपासना किया हुआ ॐकार ब्रह्म की प्राप्ति के अर्थ आश्रय होता ही है इस प्रकार स्वामी शंकराचार्यजी ने मांडूक्य उपनिषद् पर ॐकार का भाष्य किया है इसी प्रकार और भी उपनिषदों में वर्णन है यह केवल दिग्दर्शनमात्र है परन्तु स्वामी दयानन्दजी का किया अर्थ किसी भी ग्रन्थ के अनुसार नहीं है इस कारण सत्यार्थप्रकाश में यह ओंकार का अर्थ मिथ्या ही जानना बुद्धिमानों को उचित है कि दयानन्द वा उनके अनुयायियों के वाग्जाल से सावधान रहैं।

भास्करप्रकाश पृ० १४ पं० २७—

हम अन्य प्रमाण के लिखने की आवश्यकता नहीं समझते किन्तु जो मंत्र आपने प्रमाण दिया है और उसका निरुक्त परिशिष्ट तथा भाष्य लिखा है वही स्वामीजी के अर्थों की पुष्टि करता है आपने तो केवल मंत्र निरुक्त भाष्य लिख दिया परन्तु यह न विचारा कि यह तो सब स्वामीजी के अर्थ की पुष्टि

करता है यथा (मंत्र) ऋचोअक्षरेपरमेव्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः यस्तन्न वेद किं मृचाकरिष्यति य इत्तद्विदुस्तइमे समासते (ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० ३९ (निरुक्त परिशिष्ट) ऋचो अक्षरे परमेव्यवने यस्मिन्देवा अधिनिषण्णाः सर्वोयस्तन्न वेदकिंसऋचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्तइमे समासते इति विदुषिउपदिशति। कतमत्तदेतदक्षरमित्येषावागिति शाकपूणिर्ऋचश्चह्य-क्षरे परमेव्यवनेधीयन्ते नानादेवतेषु च मंत्रेषु। एतद्ध वा एतदक्षरं यत्सर्वां त्रयीं विद्यां प्रति प्रतीति च ब्राह्मणम्। निरु० अ० १३ खं० १० पं० ज्वाला-प्रसादजीने जहां से इस मंत्रका निरुक्त आरम्भ हुआ है वहां से कुछ छोड़कर "इति विदुषउपदिशति" यहां से ही लिखा है तथापि इससे उनका प्रयोजन सिद्ध न हुआ प्रत्युत स्वामी जीकाही तात्पर्य्य सिद्ध होता है (मंत्रका निरुक्तस्थ अर्थ) यद्यपि निरुक्तकारने इसका दूसरा अर्थ आगे सूर्य विषयक भी कियाहै परन्तु हम प्रथम जिस ओंकार विषयक अर्थ को निरुक्तकारने ब्राह्मण का प्रमाण देकर लिखाहै उसीको पाठकोंके अवलोकनार्थ लिखते हैं (ऋचः) ऋचायें (अक्षरेपरमेव्यवने) अविनाशी परमरक्षकमें (यस्मिन्सर्वेदेवाः) [अधि-निषण्णा] जिसमें सब दिव्यगुण स्थित हैं [उसी में स्थित हैं] (यस्तन्नवेद) जो उसको नहीं जानता (स ऋचा किं करिष्यति) वह ऋचा से क्या करेगा (य इत्तद्विदुस्तइमे समासते इति विदुष उपदिशति) "य इत्तद्वि०" इससे विद्वानों को उपदेश करता है कि (कतमत्तदेतदक्षरम्) कौनसा वह अक्षर (ओमित्योषा वागिति शाकपूणिः) शाकपूणि आचार्य उत्तर देते हैं कि "ओ३म्" यह वाणी है (ऋचश्यह्यक्षरे परमेव्यवनेधीयन्ते) और ऋचायें निश्चय अविनाशी परमरक्षक में धारित हैं (नाना देवतेषु च मंत्रेषु) अनेक [अग्न्यादि] देवतावाले मंत्रों में (एतद्धवाएतदक्षरम्) यही है वह यही अक्षर है (यत्सर्वांत्रयींविद्यां प्रतिप्रतीति ब्राह्मणम्) जो सम्पूर्ण त्रयी विद्या के प्रति (बराबर) हैं ऐसा ब्राह्मणमें लिखा है। ऊपरके लिखे निरुक्तके (नाना देवतेषु मंत्रेषु एतद्धवा०) अर्थात् अनेक देवतावाले मंत्रों में यही ओंकार अक्षरहै इससे स्पष्ट है कि वेद में जो "अग्निमीडेपुरोहितम्०" इत्यादि अग्निदैवत मंत्रहैं वा वायु आदि देवतावाले मंत्रहैं उनका मुख्य तात्पर्य अग्न्यादि पदों से ओंकारही है अर्थात् अग्न्यादि पदों से स्तुति प्रार्थनोपासना प्रकरणों

में वेद परमेश्वर ही को बोधित करता है। अब इस मंत्र और निरुक्त से इतना तो सिद्ध होहीगया कि वेदों में अग्न्यादि नाना देवता का तात्पर्य ओ३म् है इसलिये अग्न्यादि बहुत से अर्थ जो स्वामीजीने ओ३म् से लिये हैं वे युक्त हैं।

अब हम पाठकों को ध्यान दिलाते हैं कि द० ति० भा० पृ० ८ संस्कृत भाष्य पं० १२ में "अग्नि" पं० १३ में "वायु" और पं० १३-१४ में "आदित्यः" ये अर्थ स्वयं पं० ज्वालाप्रसाद लिखते हैं और भाषा पृष्ठ ६ पं० ६ में वही "अग्नि" पं० ७ में "वायुः" और पं० ८ में "आदित्य" शब्द ओंकार की व्याख्या में उपस्थित हैं तब सत्यार्थप्रकाश में लिखे अ उ म के अग्नि वायु आदित्य अर्थों में क्या भुस मिल गया और स्वामीजी ने जो अकार से विराट् अग्नि विश्वादि उकार से हिरण्यगर्भ वायु तैजसादि और मकार से ईश्वर आदित्य प्राज्ञादि अर्थ लिये हैं सो मांडूक्य उपनिषद् के निम्न लिखित वाक्यों मे स्पष्ट निकलते हैं यथा "जागरितस्थानोवैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्रा० ॥" जागरितस्थान=विराट। वैश्वानर=अग्नि अकार पहिली मात्रा "स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीय मात्रा० ॥" स्वप्नस्थान= हिरण्यगर्भ तैजस=तैजस उकार दूसरी मात्रा "सुषुप्तस्थानः=प्राज्ञो मकार स्तृतीयामात्रा०" सुषुप्तस्थान=ईश्वर। प्राज्ञ=प्राज्ञ मकार तीसरी मात्रा देखना चाहिये कि मांडूक्य के ऊपर लिखे वाक्यों में वैश्वानर तैजस और प्राज्ञ ये तीन अर्थ क्रम से अ उ म के वैसेही लिखे हैं जैसे स्वामीजी ने लिखा है और स्वयं पं० ज्वालाप्रसादजी ही जो ज़रा व्याख्या बढ़ा कर पांडित्य में गणना होने के लिये द० ति० भा० पृ० १० वा ११ में इन्हीं मांडूक्य वाक्यों का अर्थ कुछेक घपले से में मिला कर वही अग्नि तैजस और प्राज्ञ अर्थ करते हैं और करें कैसे ना मूल में वे शब्द उपस्थित हैं इस प्रकार यह ओ३म् का व्याख्यान स्वामीजीकृत और मांडूक्य तथा द० ति० भा० में एकसाही होने से वादी अपने आपही परास्त होता है हां एक बात शेष है यद्यपि वह बात सत्यार्थप्रकाश के खंडन मंडन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखती तथापि ओ३म् की चतुर्थ मात्रा जो अ उ म का अवसान है उस पर मांडूक्य का वाक्य और शंकर मतानुसार अर्थ करके पं० ज्वालाप्रसाद

जी ने जो कुछ लिखा है उससे पाठकों को अद्वैतवाद की झलक आवेगी जो अद्वैतवाद जीव ब्रह्म की एकता हमारी समझ में वेदों और उपनिषदों के विरुद्ध है अतः हम भी पाठकों के भ्रम निरासार्थ नीचे वह मांडूक्य वाक्य और उसका स्पष्ट अक्षरार्थ किये देते हैं यथा "अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य देव वेद य एवं वेद" (मांडूक्योपनि०) (अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः) बिना मात्रा चौथा [अवसान] किसी शब्द से व्यवहार में नहीं आसक्ता (प्रपञ्चोपशमः) उसमें प्रपञ्च जगत् का उपशम=लय है (शिवः) वह कल्याणमय है (अद्वैतः) वह अद्वितीय है अर्थात् उसके सदृश कोई नहीं (एवमोंकारः) इस प्रकार का ओ३म् है (यएवंवेद) जो ऐसे जानता है वह (आत्मैव आत्मनात्मानंसंविशति) आपही अपने स्वरूप से परमात्मा को संवेश करता है ब्रह्म को प्राप्त हो मुक्त हो जाता है बिना खैंचातानी के सीधा अक्षरार्थ यही है परन्तु केवल "अद्वैतः" के आते ही पं० ज्वालाप्रसादजी खिन्न गये अद्वैत शब्द का सुगम अर्थ सब कोई समझ सकता है कि "जिसके सदृश कोई न हो" यह तात्पर्य नहीं निकल सकता वा खैंचतान से निकलता है कि "उसके अतिरिक्त कुछ न हो" यह ओंकार की व्याख्या और द० ति० भा० के प्रथम समुल्लास का खंडन समाप्त हुआ ।

समीक्षा—मिश्रजी ने यह लिखा है कि स्वामी दयानन्दजी अकार से विराट् अग्नि आदिका ग्रहण बतलाते हैं इसमें कोई प्रमाण नहीं देते इस लेख में वास्तविक में पं० ज्वालाप्रसाद ने भी धोखाखाया जो प्रमाण मांगते हैं प्रमाणों की आवश्यकता तो सनातनधर्मियों को है जो बिना वेदशास्त्र के किसी भी पंडित के लेख को प्रमाण नहीं मानते समाज तो स्वामी के लेख को स्वतः प्रमाण मानती है फिर प्रमाण की क्या आवश्यकता है यदि पं० ज्वालाप्रसादजी कहें कि वेद में तो ऐसा नहीं वेद में ऐसा नहीं तो न सही स्वामी दयानन्दजी के विचार में तो है पं० ज्वालाप्रसादजी यह कहतेहैं स्वामीजीको "ओंकार" की व्याख्याही करनी नहीं आई इस लेखको देखकर तो पं० तुलसीरामजीको भी लेखनी उठानीही पड़ी पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं

"यस्मिन्देवा अधिनिषण्णाः" जिस ॐकार में समस्त देवता स्थित हैं यह ॐकारकी व्याख्या है भला अब पं० तुलसीरामजी क्यों मानेंगे अब तो पण्डित ज्वालाप्रसादजीने ॐकार का महत्वही बढ़ा दिया पं० तुलसीरामजी "देवाः" शब्द का अर्थ बदले देते हैं कि जिस ॐकार में "देवाः" दिव्यगुण हैं पं० तुलसीरामजी ने देवाका अर्थ तो दिव्यगुण किया और अधिनिषण्णाका अर्थ किया "हैं" क्या उत्तम अर्थ किये कि जिन अर्थोंको सृष्टिके आरम्भ से लेकर आजतक किसी ने भी नहीं जाना कोई मोलवी साहब एक बच्चे को पढ़ाता था कि "काफ लाम जबर कल, लामवावपेश लू" बोलो बेटा मौलाबख्श वहांपर कोई द्वितीय मनुष्य खड़ा था वह बोला कि इन हिज्जे करने पर कल्लू होता है या कि मौलाबख्श मोलवी ने उत्तर दिया कि कुछ जानते हो लिखे पढ़े हो कि वैसे ही कल्लू बतलाने लगे क्या इन हिज्जों से कभी कल्लू भी होसकता है यह तो मौलाबख्शही होता है जिस प्रकार यह मोलवी साहब "काफ लाम जबर कल, लाम वावपेश लू" को मौलाबख्श बतलाते हैं बस हूबहू इसी प्रकार पं० तुलसीरामजी "देवाः" का अर्थ दिव्यगुण और "अधिनिषण्णाः" का अर्थ "हैं" करते हैं यदि ऐसेही अर्थ होने लगे और "खबूजा" माने ऊँट कहने लगे तो कोषों को क्या आवश्यकता है अच्छा अब यदि देवा का अर्थ दिव्यगुण होता है तो फिर पं० तुलसीरामजी या आधुनिक और कोई समाजी दिखलावे कि देवा का अर्थ दिव्यगुण किसी निघण्टु या निरुक्त या कोष या और भी किसी संस्कृत के पुस्तक में है हिन्दूसाहित्य का एक एक पृष्ठ देख डालिये कहीं पर भी "देवा" का अर्थ दिव्यगुण नहीं जब देवा का अर्थ दिव्यगुण होता ही नहीं फिर पं० तुलसीराम जैसे सज्जन पुरुष का भी जबरदस्ती अर्थों को बदल २ स्वामी दयानन्द के पक्ष की पुष्टि करना क्या दयानन्द के लेख को अवैदिक सिद्ध करना नहीं है और यदि पं० तुलसीराम अर्थ के दिव्यगुण को ही थोड़ी देर के लिये मानलें तो फिर अब पं० तुलसीराम बतलावें कि भास्करप्रकाश के टाइटल पर जो आरम्भ में ॐकार लिखा है उसमें क्या क्या दिव्यगुण हैं अधिक नहीं तो कोई हम को उसमें एक ही दिव्यगुण बतलावे क्या उसमें यह गुण है कि तार की भांति दो मिनट में दिल्ली से कलकत्ते को खबर पहुँचा दे या कि समाज के उत्सव पर ग्रामोफोन के रिकार्डों की भांति कोई राग सुना दे यदि कहो कि ये गुण उसमें नहीं भला फिर वे गुण कौन हैं जो उस

ॐकार में हैं यदि नहीं हैं तब तो प्रत्यक्ष के विरुद्ध होगया अतएव इस लेख से वेद में दोष आवेगा कि ॐकार में तो कोई साधारण भी गुण नहीं फिर वेद उसमें दिव्यगुण बतलाता है तो क्या इस लेख से वेद अमान्य न ठहरेगा यदि कहो कि हम वह ॐकार नहीं लेते कि जो भास्करप्रकाश के टाइटल पर लिखा है किन्तु ॐकारपद्वाच्य ईश्वर लेते हैं और उसी में दिव्यगुण हैं यदि ऐसा है तो फिर "देवा" का अर्थ दिव्यगुण क्यों किया क्या देवता उस ब्रह्म से बाहर हैं क्या कोई ऐसी भी जगह है कि जहां देवता तो हैं किन्तु ईश्वर नहीं यदि कहो कि ऐसा तो नहीं यदि ऐसा नहीं तो फिर ॐकार की व्याख्या बिगाड़ी और देवा का दिव्यगुणशास्त्रविरुद्ध अर्थ किया इससे लाभ क्या हुआ सम्भव है कि पं० तुलसीराम देवयोनिकी सिद्धि होते देख घबरागये हों कुछ भी हो इतना तो कहनाही पड़ेगा कि पं० ज्वालाप्रसाद का किया अर्थ अब भी सत्यही रहा और भास्करप्रकाशकर्ता उसका खण्डन नहीं कर सकते। पं० तुलसोरामजी इसी मन्त्र को देकर कहते हैं कि बस स्वामीजी के अर्थ कीही तो पुष्टि हुई स्वामीजी के अर्थ को पुष्टि हुई या ॐकार का महत्व आया स्वामीजी ने तो ॐकार के महत्व मिटाने के लिये ही अकार से अग्नि विराट् लिखा स्वामीजी के मन्तव्यानुसार तो यह एक मामूली शब्द हुआ जैसे हरि शब्द से विष्णु, सिंह, वानरादि का ग्रहण होता है वैसे ही इससे भी समझो फिर इस ॐकार में महत्व कौनसा है।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने यह दिखलाया कि इस ॐकार को प्रथम मात्रा में पृथिवी लोक और अग्नि ऋग्वेद और पृथिवी लोक निवासी स्थित हैं और द्वितीय मात्रा में अन्तरिक्ष, वायु और यजु के मन्त्र और अन्तरिक्ष लोकनिवासीजन स्थित हैं और तृतीय मात्रा में द्युलोक आदित्य साम के मन्त्र और स्वर्गलोक निवासीजन स्थित हैं इसी भाव को लेकर माण्डूक्योपनिषद् कहता है कि 'ॐकार एवेदंसवम्" स्वामी दयानन्द जी इस वेद विहित ॐकार महत्व का खण्डन करते हुए केवल इतना लिखते है कि ॐकार एक ऐसा अक्षर है कि जिसके उच्चारण करने से ईश्वर के कितने ही नाम आ जाते हैं कोई यह तो बतलावे कि इसमें कोई वेद का प्रमाण है जिस अर्थ की पुष्टि वेद करता था उस व्याख्या को उड़ा कर स्वामी दयानन्द जी ने एक मनगढ़न्त व्याख्या तैयार की इसका प्रयोजन यही है कि

ॐकार का जैसा महत्व वेद कहते हैं आर्यसमाज उसको न मान बैठे वेद व पोपलीला में न पड़जावें किन्तु उसके विरुद्ध वेद प्रमाण से रहित हमारी बतला व्याख्या को मानें स्वामी दयानन्द के अर्थ की पुष्टि करते हुए पं० तुलसीरामज लिखते हैं कि पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो वेद से बतलाया कि "प्रथमाय मात्रायां पृथिवी अग्निः ऋग्वेदः पृथिवी निवासिनः" अर्थात् ॐकार क प्रथम मात्रा में पृथिवी अग्नि, ऋग्वेद और पृथिवी निवासिजन स्थित हैं य अर्थ और स्वामी दयानन्दजी ने जो लिखा कि अकार से अग्नि विराट् आदि कई नामों का ग्रहण होता है ये दोनों अर्थ एक ही हैं पण्डितों की तो बात ही छोड़िये किन्तु ये दोनों अर्थ किसी साधारण बुद्धिवाले के आगे रखने से यही उत्तर मिलेगा कि इन अर्थों में तो जमीन आसमान का फर्क है ये दोनों अर्थ कभी एक हो नहीं सकते सनातनधर्मियों की तो बातही जाने दीजिये इस विषय में तो जब आर्यसमाजी पण्डितों से बातचीत होती है उस समय वे भी यही कहते हैं कि पं० तुलसीरामजी का लेख टालमटोल है और पं० तुलसीरामजी भी क्या करें वेद कुछ और ही कहता है और स्वामी दयानन्द कुछ और ही कहते हैं अब किसके कथन को सत्य कहा जावे हार कर पण्डित तुलसीराम ने यही लिख दिया कि दोनों अर्थ एक ही बात है हम पं० तुलसीराम तथा शेष आर्यसमाजियों से यह पूछना चाहते हैं कि जब वेद ॐकार के महत्व का वर्णन करता है और स्वामी दयानन्द ॐकार महत्व का खण्डन करते हैं फिर एक बात कैसे क्या कभी कोई आर्यसमाजी इस पर भी विचार दृष्टि डालेगा या इसका भी कभी विचार करेगा कि स्वामी दयानन्द के लेख अकार से अग्नि विराट् आदि का ग्रहण होता है इस अर्थ में वेदादि का कोई प्रमाण नहीं है।

फिर यहां पर एक और भी विचार करना है यदि हम दुर्जन तोष न्याय से यह भी मानलें कि ॐकार के उच्चारण से ईश्वर के कई नाम आजाते हैं आजावें स्वामी दयानन्द के मत में इसका फल कुछ भी नहीं स्वामी दयानन्द आगे सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि जैसे गुड़ गुड़ कहने से मुँह मिट्ठा नहीं होता वैसे ही ईश्वर के नाम लेने से भी कुछ नहीं होता जब कि ॐकार के उच्चार या जप से कुछ फल ही नहीं फिर चाहे ॐकार के उच्चारण से

लक्षनामों का ग्रहण क्यों न हो कुछ भी लाभ नहीं जब कि इसके उच्चारण से कुछ फल हो नहीं फिर इसका उच्चारण ही क्यों किया जावे वास्तविक में स्वामी दयानन्दजी ने जो यह ॐकार की नवीन व्याख्या की है यह ॐकार महत्व गिराने के लिये है स्वामी दयानन्द की व्याख्या तो ॐकार महत्व को गिरा रही है और पं० ज्वालाप्रसाद का लेख ॐकार का महत्व कह रहा है इतने पर भी पं० तुलसीरामजी कहते हैं कि पं० ज्वालाप्रसादजी का लेख ही स्वामीजी के लेख की पुष्टि करता है पं० तुलसीरामजी से निवेदन है कि वह इस बात को अवश्य बतलावें कि स्वामी दयानन्द की भांति मिश्रजी ने वह कौनसा लेख लिख दिया कि जिसमें ॐकार महत्व में न्यूनता आई हो और साथहीसाथ यह भी दिखलावें कि अकार से अग्नि विराट् आदि नामों का ग्रहण जो स्वामी दयानन्द ने किया है यह किस वेद में लिखा है यदि वेद में नहीं तो वेद विरुद्ध होने से यह त्याज्य क्यों नहीं पं० तुलसीरामजी नहीं तो कोई औरही समाजी इस पर लेखनी उठावे।

"अद्वैतः" पदके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि जीव ब्रह्म की एकता हमारी समझ में वेदों और उपनिषदों के विरुद्ध है फिर आगे केवल इतना ही लिखते हैं कि "अद्वैतः" वह अद्वितीय अर्थात् उसके सदृश कोई नहीं हमभी बड़े जोर से कहते हैं कि "अद्वैतः" का यह अर्थ त्रिकाल में भी नहीं होसकता "अद्वैतः" पदका अर्थ तो स्वजाति विजाति भेदशून्य है अर्थात् उसके सदृश और उससे छोटा या बड़ा कोई भी पदार्थ नहीं यह अर्थ है आप तो देवप्रकरण में शंकरभाष्य मानते थे और इस पर जो मिश्रजी ने शंकरभाष्य दिखलाया तो उसके मानने से क्यों इनकार करते हो यदि इनकार ही किया तो फिर शंकर आदि सभी भाष्यकार जीव ब्रह्म की एकता कहरहे हैं और मिश्रजी ने प्रमाण में दिये हैं उनके भाष्यों का खण्डनहीं करते "हमारी समझ में नहीं आता" इतनाही कहने से काम नहीं चलेगा आपकी समझ में तो ग्रामोफोन के रिकार्ड भी नहीं आते होंगे तो क्या वे इस कारण से राग न गावेंगे कि हम पं० तुलसीराम की समझ में नहीं आते और आप कहते हैं कि वेद उपनिषद् में कोई मन्त्र ऐसा नहीं जिसमें जीव ब्रह्म की एकता हो हम कहते हैं कि एक दो मन्त्र तो अवश्य ऐसे नहीं किन्तु चार हजार हैं लीजिये अभी एकही मन्त्र लीजिये--

"पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्"

यजु० अध्या० ३१

अर्थ—(इदम्) यह जो दृश्य जगत् (भूतम्) हुआ (च) और (यत्) जो (भाव्यम्) आगे होगा (तत्) वह (सर्वम्) समस्त (पुरुष एव) पुरुष ईश्वर ही है ।

कहिये जीव ब्रह्म की तो कौन कहे वेद में तो संसारी पदार्थों और ब्रह्मका भी अभेद बतलाया है फिर आप कैसे दावा करते हैं कि वेद में तो एकता नहीं पण्डितजी महाराज वेद को तो कौन कहे जीव प्रकृति और ईश्वर को तो स्वामी दयानन्दजी ने भी अभेद माना है आप वेद शास्त्र में क्यों जाते हैं आप आर्यसमाज का पहिला नियमही देखलें उसमें स्वामी दयानन्दजी ने अभेद माना है या हम वैसेही लिखते हैं, पहिला नियम यह है--

१—सब सत्‌विद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है ।

पं० तुलसीरामजी को गौर से सोचना चाहिये ध्यान देकर विचारना चाहिये कि प्रकृति और जीवका ज्ञान विद्यासे होता है या बिना विद्याही होजाता है यहाँपर कहना पड़ेगा कि इन दोनों का ज्ञान वेद विद्या से होता है यदि ऐसा है तब तो जीव प्रकृति स्वतः सत्तावाले नहीं ठहरते जब कि ईश्वर से पृथक् इनकी हस्ती ही नहीं तब तो इनका और ईश्वर का अभेद सिद्ध होगया जब कि वेद उपनिषद् स्वामी दयानन्द के लेख आदि में सभी जगह ईश्वर जीव की एकता है फिर आप इनकार क्यों करते हैं क्या आप स्वामी दयानन्दजी के लेख को भी अशुद्धही समझते हैं पं० तुलसीरामजी सब जानतेहैं किन्तु सोच इतना है कि यदि इसको मानलें तो स्वामी दयानन्द का षष्ठ स्वमन्तव्य उड़ जावेगा हम भी जोरके साथ कहते हैं कि या तो ६ स्वमन्तव्यही छोड़ना पड़ेगा या तो फिर आर्यसमाज के प्रथम नियम से ही हाथ धोने पड़ेंगे बस अद्वैतपक्ष सिद्ध है और प्रथम समुल्लास की समाप्ति है ।

इति श्रीकालूरामरचितेधर्मप्रकाशेप्रथमसमुल्लासः ।

SINGAPORE

श्रीहरिः।

सूचीपत्र

सनातनधर्म के गूढ़ अभिप्रायों को जानने तथा आर्यसमाजियों को मोर्च
से भगादेने के लिये हमने अपने पुस्तकालय का उद्घाटन किया है। इस पुस्तका
लय में जो जो पुस्तकें तैयार हैं उनके नाम दाम सहित नीचे लिखे जाते हैं कि
डाक महसूल अलग होगा।

५) धर्मप्रकाश ६ समुल्लास
२।) पुराणवर्म पूर्वार्द्ध
२) दयानन्दछलकपटदर्पण (पं० जिया-
लाल जैनी कृत)
२) सत्यार्थप्रकाश असली सन् १८७५
१) व्याख्यान दिवाकर का पूर्वार्द्ध
१) व्याख्यान दिवाकर का उत्तरार्द्ध
(विधवा विवाह निर्णय)
१) अवतार
१) मूर्तिपूजा
।।) धर्म
।।।) शास्त्रार्थत्रय कानपुर
।=) श्राद्ध निर्णय
।=) वर्णव्यवस्था
।) दयानन्द मत विद्रावण
=) तीर्थ
=) सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदर
-)। शुद्धि निर्णय
-) हिंदु शब्द मीमांसा
-) नमस्ते मीमांसा
)।। दयानन्द की विद्वत्ता
-) दयानन्द लीला
)।।। दयानन्द हृदय
)।। दयानन्द मत दर्पण
४) सनातनधर्म विजय महाकाव्य (कवि-
रत्न पं० अखिलानन्द कृत)
२।) षोडश संस्कार विधि (पं० भीम-
सेन कृत)

)।।। दयानन्द मत सूची
)।। धर्म सन्ताप
)।।। दयानन्द का कच्चा चिट्ठा
=) देवसभा में वेदों की अपील
-)।। वेदों पर आरा
)।।। वेदों का कतल
)।। वैदिक धर्म पर कुल्हाड़ा
)।। वेद पर वज्रपात
-) बनावटी वेद
)।।। जाली वेदमन्त्र
-) लीडरों की नादिरशाही
-) अनोखा विजय
-) हनुमान निर्णय
-)। संस्कारविधि समीक्षा
)।।। स्वामी पर कलंक
)।।। मांस विचार
)।।। स्वामी गुरु कि चेला गुरु
)।।। लोहा लक्कड़ देवता
)।।। द्विजत्व में दियासलाई
)।। दयानन्द की सभ्यता
)।। निराकार की घुड़दौड़
)।। दयानन्द की आप्तता
।=) आर्यमत निराकरण प्रश्नावली
(पं० भीमसेन कृत)
।) व्याख्यान रत्नमाला
।) स्पृश्यास्पृश्य मीमांसा

मिलने का पता—पं० कामताप्रसाद दीक्षित, मैनेजर 'हिन्दु कार्यालय'
मु० पो० अमरौधा, जि० कानपुर, यू० पी०।

धर्मोपदेशक ग्रन्थमालाके द्वितीय भाग का तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तमोपदेश ।

श्रीगणेशाय नमः

धर्मप्रकाशः

सत्यार्थप्रकाश दयानन्द तिमिरभास्कर भास्करप्रकाशैः संयुतः ।

तस्यैवायम्

तृतीय समुल्लासः

पण्डित कालूराम शास्त्रिणा लिखितः

सोऽयम्

ग्रन्थकर्त्रा स्वकीयद्रव्यव्ययेन कणपुरनाम्निपत्तने मर्च्चेण्टाख्येमुद्रागारे बाबू छेदालालस्यप्रबन्धेन मुद्रापयित्वा प्रकाश्यंनीतः

प्रथमवार १००० | आश्विन शुक्ला ७ सम्वत् १९७२ ता० १५ अक्टूबर १९१५ ई० | मूल्य १।≡)

पृष्ठ ९६० का अग्रिम वार्षिक मूल्य ३-)

Printer Chheda Lall, Propri-tor Merchant Press, Cawnpore.

श्रीहरिः ।

प्रार्थना ।

धर्मप्रकाश के प्रथम समुल्लास को देख कर अनेक सज्जनों ने अपनी सम्मतियां भेजी हैं कि जिन सम्मतियों से धर्मप्रकाश की गौरवता प्रकट होती है उन में से कुछ सम्मतियां पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे लिखता हूं जिनको पाठक देखने का कष्ट उठावेंगे ।

धर्मप्रकाश पर सम्मतियां—

मासिक पत्रिका सरस्वती अपरैल सन १९१५ ई०

धर्मप्रकाशः प्रथम समुल्लासः कानपूर के जिले में एक जगह अमरौधा है वहां के निवासी पं० कालूराम शास्त्रीजी ने एक लेखमाला निकालने का आरम्भ किया है उसी का यह पहला भाग है इसमें पहले स्वामी दयानन्द सरस्वती के सत्यार्थप्रकाश से अवतरण दिये गये हैं फिर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत दयानन्द तिमिर भास्कर नामक ग्रंथ से उनके खंडन तदनन्तर पं० तुलसीराम के ग्रन्थ भास्कर प्रकाश से उन खंडनों के खंडन । अंत में पं० कालूराम शास्त्री ने सबकी विस्तृत समीक्षा लिखी है। समीक्षा में आर्यसमाज के पूर्वोक्त दोनों ग्रन्थों के भ्रम आपने दिखलाये हैं उसमें आप ने युक्ति और तर्क से प्रायः अच्छा काम लिया है उसे परिश्रम पूर्वक लिखा है पुस्तक का आकार बड़ा पृष्ट सं० १०० और मूल्य ।≈) है लेखक से ही मिलती हैं ।

मजिस्ट्रेट दर्जे अव्वल रियासत छतरपुर की चिट्ठी भी पढ़ने योग्य है जो कि एक विशेषता और रखती है अर्थात् एक प्यारे मुसलमान ग्रेजुएट की राय है चिट्ठी उर्दू अक्षरों में आई है जो कि उन्हीं अक्षरों में नीचे लिखी जाती है—

چھترپور

۱۸ مئی سنہ ۱۹۱۵ع

مخدوم و مکرم جناب شاستري جي—تسلیم

جو کتب مذہبي و اخلاقي و تہذيي تصنیف خود آپنے وقتاً فوقتاً میرے پاس بھیجی ہیں میں اونکے متعلق صدق دل سے اپکا شکریہ ادا کرتے

هوئے اِس امر کا بھی بخوشی اظہار کرتا ہون کہ مین نے اکثر حصہ اون کتابون کا مختلف اوقات مین کار منصبی سے فرصت ملنے پر پڑھا اور اب بھی پڑھتا ہون اور جو کچھہ مین نے پڑھا ہے اوسکو لوگون کی اصلاح کے لئے فایدہ‌بخش سمجھتا ہون اور اِس خیال سے میری راے مین آپکی یہ علمی محنت ضرور قدر کے قابل ہے مجھے یہ ہدیہ ایسی عمدہ کتابون کا مفت ملا ہے لوگ کہا کرتے ہین کہ مفت چیز کی پوری قدر نہین کی جاتی اِس مقولہ کو مین خود تو اپنے تجربہ سے پورا صحیح نہین مانتا تاہم میری تمنا ہے کہ مین انکی قیمت ادا کر دون تاکہ وہ قلیل رقم کسی مفید کام مین لگ سکے اپکو معلوم ہے کہ مجھے سرکاری کام سے فرصت بہت کم ملتی ہے صرف اسیوجہ سے اپکا یہ احسان بدیر تسلیم کیا گیا ہے یہ خیال نہ کیا جاوے کہ میری لاپرواہی یا سستی سے تاخیر ہوئی اُمید کرتا ہون کہ اپ خیریت سے ہونگے اور اِس علمی خدمت مین بدستور مصروف ٭

اپکا خیراندیش
فضل حق

पाठकों के अवलोकनार्थ "मजिस्ट्रेट साहिब" की चिट्ठी हिन्दी अक्षरों में लिखता हूं मुझे आशा है कि इस चिट्ठी से अन्य ग्रेजुएट भी शिक्षा लेकर लाभ उठा सकते हैं और यह चिट्ठी खास कर उन सज्जनों को अधिक लाभदायक हो सकती है कि जिनका मन धर्म बन्धनों से या आत्मिक ज्ञान से घृणा कर चुका है और धर्म मर्य्यादा को तोड़ने में ही सुख समझता है।

मुन्शी फ़ज़लहक़जी साहब बी. ए. नाजिम (मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल) रियासत छतरपुर की चिट्ठी की हिन्दी नकल भी देखिए—

मखदूम मुकर्रम जनाब शास्त्रीजी तसलीम।

जो कुतुब मज़हबी व इखलाक़ी व तमद्दुनी तसनीफ़ ख़ुद आप ने वक्तन फ़वक्तन मेरे पास भेजी हैं मैं उनके मुतअल्लिक़ सिद्क़ दिल से आप का शुक्रिया अदा करते हुए इस अमर का भी बख़ुशी इज़हार करता हूं कि मैंने अकसर हिस्सा इन किताबों का मुख्तलिफ़ औक़ात में कार मनसबी से फ़ुरसत मिलने पर पढ़ा और अब भी पढ़ता हूं और जो कुछ मैंने पढ़ा है उसको मैं लोगों की सलाह के लिए फ़ायदाबख्श समझता हूं और इस ख्याल से मेरी राय में आप की यह इल्मी मेहनत ज़रूर क़दर के क़ाबिल है मुझे यह हदियह ऐसी उमदः किताबों का मुफ्त मिला है लोग कहा करते

है कि मुफ्त चीज़ की पूरी क़दर नहीं की जाती इस मक़ूलह को मैं ख़ुद तो अपने तजरबह से पूरा सही नहीं मानता ताहम मेरी तमन्ना है कि मैं इनकी क़ीमत अदा कर दूं ताकि वह क़लील रक़म किसी मुफ़ीद काम में लग सके आपको मालूम है कि मुझे सरकारी काम से फ़ुरसत बहुत कम मिलती है सिर्फ़ इसी वजह से आप का यह एहसान बदेर तसलीम किया गया है यह ख्याल न किया जावे कि मेरी लापरवाही या सुस्ती से ताख़ीर हुई उम्मैद करता हूं कि आप ख़ैरियत से होंगे और इस इल्मी ख़िदमत में बदस्तूर मसरूफ़।

आप का ख़ैरन्देश,
फ़ज़लहक़।

श्रीमान् पं० श्रीकृष्ण ज्योतिर्विद की सम्मति—

आप हाईकोर्ट के वकील हैं और दूसरे संस्कृत के भी विद्वान् हैं आपने धर्म प्रकाश देख कर जो पत्र लिखा है उसकी नक़ल नीचे लिखता हूं देखिए—

नैनीताल,
२८ मई १९१५

स्वस्ति श्री सदुपमा योग्य श्री शास्त्रधुरीण महोदय को श्रीकृष्ण का सविनय प्रणाम। धर्मप्रकाश के दो अंक मिले हैं, बहुत उत्तम हैं, यद्यपि मुझ को साधारणतः खण्डन मण्डन के लेखों से आग्रहवाद की विशेष झलक देखने के कारण घृणा हो चुकी थी तथापि आपने धर्मप्रकाश को बहुत उत्तम श्रेणी का ग्रन्थ बनाना चाहा है जिसमें वितण्डा आदि को अपने लेख में कदापि स्थान न देकर प्रतिपक्ष के दोषों को अच्छी प्रकार से दिखला दिया है अपने पक्ष की पुष्टि शास्त्रानुसार की है अस्तु मुझ को आप से इस महत्कार्य में सहानुभूति है जो सहायता मुझसे बन पड़ेगी वार्षिक सहायक होकर ही प्रस्तुत करूंगा।

श्रीकृष्ण ज्योतिर्विद,
वकील,
नैनीताल।

(मुहर)
श्रीकृष्ण जोशी
हाईकोर्ट वकील।

श्रीमान् बाबू लक्ष्मीनारायण वकील आगरा की सम्मति—

श्रीमान् ने धर्मप्रकाश की तैयारी में १०) की सहायता तैयारी से प्रथम ही दी थी। श्रीमान् के पास धर्मप्रकाश पहुंचा आप इसको पढ़ कर यह लिखते हैं—

श्रीमान् प० कालूरामजी ।

धर्मोपदेशक ग्रन्थ माला के द्वितीय भाग का प्रथमोपदेश यानी धर्मप्रकाश मिल पढ़कर चित्त अतीव प्रसन्न हुआ वास्तव में आपने बड़े परिश्रम से यह ग्रन्थ लिख है और इसके लिखने के लिए पुस्तकादि एकत्रित करने में भी आप का विशेष धन और समय लगा होगा । परन्तु अगर आप ऐसे धर्म प्रेमी भी सनातन धर्म की उपस्थित शोचनीय दशा पर विचार करते हुए रक्षा करने का प्रयत्न न करेंगे तो अवश्य बड़ा धक्का पहुंचेगा । यह देखकर खेद होता है कि ऐसे आवश्यक ग्रन्थ के प्रकाशन में भी आप को आशाजनक सहायता नहीं मिली.................
मैं अपने मिलनेवालों से इस ग्रन्थ की सहायता के लिए अनुरोध करूंगा और जो बाहर हैं उनको पत्र लिखूंगा ।

अनुग्रहीत
लक्ष्मीनारायण,
वकील ।

पण्डित मण्डली के पत्र विशेष आये हैं जो आगे से छपने आरम्भ होंगे ।

कालूराम शास्त्री ।

श्रीहरिः ।

धर्मोपदेशक ग्रन्थमाला की पुरानी पुस्तकें ।

अवतार ।॥) मूर्ति पूजा ।॥) श्राद्ध ।) पुराण सिद्धि ।) पुराण कलंकाभासमार्जन ।) विधवा विवाह मर्दन ।) नियोग मर्दन ।) वर्ण व्यवस्था ।) दयानन्द की विद्वत्ता ।॥ नमस्ते मीमांसा ।॥ शुद्धि विवेचन ‑) आर्य्यसमाज की गति ।॥ दयानन्द की बुद्धि ।) धर्म सन्ताप ।। नवीन मत समीक्षा ।। संध्या से आयु वृद्धि ।॥ निराकार भ्रम मर्दन ।॥ निराकारवाद में ईश्वराभाव ।॥ नई शिक्षा का विपरीत फल ।॥ मूर्ति पूजा ।। भजन मणि माला ‑)॥ दयानन्द हृदय ।॥ दयानन्द मत सूची ।॥ दयानन्द मत दर्पण ।॥ दयानन्द का कच्चा चिट्ठा ।॥ इनके अलावा पं० भीमसेनजी की बनाई पुस्तकें भी हमारे यहां मिलती हैं ।

पुस्तकें मिलने का पता—

मैनेजर—पं० कामताप्रसाद दीक्षित

अमरौधा, कानपुर ।

SANATAN DHARAM SABHA
स. ध. स.
KRISHNATEMPLE WAT...

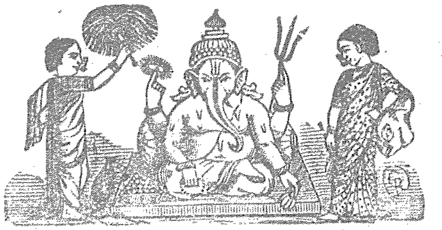

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ तृतीय समुल्लासारम्भः

सत्यार्थ प्रकाश—

अथाऽध्ययनाध्यापनविधिं व्याख्यास्यामः ॥

अब तीसरे समुल्लास में पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं। सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण कर्म्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चांदी, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के योग से बालकादिकों का मृत्यु दुष्टों के हाथ से होता है।

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः ।

संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये
धन्या नराविहितकर्मपरोपकाराः ॥

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दरशील स्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियम पालनयुक्त, जो अभिमान और अपवित्रता से रहित, अन्य की मलीनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी जनों के दुःखों के दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहते हैं वे नर और नारी धन्य हैं। इसलिये आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देवें। जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों उन से शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं। द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य कुल अर्थात् अपनी २ पाठशाला में भेज दें, विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिये और लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोश एक दूसरे से दूर होनी चाहिये, जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी ना जाने पावे। अर्थात् जबतक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहें तबतक स्त्री वा पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषय कथा, परस्परक्रीड़ा, विषय का ध्यान और सङ्ग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें जिस से उत्तम विद्या शिक्षा शील स्वभाव शरीर और आत्मा से बलयुक्त होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें। पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोश दूर ग्राम वा नगर रहे। सब को तुल्य वस्त्र, खान, पान, आसन दिये जांय चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्र के सन्तान हों सबको तपस्वी होना चाहिये। उनके माता पिता अपने सन्तानोंसे वा सन्तान अपने माता पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार एक दूसरे से कर सकें जिस से संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रक्खें। जब भ्रमण करने को जावें तब उनके साथ अध्यापक रहें जिस से किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें और न आलस्य प्रमाद करें।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥

मनु० अ० ७। श्लोक १५२

इसका अभिप्राय यह है कि इस में राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवें वा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवे जो न भेजे वह दण्डनीय हो, प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्यकुल में हो । पिता माता वा अध्यापक अपने लड़के लड़कियों को अर्थसहित गायत्रीमन्त्र का उपदेश कर दें।

तिमिर भास्कर—

यह इतना लम्बा चौड़ा अभिप्राय कौन से अक्षरों से सिद्ध होता है आठ वर्ष से आगे पुत्र पुत्री को घर में रखने से मनुष्य दंडनीय हौं, ऐसे ही अभिप्रायों ने तौ नव शिक्षितौं की बुद्धि पर परदा डाल दिया है, इस श्लोक का यों तात्पर्य है और राजधर्म प्रसंग में का है।

मध्यन्दिनेर्द्धरात्रेवाविश्रान्तोविगतक्लमः।
चिंतयेद्धर्मकामार्थान्सार्धं तैरेकएववा १५१
परस्परंविरुद्धानांतेषांचसमुपार्जनम् ।
कन्यानांसंप्रदानंचकुमाराणांचरक्षणम् १५२ अ० ७

राजा को योग्य है, कि, दुपहर आधी रात के समय में जब विश्राम युक्त हो और शरीर खेदरहित हो उस समय राजा मंत्रियों सहित वा आप ही धर्म काम अर्थ इनका विचार करै और यह धर्म अर्थ काम जो परस्पर विरुद्ध हैं इनका विरोध दूर करके उनके अर्जन का उपाय अपने कुल की कन्यायों का दान अर्थात् किस स्थान में विवाह करना चाहिये, और कुमारों का रक्षण विनयादिक शिक्षा करने का विचार करै इस श्लोक से स्वामी जी का अर्थ किंचित् मात्र भी सम्बन्ध नहीं रखता, यह एक बड़ी अद्भुत

बात है कि, एक यज्ञोपवीत घर में करै एक पाठशाला में इस में कोई अपनी ही संस्कृत बना गढकै श्लोक के नाम से लिखी होती, और जब स्त्रियों के यज्ञोपवीत होता ही नहीं तौ भला उन्हें गायत्री पढ़ने का कब अधिकार है धन्य है आप की बुद्धि यहां गायत्री पढ़ना लिख दिया तो यज्ञोपवीत भी लिख देते, क्या डर था समाजी तौ मान्तेही उन्हैं तौ आपके वचन पत्थरकी लकीरहैं ॥

भास्कर प्रकाश—

जब कि आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि यह श्लोक राजप्रकरण का है और यथार्थ में है ही, तो राजा को अपनी कन्याओं के सम्प्रदान और कुमारों की रक्षा का विशेष विधान करना किस लिए लिखा, जब कि प्रत्येक प्रजागणस्थ पुरुष का भी कर्त्तव्य है कि वह अपनी कन्याओं के सम्प्रदान और कुमारों की रक्षा करें। तात्पर्य यथार्थ में यही है कि राजा अपनी प्रजा का पितृतुल्य रक्षक है, इसी लिए आप की विवाहपद्धतियों में कन्यादान के पूर्व, किस को कन्यादान करना उचित है, यह निश्चय करते हुए लिखा है कि—

"अथ कन्यादानं कुर्य्यात्पिता तदभावे माता
तदभावे भ्राता तदभावे राजा इत्यादि" ॥

अर्थात् कन्यादान में पिता उसके अभाव में माता उसके अभाव में भ्राता उसके भी अभाव में राजा इत्यादि का अधिकार है । इससे यह ध्वनि स्पष्ट निकलती है कि यदि कोई अपनी संतान के विषय में अपने कर्त्तव्य को पूर्ण न करे, न कर सके वा करनेवाला न रहे तो वह कार्य राजा करे। बस यही तात्पर्य लेकर राजा को विशेष आज्ञा है कि वह प्रजावर्ग के पुत्र पुत्रियों के रक्षणशिक्षणादि का प्रबन्ध करे। वह प्रबन्ध दो प्रकार से हो सकता है (१)—पितृवर्ग जीवित और योग्य हों तो जाति वा राजा का नियम रहे जिसे वे उल्लंघन न करें और (२)—दूसरा यह कि उनके अभाव में राजा स्वयं करे। अब बताइये स्वामीजी ने इसमें क्या मिला दिया। ८ वर्ष का तात्पर्य मनु के उन श्लोकों से निकल आता है जो उपनयन की अवस्था बताते हुवे मनु ने लिखा है कि—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् । इत्यादि मनु २।३६

कन्याओं को यज्ञोपवीत न होने से गायत्रीमन्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं तो लाजाहोम के समय "इयं नार्य्युपब्रूते लाजानावपन्तिका आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञायतोमम स्वाहा"। और प्रतिज्ञा के समय विवाह में "समञ्जन्तु विश्वेदेवाः" इत्यादि वेदमन्त्रों के पाठ का अधिकार कहां से आ जायगा और स्त्री पुरुष की सहधर्मिणी कैसे मानी जायगी और—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । अथर्व०

के अनुसार कन्या ब्रह्मचारिणी होवें यह पाया जाता है, तब आप कन्याओं के ब्रह्मचर्य वेदाध्ययन से ऐसे क्यों चौंकते हैं। क्या आप के पास कोई वेद का प्रमाण है कि स्त्रियों को ब्रह्मचर्य और वेदपाठ का अधिकार नहीं ? द्विज कहने से जब कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का आप भी ग्रहण करते हैं और द्विज का अर्थ दो जन्मवाला है अर्थात् एक माता के उदर से प्रकट होना दूसरा गुरुकुल में प्रकट होना, तो हम पूछते हैं कि जब जन्म और संस्कार इन दोनों से द्विज बनता है और आप के मत में कन्या का द्विजत्वसम्पादक संस्कार नहीं होता तो—

उद्वहेत द्विजोभार्य्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥

जिसका अर्थ स्पष्ट है कि द्विज, लक्षणवती सवर्णा भार्या से विवाह करे। सवर्णा का अर्थ समानवर्णवाली है। वर्ण ४ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हैं जिनमें से पहले ३ द्विज इसलिये हैं कि उनके दो जन्म होते हैं तो बताइये तो सही कि कन्या के दो जन्म नहीं हुवे और जननी और गायत्री इन दो माताओं को जो कन्या प्राप्त नहीं हुई वह द्विज कैसे होगी और जो कन्या द्विज नहीं वह द्विजों की सवर्णा कैसे हो सकती है और सवर्णा से द्विजों को विवाह विहित है तो आप के मत में द्विजों को कन्या ही न मिलेगी। अब स्त्रियों के वेदपाठाधिकार में प्रमाण सुनिये—

१—इमं मन्त्रं पत्नी पठेत् ॥ श्रौतसूत्र ॥

इस मन्त्र को पत्नी पढ़े।

२—वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेत् ॥ श्रौतसूत्र ॥

स्त्री को पुस्तक देकर वेद बँचवावे ।

३—अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्य्ये बभूवतुर्मैत्रेयी च
कात्यायनी च तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव ।

बृहदारण्यक । याज्ञवल्क्य की दो स्त्री थीं मैत्रेयी और कात्यायनी इनमें मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी । यदि स्त्रियों को वेदपाठ का अधिकार नहीं तो मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी कैसे हुई ।

४ शङ्कर दिग्विजय में मण्डनमिश्र की स्त्री ने शङ्कराचार्य से कहा कि—

अपि तु त्वयाद्य न समग्रजितः प्रथितागुणीर्मम पतिर्यदहम् ।
वपुरर्द्धमस्य न जिता मतिमन् अपि मां विजित्य कुरु शिष्यमिमम् ॥५६ ॥

हे शङ्कराचार्य ! आप ने मेरे प्रसिद्धागुणी पति को अभी पूर्ण नहीं जीता क्योंकि उसका अर्ध देह मैं हूं जब मुझे भी आप जीत लें तब मेरे पति को शिष्य करें ।

शङ्कराचार्य ने उत्तर दिया कि :—

यद्वादिवादकलहोत्सुकतां प्रतिपद्यते हृदयमित्यवले ।
तद साम्प्रतं न हि महायश सोमहिलाजने नकथयन्तिकथाम् ॥ ५९ ॥

तुम शास्त्रार्थ करने को चाहती हो परन्तु महायशस्वी लोग स्त्री से शास्त्रार्थ नहीं करते ।

उसने उत्तर दिया कि—

स्वमतं प्रभेत्तुमिह योयतते सवधू जनोस्तुयदिवास्त्वितरः ।
यतितव्यमेव खलु तस्यजये निजपक्षरक्षणपरैर्भगवन् ॥६०॥

भगवन् ! जो अपने मत का खण्डन करे चाहे स्त्री हो वा पुरुष, अपने पक्ष की रक्षा में तत्परों को अवश्य उसके विजय करने में प्रयत्न करना उचित है ।

इसके अतिरिक्त उस समय विद्याधरी ने प्राचीन समय में भी स्त्री पुरुषों में शास्त्रार्थ होने का प्रमाण दिया कि—

अतएवगार्ग्यभिधयाकलहंसहयाज्ञवल्क्यमुनिराडकरोत् ।
जनकस्तथासुलभयाऽबलयाकिममीभवन्ति न यशोनिधयः ॥६२॥

इसीलिये याज्ञवल्क्य ने गार्गी से और जनक ने सुलभा से शास्त्रार्थ किया था। क्या ये लोग यशस्वी न थे ? ॥६२॥

इस पर शङ्कराचार्य को उत्तर न आया और शास्त्रार्थ स्वीकार करना पड़ा। और उस शास्त्रार्थ में श्रुति (वेद) के वाक्यों पर विवाद हुआ। यथा—

अथसाकथा प्रववृतेस्मतयोरुभयोः परस्परजयोत्सुकयोः ।
मतिचातुरी रचितशब्दभरी श्रुतिविस्मयी कृतविचक्षणयोः ॥ ६३ ॥

तब वह शास्त्रार्थ आरम्भ हुवा जिसमें एक दूसरे के विजय करने को उत्सुक था और बुद्धिचातुर्य, शब्दगाम्भीर्य और श्रुतिप्रमाण आश्चर्यदायक थे ॥६३॥

अब बताइये कि स्त्री को वेद पाठाधिकार न था तो वेदविषयक शास्त्रार्थ विद्याधरी गार्गी और सुलभा ने कैसे किया। परन्तु हां, इतना पता अवश्य लगता है कि शङ्कराचार्य जो प्रथम शास्त्रार्थ करने में हिचकिचाये और टालना चाहा, इससे प्रतीत होता है कि उस समय जब कि शङ्कराचार्य हुवे तब भी स्त्री जाति की अप्रतिष्ठा आरम्भ हुई थी, परन्तु जब का विद्याधरी ने प्रमाण दिया कि जनक और याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों से शास्त्रार्थ किया उस उत्तम समय में निस्सन्देह आप जैसे सङ्कीर्ण हृदयों का जन्म न होने से देश का सौभाग्य था कि स्त्रियों को भी वेदपाठाद्यधिकार समान ही प्राप्त थे।

५—इङश्च। अष्टाध्यायी ३।३।२१ महाभाष्यम्—इङश्चेत्यपादाने स्त्रियामुपसंख्यानं कर्तव्यम्। इङश्चेत्यत्रापादाने स्त्रियामुपसङ्ख्यानं कर्तव्यं तदन्ताच्च वा ङीष्वक्तव्यः। उपेत्याधीयतेऽस्या उपाध्यायी, उपाध्याया ॥

देखिये इस उदाहरण में उपाध्यायी वा उपाध्याया उस स्त्री का नाम है जिसके पास जाकर (लड़कियां) वेद पढ़ें। यदि स्त्री को पढ़ने का अधिकार नहीं तो पढ़ाने का अधिकार कहां से हो गया। और यदि कन्या पाठशाला की उपाध्याया वा उपाध्यायी से कन्यायें पढ़ने को जावें तो क्या लड़के उनसे पढ़ने को जावें ? क्या कहीं

यह लेख है कि लड़के लोग उपाध्याय से न पढ़ कर उपाध्यायी से पढ़ा करें ? य
नहीं तौ कन्या ही "उपेत्याधीयते" अर्थात् उपनीत होकर पढ़े, यह तात्पर्य हु
और यह पाया गया कि कन्यायें भी उपाध्यायी के पास वैसे ही उपनीत होती
जैसे लड़के उपाध्याय के पास।

६—अनुपसर्जनात्। अष्टा० ४। १। १४॥
महाभाष्यम्—आपिशलमधीते ब्राह्मणी आपिशला॥

इससे सिद्ध है कि स्त्रियां भी गुरुकुल में जाकर वेदशाखा आदि पढ़ती थीं
इस सूत्र पर दूसरा उदाहरण है कि:—

७—काशकृत्स्निना प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी।
काशकृत्स्नीमधीते काशकृत्स्ना ब्राह्मणी ॥

इससे भी सिद्ध है कि काशकृत्स्न ऋषिकृत मीमांसा को पढ़नेवाली ब्राह्मण
का नाम काशकृत्स्ना होता था। मीमांसा शास्त्र में वैदिक मन्त्रों वा कर्मों क
मीमांसा होती है।

इन प्रमाणों से सिद्ध हो गया है कि आर्ष समय में कन्यायें उपाध्यायी के पास उ
नीत होती थीं और उपाध्यायी उन्हें पढ़ाती थीं। पत्नी यज्ञ में मन्त्र पाठ करती थीं
वधू विवाह में मन्त्र पाठ पूर्वक लाजाहोम करती हैं। तौ अवश्य है कि उनका उ
नयन मन्त्रोपदेश और स्वाध्यायादि होता था जैसा कि स्वामीजी ने वेदशास्त्रानुकू
लिखा है।

समीक्षा—द्वितीय समुल्लास में गर्भ में पढ़ा कर विद्वान् कर दिया औ
अब पाठशाला में भेजते हैं क्या बालक जो गर्भ में पढ़ा था वह भूल
जाता है स्वामी जी भी अजब किस्म के मनुष्य हैं दो बार विद्वा
करते हैं और आगे दो ही बार उपनयन (जनेऊ) पहिना देंगे विद्वान् क
विद्वान् करना इस के ऊपर आर्य समाजियों को विचार करना चाहिए

स्वामी जी लिखते हैं कि बालकों को आभूषण न पहिनाये जावें क्योंकि इनसे
देहाभिमान और विषयासक्ति बढ़ती है और कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है। यदि
आभूषणों से देहाभिमान, विषयासक्ति और मृत्यु होती है तो रुपये के संचय करने

से भी यह तीनों काम होते हैं तो क्या संसार रुपये का भी संचय करना छोड़ दे ? यदि सोने चांदी को पास में रखने से देहाभिमानादि बढ़ते हैं तो फिर स्वामी जी ने रुपये का संग्रह क्यों किया ? यदि आभूषणों से देहाभिमान बढ़ता है और विषयासक्ति होती है तो वस्त्रों से भी इन दोनों का होना सम्भव है यदि ऐसा है तो स्वामी दयानन्दजी ने दिगम्बर वेष को छोड़ कर कोट बूट पहिन, घड़ी लगा, छड़ी हाथ में ले, हुक्के में चांदी की मुहनाल लगा कर संसारी पदार्थों के सुख का अनुभव किया तो क्या इतने पर भी स्वामी जी को देहाभिमान और विषयासक्ति ने न सताया होगा ? आभूषणों से देहाभिमान और विषयासक्ति तथा मृत्यु का होना कौन वेद मंत्र में लिखा है इसका पता आर्य समाजियों को लगाना चाहिए । हम को तो मालूम होता है कि यूरुप वाले आभूषण नहीं पहिनते इसी कारण से आभूषणों का निषेध स्वामी दयानन्दजी ने वेद से निकाला है । यूरुपी लोग बढिया बढ़िया वस्त्र पहिनते हैं इसी कारण से स्वामीजी ने वेद में वस्त्रों का निषेध नहीं पाया ।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी विद्या और विद्या पढ़नेवाले तथा पढ़ानेवालों की प्रशंसा लिखते हैं और उसमें "विद्या विलास मनसः" यह श्लोक प्रमाण देते हैं क्या वेद में यही ज्ञान है कि वह विद्वानों की या खूबसूरतों की प्रशंसा करे यदि है तो स्वामी दयानन्द को प्रमाण देना चाहिए था यदि वेद में नहीं है तो फिर वेद का बहाना लेकर अपने मन के भाव क्यों लिखे जाते हैं और "विद्या विलास मनसः" जो स्वामी दयानन्द ने प्रमाण में दिया है इसको तो समाज उस दशा में भी प्रमाण नहीं मान सकती जब कि नौ सौ निन्यानवे (९९९) स्वामी दयानन्द और आकर समझावे या खास निराकार ही आकर कहे क्योंकि यह श्लोक आर्य समाजियों के धार्मिक ग्रन्थ का ही नहीं है ।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि अध्यापक और अध्यापिका वे ही पढ़ा सकें जो धार्मिक और विद्वान् हों । बात उत्तम है और मानने के लायक है और हम इस को स्वीकार करते हैं और इसके लिखने वाले स्वामी दयानन्द को धन्यवाद देते हैं किन्तु पूछना यह है कि यह भाषा कौन वेद मंत्र का अनुवाद है और नियोगी पुरुष तथा नियोगिनी स्त्री अध्यापक या अध्यापिका हों या नहीं ये धार्मिक हैं या अधार्मिक इसका निर्णय समाज को अवश्य कर देना चाहिए हिन्दुओं का वेद क्या है मजमुआ ज़ाबता तालीम ही है कि जिसमें लड़कों का मदरसे में भरती होना

आदि समस्त कानून ही लिखा रक्खा है।

स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि अष्टम वर्ष में लड़का लड़की को पाठशाला में भेज दें इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी के बिना पूछे ही पं० तुलसीराम प्रमाण लिखते हैं "गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्" क्या खूब रही देना था हिंगाष्टक और दे बैठे अफीम, प्रमाण तो इस बात का देना था कि आठवें वर्ष में लड़का लड़की का पाठशाला भेजना अमुक श्रुति और स्मृति में लिखा है इसका उत्तर न देकर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि ब्राह्मण का उपनयन अष्टम वर्ष में होता है सम्भव है कि पं० तुलसीराम यह सिद्ध करना चाहते हों कि उपनयन के बाद विद्या पढ़ने का अधिकार होता है यदि ऐसा है तब तो स्वामी दयानन्द को यह लिखना चाहिये था कि ब्राह्मण अपने लड़के को अष्टम वर्ष में पाठशाला भेज दे क्योंकि अष्टम वर्ष में ब्राह्मण जाति का ही उपनयन कहा है। पं० तुलसीराम ब्राह्मण जाति के उपनयन का प्रमाण देकर अष्टम वर्ष में सभी जातियों के बच्चों को पाठशाला भेजना चाहते हैं क्या ब्राह्मण के बालक का उपनयन होने पर समस्त जातियों के बालकों के उपनयन का होना मान लिया जावेगा या ब्राह्मण अपने लड़के को उपनयन कराकर पाठशाला भेजे और शेष जाति वैसे ही भेज दें या स्वामी दयानन्द का लेख माने कि द्विज अपने लड़कों का यज्ञोपवीत कराके पाठशाला भेजें? यदि पं० तुलसीराम का लेख सत्य है तो फिर समाज या पं० तुलसीराम इसमें श्रुति प्रमाण दें कि अमुक मंत्र में यह लिखा है कि क्षत्रिय आदि बिना ही यज्ञोपवीत के वेद पढ़ा सकते हैं। यदि स्वामी दयानन्द का लेख सत्य है तब तो क्षत्री को ग्यारहवें वर्ष और वैश्य को बारहवें वर्ष में उपनयन करवा कर वेद पढ़ने के लिए भेजना होगा यह मनु की आज्ञा है पं० तुलसीराम ने मनु का आधा श्लोक लिखा है यदि पूरा लिख देते तो यह सब ज्ञान हो जाता पढ़िये अब हम पूरा लिखते हैं—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥

मनु० अ० २ श्लो० ३६

अर्थ—गर्भ से अष्टम वर्ष में ब्राह्मण का और ग्यारहवें वर्ष क्षत्री का और बारहवें वर्ष वैश्य का उपनयन करें।

पं० तुलसीराम ने उपनयन के बाद बालकों का पाठशाला भेजना माना और मनु ने क्षत्री के बालक का उपनयन ग्यारहवें वर्ष और वैश्य के बालक का उपनयन बारहवें वर्ष में लिखा इस कारण से क्षत्री और वैश्य के बालक को ग्यारहवें और बारहवें वर्ष में पाठशाला भेजना चाहिये और शूद्र तथा स्त्रियों का उपनयन स्मृतिकारों ने किसी अवस्था में भी नहीं लिखा अतएव शूद्र और स्त्रियों को पाठशाला में नहीं भेजना होगा। अब यह सिद्ध हो गया कि अष्टम वर्ष में समस्त जातियों के बच्चों का पाठशाला में भेज देना स्वामी दयानन्दजी का यह लेख मनगढ़न्त और वेद स्मृतियों के विरुद्ध है।

स्वामी दयानन्दजी यह लिखते हैं कि जो मनुष्य अष्टम वर्ष में अपने लड़के लड़की को पाठशाला में न भेजे उसके लिए राजनियम और जातिनियम होना चाहिये इसमें स्वामी दयानन्दजी मनु के एक श्लोक का आधा भाग प्रमाण में भी देते हैं—

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्।

मनु० अ० ७ श्लो० १५२

स्वामी दयानन्दजी आधा श्लोक प्रमाण में तो देते हैं किन्तु उसका अर्थ नहीं लिखते क्योंकि यदि अर्थ लिख दें तो इस श्लोक में से राजनियम और जातिनियम जो स्वामी दयानन्दजी ने निकाला है वह कूच कर जावेगा। पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र इस प्रकरण के पूरे दो श्लोक लिखकर बतलाते हैं कि इसमें तो राजनियम और जाति नियम का कहीं जिकर भी नहीं। पं० ज्वालाप्रसाद का लेख यह है—

मध्यन्दिनेर्द्धरात्रेवा विश्रान्तोविगतक्लमः।
चिंतयेद्धर्मकामार्थान्सार्धं तैरेकएववा॥
परस्परंविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम्।
कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

राजा को योग्य है कि दुपहर आधी रात के समय में जब विश्रामयुक्त हो और शरीर खेद रहित हो उस समय राजा मन्त्रियों सहित व आप ही धर्म काम अर्थ इनका

विचार करै और यह धर्म अर्थ काम जो परस्पर विरुद्ध हैं इनका विरोध दूर करके उनके अर्जन का उपाय अपने कुल की कन्याओं का दान अर्थात् किस स्थान में विवाह करना चाहिये और कुमारों का रक्षण विनयादिक शिक्षा करने का विचार करै ।

इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी जो उत्तर देते हैं वह नीचे लिखा है पढिये—

जब कि आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि यह श्लोक राजप्रकरण का है और यथार्थ में है ही तौ राजा को अपनी कन्याओं के सम्प्रदान और कुमारों की रक्षा का विशेष विधान करना किस लिये लिखा जब कि प्रत्येक प्रजागणस्थ पुरुष का भी कर्तव्य है कि वह अपनी कन्याओं के सम्प्रदान और कुमारों की रक्षा करें तात्पर्य यथार्थ में यही है कि राजा अपनी प्रजा का पितृ तुल्य रक्षक है इसीलिये आपकी विवाह पद्धतियों में कन्यादान के पूर्व किसको कन्यादान उचित है यह निश्चय करते हुवे लिखा है कि "अथ कन्यादानं कुर्य्यात्पिता तदभावे माता तदभावे भ्राता तदभावे राजा इत्यादि" अर्थात् कन्यादान में पिता उसके अभाव में माता उसके अभाव में भ्राता उसके भी अभाव में राजा इत्यादि का अधिकार है इससे यह ध्वनि स्पष्ट निकलती है कि यदि कोई अपनी संतान के विषय में अपने कर्तव्य को पूर्ण न करे न कर सके वा करनेवाला न रहे तौ वह कार्य राजा करे बस यही तात्पर्य लेकर राजा को विशेष आज्ञा है कि वह प्रजावर्ग के पुत्र पुत्रियों के रक्षणशिक्षणादि का प्रबन्ध करे वह प्रबन्ध दो प्रकार से हो सकता है—(१) पितृवर्ग जीवित और योग्य हों तौ जाति वा राजा का नियम रहे जिसे वे उल्लंघन न करें और दूसरा यह है कि उनके अभाव में राजा स्वयं करे अब बताइये स्वामीजी ने इसमें क्या मिला दिया" ।

पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने यह दिखलाया कि इसमें यह कहां लिखा है कि राजनियम और जातिनियम से काम लिया जावे यह तो स्वामी ने अपनी तरफ से मिलाया और अज्ञ मनुष्यों के बहकाने के लिये श्लोक लिख दिया । पं० तुलसीरामजी इस पर मौन हो गये पं० तुलसीरामजी ने इतना साहस भी न किया कि स्वामी दयानन्द कृत (इस श्लोक के) अर्थ की पुष्टि में लेखनी भी उठावें । मामला तो यह यहां पर ही तै हो गया और पाठकवर्ग यह भली भांति जान गये कि वास्तव में इस श्लोक का अर्थ वही ठीक है जो मिश्र ज्वालाप्रसादजी ने लिखा है ।

पं० तुलसीरामजी लिखते हैं जब कि आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि यह श्लोक राजप्रकरण का है और यथार्थ में है ही तब हमको पं० तुलसीराम के लेख पर हँसी आ जाती है यह तो वही बात हुई कि किसी मनुष्य ने कहा कि ताजीरात हिंद दफ़ा ३४ में यह लिखा है कि राजा प्रजा का समस्त द्रव्य छीन ले इस के ऊपर दूसरा मनुष्य यह उत्तर दे दे कि दफ़ा ३४ में तो उन मनुष्यों पर जुरमाना करना लिखा है जो मनुष्य म्युनिसिपल्टी के हलके में पेशाब आदि करके सफाई को मिटाते हैं इसको सुन कर वह पहिला मनुष्य कहने लगा कि देखिये यह ताजीरात हिंद की दफ़ा ३४ में ही तो लिखा है यही तो हम कहते थे हमने क्या भुस मिला दिया। बस हूबहू यही हाल पं० तुलसीरामजी का है पं० तुलसीरामजी यह कहते हैं कि यह तो तुम भी मानते हो कि श्लोक राजप्रकरण का है हम पं० तुलसीराम से यह पूछते हैं कि उदाहरण में यह बहस थी कि दफ़ा ३४ में क्या लिखा है कि यह बहस थी कि ताजीरात हिंद में दफ़ा ३४ ही नहीं इसी प्रकार पं० ज्वालाप्रसाद यह कहते थे कि यह श्लोक राजप्रकरण का नहीं या यह कहते थे कि स्वामी दयानन्द ने जो अर्थ किया है वह इसका अर्थ नहीं। विवाद अर्थ पर है न कि प्रकरण पर।

फिर पं० तुलसीराम यह दिखलाते हैं कि तुम्हारी तो विवाह पद्धतियों में भी लिखा है क्या हमारी विवाह पद्धतियों को ही प्रमाण मानकर स्वामी दयानन्दजी ने यह लेख सत्यार्थप्रकाश में लिखा है ? क्या हमारी विवाह पद्धतियां समाजको प्रमाण हैं ? यदि ऐसाही है तो स्वामी दयानन्दजीने संस्कार विधि अलग बनाकर डेढ़ चावल की खिचड़ी क्यों पकाई ? पृथक् संस्कार विधि बनने से हम यह समझतेथे कि हमारी विवाह पद्धतियां समाज को प्रमाण नहीं होंगी परन्तु खुशी की बात है कि आज पं० तुलसीरामजीने यह दिखला दिया कि तुम्हारी विवाह पद्धतियां समाजको प्रमाण हैं। इस लेखको देखकर हम समाजसे यह आशा रखते हैं कि स्वामी दयानन्दने संस्कार विधि में जो जो लेख हमारी विवाहपद्धतियों के विरुद्ध लिखे उन को निकाल देगी।

किन्तु हमारी विवाहपद्धतियां प्रमाण मानने पर भी स्वामी दयानन्दजी के इस लेख की सत्यता या पुष्टि नहीं होती क्योंकि विवाह पद्धतियों में यह लिखा है कि कन्या का पिता कन्यादान करे यदि पिता न हो तो माता करे माता न हो तो भ्राता करे यदि भाई न हो तो राजा कन्यादान करे। पद्धतियों में कन्यादान की आज्ञा बतलाई है न कि राजनियम बना कर कन्याओं के पढ़ाने की विधि।

स्वामी दयानन्दजी ने तो उस श्लोक का यही अर्थ लिखा था कि लड़का लड़कियों की शिक्षा के लिये राजनियम और जातिनियम बने किन्तु पं० तुलसीराम ने इसी श्लोक का अर्थ १८ पंक्ति में लिखा है । श्लोक क्या है ज्ञान का भंडार है जो चाहो इसी श्लोक में से अर्थ कर लो । पं० तुलसीरामने जो अर्थ इस श्लोकका लिखा है उस अर्थ को कोई भी लिखा पढ़ा मनुष्य यह सिद्ध नहीं कर सकता कि यह इस श्लोक का अर्थ है और जो कुछ पं० तुलसीराम ने लिखा है इस लेख की पुष्टि में कोई भी मनुष्य वेद स्मृति का प्रमाण नहीं दे सकता सम्भव है पं० तुलसीराम ने यह समझ रक्खा हो कि जो कुछ भी हम लिख देंगे वही संसार को प्रमाण हो कर वेद कहलाने लगेगा पं० तुलसीराम के लेख में यदि कोई आर्यसमाजी भाई वेदादि का प्रमाण देकर उसकी पुष्टि करेगा तो हम उसके अहसानमन्द होकर उसको धन्य-वाद देंगे परन्तु क्या आशा है कि कोई कलम उठावे ।

स्वामी दयानन्दजी ने यह लिखा था कि द्विज अपने लड़के का यज्ञोपवीत करके और लड़कियों का यथा योग्य संस्कार करके पाठशाला में भेज दें और आगे स्वामी दयानन्दजी ने कन्याओं को गायत्री पढ़ने का भी अधिकार दे दिया इस के ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र लिखते हैं कि "जब स्त्रियों का यज्ञोपवीत होता ही नहीं तो फिर उनको गायत्री पढ़ने का अधिकार कैसा ? यहां आप ने गायत्री पढ़ना लिख दिया तो यज्ञोपवीत भी लिख देते समाजी तो आप की बात को पत्थर की लकीर मानते हैं" । पं० तुलसीरामजी इसके उपर लिखते हैं कि यदि स्त्रियों को गायत्री मंत्र पढ़ने का अधिकार नहीं तो लाजा होम के समय "इयंनार्य्यु पब्रूते" और प्रतिज्ञा के समय विवाह में "समञ्जन्तु विश्वेदेवाः" इत्यादि वेद मंत्रों के पाठ का अधिकार कहां से आगया । इसके ऊपर हमारा यह उत्तर है कि "इयंनार्य्यु पब्रूते" यह मंत्र वेद का मंत्रही नहीं संस्कारविधि में स्वामी दयानन्दजी भी अपनी लेखनी से इसको पारस्कर गृह्यसूत्र का मंत्र लिखते हैं । जब यह वेद का मंत्रही नहीं तब फिर इसके उच्चारणसे वेद पढ़ने की सिद्धि आप कैसे करते हैं फिर "समञ्जन्तु विश्वेदेवाः" इस मंत्र का जो प्रमाण दिया है समस्त गृह्यसूत्र और समस्त पद्धतियां इस बात को कह रही हैं कि यह मंत्र वर के उच्चारण का है केवल स्वामी दयानन्दजी ने माना है कि यह मंत्र लड़का लड़की दोनों पढ़ें । स्वामी दयानन्द को छोड़कर जब कि किसी ने भी इस मंत्र को कन्या के उच्चारण का नहीं लिखा फिर हम कैसे मान लें कि इस मंत्र को कन्या उच्चारण करती है यह शक्ति तो समाज में ही है कि चाहे

वेद का लेख हो या ब्रह्मा से लेकर आज तक के सभी विद्वानों का लेख हो दयानन्द के लेख से न मिलने पर उसको तिलांजली दे दी जाती है। हम में न तो यह शक्ति है कि सब के लेखों पर पानी फेर सकें और न सब के विरुद्ध स्वामी दयानन्द के लेख को प्रमाण कोटी में ला सकें स्वामी दयानन्द के लेख को आप प्रमाण मानते हैं हम नहीं, आप हमारे मानने योग्य प्रमाण दें कि अमुक सूत्रकार या पद्धतिकार ने इस मंत्र का कन्या के मुख से उच्चारण होना लिखा है सो ऐसा कहीं लिखा नहीं विवाद समाप्त समझो।

आगे पं० तुलसीराम कन्या के गुरुकुल भेजने और वेद पढ़ने का एक और प्रमाण लिखते हैं "ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" इस प्रमाण से पंडित तुलसीराम यह सिद्ध करते हैं कि कन्या ब्रह्मचर्य्य धारण कर के युवान पति को प्राप्त होती है। इसके उपर हमारे दो उज़्र हैं एक तो यह कि यह मंत्र अथर्व वेद की कौथुमी शाखाका है। स्वामी दयानन्दजी शाखाओंको वेद नहीं मानते। स्वामी दयानन्द जी मंतव्यामंतव्य प्रकरण में लिखते हैं कि शाखा स्वतः प्रमाण नहीं क्योंकि वे जैमिनि आदि ऋषियों की बनाई हैं जब कि शाखा स्वामी दयानन्द और आर्यसमाजको प्रमाण नहीं तो फिर इस कौथुमी शाखा के प्रमाण को कौन मानेगा। द्वितीय यह कि इसमें कन्याओं के ब्रह्मचर्य का कहीं भी जिक्र नहीं इसका सीधा सीधा अर्थ यह है कि—

(कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्य्येण) ब्रह्मचर्य्य से (युवानम्) युवान (पतिम्) पति को (विन्दते) प्राप्त होती है।

यहां पर युवानं पतिं का विशेषण है और युवानं पद में ब्रह्मचर्य्य हेतु है इसी कारण से यहां पर ब्रह्मचर्य्येण यह हेतु में तृतीया विभक्ति है अर्थात् ब्रह्मचर्य से युवान हुए पति को कन्या प्राप्त होती है। यहां पर ब्रह्मचर्य्यका सम्बन्ध युवान पद से है न कि कन्या से। जब ब्रह्मचर्य्यका सम्बन्ध कन्यासे है ही नहीं तब फिर जबरदस्ती से कन्या के साथ में उसका सम्बंध कर के प्रमाण में देना क्या यह तुलसीराम का आग्रह नहीं है क्या ऐसे ऐसे आग्रहों से भी कहीं धर्मका निर्णय हुआ है?

यदि कोई समाजी यह कहे कि तुम ही आग्रह करते होगे और कन्याओं के ब्रह्मचर्य तथा वेद पढ़ना पं० तुलसीराम का ही लिखा सत्य होगा इस शंका को दूर करने के लिये हम अपने किये अर्थकी पुष्टिमें दो प्रमाण और देते हैं। प्रथम तो यह

कि मनु ने कन्याओं का विवाह आठ वर्ष की अवस्था से बारह वर्ष की अवस्था तक में लिखा है तो क्या गुरुकुल में पढ़ते पढ़ते बिनाही वेद के समाप्त किये विवाह हो जायगा, (२) स्त्रियों के संस्कारमें आचार्य को भी वेद मंत्रके बोलनेका मनुजी निषेध करते हैं स्त्री का वेद पढ़ाना तो दरकिनार रहा स्त्रियों के संस्कार में आचार्य द्वारा वेद का बोला जाना भी निषेध कर दिया है अब आपही मिला सकते हैं कि तुलसीराम का लेख मनु के विरुद्ध है या पं० ज्वालाप्रशाद का (३) मनुजी ने स्त्रियों का वेद का पढ़ना और गुरुकुल में जाना और अग्निहोत्र करना इन तीनों का कतई निषेध कर दिया है यह हम आगे लिखेंगे अब पाठक निर्णय कर सकते हैं कि कौथुमी शाखा के मंत्र का अर्थ हमारा सत्य है या पं० तुलसीराम का।

कन्याओं के वेद पढ़ाने में पं० तुलसीराम एक और प्रमाण लिखते हैं कि "उद्वहेत द्विजोभार्य्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्" पं० तुलसीराम का अभिप्राय यह है कि द्विज जो है वह सवर्णा स्त्री के साथ विवाह करै और स्त्री सवर्णा उसी समय हो सकती है जब कि उसका उपनयन हुआ हो और वह वेद पढी हो। इसके ऊपर प्रथम तो हम यही कहेंगे कि यह प्रमाण जो पं० तुलसीराम ने दिया है यह किसी स्मृति का है कि जिसको आर्यसमाज प्रमाण ही नहीं मानती जब आर्यसमाज इसको प्रमाण नहीं मानती तो फिर इसको प्रमाण में देना क्या भूल नहीं है? इसके अलावा इसमें रक्खा ही क्या है यह श्लोक तो जन्म से वर्ण मान कर लिख रहा है अर्थात् इसका अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण ब्राह्मण की लड़की के साथ और क्षत्री क्षत्री की लड़की के साथ और वैश्य वैश्यकी लड़की के साथ विवाह करै हमें नहीं मालूम किइस श्लोक में कन्याओं का उपनयन और वेद पढ़ना कैसे निकल आया जो पति करे वही स्त्री करे तब भी सवर्णा होती है तो वकील की स्त्री वकालत करने परही सवर्णा होगी। वकीलों को ऐसी स्त्रियां मिलेंगी नहीं अतएव इनको तो कोरा ही रहना पड़ेगा। डिप्टी की स्त्री डिप्टी होनेपर सवर्णा होगी। हिन्दुस्तानको यूरुप बनाने का वेदने ठेका ले लिया। वाह रे वेद और वेद के अर्थ बतानेवाले! इसके आगे पं० तुलसीराम कन्याओं के वेद पढ़ने में सात प्रमाण और देते हैं—

(१) "इमं मन्त्रं पत्नी पठेत" अर्थात् इस मंत्र को पत्नी पढे इससे पं० तुलसीराम स्त्री को वेदका पढ़ाया जाना सिद्ध करते हैं। इसका उत्तर यह है कि श्रौतसूत्र आर्य समाज का धार्मिक ग्रन्थ नहीं है। आर्यसमाज श्रौतसूत्र को त्रिकाल में भी

मानने को तैयार नहीं यदि आर्यसमाज श्रौतसूत्र को प्रमाण में लेती है तब तो श्रौतसूत्रों में लिखा मूर्तिपूजन और मृतक पितरोंका श्राद्ध भी करना पड़ेगा। इस सूत्र में पत्नीको जिस मंत्रके उच्चारणकी आज्ञा है वह मंत्र वेदका नहीं है किन्तु सूत्रोक्त है पं० तुलसीरामको ऐसा प्रमाण देना चाहिए जिससे स्त्रीका वेद पढ़ना सिद्ध हो।

(२) "वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेत्" इस प्रमाण के लिए हमने बार बार श्रौत सूत्रों को देखा परन्तु श्रौतसूत्रों में कहीं पर भी इस मंत्र का पता न चला। हमारा अनुमान है कि जिस प्रकार रुपये इकट्ठे करने के लिए स्वामी दयानन्दजी ने मनु के नाम से "विविधानि च रत्नानि विविक्तेषू पपादयेत्" आधा श्लोक गढ़ लिया था और विधवा विवाह चलाने के लिये अखिलानन्द ने मनु के नाम से दो तीन श्लोक गढ़कर वैधव्य विध्वंसक चम्पू में विधवा विवाह बतानेवाले लिख दिये हैं इसी प्रकार यह मंत्र भी श्रौतसूत्र के नाम से गढ़ कर तैयार किया गया है यदि कोई आर्यसमाजी किसी समय में इस मंत्र को श्रौतसूत्र में दिखलायेगा तो हम उसका धन्यवाद देते हुए प्रीति के साथ तोषदायक उत्तर देंगे।

(३) पं० तुलसीराम बृहदारण्यक उपनिषद् का प्रमाण देकर याज्ञवल्क्य की धर्मपत्नी मैत्रेयी को ब्रह्मवादिनी लिखते हैं। पं० तुलसीराम को यह विचारना चाहिये था कि आर्यसमाज न तो हिन्दुओं के इतिहास को ही सत्य मानती है और न बृहदारण्यक ग्रन्थ को ही प्रमाण कोटी में लेती है फिर आर्यसमाजी किस आधार पर निर्णय कर सकते हैं कि स्त्री को वेद पढ़ना चाहिए कि नहीं (२) ब्रह्मवादिनी का अर्थ तो यह है कि (ब्रह्म) 'ईश्वर को कहनेवाली' ईश्वर का ज्ञान तो विना वेद के वेदान्त दर्शन आदि से भी हो सकता है और यदि पं० तुलसीराम मैत्रेयी का वेद पढ़ना मानते हैं और असली सिद्धान्त स्त्री का पाठशाला में जाकर वेद पढ़ना बतलाते हैं तो फिर पं० तुलसीराम यह प्रमाण दें कि मैत्रेयी किस अवस्था में, किस गुरुकुल में, किस आचार्य ने उपनयन करवाकर कितनी संहिताओं की विदुषी करदी थी? एक बात और भी कहना है कि केवल इतिहास से धर्म का निर्णय नहीं हुआ करता यदि केवल इतिहास से ही धर्म का निर्णय होजावे तो फिर स्मृतियों से कौन काम रहेगा।

(४) प्रमाण पं० तुलसीरामजी यह देते हैं कि मंडन मिश्र की स्त्री विदुषी थी इसका उत्तर यह है कि क्या स्वामी दयानन्दने स्त्रियों का वेद पढ़ाना इसीलिये

लिखा है कि मंडन मिश्र की स्त्री विदुषी थी क्या आज आर्यसमाज ने शंकर दिग्विजय को स्वतः प्रमाण मान लिया है ? क्या आनन्द की बात है कि यदि समाज का काम अटक जावे तो ऐसी दशा में उन ग्रन्थों को भी स्वतः प्रमाण मान लिया जाता है कि जिनका खंडन समाज रात दिन करती है फिर शंकर दिग्विजयके स्वतः प्रमाण मानने से भी तो कार्य सिद्धि नहीं होती । मनु इसका विरोध करते हैं मनु कहते हैं कि केवल इतिहास से धर्म का निर्णय मत करो, किन्तु—

वेदःस्मृतिःसदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधंप्राहुः साक्षाद्धर्मस्यलक्षणम् ॥

मनु अ० २ श्लो० १२

वेद, धर्मशास्त्र, सदाचार, और अपने आत्माकी प्रियता इन चार प्रकार से धर्म का निर्णय करो । प्रथम देखो इस विषय में वेद की क्या आज्ञा है जब वेद की आज्ञा मिल जावे तब फिर धर्मशास्त्र को देखो जब धर्मशास्त्र की आज्ञा मिल जावे तब फिर सदाचार एतिहासिक चरित्र देखो फिर उस में अपने मनकी प्रियता देखो इन चार कायदों से धर्म का निर्णय होता है । वेद में न तो मनुष्यों का वेद पढ़ना बतलाया और न स्त्रियों का। वेद से दूसरा नम्बर धर्मशास्त्र का है धर्मशास्त्रने यह बतलाया कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कुल में उत्पन्न पुरुष अपने आचार्य कुल में बास करें और वेद पढ़ें और इन कुल में उत्पन्न हुई कन्या आचार्य कुल में बास न करें उपनयन न पहिनें और वेद न पढ़ें जब कि धर्मशास्त्र ने स्त्रियों के वेद पढ़ने का निषेध कर दिया तब फिर उसको इतिहास उड़ा नहीं सकता । स्मृति आज्ञा इतिहास से सर्वदा प्रमाण रहती है जहां पर इतिहास और धर्मशास्त्र में विवाद होगा वहांपर धर्मशास्त्र मानना होगा । धर्मशास्त्रने स्त्रियों के पढ़ने का निषेध कर दिया है अतएव इतिहास में स्त्रियों के विदुषी मिलने पर भी स्त्रियों का पढ़ाया जाना यह धर्म नहीं है ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी तीन प्रमाण व्याकरण के देते हैं जिनसे स्त्रियों का विदुषी होना सिद्ध होता है किन्तु वेदज्ञाता होना सिद्ध नहीं होता । यहां पर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने स्त्रियों के वेद पढ़ाने पर तर्क की है न कि अक्षर मात्र पर सो तो पं० तुलसीरामजी सिद्ध नहीं कर सके कि अमुक ग्रन्थमें स्त्रियों का वेद पढ़ना

लिखा है। पं० तुलसीरामने लेख की समाप्ति करते हुए यह भी लिख दिया कि कन्याओं का उपनयन होता था यदि कन्याओं का उपनयन होना वास्तव में वेद विधि है तो फिर वर्तमान आर्यसमाज क्यों नहीं करती इस के अलावा इसी प्रकरण में स्वामी दयानन्द ने द्विज जाति के लड़कों का यज्ञोपवीत तो बतलाया और द्विज जाति की लड़कियों का यज्ञोपवीत नहीं बतलाया और तुलसीराम जी बतलाते हैं तो इन दो में से वर्तमान आर्यसमाज को किस की आज्ञा माननीय है मुझे आशा है कि इसका निर्णय प्रतिनिधियां अवश्य करेंगी।

इसके आगे स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि उपनयन संस्कार (घर और आचार्य कुल में) दो बार होना चाहिये। स्वामी दयानन्द के लेख को देखकर हँसी आये विना नहीं रहती। यज्ञोपवीत संस्कार का दोवार होना वेदादि शास्त्रमें कहींपर त्रिकाल में भी नहीं मिल सकता न मिलने परही शास्त्र की आज्ञा न रहने पर भी स्वामी दयानन्द के इस लेख को दो लाख समाजी सत्य मानते हैं क्या बात है या तो ये संस्कृत नहीं जानते और नहीं तो इनका खयाल यही होगा कि "बाबा वचनं प्रमाणम्"। यदि हम यही समझ लें कि हमारा आक्षेप करना व्यर्थ है और उपनयन संस्कार दोही बार होता है तो फिर आर्यसमाजी भाई इसका प्रमाण क्यों नहीं देते या अपने बालकोंका दो बार उपनयन क्यों नहीं करवाते? यदि इनको स्वामी दयानन्द के लेखानुसार दो बार उपनयन करने में उज़्र है तो क्या यह सिद्ध नहीं होता कि इसको तो आर्यसमाजी भी नहीं मानते। जब यह आर्यसमाजियों को भी अमान्य है तो इसका सत्यार्थप्रकाश से निकाल देना कोई पाप है। पं० ज्वालाप्रसादजी ने इसपर आक्षेप किया किन्तु पं० तुलसीरामजी ने न तो उत्तर दिया और न उसका अयोग्य होनाही स्वीकार किया। प्रेस की अशुद्धता का बहाना लेकरही निकाल देते कुछ भी न करना क्या यह पक्षपात नहीं इन आचारणों से तो प्रलय तक भी धर्म निर्णय न होगा।

अब इसके आगे स्त्री के उपनयन तथा आचार्य कुल में वास और वेद के पढ़ने का विचार करता हूँ किन्तु इस विचार से प्रथम कुछ उपयोगी बातों का लिखना उचित और आवश्यकीय समझता हूँ।

आज भी संसार में प्रत्येक जाति अपने चार भाग रखती है और इन चारों भागों के पृथक् पृथक् लियाकत, ताकत, तिजारत, खिदमत ये चार काम हैं इसी प्रकार

हिन्दू जाति में भी चार भागों के चार काम हैं किन्तु फर्क इतना है कि और और जातियां इन भागों को कर्म के अनुसार मानती हैं किन्तु हिन्दू जाति ने इसको जन्म से रक्खा है।

इस में बहुत कारण हैं उनको मैं वर्ण व्यवस्था में लिखूंगा केवल कुछ आवश्यकीय बात लिखता हूं—प्राचीन ऋषि मुनियों ने इसके ऊपर बहुत गहिरे विचार कर के यह फल निकाला था कि ब्राह्मण का लड़का जिस अल्प समय में आसानी के साथ जैसा वेद का विद्वान् हो सकता है वैसा अन्य वर्ण का नहीं क्योंकि उस को उठते, बैठते, खाते, बात करते, सर्वदा वेद के अभिप्रायों को सुनने या जानने का मौका मिलता रहता है उसके पिता आदि इसी काम को करते रहते हैं। इसी प्रकार क्षत्री आदि के बालकको अपने अपने काम में निपुण होने की बड़ी भारी आसानी मिलती रहती है दूसरे पिता आदि की प्रकृति का प्रभाव भी पुत्र के ऊपर अवश्य पड़ता है इत्यादि बातों को विचार कर मन्वादि ऋषियों ने जन्म से वर्ण व्यवस्था कायम कर दी। लियाकत (पढ़ने पढ़ाने) का काम ब्राह्मणों के ऊपर रक्खा और प्रजा की रक्षा करने का काम क्षत्रियों के आधीन किया, तिजारत व्यापार वैश्य जाति के ऊपर छोड़ दिया और देश सेवा शूद्रों के आधीन कर दी।

शूद्रों की अपेक्षा वैश्यों में धर्म का बंधन अधिक लगाया और वैश्यों की अपेक्षा क्षत्रियों को और उनकी अपेक्षा ब्राह्मणों को सब से अधिक धर्म का जिम्मेदार ठहराया इस के अनेक उदाहरण वेदादि शास्त्रों में मिलते हैं आप केवल एक इसी उदाहरण से समझ सकते हैं कि यदि कोई शूद्र हिन्दू जाति से भिन्न जातियों हिन्दुओं में भी श्वपच आदि जाति का अन्न ग्रहण कर ले तो उस को प्रायश्चित्त न्यून और द्विज को अधिक करना पड़ता है।

शूद्र की अपेक्षा द्विजाति के ऊपर धर्म का भार अधिक है इस कारण द्विजातियों को यज्ञ करने का अधिकार दिया गया। जिन जातियों को यज्ञ का अधिकार दिया उन्हीं जातियों को उपनयन संस्कार का भी अधिकार दिया है इस को आप इस प्रकार समझ सकते हैं कि यज्ञोपवीत ९६ चौव्वे का होता है इसके समझने के लिये एक दृष्टि प्रथम वेद पर डालनी होगी। वेद संख्या अर्थात् वेदके मंत्र एक लाख हैं "लक्षं वेदाश्चत्वारो लक्षमेकन्तु भारतः" अर्थात् चारो वेदों के मन्त्र एक लाख और महाभारत की श्लोक संख्या एक लाख है। एक लक्ष वेद मंत्र तीन भागोंमें विभाजित

हैं कर्मकाण्ड उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड यह इन तीनों भागों के नाम हैं। वेद में अस्सी ८० हजार मंत्र कर्मकाण्ड के, १६ हजार मंत्र उपासनाकाण्ड के शेष चार हजार मंत्र ज्ञानकाण्ड के हैं।

जिस समय बटुक उपनयन को कन्धे में डालता है उसी दिन से ८० हजार मंत्रों में कहे कर्मकाण्ड और १६ हजार मंत्रों में कहे उपासनाकाण्ड का जिम्मेदार बनता है इसी कारण से ९६ चौव्वे का जनेऊ रक्खा है। ९६ चौव्वेका अभिप्राय यही है कि ८० हजार कर्मकाण्ड के मंत्रों में कहे कर्म और १६ हजार मन्त्रों में कही उपासना को आज मैं अपने कन्धे पर रखता हूं और यज्ञोपवीत में ग्रन्थी लगाने का अभिप्राय यह है कि इसको नहीं भूलूंगा। जिस समय तक द्विज इन दोनों काण्डोंका अधिकारी रहता है उस समय तक यज्ञोपवीत को अपने कन्धे पर रखता है जिस समय इन दोनों में परिपक्व होकर ज्ञानकाण्ड में जाता है उस समय यज्ञोपवीत को उतार कर फेंक देता है और संन्यासी बन जाता है उपनयन करना क्या है मानो कर्म काण्ड और उपासनाकाण्ड धारण करने का इकरारनामा या विशेष चिन्ह है अतएव स्मृतिकारों ने यज्ञाधिकारियों को उपनयन पहिनने की आज्ञा दी और शेष को नहीं दी इसी कारण से स्त्री और शूद्र का उपनयन संस्कार नहीं होता क्योंकि उनको यज्ञादि कर्म का अधिकार नहीं है चारों वर्णों के अधिकार मनुने इस प्रकार बतलाये हैं—

अध्यापन मध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणा नाम कल्पयत्॥

मनु० अ० १ श्लो० ८८

अर्थ—पढना, पढाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, ये ६ कर्म ब्राह्मणों के बनाये।

प्रजानां रक्षणं दान मिज्याध्ययन मेव च।
विषयेष्व प्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

मनु० अ० १ श्लोक ८९

अर्थ—प्रजाओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना,

वेद पढना, विषय जो गाना नाचना आदि हैं तिन में चित्त का न लगाना, ये संक्षेप से क्षत्रियों के कर्म्म बनाये।

पशूनां रक्षणं दान मिज्याध्ययन मेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च ॥
मनु० अ० १ श्लो० ९०

अर्थ—पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, जल में नाव वा जहाजों से और स्थल में भारबरदारी आदि से व्यापार करना, ब्याज लेना और खेती करना ये ६ वैश्य के कर्म्म नियत किये।

ऊपर के लेख से यह सिद्ध है कि शूद्रों को यज्ञ का अधिकार नहीं। यज्ञ का अधिकार न होने के कारण इनको उपनयन का अधिकार भी नहीं दिया गया। संस्कारों के अधिकार मनु ने जो बतलाये हैं उनको नीचे पढिये—

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषकादिद्विजन्मनाम् ।
कार्यः शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥
मनु० अ० २ श्लो० २६

अर्थ—वैदिक कहिये वेद में कहे हुए मंत्र योग आदि शुभ कर्म्मों को करिके द्विजों का गर्भाधान आदि संस्कार करना चाहिये वह पावन कहिये पाप के क्षय कारण हैं प्रेत्य कहिये परलोक में यज्ञादि फलों के सम्बन्ध से और इह कहिये इस लोक में भी वेदाध्ययन आदि में अधिकार से प्रसंग पडने पर। मनु फिर शूद्र की व्यवस्था देते हैं—

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कार मर्हति ।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥
मनु० अ० १० श्लो० २६

अर्थ—लहशुन आदि के खाने में शूद्र को कुछ पातक नहीं होता है तो ब्रह्म वध आदि में होता ही है क्योंकि "अहिंसा सत्य मस्तेयं" अर्थात् हिंसा न करना सत्य बोलना चोरी न करना यह चारों वर्णों को साधारणता से कहा है और यज्ञोपवीत आदि संस्कारों के योग्य नहीं है और इस का अग्निहोत्र आदि कर्म्मों में अधिकार नहीं है क्योंकि विहित नहीं है और शूद्र को कहे हुए पाक यज्ञ आदि धर्म से इसका निषेध नहीं है अर्थात् पाक यज्ञ आदि करे।

अब मनु जी महाराज यह बतलाते हैं कि जिस का यज्ञोपवीत होगया हो आचार्य उसी को वेद पढ़ावे।

उपनीय तुयः शिष्यं वेद मध्यापयेद्द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥

मनु० अ० २ श्लो० १४०

अर्थ—जो ब्राह्मण शिष्य का यज्ञोपवीत करके कल्प कहिये यज्ञ विधि और रहस्य कहिये उपनिषद सहित सब वेद की शाखा को पढाता है उसको आचार्य्य कहते हैं।

पाठक वर्ग! मनु के इस लेख से भली भांति समझ में आ जाता है कि जिन को यज्ञ करने का अधिकार है उन्हीं को उपनयन पहिनने का और जिस ने उपनयन पहिना है उसी को वेद पढ़ने का अधिकार है। जिसको यज्ञ का अधिकार नहीं उस को उपनयन का भी अधिकार नहीं और जिसने उपनयन नहीं पहिना है वह वेद नहीं पढ़ सकता।

शूद्र जाति को यज्ञ करने का अधिकार नहीं इस वास्ते मन्वादि महर्षियों ने उपनयन का भी अधिकार नहीं दिया और उपनयन के बिना वेद नहीं पढ़ाया जाता इस वास्ते शूद्रों को वेद पढ़ाने का निषेध कर दिया है इस विषय में स्वामी दयानन्द जी ने शूद्र को उपनयन के बिना ही वेद पढ़ने का अधिकार दिया है इस में हम

अपनी बुद्धि के अनुसार यही कह सकते हैं कि स्वामी दयानन्द मन्वादि स्मृतियों से अनभिज्ञ थे या तो फिर यही अनुमान कर सकते हैं कि स्वामी जी धर्म को किंचित मात्र भी नहीं मानते थे अर्थात् इन को वैदिक धर्म से घृणा हो गई थी और वैदिक धर्म का बहाना ले कर वैदिक धर्म पर कुठार चलाते हुए हिन्दुस्तानियों को योरूपीय बनाने में धार्मिकता और बहादुरी समझते थे। कई दिन तक तो स्वामी दयानन्द के (शूद्र को वेद पढ़ाना) इस सिद्धान्त पर आर्यसमाजियों का विश्वास रहा कि शूद्र भी वेद पढ़ सकता है परन्तु जब समाजियों ने दयानन्द तिमिर भास्कर आदि पुस्तकों को देखा तब मालूम हुआ कि शूद्र को वेद पढ़ाना दयानन्द का यह सिद्धान्त १६ आना वेद विरुद्ध है और जिन्हों ने सत्यार्थप्रकाश को छोड़ कर और पुस्तक नहीं देखी वे अब भी स्वामी दयानन्द के लेख को ही पत्थर की लकीर समझते हैं।

इस विषय में आर्यसमाज में तीन पार्टी हो गई हैं एक प्रथम पार्टी का तो यह कहना है कि स्वामी दयानन्द जो कुछ लिख गये वही मानना होगा और शेष किसी भी महर्षि के लेखपर ध्यान न दिया जावे। इस पार्टी के मुखिया बाबू घासीराम जी एम. ए. तथा महात्मा मुन्शीराम आदि २ हैं और यह पार्टी बाबू पार्टी के नाम से प्रसिद्ध की गई है और दूसरी पार्टी शूद्रों को वेद पढ़ाना तो क्या वेद के सुनाने में भी पाप समझती है इस पार्टी के नेता पं० भीमसेनजी शर्मा अध्यापक महा विद्यालय ज्वालापुर तथा पं० अखिलानन्द आदि आदि हैं और तृतीय पार्टी वह पार्टी है कि जो दोनों के बीच में रहती है कभी तो बाबू पार्टी की पुष्टि का लेख लिख देती है और कभी पंडित पार्टी की पुष्टि का, इस पार्टी के पारसाल से जितने लेख छपे हैं उन में से साफ नतीजा कोई भी मनुष्य नहीं निकाल सकता कि इन्हों ने किस पार्टी की पुष्टि में यह लेख लिखा है इसके एक ही लेख से बाबू पार्टी अपने सिद्धान्त की पुष्टि और पंडित पार्टी अपने सिद्धान्त की पुष्टि समझ सकती है इस पार्टी के मुखिया पं० तुलसीराम तथा छुट्टनलाल आदि हैं। इस वर्ष गुरुकुल सिकंदराबाद में तीनों पार्टियों के मनुष्य इकट्ठे हुए थे वहां पर जो कुछ भी बात चीत या काररवाई हुई है उस को मैं ता० २० मार्च सन् १९१५ ई० के सद्धर्म प्रचारक साप्ताहिक पत्र में से हूबहू लिखे देता हूँ पाठक पढ़ने का कष्ट उठावें।

सिकन्दराबाद में जन्म ब्राह्मण लीला।

सेवा में निवेदन है कि गुरुकुल सिकंदराबाद का उत्सव तिथि १४। १५ तथा

१६ फरवरी १९१५ को बड़ी विचित्र घटनाओं से पूर्ण समाप्त हुआ यत्किंचित् वृत्तान्त पाठकों के ज्ञानार्थ यहां अंकित करता हूं—

प्रथम दिवस १४ को प्रातःकाल जो पंडित मंडली वहां इकट्ठी हुई थी वर्ण व्यवस्था विषय पर विचार करने लगी सभापति के आसन को पं० भीमसेन अध्यापक महा विद्यालय ज्वालापुर ने ग्रहण किया था।

वक्ताओं में से सब से प्रथम पं० अखिलानन्दजी उठे इन्हों ने सत्यार्थप्रकाश को उठा सभा के सदस्यों को ललकार* के कहा मैं दावे के साथ हर्ष पूर्वक कहता हूं कि स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में ९९ बार गुण कर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था को माना है व मानना चाहिये मेरे लेखों को आप लोग अन्यत्र समाचार पत्रों में देखेंगे जो कि प्रकाशित हो चुके हैं वा होंगे। इस आर्य्यसमाज के अन्दर ऐसे पुरुष आ घुसे हैं जो कि गुण कर्मों से वर्ण व्यवस्था मान कर ब्राह्मण बनना चाहते हैं, ब्राह्मणत्व का अधिकार करना चाहते हैं परन्तु यह हो नहीं सकता असम्भव है आदि आदि कथन कर बैठ गये।

इनके पश्चात् पं० जनमेजय† उठे और कहा कि सत्यार्थप्रकाशके स्वमन्तव्यामन्तव्य सं० १६ को देखिये वहां श्रीस्वामीजी लिखते हैं "वर्णाश्रम को गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूं" यह सब को मानना योग्य है, इत्यादि। इस पर पं० दिलीपदत्तजी उपाध्याय ज्वालापुर ने कहा—

यदि सत्यार्थप्रकाश में ९९ बार भी वर्ण निर्णय गुण कर्म स्वभावानुसार लिखा हुआ हो और स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में गुण कर्म की योग्यता से वर्ण निर्णय एक बार ही लिखा है तो भी स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश का लेख अधिक तर माननीय है, इत्यादि। फिर पं० अखिलानन्दजी ने कहा कि जो स्वमन्तव्यामन्तव्य में गुण कर्म के साथ स्वभाव शब्द युक्त नहीं किया उसका कारण प्रेस की भूल व स्वामीजी का भूल जाना है इसी पर पं० छुट्टनलाल स्वामी मेरठ ने कहा प्रेस की भूल है यदि प्रेस की भूल हो तो भी गुण कर्मों की योग्यता इस से पद समूह में कर्म शब्द बहुवचनान्त होने से स्वभाव का बोधक हो जाता है।

अब पं० प्रयागदत्त जी अवस्थी ने स्वभाव की आलोचना की। उन्होंने कहा स्वभाव माता पिता से आता है इस लिये स्वभाव गुण कर्म के साथ अवश्य होना

* यह आक्षेप है। † यह बाबू पारटी के हैं।

चाहिये इस पर एक पंडित ने कहा देखो (आर्योद्देश्यरत्नमाला सं०) वहां स्वभाव का लक्षण स्वामीजी क्या लिखते हैं "स्वस्यभावः" स्वभावः । जो अपना भाव हो यथा अग्नि का जलना दाह करना । फिर एक महाशय ने कहा स्वभाव अदलता बदलता रहता है स्वभाव दो प्रकार का होता है एक नैमितिक है दूसरा स्वाभाविक है अतः माता पिता के रजवीर्य पर स्वभाव निर्भर नहीं हो सकता क्योंकि स्वभाव बदलता रहता है, इत्यादि ।

इनके पश्चात् पं० नन्दकिशोरजी उपदेशक उठे और कुछ कहा—

सब से पीछे पं० भीमसेनजी ज्वालापुर निवासी सभापति उठे और कहा कि बहुत विवाद हो चुका है इस वर्ण व्यवस्था पर आप विद्वान् पंडितों ने बहुत कुछ कहा परन्तु मेरी निश्चित रूप से यह सम्मति है कि जो जिस जिस वर्ण में है वह उस वर्ण में रहे क्या आवश्यकता है कि वह अन्य वर्ण में जावे हां शूद्रादि विद्या पढें विद्या पढ़ने से उन लोगों को यश हो सकता है जब शूद्र पढ़ लिख जायगा तब उसका स्वतः यश होगा शूद्र शब्द से क्यों घृणा की जाय क्या शूद्र शब्द से शूद्र वर्णस्थों का अपमान होसकता है ? नहीं, अतः अपने अपने वर्ण में सब कोई रहें अपने वर्ण को छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है, इत्यादि । सभा समाप्त होते ही अनेक पुरुष कोलाहल करने लगे और पूछने लगे कि क्या निश्चय हुआ ।

दूसरे दिन १५-२-१५ को फिर सभा आरम्भ हुई । आज तीन विषय थे- (१) शूद्रों को यज्ञोपवीत का अधिकार है कि नहीं (२) कौन कौन वर्ण किस किस वर्ण का पवीत करवावें (३) किस किस वर्णस्थ के हाथ का खान पानादि करना चाहिये ।

आज सभापति के आसन को पं० नन्दकिशोरजी उपदेशक ने ग्रहण किया था । वक्ताओं में से सब से प्रथम पं० अखिलानन्दजी उठे और कहा कि स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में अनेक आचार्यों का मत दर्शाते हुए लिखा है कि शूद्रों को उपनयन किए बिना संहिता भाग छोड़कर अन्य विद्या पढ़ना चाहिये, इत्यादि ।

इनके पश्चात् पं० जनमेजय ने सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास में से "यथे मां वाचं कल्याणी माव दानि जनेभ्यः" इस वेद मंत्र को भाषार्थ सहित पढ़ कर सुनाया और कहा कि यह वेद मंत्र अन्य प्रमाणों की अपेक्षा स्वतः ईश्वरोक्त प्रमाण होने से माननीय है इसके सन्मुख अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं । इस वेद मंत्र

से स्पष्ट सिद्ध होता है कि शूद्रों को भी वेदों के पढ़ने का अधिकार है। फिर पंडित अखिलानन्दजी उठे और कहा कि स्वामीजी कृत यजुर्वेद भाष्य के अन्य महीधरादि भाष्यों को मिलाना चाहिये क्योंकि स्वामीजी कृत भाष्य इस वेद मंत्र का अशुद्ध है अर्थ व्याकरण की रीत्यनुसार होना चाहिये । अपना पाण्डित्य जिताते हुए अखिलानन्द ने स्पष्ट रीति से महर्षि कृत अर्थ का अपमान किया सभापति ने मर्यादा से उल्लंघन करते देख इन्हें बैठा दिया ।

इनके पीछे पं० बालमुकुन्दजी उपदेशक करनाल मंडल उठे और कहा कि जो लोग ऋषि का अपमान करते हैं वह स्वार्थी* हैं मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है परमात्माने सूर्य्य चन्द वायु आकाश जल पृथिवी सब के लिये समान † की है ऐसे ही परमात्मा का ज्ञान वेद मनुष्य मात्र के लिये है यदि द्विजों के लिये होता तो परमात्मा पक्षपाती हो जाते, इत्यादि । तदन्तर एक व्यक्ति ने कहा आर्य्य-समाज नियम सं० ३ में वेदों का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म बतलाया है इस में सुनना शूद्रों का है और पढ़ना पढ़ाना द्विजों के लिये है । पुनः पं० बालमुकुन्दजी व पं० त्रिलोकनाथजी अध्यापक सिकन्दराबाद में सत्यार्थप्रकाश में से मनुष्य मात्र को वेदों के पढ़ने का अधिकार है सिद्ध कर दिखाया । पीछे पं० नरसिंह शर्मा उपदेशक राजस्थान ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदों के पढ़ने का अधिकार सब के लिये सिद्ध किया । तदनन्तर पं० सन्तरामजी मोगावाले उठे और कहा कि तुम लोग विषयान्तर में हो ।

"शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार" तो है परन्तु उपनयन का नहीं क्योंकि संस्कारविधि में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यका उपनयन लिखते हैं शूद्रों का नहीं, इत्यादि ।

इनके पश्चात् जनमेजयजी उठे और कहा शूद्र किस अवस्था में और कब होता है सत्यार्थप्रकाश में व अन्य शास्त्रों में लिखा है ब्राह्मण १६ वें क्षत्रिय २२ वें और वैश्य २४ वें वर्ष में उपनयन हुवे बिना शूद्र हो जाते हैं ।

अतः सिद्ध होता है कि विद्या पढ़ने की योग्यता न होने तथा उपनयन न कराने पर ब्राह्मणादि से शूद्र होता है । उपरोक्त नियमानुसार पुरुष चाहे किसी कुल

* उत्तर नहीं दे सकता गालियां देताहै † सबको एक सम मानता है यदि मास्टर बालक के तमाचा लगादे तो बालक मास्टर को ठीक कर कहदे कि सब समान है ।

में भी उत्पन्न क्यों न हुआ हो शूद्र होगा अन्य जाति अतः मनुष्य मात्र को वेदों के पढने का अधिकार है और उपनयन* का भी अधिकार है, इत्यादि ।

तदनन्तर पं० भीमसेनजी अध्यापक ज्वालापुरके उठे और बोले कि तुम लोग बारबार सत्यार्थप्रकाश आदि स्वामीजी कृत ग्रन्थों को उठाते हो तुम किस दावे से कहसकते हो कि ये पुस्तकें ठीकहैं क्या स्वामी दयानन्द निर्भ्रान्तथे अन्य ऋषि मुनि भ्रांति युक्त थे स्वामी दयानन्द मनुष्य थे भ्रान्ति युक्त भी थे क्या जो कुछ उन्होंने लिखा सत्य लिखा व अन्य ऋषि मुनियों ने मिथ्या लिखा है अतः हम को जानना चाहिये कि स्वामी दयानन्दजी भी भूल कर सकते हैं ।

शूद्रों को वेद का पढ़ाना तो दूर रहा सुनाना भी नहीं चाहिये और ब्राह्मणादि को चाहिये कि यदि शूद्र यज्ञशाला के समीप व वेद पढ़ते समय आजाए तो सब कृत्य बन्द कर दें और शूद्र को पास न फटकावें हम ने अब तक अपनी आत्मा का खून किया और अपने पांडित्य का नाश किया अब न करेंगे, इत्यादि ।

खान पान भी उत्तम वर्ण व्यवस्था का करना चाहिये शूद्रों के हाथ से नहीं । अन्त में सभापति पं० नन्दकिशोरजी ने कहा अब अनेक प्रकार के वाद विवाद हो चुके निश्चित कुछ भी नहीं हुवा कोई कुछ भी क्यों न कहे महर्षि दयानन्दके लेखानुसार मानना चाहिये । सभापति के भाषण के अनन्तर सभा समाप्त हुई ।

सभा समाप्त होतेही श्रोतागण परस्पर कहने लगे शोक है फिर आर्यसमाज के अन्दर स्वार्थी पाखण्डी नास्तिक लोग आने लगे हैं जिस से वैदिकधर्म को हानि पहुँचेगी अच्छा हो कि ये नास्तिक पुरुष समाज से वहिष्कृत हों और धर्म को हानि न पहुँचे ।

धर्म का सेवक

जनमेजय ।

जनमेजय बाबू पार्टी के हैं इस कारण से पं० पार्टीवालों पर इस लेख में कटु शब्दों की वर्षा की गई है जब सनातनधर्मी आर्यसमाजियों के बाइकाट करने का रिज़ोलूशन पास करते हैं या प्रस्ताव रखतेहैं तब आर्यसमाजके अखबार सनातन धर्मियों के पीछे मक्खी और मच्छरों की तरह पड़ जाते हैं। लेकिन जनमेजय ने

* स्वामी दयानन्दजी तथा मन्वादि ऋषियों से विद्वान् है या धर्म को तिलांजली दे चुका है ।

इस लेख में जन्म से वर्ण व्यवस्था माननेवाले ब्राह्मणों के लिये बाइकाट करने की सम्मति खुलासा दी है किन्तु इतने पर भी किसी आर्यसमाजी ने चूं तक नहीं की। जनमेजय ने ब्राह्मणों का जो बाइकाट करना लिखा है यह कोई नई बात नहीं है। यह प्रस्ताव यू. पी. की प्रतिनिधि के उत्सव में भी आचुका है, सद्धर्मप्रचारकने भी ब्राह्मणों पर बहुत हमले किये हैं, भास्करप्रकाश ने भी कुछ कसर नहीं छोड़ी, आर्य मित्र ने भी ब्राह्मणों को गालियां देने में कुछ उठा नहीं रक्खा। यह झगड़ा अखबारी जगत में ही नहीं किन्तु कार्यक्षेत्र में भी आगया। सम्वत् १९७१ का वेदप्रकाश बतला रहा है कि गुरुकुल कांगड़ी में तीन सौ के ऊपर ब्रह्मचारी हैं जिनमें केवल २५ बालक ब्राह्मण जातिके हैं। सम्बत् १९७१ में प्रतिनिधि यू पी के उत्सव वृन्दावनमें पं० अखिलानन्द तथा मुरारीलाल आदि आदि ब्राह्मणों के व्याख्यानों का बाइकाट भी होचुका है। महात्मा मुन्शीराम आदि समाज के नेताओं ने ब्राह्मणों को पेटभर गालियां देकर अपना मन भी प्रसन्न किया है। इन सब बातों का तात्पर्य यही है कि स्वामी दयानन्द के गप्पोड़ों को सत्य क्यों नहीं माना जाता और ऋषि मुनियों को गालियां क्यों नहीं दीजातीं, धर्म का निर्णय क्यों किया जाता है, ब्राह्मण पार्टी वेदों की रक्षा क्यों करती है? वास्तव में आर्यसमाज वेद और ब्राह्मण की शत्रु है।

मुन्शीराम आदि आर्यसमाजी जान बूझकर धर्म का नाश केवल इस लिये कर रहे हैं कि संसार में हमारी प्रसिद्धि हो और हम आर्यसमाज के नेता कहलावें। जान बूझकर धर्म का बिगाड़ा जाना देखकर पंडित पार्टी को भी हमारी भांति आर्य समाज के सुधार करने के लिये लेखनी उठानी और व्याख्यान देने पड़ते हैं। जो सिद्धान्त सनातनधर्मी पंडित रखते हैं उसी सिद्धान्त का उपदेश पं० भीमसेन ने किया है परन्तु नतीजा यह निकला कि बाबू पार्टी पं० भीमसेन आदि की जान की दुश्मन होगई। जब यह अपनेही पंडितों के उपदेश को नहीं मानती तब फिर हम क्या आशा कर सकते हैं कि हमारे लेखों से वर्त्तमान आर्यसमाज का कुछ सुधार होगा। आर्यसमाज का तो यह सिद्धान्त है कि कोई भी विद्वान् कहे, श्रुति कहे, स्मृति कहे, स्वतः स्वामी दयानन्द आकर समझावें किन्तु यह किसी की भी नहीं मानेगी यह तो उसी सड़कपर चलेगी कि जिसपर अमेरिका आदि देश चल रहेहैं अस्तु यहांपर हम को इतनाही बतलाना है कि शूद्रों के विषय में जो सिद्धान्त सनातनधर्मी विद्वानों तथा श्रुति स्मृति का है वही सिद्धान्त पंडित पार्टी के विद्वानों का है। शूद्रों को वेद

न पढ़ाया जाना सिद्ध होगया अब इस में अधिक लिखने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। स्वामी दयानन्द शूद्रों के वेद पढ़ाने में "यथेमांवाचंकल्याणीं" एक प्रमाण आगे और देंगे इस का उत्तर वहीं पर दे दिया जावेगा यहां पर इतनाही कह देना काफी समझता हूँ कि स्वामी दयानन्दजी ने इस मंत्र का जो अर्थ लिखा है वह मन माना और अयोग्य है इसके ऊपर पंडित अखिलानन्दजी ने सिकन्दराबाद में यही कहा कि स्वामी दयानन्द कृत अर्थ गलत है जिसको आर्यसमाजी पंडितही गलत कह रहे हैं फिर उसके अर्थ की सत्यता उर्दू अंग्रेजीवाले सात लाख जन्म में भी सिद्ध नहीं कर सकते।

अब यह निर्णय रहगया कि वेद को छोड़कर शूद्र और और विद्यायें भी पढ़ सकता है या नहीं इसके ऊपर यह उत्तर है कि साधारण धर्मों में सामान्य विद्या पढ़ना यह मनुष्यमात्र का धर्म है और विद्या पढ़ने के लिये किसी भी स्मृतिकार ने निषेध नहीं किया अतएव शूद्र विद्या पढे और विद्या पढ़के सम्पत्ति आदि की उन्नति करे इसमें न कोई निषेध है और न कोई पाप है। शूद्रों की व्यवस्थाका लेख समाप्त करता हुआ स्त्रियों के लिये धर्म का विचार आरम्भ करता हूँ जिसप्रकार शूद्रों को यज्ञ उपनयन वेदाधिकार नहीं है इसी प्रकार स्त्रियों को भी नहीं है। महर्षि मनु प्रथम स्त्रियों को यज्ञ का निषेध करते हैं—

नास्तिस्त्रीणांप्रथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥

मनु० अ० ५ श्लो० १५५

अर्थ—स्त्री जाति को पति से पृथक् यज्ञ करने का अधिकार नहीं और पति की बिना आज्ञा व्रत उपवास नहीं कर सकती वह पति की सेवा करती है उस सेवा ही से उसको उत्तम गति स्वर्ग मिलता है।

इसके आगे मनु लिखते हैं कि स्त्रियों के संस्कार में संस्कारकर्त्ता आचार्य वेद मंत्रों का उच्चारण न करे—

अमंत्रिकातुकार्येयं स्त्रीणामावृतशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥

मनु० अ० २ श्लो० ६६

अर्थ—स्त्रियों का जाति कर्मादि क्रिया कलाप कहेहुए काल के क्रम से शरीर संस्कार के लिये विना वेद मंत्रों के करना चाहिये।

अब इसके आगे मनु स्त्रियों को उपनयन, गुरुकुल में वास, वेद पढ़ना, अग्नि होत्र करना इसका निषेध करते हैं—

वैवाहिको विधिस्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पति सेवा गुरौवासो गृहार्थोऽग्नि परिक्रिया॥

मनु० अ० २ श्लो० ६७

अर्थ—विवाह की विधि ही स्त्रियों का उपनयन संस्कार है और पति सेवा ही गुरुगृहवास और वेदाध्ययन है घर का काम ही सायं प्रातः समिधानयन होम अग्नि सेवा है।

पाठकवर्ग ! आप भलीभांति जानगये कि मनुने यज्ञ और उपनयन वेदाध्ययन गुरुगृहवास अग्निहोत्र का निषेध कर दिया अब कोई भी इन्साफ-पसंद या धर्म-जिज्ञासु पुरुष यह कह सकता है कि स्त्रियों को वेद का अधिकार है? या यों कहिये कि स्त्रियों को वेद पढ़ने की आज्ञा बतलानेवाला धार्मिक कहला सकता है ? पाठक वर्ग ! आप लोग अब यह जान चुके कि स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।

अब सामान्य विद्या का विचार रहगया। जिसप्रकार शूद्रों को सामान्य विद्या पढ़ने का अधिकार है इसीप्रकार साधारण नियमों के अनुसार स्त्रियों को भी विद्या पढ़ने का अधिकार है और उस में कोई भी श्रुतिस्मृति निषेध नहीं करती किन्तु शूद्रों की भांति स्त्रियां प्रत्येक मनुष्य से विद्या नहीं पढ़ सकतीं इसका कारण यह है कि स्त्री स्वभावतः चंचल प्रकृतिवाली होती है अतएव पुरुषों के साथ में इनका बहुसंभाषणादि का निषेध है "नन्वग्निप्रमादानाम घृतकुम्भमयः पुमान्" स्त्री अग्नि है और पुरुष घी का घड़ा है जिस प्रकार अग्नि के संसर्ग से घृत पिघल जाता है उसी प्रकार स्त्री के संग से पुरुष अपनी धार्मिक वृत्तियों का त्याग कर देता है। मनु ने तो यहां तक लिखा है कि—

मात्रास्वस्रादुहित्रा वा नविविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमति कर्षति॥

मनु० अ० २ श्लो० २१५

अर्थ—माता बहिनी अथवा पुत्री इनके साथ भी एकान्त स्थान में न बैठे क्योंकि इंद्रियों का समूह बलवान है शास्त्र की रीति से चलनेवाले पुरुष को भी बश में कर लेता है।

इत्यादि शास्त्र प्रमाणों को देखते हुए स्मृतिकार यह आज्ञा नहीं देते कि कन्या किसी अन्य पुरुष के पास पढ़ने के लिये भेजी जावे और अध्यापिकाओं के पास भी कन्या का पढ़ने को भेजना बुरा है क्योंकि स्त्रियों के द्वारा स्त्रियों के साथ में परपुरुष का संयोग होना सम्भव है और आज कल प्रत्यक्ष में भी कन्या महाविद्यालयों में जहां की स्त्री अध्यापिका हैं पतिव्रतधर्म का जिस प्रकार गला घोटा जाता है वह किसी से छिपा नहीं। लाहौर जैसे प्रसिद्ध शहरों में भी काला मुंह करने के नोटिस लग चुके हैं। इन सब खराबियों को ध्यान में रखते हुए स्मृतिकारों ने यह व्यवस्था दी है—

पितापितृव्योभ्राता वानैनामध्यापयेत्परः।
स्वगृहेचैवकन्याया भैक्ष्यचर्य्याविधीयते॥

(महर्षियम)

अर्थ—कन्या को कन्या का पिता यद्वा पितृव्य कन्या का चाचा या कन्या का भाई ही पढ़ावे अन्य को कन्या के पढ़ाने का अधिकार नहीं है।

जिस समय अपने पति के घर चली जाती है उस समय स्त्री को पति से पढ़ना यह "गुरुरेवपतिस्त्रीणाम्" इत्यादि स्मृतियों के लेख से ऋषियों ने सिद्ध किया है। पिता चाचा भाई पति इनसे भिन्न स्त्री हो या पुरुष किसी को भी स्त्री के पढ़ाने का सत्व नहीं है यह हिन्दू शास्त्रों का सिद्धान्त है।

अब स्त्रियों के लिये अंग्रेजी शिक्षा का विचार शेष रहगया। आजकल भारत वर्ष में एक दल ऐसा भी पैदा होगया है कि जो धर्म का नाम सुनतेही नाक चढ़ाकर "नोनसेन्स धर्म" कह उठता है इनको देश के नाश करनेवाली देशोन्नति का भूत लगा है। यह सज्जन इस समय यह चाहते हैं कि इंगलैंड की भांति भारतमें विधवा विवाह, स्त्रियों की स्वतन्त्रता, सब जातियों का एक भोजन और शरीर के ऊपर योरूपीय ड्रेस हेट बूट कोट हो और भारत में धर्म का नाम न रहे। यह सज्जन रात दिन इस में कोशिश करते हैं और यह इसी को भारत की उन्नति मानते हैं। ईश्वर

का इनको जरा भी भय नहीं। इन्हीं के लीडर स्वामी दयानन्दजी हैं जो ये चाहते हैं स्वामी दयानन्द वही वेद में बतला गये हैं।

आज यह सज्जन स्त्रियों को अंग्रेजी शिक्षा देकर ग्रेजुएट बनाना चाहते हैं बस विचार इतना है कि स्त्रियोंको अंग्रेजी शिक्षा दीजावे या नहीं। शास्त्रकारोंने स्त्री का धर्म पतिव्रत ही माना है पतिव्रत को छोड़कर स्त्री का और दूसरा धर्म ही नहीं। इस को हम "नास्तिस्त्रीणांपृथग्यज्ञो" मनु के इस श्लोक से दिखा चुके हैं। जिस स्त्री ने अपने पतिव्रतधर्म को बचा लिया संसार में वही धार्मिका और पूजनीया है। स्त्रियों के पतिव्रतधर्म रखने के अनेक उपदेश मन्वादि ऋषियों ने बतलाये हैं। जब मन्वादि ऋषियों को यह विचार हुआ कि स्त्री पुरुष के साथ संसर्ग करती हुई अपने पतिव्रतधर्म को बचा नहीं सकती तब उन्होंने स्त्री को सर्वदा के लिये परतन्त्र बना दिया जैसा कि मनुने बतलाया है—

पितारक्षतिकौमारे भर्तारक्षतियौवने।
रक्षंतिस्थविरेपुत्रा न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति ॥

मनु अ० ९ श्लो० ३

अर्थ- कुमार अवस्था में स्त्री की पिता रक्षा करै और युवान अवस्था में उसका पति और बृद्धापन में उसके पुत्र रक्षा करैं। स्त्री को कभी भी स्वतंत्रता न देनी चाहिये।

इत्यादि अनेक प्रबन्ध ऐसे किये गये हैं कि जिनसे स्त्री के पतिव्रतधर्म में कलंक न आवे और पश्चिमीय शिक्षा का यह फल है कि वह आते ही स्वतंत्रता मांगती है और पतिव्रतधर्म और स्वतन्त्रता का चूहे बिलाई जैसा बैर है जिस तरह बिलाई से चूहे का बचना असम्भव है इसी प्रकार स्वतन्त्रता आनेपर पतिव्रतधर्म का बचना भी असम्भव ही है जब भारत की स्त्रियों का पतिव्रत ही बिगड़ गया तब फिर समझो कि भारत की इतिश्री के दिन आगये। इस पर विचार करते हुए भारत के हितैषी सज्जन स्त्रियों को अंग्रेजी शिक्षा देने का निषेध करते हैं।

शास्त्रकारों ने एक पति होने को ही पतिव्रतधर्म माना है। आर्यसमाज के खयाल से स्त्री ग्यारह विवाह और ग्यारह नियोग के ऐसे बाईस पति करनेपर भी पतिव्रता रह सकती है। ऐसेही खयाल के लोग आजकल स्त्रियों को अंग्रेजी शिक्षा देने को

सम्मति देते हैं। शास्त्रकारों का भाव यह है कि स्त्री को ऐसी शिक्षा कदापि न दी जावे कि जिससे वह स्वतन्त्र होकर पतिव्रतधर्म का नाश कर दे ।

आज तक अंग्रेजी शिक्षा का निषेध करनेवाले संस्कृत के विद्वान् ही थे किन्तु खुशी की बात है कि आर्यसमाज के प्रसिद्ध लीडर ला० लाजपतराय का खयाल भी ऐसा होगया है उन्होंने बहुत दिनों के तजर्बे से यह बात सीखी है कि स्त्रियों का पढ़ाना हिन्दूधर्म को गारत करना है । दो वर्ष के करीब हुए उन्होंने लाहौर में एक स्पीच दी थी जिस में यह बतलाया था कि हिन्दू धर्म उसी समय तक जिन्दा रह सकता है कि जब तक स्त्रियां अंग्रेजी की विदुषी नहीं होतीं । लालाजी ने यह भी कहा था कि जिस प्रकार अंग्रेजी पढ़ कर मनुष्य धर्म को तिलांजली दे चुके हैं उसी प्रकार विदुषी होते ही स्त्रियां भी दे देंगी । इस व्याख्यान में लालाजी ने बाबू हंसराज जी से अपील भी की थी कि आप कालेज की बागडोर अपने शिष्यों के हाथ में देकर आप हिन्दूधर्म की रक्षा के मैदान में उतरें । यह समस्त व्याख्यान हिन्दोस्तान समाचार पत्र उर्दू लाहौर में छपा है ।

अनुभवी पुरुषों का यह पूरा अनुमान है कि जब तक स्त्री अंग्रेजी शिक्षा से शिक्षित नहीं होती तभी तक वह परतंत्र रह सकती है और तभी तक पतिव्रतधर्म का पालन कर सकती है अतएव ऊपर लिखेनुसार स्त्रियों की शिक्षा का होना धर्म जाति के लिये हितकारी है पश्चिमीय शिक्षा हानिकारक । मैं अपने आर्यसमाजी भाइयों से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस लेख से कुछ शिक्षा लें और यदि स्त्रियों को वेद पढ़ाने का कोई प्रमाण हो तो उसको पेश करें मनमाना काम करना और किसी भी शास्त्रकार के वचन को न मानना यह विद्वत्ता और धर्म नहीं है ।

गायत्र्यर्थ निर्णयः ।

सत्यार्थ प्रकाश—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ यजु० अ० ३६ । मं० ३ ॥

इस मंत्र में जो प्रथम (ओ३म्) है उस का अर्थ प्रथम समुल्लास में कर

दिया है वहीं से जान लेना। अब तीन महाव्याहृतियों के अर्थ संक्षेप से लिखते हैं "भूरिति वै प्राणः" "यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः" जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है उस प्राण का वाचक होके "भूः" परमेश्वर का नाम है। "भुवरित्यपानः" "यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः" जो सब दुःखों से रहित, जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं इसलिये उस परमेश्वरका नाम "भुवः" है। "स्वरिति व्यानः" "यो विविधं जगत् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः" जो नानाविधि जगत् में व्यापक होके सबका धारण करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "स्वः" है। ये तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यक प्रपा० ७ अ० ५ के हैं (सवितुः) "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य्य का दाता है (देवस्य) "यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः" जो सर्व सुखों का देनेहारा और जिस की प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो (वरेण्यम्) "वर्त्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ (भर्गः) "शुद्धस्वरूपम्" शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है (तत्) उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग (धीमहि) "धरेमहि" धारण करें किस प्रयोजन के लिये कि (यः) "जगदीश्वरः" जो सविता देव परमात्मा (नः) "अस्माकम्" हमारी (धियः) "बुद्धिः" बुद्धियों को (प्रचोदयात्) "प्रेरयेत्" प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ा कर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे "हे परमेश्वर! हे सच्चिदानन्दस्वरूप! हे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव! हे अज निरञ्जन निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार! जगत्पते! सकलजगदुत्पादक! हे अनादे! विश्वम्भर! सर्वव्यापिन्! हे करुणामृतवारिधे! सवितुर्देवस्य तव यदों भूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेम वा कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह हे भगवन्! यः सविता देवः परमेश्वरो भवानस्माकं धियः प्रचोदयात् स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतु नातोऽन्यं भवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कञ्चित् कदाचिन् मन्यामहे" हे मनुष्यो! जो सब समर्थों में समर्थ सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्धि, नित्य मुक्त स्वभाववाला, कृपासागर, ठीक २ न्याय का करनेहारा, जन्म मरणादि क्लेश रहित, आकार रहित, सब के घट २ की जाननेवाला, सब का धर्त्ता पिता उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पोषण करनेहारा, सकल ऐश्वर्य्ययुक्त, जगत् का निर्माता,

शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतन स्वरूप है उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिये कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामी स्वरूप हम को दुष्टाचार अधर्म्मयुक्त मार्ग से हटाके श्रेष्ठाचार–सत्यमार्ग में चलावे, उस को छोड़ कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें। क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है वही हमारा पिता राजा न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है।

इस प्रकार गायत्री मन्त्र का उपदेश करके संध्योपासन की जो स्नान आचमन प्राणायाम आदि क्रिया हैं सिखलावें। प्रथम स्नान इसलिये है कि जिस से शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं। इस में प्रमाण—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

मनु० अ० ५ श्लो० १०९।

जल से शरीर के बाहर के अवयव, सत्याचरण से मन, विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्ट भी सह के धर्म ही के अनुष्ठान करने से जीवात्मा, ज्ञान अर्थात् पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि दृढ़ निश्चय पवित्र होते हैं। इससे स्नान भोजन के पूर्व अवश्य करना। दूसरा प्राणायाम इसमें प्रमाण—

योगाङ्गानुष्ठानांदशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः॥

योग० साधनपादे सू० २८।

जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है जब तक मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है।

दह्यन्ते ध्यायमानाना धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

मनु० अ० ६। ७१।

जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं।

प्राणायाम की विधि—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ योग० समाधिपादे सू० ३४

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे जब बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रक्खे तब तक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है जब घबराहट हो तब धीरे २ भीतर वायु को लेके फिर भी वैसे ही करता जाय जितना सामर्थ्य और इच्छा हो। और मन में (ओ३म्) इस का जप करता जाय इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है। एक "बाह्यविषय" अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा "आभ्यन्तर" अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय उतना रोकना। तीसरा "स्तम्भवृत्ति" अर्थात् एक ही वार जहां का तहां प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उस से विरुद्ध उस को न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाय। ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होती हैं। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इस से मनुष्य के शरीर में वीर्य्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल पराक्रम जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा स्त्री भी इसीप्रकार योगाभ्यास करे। भोजन, छादन, बैठने, उठने, बोलने, चालने, बड़े छोटे से यथायोग्य व्यवहार करने का उपदेश करें। सन्ध्योपासन, जिस को ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं। "आचमन" उतने जल को हथेली में लेके उस के मूल और मध्यदेश में ओष्ठ लगा के करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचे न उस से अधिक न न्यून।

तिमिर भास्कर—

दयानन्दजी ने महाव्याहृतियों के अर्थ में भी गोलमालकरा है तैत्तिरीय आरण्यक के नाम से स्वयं कल्पना की है अब ये वाक्य लिखे जाते हैं जो तैत्तिरीय में हैं—

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रोव्याहृतयः। तासामुह स्मैतां चतुर्थीम्माहाचमस्यः प्रवेदयते । मह इति तद्ब्रह्म सआत्मा अंगान्यन्यादेवताः । भूरितिवाअयंलोकः । भुव इत्यन्तरिक्षम्। सुवइत्यसौ लोकः १ मह इत्यादित्यः आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते ॥ तैत्तिरी०

इस उपनिषद में ब्रह्मका उपदेश आगे पंचकोशरूप गुहा में करैंगे इस कारण प्रथम श्रद्धापूर्वक गृहीत व्याहृतियों का त्याग असम्भव है इसमें व्याहृति शरीरवाले हिरण्यगर्भ की उपासना स्वाराज्यफलप्राप्ति हेतुका विधान करते हैं, वोह व्याहृतिशरीररूप हिरण्यगर्भ हृदय में ध्यान करने योग्य है भूः भुवः स्वः यह तीन व्याहृति हैं कहीं तो स्वः ऐसा व्याहृतिका आकार होता है और कहीं सुवः ऐसा आकार होताहै, अर्थ का भेद नहीं, क्योंकि, प्रातिशाख्य नाम वेदके व्याकरण स्वः के स्थान में सुवः और स्वर्ग के स्थानमें सुवर्ग ऐसा शब्द प्रयोग होता है, इन तीन व्याहृतियों के मध्य यह चतुर्थ व्याहृति महर्लोक है, इसको महाचमसके पुत्र माहाचामस्य ऋषिने जाना वा देखा, यहां उपदेश से जो यह माहाचामस्य ऋषिने देखी हुई महर व्याहृति है सो ब्रह्म है, अब इनकी तुल्यताको कथन करतेहैं जैसे कि ब्रह्म महत्है और व्याहृति महर् है इससे इनकी एकता बनती है और वोह महर् आत्मा (ब्रह्मका रूप) है, क्योंकि, वोह महर् व्याप्तिरूप कर्मवाला है, इससे सो आत्मा है और अन्य जो व्याहृतिरूप लोक देव वेद और प्राण हैं वे जिससे कि "महर्" ब्रह्म है इस आगे कहने के वाक्य से कथन किये व्याहृतिरूप ब्रह्मके देवलोक आदिक सर्व अवयव रूप हैं, और जिससे वे सूर्य चन्द्र ब्रह्म और अन्न रूपसे व्याप्त होवे हैं इससे और देवता (ब्रह्मके पाद आदिक अवयव) हैं और महा व्याहृति अंगी है, भाव यह है कि महाव्याहृतिरूप जो अंगी है, हिरण्यगर्भ, तिसके भूः व्याहृतिको पाद और भुवः व्याहृतिको बाहू और सुवः व्याहृति को शिररूपसे ध्यान करै, ऐसी उपासना की

विधि है सो कथन करते हैं अर्थात् भूरादि प्रजापति अंगोंको जिस जिस रूपसे चिन्तन करना है सो निरूपण करते हैं॥

पृथ्वीलोक प्रजापति के पादरूप भूः व्याहृति है और अन्तरिक्ष लोक प्रजापति के बाहुरूप भुवः व्याहृति है, और स्वर्गलोक प्रजापतिका शिरोरूप सुवः व्याहृति है, और जो प्रकाशमान आदित्य है सो प्रजापतिका मध्यभागरूप महाव्याहृति है, भावं यह है कि पृथ्वीलोक में प्रजापतिके पाद दृष्टि करना, और अन्तरिक्ष में प्रजापति के बाहू दृष्टि करना, स्वर्ग में प्रजापतिका शिर दृष्टि करना, और आदित्यमें प्रजापति के शरीर मध्य दृष्टि करना और मध्यभागसे अंगोंकी बृद्धि होती है, इसी कारण कहते हैं कि आदित्यसे सब लोकोंकी बृद्धि होती है, इसीप्रकार से आगे अग्नि आदि में प्रजापतिके अंग दृष्टि जानना॥

भूरितिवाअग्निः। भुवइति वायुः। सुवरित्यादित्यः। महइति चन्द्रमाः चन्द्रमसावावसर्वाणिज्योतीँषि महीयन्ते। भूरितिवा ऋचः भुवइति सामानि सुवरिति यजूँषि॥ २॥

भूः यह प्रसिद्ध अग्नि है भुवर् यह वायु है स्वर् यह सूर्य है महर् यह चन्द्रमा है चन्द्रमा से प्रसिद्ध सब ज्योति (तारा) बृद्धि को पाते हैं भूः यह प्रसिद्ध ऋचा (ऋग्वेद) है भुवर् यह सामवेद है स्वर् यह यजुर्वेद है २

मह इतिब्रह्म। ब्रह्मणावाव सर्वे वेदामहीयन्ते। भूरितिवैप्राणः भुव इत्यपानः। सुवरितिव्यानःमहइत्यन्नम्। अन्नेनवावसर्वेप्राणामहीयन्ते। तावाएताश्चतस्रश्चतुर्धाचतस्रश्चतस्रोव्याहृतयः ता यो वेद सवेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवाबलिमावहन्ति असौ लोको यजूंषि वेद द्वेच। तैत्तिरीय उपनिषदि अनु० ५

अर्थ-महर् यह ब्रह्म ॐकार है क्योंकि ॐकारसेही सब वेद बृद्धिको प्राप्त होते हैं भूः यह प्राण है भुवर् यह अपान है स्वः यह

व्यान है महर् यह अन्न है अन्नसेही सब प्राण वृद्धिको पाते हैं जो यह उपचार व्याहृति चार प्रकार की है इन का फल वर्णन करते हैं कि एक व्याहृति चार चार प्रकारकी होगई तत्र प्रकरणानुसार षोडशकलायुक्त पुरुषका ध्यान कहा व्याहृति से पृथ्वीकला अग्नि कला ऋग्वेदकला प्राणकला ऐसे चतुष्कला तो प्रजापति के पाद हैं, और अन्तरिक्षकला वायुकला सामवेदकला अपानकला ऐसी चतुष्कला बाहू हैं, स्वर्गलोककला आदित्यकला यजुर्वेदकला व्यानकला ऐसी चतुष्कला प्रजापतिका शिर है, आदित्यकला चन्द्रकला ॐकारकला अन्नकला ऐसा प्रजापतिका आत्मशब्द प्रतिपाद्य मध्यभाग है ऐसे षोडशकलायुक्त पुरुषको हृदयमें ध्यान करनेसे जो फल प्राप्त होताहै सो कथन करते हैं, इन व्याहृतियोंको पूर्व प्रकार से जो जानताहै सो ब्रह्मको जानताहै, तिसके अर्थ प्रजापतिके अंग भूत सब देवता बलिको प्राप्त करते हैं सो यह लोक और यजुर् दोनोंको जानताहै और दयानन्दजीने इस षोडश कलायुक्त प्रजापतिकी उपासनाके प्रकरणमें भूरितिवै प्राणः भुवरित्यपानः सुवरितिव्यानः इतने भागको लेकर प्राण अपान और व्यान पदको परमेश्वरपरता वर्णनकरी है परन्तु बुद्धिमान् विचारैं कि यह कितनी धृष्टता है कि सगुणोपासनाके फलके लोप करने को यह लीला रची है कि, यह कौन प्रकरण के वाक्य हैं सो भी नहीं लिखा इस प्रकरणमें यह व्यानादि ईश्वरवाचक नहीं क्योंकि उसके साथ यह लिखा है कि (अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते) अन्नसेही सब प्राण वृद्धिको प्राप्त होते हैं यदि यहां प्राणादि शब्द से ईश्वरका ग्रहण किया जाय तो अन्नसे वृद्धि कहना असंगत हो जाय अब ये देखना चाहिये कि स्वामीजी ने जब ॐकार और व्याहृतियोंकेही अर्थों में अनर्थ किया तो और मंत्रों की क्या कथा है अब गायत्रीके अर्थ लिखते हैं कि, प्राचीन ग्रन्थों में इसका कैसा व्याख्यान कियाहै ॥

तत्सवितुर्वरेण्यमित्य सौवाआदित्यःसविता सवा प्रवरणीय

आत्मकामेनेत्याहुर्ब्रह्मवादिनोऽथभर्गोदेवस्यधीमहीति सवि
तावैदेवस्ततोयोऽस्यभर्गाख्यस्तंचिन्तयामीत्याहुर्ब्रह्मवादिनः

प्रथम पादकी प्रतीकधरकर अर्थ करते हैं सवितृपदका अर्थ असौवा इत्यादि यह जो प्रत्यक्ष आदित्यहै सो सविताहै आत्म काम करके प्रवरणीय है अर्थात् यह जो आत्मातिरिक्त पदार्थकी कामना रहितहै तिसको यह सविताही एकता बुद्धि करके प्रार्थनीय है, भाव यह है कि पिण्डसार प्राण और ब्रह्माण्डसार आदित्यकी एकता भावना करके दोनों उपाधिसे उपलक्षिततत्व को आत्मारूप से भावना करे, यह वेदविद् पुरुष कहते हैं अब द्वितीय पादकी व्याख्या करते हैं देव शब्दबोध्यसविताही है तिस कारणसे सविताका जो भर्गाख्यरूप है तिसको चिन्तन करते हैं ऐसे वेदविद् कहते हैं ॥

अथ धियोयोनःप्रचोदयादितिबुद्धयो वैधियस्तायोऽस्माकंप्र
चोदयादित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ॥

अर्थ-अन्तःकरण की वृत्तियोंको जो परमात्मा प्रेरणा करता है यह ब्रह्मवादी कहते हैं तब मंत्रका अर्थ ऐसा जानना "सवितुर्देवस्ययत् भर्गाख्यं वरेण्यं तत् धीमहि। तत्किम् योऽस्माकं धियोऽन्तःकरणवृत्तीः प्रचोदयात् प्रेरयति" सविता देवका जो भर्ग तथा वरेण्य रूप है तिसे हम ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धि वृत्तियों को प्रेरणा करता है ॥

अथभर्गइति योहवा अमुष्मिन्नादित्ये निहितस्तारकोऽक्षिणि
वैषभर्गाख्योभाभिर्गतिरस्यहीति भर्गोभर्जयतीतिवैषभर्गइति
रुद्रोब्रह्मवादिनोऽथ भइति भासयतीमान् लोकान् रइति रंज
यतीमानिभूतानि ग इति गच्छन्त्यस्मिन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः
प्रजास्तस्माद्भर्गत्वाद् भर्गः शश्वत् सूयमानात् सूर्यः सवनात्
सविताऽऽदानादादित्यः पावनात् पवनोऽथापोप्यायनादि
त्येवंह्याह ॥

इसमें भर्ग और सवितृपदका व्याख्यान है और प्रसंग से आदित्य सूर्य पावन आप शब्दों के अर्थ को भी निर्णय करते हैं "योऽमुष्मिन्नादित्ये निहितो वा यश्चाक्षिणि तारको निहित एष भर्गाख्यः" यह अन्वय है जो यह आदित्यमंडल में स्थितहै अन्तर्यामी तथा जो नेत्र में कृष्णतारा उपलक्षित अन्तर्यामी स्थित है यह भर्गाख्यवाला देव है (भाभिर्गमनमस्येतिभर्गः) किरणरूप प्रकाश वा वृत्तिरूप प्रकाश करकै गमन होता है तिस अन्तर्यामी का वोह भर्ग है आशय यह कि केवल चेतन में गमन व्यापक होने से बनता नहीं, परन्तु किरणरूपप्रकाश वा वृत्तिरूप प्रकाश उपाधि के गमनसे गमनप्रतीत होताहै, ऐसे एकप्रकारसेभर्गशब्दकीनिरुक्ति कहकर प्रकारान्तरसे निरुक्ति करते हैं (भर्जयतीतिवाएष भर्गः) जो सर्व जगत्का संहार करताहै सो यह भर्ग है ऐसा रुद्ररूपहै परमात्माका, ऐसे वेदावित् कहते हैं। अब एक २ अक्षरके अर्थ करतेहैं (भासयतीमान्लोकानितिभः) अपने मंडल अन्तर्गत प्रकाश से सर्वजगत् को प्रकाश करताहै इसकारण भ और (रंजयतीमानिभूतानि इति रः) अपने आनन्दरूप से सर्व प्राणिवर्ग को आनन्दित करता है इससे रहै (गच्छन्त्यस्मिन् वा आगच्छन्त्यस्मात् सर्वा इमाः प्रजा इति गः) और सुषुप्ति प्रबोधमें वा महाप्रलय उत्पत्ति काल में सर्व प्रजा परमात्मा में लीन होकर फिर उत्पन्न होती है इससे गहै ऐसे भर्गपना होनेसे भर्ग है और (शश्वत्सूय मानात सूर्य्यः) निरन्तर उदय और अस्त होकर प्रातःकालादि करने से सूर्य है और (सवनात् सविता) सर्व प्राणिवर्गकी वृष्टि अन्नवीर्यादि द्वारा उत्पत्तिकरता होनेसे सविता है और (आदानात् आदित्यः) पृथ्वी का रस तथा प्राणिवर्ग की आयु को ग्रहण करनेसे आदित्य है और (पवनात् पावनोप्येषएव) सर्वको पवित्र करने से पावन नाम वायु भी यह परमेश्वरहै और आप नाम जल भी यह परमेश्वरही है क्योंकि सर्व जगत्को (प्यायनात्) वृद्धि करने से वेदार्थवित् कहते हैं, इसप्रकार से गायत्री मंत्र के दो पाद

से अधिदैवतत्वका निश्चय करा, अर्थात् सूर्य वायु जल उपलक्षित सम्पूर्ण देवतारूप परमात्मा को बोधन किया, और सब जगत् उत्पत्तिपालनसंहारकर्तृत्व बोधनकिया, तथा जगत् लयाधार और जगत्उपादान कारण भी भर्गपदव्याख्यानसे कहा, इसे कहने से जड प्रकृति जगत् उपादान कारण पक्ष दयानन्दजी का गायत्री ब्रह्मविद्या विरुद्ध है, इससे सज्जनोंको वोह अर्थ त्याज्य है, अब गायत्री के तृतीयपाद से अध्यात्म तत्व का निर्णय करते हैं जिस के निर्णय से स्वामीजी स्वीकृत चेतनका वास्तव भेद पक्ष भी खण्डित हो क्योंकि औपाधिक भेद तौ स्वीकृत है ॥

खल्वात्मनोत्मानेतामृताख्यश्चेतामन्तागन्तोत्सृष्टानन्द-
यिता कर्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोतास्पृशति च ॥

अर्थ-(अमृताख्यःखलुआत्मनः आत्मा नेता) यह जो अमृताख्यप्राण है सो निश्चयही आत्मा अर्थात् शरीर इन्द्रियसंघातका आत्मा है और नेता अर्थात् सर्व संघातका प्रेरकहै, यहां अमृत कहने से प्राणके भी प्रेरक आत्मतत्वका ग्रहणहै, प्राणउपाधिक होकर वोह आत्मानेता और चित्त औपाधिकचेना और मनऔपाधिक मन्ता, पद औपाधिकगन्ता, पायु उपाधिसे उत्सृष्टा, उपस्थ उपाधिसे आनन्दयिता, हस्त उपाधिसे कर्ता, वागिन्द्रिय उपाधिसे वक्ता, रसना उपाधिसे रसयिता (रसग्राही) और घ्राण उपाधिसे घ्राता (सूंघनेहारा) चक्षुउपाधिसे द्रष्टा देखनेहारा, श्रोत्र उपाधिसे सुननेहारा, त्वगिन्द्रिय उपाधिसे (स्पृशति) छूनेवाला होताहै, चकारसे बुद्धि उपाधिसे अध्यवसिता, अहंकार उपाधिसे अभिमन्ता होता है यह जानना।

विभुर्विग्रहेसन्निविष्टाइत्येवंह्याह अथ यत्र द्वैतीभूतंविज्ञानं
तत्राहि शृणोति पश्यति जिघ्रति रसयानि चैवस्पर्शयाति सर्व
मात्माजानीतेति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्य्य कारण कर्म्म
निर्मुक्तं निर्वचनमनौपम्यं निरुपाख्यं किंतदवाच्यम् ॥

अर्थ-(प्रश्न) जो पूर्व नेतृत्वादिविशिष्ट वस्तु प्राणादि उपाधि विशिष्ट कहा सो क्या है (उत्तर) (विभुर्विग्रहे सन्निविष्ट इति एवं हि आह) विभु नाम व्यापक परमात्माही विग्रह (देह) में प्रविष्ट होकर अर्थात् लिंग शरीराभिमानी होकर प्राणादि उपाधि भेदसे नेतृत्वादि रूपसे कहा जाता है भाव यह है सो एकही परमात्मा सर्व बुद्धि प्रेरक रूपसे उपास्य है ऐसे वेदज्ञाता कहते हैं इसीप्रकार बृ० उपनिषदमें लेख है किः—

आत्मेत्येवोपासीतात्रह्येते सर्वएकंभवन्ति ॥

बृ० उ० अ० ३ ब्रा० ४। कं० ७

"द्रष्टा श्रोता आदिको (आत्मा इति एव उपासीत अत्र हि एते सर्वे एकं भवन्ति) आत्मारूप करके परमात्मासे अभिन्न जान कर उपासना करे क्योंकि इस आत्मामेंही सर्व एक होते हैं," अब पाधिक भेद और वास्तव अद्वैत पक्षको अन्वय व्यतिरेकसे दृढ़ करते हैं जहां द्वैतीभूत विज्ञान होता है जाग्रदादि अवस्थामें वहां सुनताहै, देखताहै, सूंघताहै, रस लेताहै, स्पर्श करताहै और उपाधिविशिष्ट होकर एकही आत्मा सर्वको जानताहै, ऐसे उपाधिके सद्भाव कालमें भेद व्यवहार होताहै, और जब सुषुप्ति समाधि कालमें अद्वैतीभूत विज्ञान होताहै, तब कार्य अर्थात् विषय, करण अर्थात् करणग्राम, कर्म अर्थात् क्रिया, इससे रहित निर्विशेष उपमा रहित अप्रमेय होताहै, सो वस्तु निषेध बोधक शब्दों सेही क्यों कहते हो किसी तत् वा इदं आदि शब्दोंसे क्यों नहीं कहते यह (प्रश्न) करते हैं किंतद् इस पदसे अर्थ यह तत् सो वस्तु किं अर्थात् कैसी है (उत्तर) अवाच्यं नाम सर्व इन्द्रिय व्यापार के उपराम होते जो सर्व व्यवहारका साक्षी होकर व्यवहारोपरति वा साक्षी है सो अद्वैत विज्ञान स्वाभाविक आत्मरूप है किसी शब्दका वाच्य नहीं, इसप्रकार इस स्थानमें उपाधि के व्यतिरेकमें अद्वैत कहा, यह ब्राह्मणादि ग्रन्थोंसे गायत्रीका अर्थ वर्णन किया

अथ इस स्थानमें यह विचारणीय है कि दयानन्दजीने जो सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६०१ में लिखाहै ११२७ वेदोंकी शाखा जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रंथ हैं तो गायत्री जो वेदोंमें प्रधान है तिसका अर्थ किसी एक व्याख्यानकी रीतिसे तौ लिखना दयानन्दजीको अवश्य था, और जो ग्यारह सौ सत्ताईस शाखा लिखीहैं इसमेंभी चार कमती लिखीहैं क्योंकि महाभाष्य की रीतिसे ग्यारह सौ इकतीस शाखा होतीहैं तौ इन मंत्रों के व्याख्यान होनेपर भी दयानन्दजीको एक व्याख्यानभी गायत्री मंत्रके अर्थ निर्णय वास्ते न मिला तौ फिर इनके कल्पित अर्थ को कौन मानेगा फिर स्वामीजीने सवितृपदका व्याख्यान यह लिखाहै जो (सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् ससविता) दयानन्दजी तौ अपनेको निघण्टु निरुक्तका पण्डित मानतेहैं फिर यह विरुद्ध अर्थ क्यों लिखा क्योंकि नि० अ० ५ खं० ४ में सवितृपदका भाष्यकार दुर्गाचार्यकृत व्याख्यान यह है कि (सविता षुप्रसवैश्वर्ययोः भू०। प०। तृचि सविता सर्वकर्म्मणां वृष्टिप्रदानादिना अभ्यनुज्ञाता) षु धातु प्रसव तथा ऐश्वर्यमें है प्रसव नाम अभ्यनुज्ञानकाहै अर्थात् फल देने वास्ते कर्मका स्वीकार करना सो सवितादेव वृष्टिरूप फल देने वास्ते यावत् प्राणिवर्ग के कर्म को स्वीकार करताहै और ऐश्वर्य नाम प्रेरणा का है सो सवितादेव सर्व जन्तु मात्रको कर्ममें प्रवृत्त करताहै उदय होकर वा ईश्वररूपसे सबका प्रेरकहै तब ऐसी व्युत्पत्ति होनी चाहिये जो (सुवतीति सविता) और दयानन्दजी ने सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता यह व्युत्पत्ति करीहै इस से भाष्य विरुद्ध है तथा षुञ् अभिषवे स्वादिगणीय धातुका प्रयोग सुनोति रखकर उत्पादयति यह अर्थ कराहै सो भी पाणिनि ऋषि लिखित धात्वर्थ से विरुद्ध है। क्योंकि अभिषव नाम कण्डनकाहै यथा सोमवल्लीका रस निकालने में सोमवल्लीका अभिषव अर्थात् कण्डन होताहै उत्पादन अर्थ षुञ् धातु स्वादिगणीका नहीं इससे पाणिनी के मतसे भी दयानन्दजीका यह अर्थ विरुद्ध है और जो

देवपदकी व्युत्पत्ति करी है "यो दीव्यति दीव्यते वा सदेवः" इस व्युत्पत्तिसे तौ व्याकरण को भी समेट धरा क्योंकि "दिवु क्रीडा विजगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गतिषु, दिवादिगणीय परस्मैपदी इस धातुका प्रयोग लिखा है तौ दीव्यति दीव्यते वा सदेवः उस स्थान में धातु तौ केवल परस्मैपदि और प्रयोग आत्मने पदका भी लिख दिया सो प्रलाप है (प्रश्न) दीव्यते यह प्रयोग कर्म में प्रत्यय करके लिखा है (उत्तर) जो दयानन्दजी कर्म में प्रत्यय करते तो इस कर्तृपदमें तृतीया विभक्ति येन ऐसा होना योग्य था, और देव शब्दका वाच्य अर्थ प्रकाश क्रिया का कर्म जगत् जड़ वस्तु होजाता, और जो कर्मकर्तृ अर्थ में प्रयोग कहैं तौ भी असंगत है क्योंकि प्रथम परमात्मा प्रकाश क्रियाका कर्महो पश्चात् उसी कर्मको कर्तृत्वरूपसे विवक्षा हो तब कर्म कर्तारिप्रयोग हो, सो परमात्मा प्रकाश क्रियाका कर्म होगा तौ पर प्रकाश्यत्वरूप जड़ताकी प्राप्ति होगी और जो स्तुति अर्थ में दिवधातु को मानकर कर्म में प्रत्यय करैं तो देवशब्दका कर्तरि अर्थ के प्रकरण में पचादि गणमें पाठ होनेसे असंगत है, इससे दीव्यते यह प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है और अर्थ भाषामें (सब सुखोंका देनेहारा लिखा है) विचारना चाहिये कि क्रीडा-किसी बाह्य साधनमें विलास विजिगीषा-जीतनेकी इच्छा, व्यवहार-क्रयविक्रय करना द्युति-प्रकाश, स्तुति-स्तवनक्रिया, मोद-आनन्द होना, मद अहंकार करना, स्वप्न-शयनक्रिया, कान्ति-इच्छागति-ज्ञान गमन वा प्राप्ति इतने अर्थ तो पाणिनीजीने इसके स्पष्ट लिख दिये हैं, परन्तु दयानन्दजीने टोटा समझ सुखदान भी इस धातुका अर्थ और कल्पना करलिया क्या पाणिनिऋषि के अर्थों से आपका निर्वाह नहीं होता है, परन्तु मनमाना अर्थ तो नहीं निकलता, इससे दयानन्दजीने नये अर्थ की कल्पना करी है ॥ गायत्री प्रकरण पूर्ण हुआ ॥

भास्कर प्रकाश—

स्वामीजी ने कुछ गोल माल नहीं किया। आपको "कुर्यात्सर्वस्यखण्डनम्" का व्यसन होगया है। इस प्रसंग में तो आप बड़ेही चक्कर में आये हैं। जो अर्थ स्वामीजी ने किये हैं वही आपने भी तो किये हैं फिर गोलमाल उन्होंने की है वा आपने। देखो द० ति० भा० पृ० २४ पं० १। २ "भूरिति वै प्राणः भुव इत्यपानः" तैत्ति० अनु० ५ फिर आप कैसे कहते हैं कि स्वामीजी ने स्वयं कल्पना की है। "सवितु" का अर्थ स्वामीजी ने "सर्वोत्पादक" किया है वही आप ने द० ति० भा० पृ० २५ पं० २० में लिखा है कि "सवनात्सविता" उत्पादक होने से "सविता"। "धियः" का अर्थ स्वामीजी ने "बुद्धियों को" किया है वही आप ने द० ति० भा० पृ० २५ पं० ९ में "बुद्धयोवैधियः" बुद्धियां धी हैं, ऐसा लिखा है। आप सविता शब्द से अपने दिये प्रमाण के विरुद्ध सूर्यलोक का ग्रहण करेंगे और गायत्री से सूर्यदेव की भौतिक उपासना सिद्ध करेंगे तो आपनेही जो विस्तार पूर्वक गायत्री मन्त्र में आये "भर्गः" पद का अर्थ लिखा है कि—

भइतिभासयतीमान् लोकान्। रइतिरंजयतीमानिभूतानि।
गइतिगच्छन्त्यस्मिन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः प्रजाः॥

इसका अर्थ भी आपने पृ० २६ पं० ५ में लिखा है कि— "सुषुप्तिप्रबोध वा महाप्रलय, उत्पत्तिकाल में सर्व प्रजा, परमात्मा में लीन होकर उत्पन्न होती हैं"॥

देखिये आपने भी यहां "भर्ग" शब्द के अर्थ में परमात्मा का ग्रहण किया है। इस से सिद्ध हुवा कि स्वामीजी ने जो अर्थ किया है वह संगत और शास्त्रानुकूल होने के अतिरिक्त आप के पुस्तक से भी पुष्ट होता है। यह दूसरी बात है कि आप ने पाण्डित्यप्रकाशनार्थ व्याहृतियों का अर्थ करते हुए तैत्तिरीय का पाठ बहुत सा भरदिया और आधिभौतिक आधिदैविक आध्यात्मिक तीनों प्रकार के अर्थ लिख दिये और स्वामीजी ने वे अर्थ न लिखकर संक्षेप से एक अर्थ लिख दिया जो ब्रह्मयज्ञ में उपयोगी था और उन्होंने सत्यार्थप्रकाश पृ० ३८ पं० २२ में प्रथमही लिख दिया है कि अब तीन महाव्याहृतियों के अर्थ "संक्षेप" से लिखते हैं। इस लिये उनपर यह तूफान मचाना और तैत्ति० का बहुत पाठ लिख मारना और बृथा लिखना कि स्वामीजी ने अपनी कल्पना तैत्ति० के नाम से की है, सब अनर्थ और असत्य है। और आपने जो—

खल्वात्मनोत्मा नेतामृतास्ययश्चेता मन्ता गन्तोत्स्रष्टानन्दयिता कर्त्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोता स्पृशति च ॥

और

विभुर्विगृहे सन्निविष्ठ इत्येवं ह्याह । इत्यादि—

लेख से बृहदारण्यक के इस पाठ को जोड़ दिया है कि—

आत्मेत्येवोपासीतात्रह्येतेसर्वएकंभवंति । बृह० अ० ३ ब्रा० ४ ।

सो आपने चातुर्य नहीं किया किन्तु खुल्लम खुल्ला झूंठ लिखा है। भला पूर्वोक्त पाठ का इस से क्या सम्बन्ध। धन्य ! महाराज ! ! आपने इसी वास्ते अपने पूर्व लेख (खल्वात्मनोत्मा नेता) का पता जान बूझकर नहीं लिखा जिससे कोई पता न चला लेवे, भला इस प्रकार के चातुर्य से कभी सत्यार्थप्रकाश का खण्डन वा विद्वानों की आंखों पर धूल फेंककर कार्य सिद्धि होसकती है ? वा अद्वैतपक्ष सिद्ध होसकता है ? कभी नहीं। तथापि हम आप के बेपते लेख का अर्थ करके आप को दिखलाते हैं कि इस में अद्वैत का क्या वर्णन है—

(आत्मनः आत्मा नेता) आपके ही लेखानुसार आत्मा अर्थात् शरीरेन्द्रिय संघात का जो नेता आत्मा है वही चेता मन्ता गन्ता उत्स्रष्टा आनन्दयिता कर्त्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोता और स्प्रष्टा है। भला इस से द्वैत अद्वैत का क्या सिद्ध हुवा ? और दूसरे वाक्य—

विभुर्विगृहे सन्निविष्टा इत्येवंह्याह । अथ यत्र द्वैतीभूतं विज्ञानं तत्रंहि शृणोति पश्यति जिघ्रति रसयति चैव स्पर्शयति सर्वमात्मा जानीतेति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्यकारणकर्मनिर्मुक्तं निर्वचनमनौपम्यं निरुपाख्यं कितदवाच्यम् ॥

का अर्थ यह है कि—व्यापक आत्मा देह में घुसा है, यह कहते हैं। जब द्वैतीभूत ज्ञान होता है तब समझा जाता है कि आत्मा सुनता, देखता, सूंघता, चखता और छूता है तथा सर्व को जानता है, परन्तु जब अद्वैत अर्थात् देहादि द्वितीय पदार्थों से सम्बन्ध छूट जाता है तब कार्य कारण कर्म से निर्मुक्त, वचन उपमा और नाम से रहित किम् और तद् शब्द का भी वाच्य नहीं होता। तात्पर्य यह है कि

आत्मा में देखना, सुनना आदि व्यवहार, निर्देश, देवदत्तादि नाम–शरीर सम्बन्ध से बनते हैं, केवल में नहीं। भला इस से जीव ब्रह्म की एकता अनेकता क्या निकलती है? कुछ नहीं।

स्वामीजी ने संक्षेप के कारण आप के समान तैत्तिरीय शाखा का पाठ नहीं भरा परन्तु जितना लिखा है वह सब तैत्तिरीय के अनुकूल ही है। हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि जो अर्थ स्वामीजी ने लिखे हैं वही आपने भी लिखे हैं। हां, उन्होंने प्रकरणानुकूल संक्षेप से और आपने प्रकरण विरुद्ध विस्तार से लिखा है। वेदों की ११३१ शाखाओं में ४ संहिता मूल वेद भी अन्तर्गत गिनी हैं उन को पृथक् करके स्वामीजी ने ११२७ गिनाई हैं, समझ कर देखिये।

आपने जो पाठ निरु० अ० ५ खं० ४ का लिखा है वह न तो नैगमकाण्ड अ० ५ खं० ४ में है और न दैवतकाण्ड अ० ५ खं० ४ में लिखा है। अतः या तौ आप पता भूले वा अन्य कुछ कारण हो इस लिये जबतक निरुक्त में इस पाठका पता पं० ज्वालाप्रसाद न लगायें तब तक उत्तर देना व्यर्थ है। रही यह बात कि निरुक्तकार के मतानुसार भ्वादिगणी षु प्रसवैश्वर्ययोः धातु का प्रयोग "सुवति" होता है "सुनोति" नहीं, इसका उत्तर यह है कि प्रथम तौ आपका लिखा निरुक्तका पाठ उस पतेपर मूलमें उपस्थित नहीं जो पता आपने छापा है, इसके अतिरिक्त निरुक्तकार ने कहीं धातुओं के गण भी नहीं बताये हैं कि भ्वादि आदि में से अमुक गणी धातु का प्रयोग है इस लिये आप का (भू० प०) लिखना असंगत है। निरुक्त में केवल प्रयोग से गण पहचाना जाता है सो आपके असत्य पते के निरुक्त में भी सुनोति वा सुवति इन दोनों में से कोई प्रयोग भी नहीं है तौ आप के लेखानुसार भी स्वामीजी का "सुनोति" प्रयोग निरुक्त के विरुद्ध नहीं प्रतीत होता। और पाणिनि का जो आप प्रमाण देते हैं कि पाणिनि ने स्वादिगणी षुञ् धातु का अर्थ अभिषव लिखा है, उत्पादन नहीं, इसका उत्तर यह है कि महात्माजी! पाणिनिजीने अभिषव अर्थ तौ लिखा है परन्तु यह तौ नहीं लिखा कि अभिषव का अर्थ उत्पादन नहीं वा कुछ अन्य अमुक अर्थ है? अर्थ समझना हमारा आप का काम है। सोमवल्ली के रस निकालने में इस धातु का प्रयोग होता है तौ यह तौ समझिये कि रस निकालना वा रस उत्पन्न करना इस में क्या भेद है? कुछ नहीं। रस निकालने

का तात्पर्य भी तो यही है कि सोमरस का उत्पन्न करना। इस लिये स्वामीजी का लेख पाणिनि के विरुद्ध नहीं और आपने जो "षुप्रसवैश्वर्ययोः" धातुको भू० प० लिखा क्या यह अदादि गण में नहीं है ? जब षु धातु भ्वादि अदादि और स्वादि तीनों गणों में है तो स्वादिगण में गण का आदि होने से मुख्य है। तो "मुख्यामुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः" के अनुसार स्वादिगणी का ही ग्रहण भी चाहिये, जैसा कि स्वामीजीने किया है।

प्रत्युत्तर—दीव्यते प्रयोग यथार्थ में कर्मवाच्य है और यही कारण आत्मने पद लिखने का है और प्रकाश "प्रगट होने" को भी कहते हैं क्योंकि परमात्मा भक्तों के हृदय में प्रकट होते हैं, इसलिये प्रकाश क्रिया के कर्म भी कहे जा सकते हैं, इस में कुछ दोष नहीं। पचादिगण में कर्तृवाच्य लिखने से हमारी हानि नहीं क्योंकि स्वामीजी ने कर्तृवाच्य अर्थ भी तो लिखा ही है। कर्तृवाच्य अर्थ में "यः" है ही कर्मवाच्य में कर्तृपद अप्रयुक्त "येन" का अध्याहार हो जायगा। "सब सुखों का देनेवाला" यह पदार्थ नहीं किन्तु भावार्थ है। दिवु धातु का "मोद–आनन्द" अर्थ है ही, बस स्वयम् आनन्दस्वरूप है वही अपने भक्तों को सब सुख देसकता है। इस लिये स्वामीजी का तात्पर्य निर्दोष है।

——o——

समीक्षा–स्वामी दयानन्दजी ने गायत्री का अर्थ करते समय प्रथम व्याहृतियों के अर्थ काही सफाया करडाला इसी को पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रने विस्तार पूर्वक प्रकरण देकर दिखलाया कि आप करते क्या हैं। व्याहृतियों का व्याख्यान तो उपनिषदों में इस प्रकार से पाया जाता है इस लेख को देखकर पं० तुलसीरामजी कुछ क्रोध में आकर लिखते हैं कि स्वामीजी ने व्याहृतियों के अर्थ में कुछ गोलमाल नहीं किया आप को "कुर्यात्सर्वस्य खण्डनम्" का व्यसन होगया ! इस प्रसंग में तो आप बड़े चक्कर में आये हैं जो अर्थ स्वामीजी ने किये वही आपने किये फिर गोल माल उन्होंने किया या आपने।

पं० तुलसीराम का इतना लिखना किसी भी आर्यसमाजी को तोषदायक नहीं है और न इस से व्याहृतियों के अर्थ की पुष्टि होती है सच पूछिये तो स्वामी

दयानन्द के शास्त्र विरुद्ध लेख का मंडन कोई कहां तक करेगा। जब कुछ नहीं हो सकता तब पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र के ऊपर अपराध लगाकर आगे बढ़ चलते हैं। पं० तुलसीराम को यह तो विचारना चाहिये था कि "कुर्यात्सर्वस्य खण्डनम्" यह सिद्धान्त आर्यसमाज का है या पं० ज्वालाप्रसाद का इस विषय में तो आर्यसमाज संसार भर के मजहबों से बढी चढी है कि जिस के धार्मिक पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में सिवाय खण्डनके और कुछ है ही नहीं। सत्यार्थप्रकाश की तोंद तो खण्डन ही से फूली है मूर्त्तिपूजा, मृतक पितरों का श्राद्ध, पतिव्रत आदि आदि धर्मों का खण्डन समाज ने किया या सनातनधर्म ने इतने पर भी पं० ज्वालाप्रसादजी को खण्डन का दोष लगाना क्या यही इन्साफ है?

पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि व्याहृतियों का जो अर्थ स्वामी दयानन्द ने किया है वही पं० ज्वालाप्रसादजी ने भी किया है क्या सचही इन दोनों के अर्थों में कुछ अन्तर नहीं हमारी समझ में तो इन दोनों के अर्थ में जमीन आसमान का अंतर है पं० तुलसीराम कुछ भी उत्तर नहीं लिख सकते इस कारण से एक अर्थ लिखकर शिरपर आई बलाय को पौलसी से टालते हैं।

पं० ज्वालाप्रसादजी व्याहृतियों का जो अर्थ लिखते हैं वही अर्थ तैत्तिरीयोपनिषद् ने विस्तार से लिखा है तैत्तिरीयोपनिषद में इस स्थान पर तृतीय अनुवाक से हिरण्यगर्भ प्रजापति के ध्यान का आरम्भ होता है यहां पर समस्त संसार के पदार्थों को अवयव मानकर ब्रह्माण्ड को ब्रह्म का साकार रूप माना है और उसी का ध्यान यहां पर लिखा है यदि स्वामी दयानन्द उपनिषद के अनुकूल व्याहृतियों का अर्थ कर दें तो ईश्वर शरीरी (साकार) होजावे और ब्रह्म साकार नहीं होता स्वामी दयानन्द का यह मनगढंत सिद्धान्त ऐसा कूच कर जावे कि जैसे गधे के शिर से सींग। पं० ज्वालाप्रसादके अर्थ की पुष्टि के लिये हम तैत्तिरीयोपनिषद का समस्त पञ्चमोऽनुवाक लिखते हैं—

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः तासामुह स्मैतां चतुर्थीम्। माहाचमस्यः प्रवेदयते। मह इति। तद्ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः। भूरिति वा अयं लोकः। भुव इत्यन्तरिक्षम्। सुवरित्यसौ लोकः॥ १॥ मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे

लोका महीयन्ते । भूरिति वा अग्निः । भुव इति वायुः सुवरित्या दित्यः । मह इति चन्द्रमा । चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतीꣳषि महीयन्ते । भूरितिवै ऋचः । भुव इति सामानि । सुवरिति यजूꣳषि ॥ २ ॥ मह इति ब्रह्म । ब्रह्मणावाव सर्वे वेदा मही यन्ते । भूरितिवै प्राणः । भुव इत्यपानः । सुवरिति व्यानः । मह इत्यन्नम् । अन्नेन वाव सर्वे प्राणामहीयन्ते । ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्द्धा । चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः । ता यो वेद । स वेद ब्रह्म । सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति ॥ ३ ॥ असौलोको यजूꣳषिवेदद्धेच ।

प्रथम—"भूः" का अर्थ पृथिवीलोक, "भुवः" का अर्थ अन्तरिक्ष, "स्वः" का अर्थ स्वर्ग, और "महः" का अर्थ दृश्य सूर्य करके यह दिखलाया है कि सूर्य से समस्त लोक बृद्धि को प्राप्त होते हैं।

द्वितीय—"भूः" का अर्थ भौतिक अग्नि, "भुवः" का अर्थ वायु, "स्वः" का अर्थ दृश्य सूर्य, और "महः" का अर्थ चन्द्रमा करके यह लिखा है कि चन्द्रमा से समस्त तारागण बृद्धि को प्राप्त होते हैं।

तृतीय—"भूः" का अर्थ ऋक्, "भुवः" का अर्थ साम, "स्वः" का अर्थ यजुः, और "महः" का अर्थ ब्रह्म करके यह लिखा है कि ब्रह्मसे वेद बृद्धि को प्राप्त होते हैं।

चतुर्थ—"भूः" का अर्थ प्राण, "भुवः" का अर्थ अपान, "स्वः" का अर्थ व्यान और "महः" का अर्थ अन्न करके यह लिखाहै कि अन्नसे प्राण बृद्धिको प्राप्त होते हैं।

स्वामी दयानन्दजी ने इन चार अर्थों में से अंतिम एक अर्थ लिया है और इस मन्त्र में कहे देव और अंग सिद्ध न होजावे इस भय से प्राण अपान व्यान इन तीनों व्याहृतियों का अर्थ ईश्वर किया है अब हम आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि यदि वास्तव में स्वामी दयानन्दजी का लिखा "भूः" "भुवः" "स्वः" इन तीनों व्याहृतियों का अर्थ ईश्वर है ऐसी हालत में तैत्तिरीयोपनिषद् के इस अनुवाक पर हड़ताल लगी या नहीं क्या समाज इस कार्य से धार्मिक कहलाने का दावा करसक्ती है क्या समाज ने स्वामी दयानन्द के अयोग्य लेखों से वेद पर पानी फेरने में अपनी

उन्नति समझा है जब स्वामी दयानन्द इसप्रकार वेदों पर हड़ताल लगाते हैं ऐसी दशा में उनको महर्षि पदवी देना क्या समाज का यह कार्य उचित और प्रशंसनीय है मुझे आशा है कि विचारशील आर्यसमाजी इसपर विचार करेंगे। पं० ज्वालाप्रसाद जी ने दयानन्द तिमिरभास्कर में विस्तार पूर्वक उपनिषदकृत अर्थ को दिखलाया है किन्तु उसके उत्तर में पं० तुलसीरामजी असमर्थ होगये हैं। दयानन्दतिमिरभास्कर के अलावा हम भी कुछ दोष स्वामी कृत अर्थ में देते हैं। देखिये-जब कि स्वामी दयानन्दजी ने प्राण का अर्थ ब्रह्म किया है और आगे जो उपनिषद ने यह लिखा है कि अन्न से प्राण बृद्धि को प्राप्त होते हैं तो क्या अब समाजियों का निराकार ईश्वर दाल रोटी या हलुवा पूरी खिलाकर संडो (पहिलवान) बनाया जावेगा इसका क्या उत्तर है ?

स्वामी दयानन्दजी "भूः" का अर्थ लिखते हैं "भूरितिवै प्राणः" "यः प्राणयति चराचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः" जो सब जगत् के जीवन का आधार प्राण से भी प्रिय और "स्वयम्भूः" उस प्राण का वाचक होके "भूः" परमेश्वर का नाम है। क्या कोई भी विद्वान् चाहे वह आर्यसमाजी हो या सनातनधर्मी मुसलमान हो या ईसाई किसी भी व्याकरण से चाहे संस्कृत या हिन्दी या अर्बी या अंग्रेजी आदि आदि ग्रामरों से स्वामी दयानन्दकृत "भूः" के अर्थ और व्युत्पत्ति की सत्यता सिद्ध करने का कभी भी दावा कर सकता है ? क्या "भूः" की इतनी बड़ी व्युत्पत्ति होसकती है क्या प्राण से ईश्वर का ग्रहण करना इसमें निरुक्त निघंटु कोष आदि किसी भी शास्त्र का प्रमाण कोई आर्यसमाजी देसकता है ? यदि ऐसा नहीं तो फिर हम क्यों न कहें कि आर्यसमाज अंधेरखाते में पड़गया और अपनी आंखों को बन्द कर स्वामी दयानन्दजी की आंखों से ही काम लेना चाहता है। एक दृष्टि "भुवः" शब्द के अर्थ पर भी डालिये। स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि "भुवरित्य पानः" "यः सर्वं दुखम पानयति सोऽपानः" जो सब दुखों से रहित जिस के संग से जीव सब दुखों से छूट जाते हैं इसलिये उस परमेश्वर का नाम "भुवः" है जिसप्रकार कोई मनुष्य बरेली के सुरमे का अर्थ सोडावाटर कर ले इसी प्रकार स्वामी दयानन्द जी ने अपान का अर्थ ईश्वर किया है जो आज तक किसी भी हिन्दू ग्रन्थ में नहीं लिखा अतएव अमान्य है।

स्वामी दयानन्दजी इसके अर्थ में लिखते हैं कि जिसके संग से जीव सब दुखों से छूट जाते हैं। यहांपर हम को इतना पूछना है कि आर्यसमाजी जीवों को उस

का संग हुआ या नहीं यदि ये कहें कि नहीं हुआ तो फिर बतलावें कि इनका निराकार, सर्वव्यापक, एकरस, ईश्वर कहां गया क्या हिन्दुस्तान छोड़कर अमेरिका आदि किसी अन्य देश को चला गया? यदि ये कहें कि नहीं नहीं वह तो सर्वदा ही सर्वव्यापक एकरस होने से भारतवर्ष में भी है और आर्यसमाजी जीवों को उस का संग है ऐसी दशा में हम पूछते हैं कि क्या वास्तव में इन के दुःख दूर होगये, क्या इनकी मोक्ष होगई, क्या अब ये मोक्ष से लौटकर फिर संसार में तो नहीं आवेंगे, क्या बिना भोगे दुःखदायक कर्म छूट गये? स्वामी दयानन्दजीने जो सत्यार्थ प्रकाश में यह लिखा था कि कर्म बिना भोगे नहीं छूटते क्या यह आज मिथ्या हो गया? इसपर समाजियों को विचार करना चाहिये क्योंकि स्वामीजी के इस अर्थ से समाज के कई एक सिद्धान्तों पर धक्का पहुँचा है यह कोई मान नहीं सकता कि यहां पर यही ठीक और अपने स्थान पर सिद्धान्त ठीक हैं।

क्या पं० तुलसीराम ने आगा पीछा विचार कर स्वामी दयानन्द के अर्थ को शुद्ध माना या यों ही? "बाबा बचनं प्रमाणम्" नियम के अनुसार शुद्ध कह दिया इस का विचार पाठक कर सकते हैं।

स्वामी दयानन्दजी व्यान के अर्थ में लिखते हैं कि "स्वरिति व्यानः" "यो विविधं जगत् व्यान यति व्याप्नोति स व्यानः" जो नाना विध जगत् में व्यापक होके सब का धारण करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "स्वः" है इसके ऊपर इतना विचारणीय है कि भारतवर्ष निवासी आर्यसमाजियों को जब उसका संग नहीं फिर व्यान शब्द में कहीं ईश्वर की व्यापकता विविध जगत में कैसे ठहर सकती है अपान में तो ईश्वर को एक देशी बनाया क्योंकि संग एक देशी का ही होता है और अब विविध जगत में व्यापक बतलाते हैं यदि वह वास्तव में विविध जगत में व्यापक होता तब तो आर्यसमाजियों के दुःख दूर होजाते किन्तु जब कि ऐसा नहीं हुआ फिर प्रत्यय के विरुद्ध विविध जगत में ईश्वर की व्यापकता को कोई विचारशील मनुष्य कैसे मान सकता है।

स्वामीजी लिखते हैं कि ईश्वर सब जगत को धारण करता है इससे ईश्वर का नाम "स्वः" है क्या मजे की व्याख्या है कहां "स्वः" कहां धारण करना "स्वः" और धारण करने का तो कुछ भी सम्बन्ध नहीं यह तो वही बात हुई कि बजाज गज से कपड़ा नापता है इस कारण नेत्रहीन को अंधा कहते हैं जिस प्रकार बजाज

के गज और नेत्रहीन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं उसी प्रकार "स्वः" और धारण करने में भी कोई सम्बन्ध नहीं। हम देखना चाहते हैं कि व्याहृतियों के दयानन्दकृत (अयोग्य वेद विरुद्ध) अर्थ की रक्षा में पं० तुलसीराम या और कोई समाजी आगे को क्या लेख लिखता है।

स्वामी दयानन्दकृत अर्थ की कोई कहांतक रक्षा करेगा उन का तो यह स्वभाव है कि जो जी में आता है वही अर्थ कर लेते हैं। सत्यार्थप्रकाश में गायत्री मंत्र की व्याहृति "भूः भुवः स्वः" इनका अर्थ ईश्वर किया किन्तु वेद के जिस स्थान से यह मंत्र उठाकर सत्यार्थप्रकाश में लिखा उस स्थान में स्वामीजी ने व्याहृतियों का अर्थ क्या किया इस को भी कभी आर्यसमाजियों ने आंख उठाकर देखा? यह मंत्र यजुर्वेद अ० ३६ मंत्र संख्या ३ का है और यही पता स्वामी दयानन्दजी इस मंत्र के नीचे सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं। जब हम व्याहृतियों के दयानन्दकृत अर्थ का निर्णय करने के लिये एक दौड़ वेद के ३६ अध्याय में लगाते हैं तो वहां पर स्वामी दयानन्दकृत (व्याहृतियों का) अर्थ कुछ और ही पाते हैं। वहां पर स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि "भूः" कर्मकाण्ड विद्या "भुवः" उपासनाकाण्ड की विद्या "स्वः" ज्ञानकाण्ड की विद्या जिन व्याहृतियों का अर्थ सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर लिखा गया उन्हीं व्याहृतियों का अर्थ उसी मंत्र पर वेद में विद्या कर दिया क्या पं० तुलसीराम या और कोई समाजी कभी इस बात का विचार करेगा कि इन दो अर्थों में से कौन अर्थ समाज की दृष्टि में शुद्ध है। क्या कभी समाज इस बात पर भी ध्यान देगी कि स्वामी दयानन्दजी वेद के मंत्रों का अर्थ नहीं करते किन्तु बच्चों कैसा खेल करते हैं यदि एक मंत्र स्वामी दयानन्द चार जगह लिखेंगे तो अर्थ भी चारही करेंगे।

यदि कोई आर्यसमाजी कहे कि पं० ज्वालाप्रसादकृत अर्थ भी अशुद्ध होगा तो इसके ऊपर हम इतना उत्तर काफी समझते हैं कि जो अर्थ पं० ज्वालाप्रसादजी ने किया है वही तैत्तिरीयोपनिषद में लिखा है इसको सुनकर यदि समाजी कहें कि यह उपनिषद हम को प्रमाण नहीं हम तो केवल स्वामी दयानन्द के लेख को ही स्वतःप्रमाण मानते हैं तब प्रथम तो हम इस का उत्तर यह देंगे कि स्वामी दयानन्द ने इस जगह तैत्तिरीयोपनिषद को स्वतः प्रमाण मानकर यह बतलाया है कि जो व्याहृतियों का अर्थ हमने लिखा है वह तैत्तिरीयोपनिषद का है यह बात दूसरी है कि तैत्तिरीयोपनिषद के बहाने से स्वामी दयानन्द ने साधारण मनुष्यों को धोखा दिया

हो या तैत्तिरीयोपनिषद् के जोर पर अपने मिथ्या अर्थ को सत्य करना चाहा हो परन्तु किसी हालत में भी उपरोक्त उपनिषद् प्रमाण कोटी से बाहर नहीं जासकता। दूसरा उत्तर यह है कि यदि वास्तव में ही वर्त्तमान आर्यसमाज वेद को प्रमाण नहीं मानती और केवल स्वामी दयानन्द के लेख को स्वतः प्रमाण मानती है इस दशा में उचित है कि हम मिश्र ज्वालाप्रसादकृत व्याहृतियों के अर्थ पर स्वामी दयानन्दकृत लेख का प्रमाण दें।

मिश्रजी ने "भूः भुवः स्वः" इन व्याहृतियों का अर्थ प्राण अपान व्यान शरीरस्थ वायुत्रय किया है स्वामी दयानन्दजी भी यजुर्वेद अ० ३ मं० ३५ में "भूः भुवः स्वः" इन व्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं कि जो प्रिय स्वरूप प्राण, बल का हेतु उदान, तथा सर्व चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु व्यान वायु है। अब पं० तुलसीराम या और कोई आर्यसमाजी मौन होने के सिवाय और क्या कह सकता है। हमें आशा है कि किसी दिन आर्यसमाज धार्मिक कोटी में प्रवेश करेगी और सत्यार्थप्रकाश में लिखे व्याहृतियों के अर्थ के शुद्धाशुद्ध का निर्णय करेगी किन्तु यह आशा दुराशा सी मालूम होती है क्योंकि आर्यसमाज विचार को अपने पास नहीं फटकने देती।

हमने व्याहृतियों के अर्थ के ऊपर जो कुछ लिखा है इससे यह सिद्ध होता है कि स्वामी दयानन्दकृत अर्थ वेद विरुद्ध और मनगढंत है तथा मिश्रकृत अर्थ वेदानुकूल है साथही साथ यह भी सिद्ध होगया कि पं० तुलसीराम व्याहृतियों के तीन प्रकार के दयानन्द के अर्थ को देखकर चक्कर में पड़ गये कि किस को शुद्ध और किस को अशुद्ध लिखें। अब हम पं० तुलसीरामजी से पूछते हैं कि सच तो बतलाइये चक्कर में पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र आये या आप? इसके अलावा व्याहृतियों के स्वामी दयानन्दकृत तीन अर्थ दिखलाकर हमने यह सिद्ध कर दिया है कि स्वामी दयानन्द वेद का अर्थ मनमाना करते हैं और यदि कोई मन्त्र चार जगह आवे तो चार ही अर्थ करते हैं यह बात निश्चयही स्वामी दयानन्द ऐसे पुरुष को अयोग्य और अनुचित है।

पं० तुलसीरामजी जब पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत व्याहृतियों के अर्थ का खण्डन न कर सके तब हुकुम चढ़ाते हैं कि तुम्हारा अर्थ अनर्थ है और असत्य है। सत्यार्थ प्र० पृ० ३८ पं० २२ में प्रथमही लिख दिया है कि अब तीन महा व्याहृतियों के अर्थ "संक्षेप" से लिखते हैं इसलिये उसपर यह तूफान मचाना और तैत्ति० का बहुत पाठ लिख मारना और वृथा लिखना कि स्वामीजी ने अपनी कल्पना तैत्ति० के नाम

से की है सब अनर्थ और असत्य है पं० तुलसीराम यह बतलावें कि स्वामी दयानन्द ने अर्थ संक्षेप से किया है या वायुत्रय को बिगाड़ कर मनमाना अर्थ ईश्वर किया है क्या इसी को संक्षेप कहते हैं यदि कोई मनुष्य डाग का कुत्ता अर्थ बिगाड़कर भैंस कर दे तो क्या इसका नाम संक्षेप होगा। यदि कहो कि नहीं तो फिर स्वामीजी के अर्थ को कोई संक्षेप कैसे कह सकता है ?

पं० तुलसीराम ज्वालाप्रसाद के ठीक अर्थ करने और उसके प्रमाण में तैत्तिरीयोपनिषद् का प्रमाण देने को तूफान मचाना कहते हैं हमें यह खबर नहीं थी कि कोई ठीक अर्थ करके उस अर्थ की पुष्टि में वेद का प्रमाण दे दे तो वह समाज की दृष्टि में तूफान मचाता है क्या कोई भी समझदार मनुष्य इस को तूफान कहसकता है ? यदि इसको तूफान कहते हैं तो फिर अंडबंड अर्थ करने को विद्वत्ता और धार्मिकता कहते होंगे ? पं० तुलसीराम के ऐसे विचार ! यह कितने शोक की बात है जो मनुष्यों की दृष्टि में पं० तुलसीराम के लिये लांछन का रूप दिखलाते हैं।

पं० तुलसीरामजी यह लिखते हैं कि तैत्तिरीयोपनिषद् का बहुत पाठ लिख मारना बृथा है क्या कोई भी मनुष्य इस को बृथा बता सकता है कि जिसके लिखने से स्वामी दयानन्दकृत मनगढंत अर्थ का चकनाचूर होगया मालूम होता है कि पं० तुलसीराम को वेद से घृणा होगई है तभी तो तैत्तिरीयोपनिषद् के पाठ के लिये लिख मारना कहते हैं जो सुसाइटी वेद को अपना धर्म पुस्तक मानती हो और वह वेद के लिये ऐसे शब्द लिखे तो उसके लिये हम शोक शोक महा शोक इन्हीं शब्दों का व्यवहार करेंगे।

पं० तुलसीराम इनका उत्तर क्यों नहीं देते ? क्रोधमें आके मिश्र ज्वालाप्रसाद तथा वेद को फटकार (धमकी) क्यों बतलाते हैं क्या धमकी बतलाने से मनुष्यों पर आर्यसमाज के सिद्धान्तों की सत्यता साबित होजावेगी या समाज विजय की पदवी पर पहुँचेगी इसका विचार पाठकों के ऊपर छोड़ता हूँ।

अब व्याहृतियों का विचार बन्द करके गायत्री मन्त्र के विचार का आरम्भ करता हूँ। तत्—स्वामी दयानन्दजी "तत्" शब्द का अर्थ लिखते हैं कि "उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग" यहांपर स्वतः स्वामी दयानन्दजी ही आर्यसमाज के निराकारवाद की मिट्टी पलीत कर रहे हैं। आर्यसमाज ब्रह्म को बिलकुल निराकार मानती है किन्तु स्वामीजी "तत्" शब्द के अर्थ में ईश्वर का स्वरूप बतलाते हैं

क्या स्वरूप वाला ब्रह्म भी केवल निराकार ही कहला सकता है जिसके स्वरूप है वह क्या बिल्कुल साकार होता ही नहीं आज स्वामी दयानन्दजी ने ईश्वरका स्वरूप लिखकर आर्यसमाज के निराकारवाद की धज्जियां उड़ा दी हैं अब समाज किस हौसले पर कह सकती है कि ब्रह्म के रूप नहीं क्या समाज स्वामी दयानन्द के इस लेख को सत्य मानती है यदि सत्य मानती है तो साकार का खण्डन सत्यार्थप्रकाश से निकालना उचित ही है और यदि असत्य मानती है तो फिर जोर देकर क्यों नहीं कहती कि स्वामीजी ने गायत्री मंत्र का अर्थ सत्यार्थप्रकाश में अशुद्ध लिखा है। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में तो "तत्" शब्द का अर्थ "उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग" यह किया है किन्तु यजुर्वेद अ० ३ मं० ३५ इसी गायत्री मंत्र के "तत्" शब्द का अर्थ "उसको" किया है और यजुर्वेद अ० ३६ मं० ३ इसी गायत्री मन्त्रके "तत्" शब्द का अर्थ "उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष" किया है समाज स्वामीजी के इन तीन अर्थों में से किस को सत्य मानती है इसका उत्तर देना पं० तुलसीराम या प्रतिनिधि सभाओं को आवश्यकीय और लाजमी है देखें क्या उत्तर मिलता है।

सवितुः—स्वामी दयानन्दजी "सवितुः" का अर्थ लिखते हैं कि "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य का दाता है इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि स्वामीजी ने सवितृ पद का व्याख्यान यह लिखा है जो (सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता) दयानन्दजी तो अपने को निघण्टु निरुक्त का पण्डित मानते हैं फिर यह विरुद्ध अर्थ क्यों लिखा क्योंकि नि० अ० ५ खं० ५ में सवितृ पद का भाष्यकार दुर्गाचार्यकृत व्याख्यान यह है कि (सविताषुप्रसवैश्वर्य योः भू० । प० तृचि सविता सर्व कर्मणां वृष्टि प्रदानादिना अभ्यनुज्ञाता) षु धातु प्रसव तथा ऐश्वर्य में है प्रसव नाम अभ्यनुज्ञान का है अर्थात् फल देने वास्ते कर्म का स्वीकार करना सो सविता देव वृष्टिरूप फल देने वास्ते यावत् प्राणिवर्ग के कर्म को स्वीकार करता है और ऐश्वर्य नाम प्रेरणा का है सो सविता देव सर्व जन्तु मात्र को कर्म में प्रवृत्त करता है उदय होकर वा ईश्वर रूप से सब का प्रेरक है तब ऐसी व्युत्पत्ति होनी चाहिये जो (सुवतीति सविता) और दयानन्दजी ने सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता यह व्युत्पत्ति करी है इस से भाष्य विरुद्ध है तथा षुञ् अभिषवे स्वादि गणीय धातु का प्रयोग सुनोति रखकर

उत्पादयति यह अर्थ कराहै सो भी पाणिनि ऋषि लिखित धात्वर्थसे विरुद्धहै क्योंकि अभिषव नाम कण्डन का है यथा सोमवल्ली का रस निकालने में सोमवल्ली का अभिषव अर्थात् कण्डन होता है उत्पादन अर्थ षुञ् धातु स्वादिगणीय का नहीं इस से पाणिनीके मतसे भी दयानन्दजी का यह अर्थ विरुद्ध है। इसके ऊपर पं० तुलसी-राम का उत्तर यह है आपने जो पाठ नि० अ० ५ खं० ४ का लिखा है वह न तो नैगमकाण्ड अ० ५ खं० ४ में है और न दैवतकाण्ड अ० ५ खं० ४ में लिखा है अतः या तो आप पता भूले वा अन्य कुछ कारण हो इस लिये जब तक निरुक्त में इस पाठ का पता पं० ज्वालाप्रसाद न लगायें तब तक उत्तर देना व्यर्थ है रही यह बात कि निरुक्तकार के मतानुसार भ्वादि गणीषु प्रसवैश्वर्ययोः धातु का प्रयोग "सुवति" होता है "सुनोति" नहीं इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो आपका लिखा निरुक्त का पाठ उस पते पर मूल में उपस्थित नहीं जो पता आपने छापा है इसके अतिरिक्त निरुक्तकार ने कहीं धातुओं के गण भी नहीं बताये हैं कि भ्वादि आदि में से अमुक गणी धातु का प्रयोग है इस लिये आप का (भू० प०) लिखना असंगत है निरुक्त में केवल प्रयोग से गण पहचाना जाता है सो आप के असत्य पते के निरुक्त में भी सुनोति वा सुवति इन दोनों में से कोई प्रयोग भी नहीं है तो आपके लेखानुसार भी स्वामीजी का "सुनोति" प्रयोग निरुक्त के विरुद्ध नहीं प्रतीत होता और पाणिनि का जो आप प्रमाण देते हैं कि पाणिनि ने स्वादिगणी षुञ् धातु का अर्थ अभिषव लिखा है उत्पादन नहीं इसका उत्तर यह है कि महात्माजी पाणिनिजी ने अभिषव का अर्थ तो लिखा है परन्तु यह तो नहीं लिखा कि अभिषव का अर्थ उत्पादन नहीं वा कुछ अन्य अमुक अर्थ है अर्थ समझना हमारा आप का काम है सोमवल्ली के रस निकालने में इस धातु का प्रयोग होता है तो यह तो समझिये कि रस निकालना वा रस उत्पन्न करना इसमें क्या भेद है कुछ नहीं रस निकालने का तात्पर्य भी तो यही है कि सोम रसका उत्पन्न करना इस लिये स्वामीजी का लेख पाणिनि के विरुद्ध नहीं और आपने जो "षुप्रसवैश्वर्ययोः" धातुको भू० प० लिखा क्या यह अदादिगण में नहीं है जब षु धातु भ्वादि अदादि स्वादि तीनों गणों में है तो स्वादिगण में गण का आदि होने से मुख्य है तो "मुख्यामुख्ययोर्मुख्ये कार्य संप्रत्ययः" के अनुसार स्वादिगणी का ही ग्रहण भी चाहिये जैसा कि स्वामीजी ने किया है। इसके ऊपर यह है कि "सवितुः" पद का अर्थ पं० ज्वालाप्रसादजी ने सूर्य किया है इसका कारण यह है कि यह मंत्र उपासना प्रकरण का है और उपासना सर्वदा साकार की होती है सूर्य और ब्रह्म का

अभेद माना गया है उपासना विषय में जिस की उपासना की जाती है उसका और ब्रह्म का अभेद माना जाता है यह उपासना का नियम है स्वामीजी उपासना विषय को वेद से निकालना चाहते हैं इस वास्ते उपासना को उड़ाकर इसका अर्थ ब्रह्म किया है। स्वामीजी ने जो अर्थ संस्कृत व्युत्पति में किया है भाषा में कुछ अर्थ संस्कृत से अधिक भी कर दिया है आप लिखते हैं कि "और सब ऐश्वर्य का दाता" यह इतना अर्थ स्वामी के संस्कृत अर्थ से अधिक है इस के बढ़ाने से मालूम होता है कि ईश्वर से गायत्री मंत्र में कुछ कमी रहगई उसको १९ वीं शताब्दी में स्वामी दयानन्दजी पूरा करते हैं। हमें इस बातका रंज नहीं बल्कि खुशी है कि और मजहब में नहीं तो आर्यसमाज में तो ऐसे पुरुष होने लगे कि जो ईश्वर से वेद में अशुद्धियां होगई थी उनको शुद्ध कर देते हैं। स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में "सवितुः" का अर्थ "जो सब जगत् का उत्पादक" लिखा किन्तु उन्हों ने यजुर्वेद अ० ३६ मं० ३ में "सवितुः" का अर्थ "समस्त ऐश्वर्य के देनेवाले परमेश्वर के" किया है यहां पर "समस्त जगत् के उत्पन्न करनेवाले" अर्थ को बिलकुल उड़ा दिया है अब हम को नहीं मालूम कि समाज किस अर्थ को शुद्ध और किस को अशुद्ध मानती है इसका उत्तर समाज के जिम्मे है।

अब हम इसके आगे लिखे पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र के आक्षेप और पं० तुलसीराम के उत्तरों को दिखलाते हैं ध्यान देकर पढिये—पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द को तो निरुक्त और निघण्टु के जानने का घमंड था इतना होकर भी दयानन्दजी "सुनोति" से "सविता" की व्युत्पत्ति करते हैं निघण्टु अ० ५ खं० ४ में दुर्गाचार्य "षु प्रसवैश्वर्ययोः" धातु को भ्वादिगणीय परस्मैपदी मानते हैं फिर स्वामीजी ने उत्पादन अर्थ में जो स्वादिगण से सविता बनाया है क्या यह दयानन्द की भूल नहीं है क्या इस के यह सिद्ध नहीं होता कि स्वामी दयानन्द को व्याकरण से पूरी अभिज्ञता (जानकारी) नहीं है ? इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि निरुक्तमें पं० ज्वालाप्रसादके लिखे प्रमाणका पताही नहीं लगता जब पं० ज्वालाप्रसाद ठीक पता लिखेंगे तब हम उत्तर देंगे। पं० तुलसीराम के इस लेख पर बिना हँसे नहीं रहा जाता यह तो वही बात हुई कि किसी मनुष्य ने कहा कि कलकत्ते में ट्राम्बे बड़ी जल्दी चलती है इस को सुनकर दूसरा मनुष्य बोला कि जल्दी तो तब चलेगी जब कि पहिले बन जावेगी अभी तक तो मेरट में तो ट्राम्बे ही नहीं है अगर है तो बतलाओ कौन सड़क पर होकर जाती है कहें कलकत्ता सुनें मेरट। हूबहू यही

यही हाल पं० तुलसीराम का है पं० ज्वालाप्रसादजी तो निघण्टु का प्रमाण देते है ? और पं० तुलसीराम लिखते हैं कि निरुक्त में यह पाठ ही नहीं निघण्टु की जगह निरुक्त का जिकर लाना प्रमाण दे रहा है कि पं० तुलसीराम कुछ उत्तर नहीं देसकते केवल बातों में ही टालेंगे इसके अलावा पं० तुलसीराम यह भी लिखते हैं कि निरुक्त में धातुओं के गण भी नहीं हैं इस वास्ते "पु" धातु को भ्वादि परस्मैपदी मानना असंगत है पं० तुलसीराम क्या ही अच्छा उत्तर देते हैं यदि निरुक्तकार धातुओं के रूप न लिखे या धातुओं के गण न लिखे तो पं० तुलसीराम भू धातु को अदादि गण में पढ़कर भौतिरूप लिख देंगे यदि कोई आक्षेप करेगा तो वही जवाब दे देंगे कि निरुक्तकार ने मूल में धातुओं के गण नहीं पढे लीजिये पं० तुलसीराम ने तो व्याकरण का सफाया ही कर डाला ।

पं० तुलसीराम ने निरुक्त लिखते समय मूल में नहीं ऐसा पाठ लिखा है इस पाठ के लिखने का कारण यह है कि यदि दुर्गाचार्यकृत व्याख्यान में निकल भी आया तो उसके लिये हम लिख देंगे कि दुर्गाचार्य का व्याख्यान सनातन धर्मियों को प्रमाण होगा हम को नहीं । इसके ऊपर हम यह कह सकते हैं कि आपने तो वेद के व्याख्यानों में सम्भव असम्भव सब ही को माना है कभी भी इनकार नहीं किया आज नया नियम कैसे बना लेंगे । यजु० अ० २१ मं० ६० में स्वामी दयानन्दजी ने "छागस्य" बकरे नर का घी और दूध मजेदार लिखा है हालां कि संसार में बकरीका तो घी दूध होता है किन्तु बकरे का नहीं होता न होने पर भी आपने उस को माना और आज तक मानते चले आते हैं फिर दुर्गाचार्य से आप का कौन द्वेष है जो उस के व्याख्यान को नहीं मानते ?

इस के अलावा स्वामी दयानन्दजी तो हिन्दुओं के छोटे बड़े सभी ग्रन्थों को प्रमाण मानते हैं उदाहरण के लिये आप द्वितीय समुल्लास में स्वामी दयानन्द का स्वतः प्रमाण माना "माता शत्रुः पिता बैरी येन बालो न पाठितः" श्लोक को देख सकते हैं इसके ऊपर यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि स्वामी दयानन्द ने माना होगा हमें इस से क्या प्रयोजन है हम तो इस को नहीं मानते हम तो केवल चारही शाखाओं को प्रमाण मानेंगे ऐसी दशा में हम कह सकते हैं कि यदि वास्तव में पं० तुलसीराम के सिद्धान्त स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों से भिन्न हैं तो रहें किन्तु इस जगह तो हम स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों का ही खण्डन करते हैं ।

द्वितीय-यदि पं० तुलसीराम आदि केवल चार ही शाखाओं को प्रमाण मानेंगे तो फिर जनेऊ और चुटिया दोनों ही उतार देने होंगे क्योंकि इन चार शाखाओं में जनेऊ का पहिनना और चुटिया का रखाना कहीं पर नहीं लिखा अभी तक पं० तुलसीराम के गले में जनेऊ भी है और शिर पर चुटिया भी है इस से हम जानते है कि पं० तुलसीराम चार शाखाओं से भिन्न सनातन धर्म की और और पुस्तकों को भी स्वतः प्रमाण मानते हैं यदि न मानते होते तो चुटिया जनेऊ का त्याग कर देते। जब कि पं० तुलसीराम सनातन धर्म के और और ग्रन्थों को स्वतः प्रमाण मानते हैं तो फिर दुर्गाचार्य के व्याख्यान को प्रमाण न मानने में क्या सबूत रखते हैं?

इस के अलावा पं० शिवशंकर शर्मा ने (जो समाज में वेद के ज्ञाता के नाम से प्रसिद्ध हैं) अपने बनाये "त्रिदेव निर्णय" नामक पुस्तक में दुर्गाचार्य के व्याख्यान को प्रमाण माना है तो क्या पं० तुलसीराम पं० शिवशंकर शर्मा के प्रमाण कोटी में लिये दुर्गाचार्य के व्याख्यान को प्रमाण न मानेंगे। क्या सच ही आर्यसमाज में अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग चलेगा क्या आर्यसमाज का प्रत्येक मनुष्य अपने डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग ही पकावेगा यदि ऐसाहै तब तो हम इन को नमस्कार करते हैं। और यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि ये सब कालूराल की बाते हैं किन्तु आज संसार में जितने आर्यसमाजी हैं उन सब का एक सिद्धान्त है यदि ऐसा है तब तो पं० शिवशंकर शर्मा के प्रमाण कोटी में लिये दुर्गाचार्यकृत व्याख्यान को प्रमाण कोटी से बाहर निकालने का कोई हक पं० तुलसीराम को नहीं है आर्यसयाज के प्रसिद्ध वेदत्त पं० शिवशंकर शर्मा ने दुर्गाचार्यकृत व्याख्यान को प्रमाण कोटी में लिया है आर्यसमाज इस को प्रमाण मानती है और दुर्गाचार्य ने "षु" धातु को भ्वादि परस्मैपदी मानकर व्याख्यान में सुवतिरूप दिया है बस अब सिद्ध होगया कि उत्पन्न अर्थ में "षु" धातु भ्वादिगणी है और स्वामी दयानन्द का इस को स्वादिगणी मानना प्रमाद भूल है। और पं० तुलसीरामजी ने जो पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र के लेख को असंगत बतलाया और असंगत होने में कोई प्रमाण न दिया इससे सिद्ध होता है कि पं० तुलसीराम सत्यार्थप्रकाश का मण्डन नहीं कर सकते किन्तु तिमिरभास्कर के उत्तर में असंगत है झूठ है गप्प है जो स्वामी दयानन्द ने लिखा वही सत्य है इत्यादि शब्द लिखकर टालमटोला करते हैं।

और पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने यह भी दिखलाया कि स्वामी दयानन्द ने "षुञ्अभिषवे" स्वादिगणीय धातु का प्रयोग सुनोति रखकर उत्पादयति अर्थ करदिया यह पाणिनी लिखित धात्वर्थ से विरुद्ध है। मिश्र पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि अभिषव नाम सोमबल्ली कण्डन (कूटने) का है क्योंकि इस धातु का प्रयोग सोम-बल्ली के कण्डन कूटकर रस निकालने में वेद में होता है इस के ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि पाणिनीजी ने अभिषव अर्थ तो लिखा परन्तु यह तो नहीं लिखा कि अभिषव का अर्थ उत्पादन नहीं वा कुछ अन्य अमुक अर्थ है इसके ऊपर हम कहते हैं कि किसी मनुष्य ने संस्कृत में यह कहा कि "देवदत्तः चेतति" इसको सुनकर पं० तुलसीराम ऐसे विचार रखनेवाले किसी पंडित ने उसका अर्थ किया कि "देवदत्तः चेतति" कोर्थः "देवदत्तः शेते" अर्थात् "देवदत्तः चेतति" इसका अर्थ किया कि देव-दत्त सोता है वास्तव में तो उस का अर्थ होता था कि देवदत्त विज्ञानिक विचार कर रहा है किन्तु इसने कहा कि नहीं नहीं इस का अर्थ तो यही होता है कि देव-दत्त सोता है इस को उत्तर दिया गया कि पाणिनीजी ने "चिती संज्ञाने" धातु लिखा है यह सुनकर बोला कि "चिती संज्ञाने" तो जरूर लिखा किन्तु पाणिनिजी ने यह तो नहीं लिखा कि यह धातु सोने में नहीं रहता और फिर संज्ञा का अर्थ तो हमारे ही आधीन है चाहे जो कर लें बस हूबहू ऐसा ही लेख पं० तुलसीराम का है पं० तुलसीराम भी कहते हैं उत्पन्न अर्थ का निषेध तो नहीं किया अभिषव का अर्थ तो हमारे ही आधीन है।

हम पं० तुलसीरामजी से पूछते हैं कि जब पाणिनिजी ने "षुञ् अभिषवे" लिखा तो क्या इस लेख से भिन्न अर्थ की निवृत्ति नहीं होगई। जब कि पाणिनि जी इस धातु का केवल अभिषव अर्थ बतलाते हैं तो फिर दूसरा अर्थ तुम कैसे लोगे यदि पाणिनि के कहे अर्थ से भिन्न अर्थ लिया जाता है और इस में कोई ठीक व्यवस्था नहीं तो फिर जैसे स्वामी दयानन्दजी ने इस का अर्थ उत्पन्न होना लिया है इसीप्रकार कोई छापना और कोई गुरुकुल खोलना कोई नाचना रोना पीटना अपनी अपनी इच्छा के अनुसार अर्थ ले लेंगे ऐसी दशा में पाणिनि का लिखा अभि-षव अर्थ मारा मारा फिरेगा और धात्वर्थ मन के मुताबिक होजावेगा जिससे पाणिनि कृत दशगणीय धात्वर्थ को वैयर्थापत्ति आजावेगी अर्थात् पाणिनि के दश गणों में कहे हुए धातुओं के अर्थ लिखना व्यर्थ हैं जिन के बिना कोई भी पंडित एक श्लोक

का भी अर्थ नहीं कर सकता इत्यादि इतने दोष आवेंगे कि जिन का उत्तर पं० तुलसी राम दश बीस रिम कागज लिखने पर भी न दे सकेंगे।

इस के अलावा भगवान् पतंजलि नागोजी भट्ट और भट्टोजी दीक्षितजी आदि सभी वैय्याकरण इस बात को मानते हैं कि धातुओं के वे ही अर्थ हो सकते हैं कि जो पाणिनिजी ने लिखे हैं यदि उन को किसी धातु का पाणिनि के अर्थ से भिन्न अर्थ मिलता है तो उस के विषय में बड़ी छान बीन करके मानते हैं यह वैय्याकरणों का कायदा है आपने इन सब के विरुद्ध जो यह लिखा है कि पाणिनिजी ने कहीं मना तो नहीं कर दिया कि स्वादिगणीय "षुञ् धातु" का उत्पन्न करना अर्थ नहीं है आप का यह लेख विद्वन्मण्डली में हास्यजनक होता है।

पं० तुलसीराम जो यह लिखते हैं कि अभिषव का अर्थ करना तो हमारे आधीन है यदि ऐसा है तो फिर अभिषव का अर्थ आपने पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत क्यों माना अलाहिदा क्यों नहीं किया। धातुओं का अर्थ करना अपने आधीन नहीं है किन्तु वेदादि शास्त्रों के आधीन है जैसा पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने अभिषव का अर्थ सोमबल्ली कूटकर उस का रस निकालना दिखलाया है यदि यज्ञ में इस का यह अर्थ न मिलता तो पं० ज्वालाप्रसादजी अपने मन से इस का कुछ भी अर्थ न करते अस्तु पं० तुलसीरामजी सोमबल्ली को कूट उस का रस निकालना और उत्पन्न करना इन दोनो अर्थों को एक ही समझ कर लिखते हैं कि सोमबल्ली को कूटकर रस निकालना या रस पैदा करना एकही बात है। पं० तुलसीरामजी भी खूब समझे एक मनुष्य ने इस वर्ष १०० मन गेहूँ पैदा किये तो क्या उस ने सोमवल्ली को कूटकर रस निकाला है या यों कहिये कि पं० तुलसीराम ने अपनी बुद्धि से दयानन्द तिमिरभास्कर का उत्तर पैदा किया तो क्या पं० तुलसीराम ने सोमबल्ली को कूटकर रस निकाला और वह भास्करप्रकाश रूप बन गया सोमबल्ली को कूटकर रस निकालने से भिन्न तो इस धातु का अर्थ ही नहीं होता ईश्वर ने जब संसार को उत्पन्न किया तो क्या उस समय में ईश्वर ने सोमबल्ली को कूटकर रस निकाला था यदि ऐसा किया तब तो पं० तुलसीराम को पता लगाना होगा कि किस की उखली में कूटा था क्या निराकार ईश्वर कुटाई भी करता है? आप लोगों के मारे निराकार ईश्वर का नाक में दम है यजु० अ० ३७ मं० ९ में स्वामी दयानन्द ईश्वर से घोड़ों की लीद बिनवाते हैं आप यहां छिपे छिपे कुटाई का काम लेते हैं क्या आप ने ईश्वर को मजदूर समझा? बातें बनाते हैं आप उत्तर नहीं दे सकते।

वरेण्यम्—स्वामीजी "वरेण्यम्" का अर्थ लिखते हैं कि (वरेण्यम्) "वर्त्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ किया और पं० ज्वालाप्रसादजी "वरेण्यम्" का अर्थ प्रार्थनीय करते हैं पं० तुलसीरामजी ने न तो स्वामी दयानन्दजी के अर्थ की पुष्टि की और न मिश्रजी के अर्थ का खण्डन किया जब मिश्रजी के अर्थ का खण्डन नहीं किया तब ऐसी दशा में मिश्रजीका अर्थ सत्य होगया।

भर्गः—स्वामी दयानन्दजी "भर्गः" का अर्थ लिखते हैं कि (भर्गः) "शुद्ध स्वरूपम्" शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है इस का अर्थ पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र इस प्रकार लिखते हैं—

अथ भर्ग इति योहवा अमुष्मिन्नादित्ये निहितस्तारकोऽक्षिणिवैषभर्गाख्योभाभिर्गति रस्यहीति भर्गोभर्जयतीति वैषभर्ग इति रुद्रोब्रह्मवादिनोऽथभ इति भासयतीमान् लोकान् रइतिरंज यतीमानिभूतानि ग इति गच्छन्त्यस्मिन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः प्रजास्तस्माद्भर्ग त्वाद्भर्गःशश्वत् सूयमानात् सूर्यः सवनात् सविताऽऽदाना दादित्यः पावनात् पवनोऽथापोप्याय नादित्येवंह्याह।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने इस का अर्थ बड़े विस्तार से लिखा है इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि आप सविता शब्द से अपने दिये प्रमाण के विरुद्ध सूर्य लोक का ग्रहण करेंगे और गायत्री से सूर्य देव की भौतिक उपासना सिद्ध करेंगे तो आपने ही जो विस्तार पूर्वक गायत्री मंत्र में आये "भर्गः" पद का अर्थ लिखा है कि—

भइति भासयतीमान् लोकान्। रइति रंजयते मानि भूतानि। गइति गच्छन्त्या समन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः प्रजाः।

इस का अर्थ भी आपने पृ० २६ पं० ५ में लिखा है कि "सुषुप्ति प्रबोध वा महाप्रलय उत्पत्तिकाल में सर्व प्रजा परमात्मा में लीन होकर उत्पन्न होती है"

देखिये आपने भी यहां "भर्गः" शब्द के अर्थ में परमात्मा का ग्रहण किया है इस से सिद्ध हुआ कि स्वामीजी ने जो अर्थ किया है वह संगत और शास्त्रानुकूल होने के अतिरिक्त आप के पुस्तक से भी पुष्ट होता है।

पं० तुलसीराम का यह लेख कि अपने दिये प्रमाण के विरुद्ध सूर्य लोक का ग्रहण करोगे और जड़ सूर्य की उपासना मानोगे तो फिर "भर्गः" पद का अर्थ बिगड़ जावेगा पं० तुलसीरामजी ने या तो दयानन्द तिमिरभास्कर के इस प्रकरण को देखा नहीं या उत्तर नहीं सूझ पड़ता पं० तुलसीराम यह कैसे लिखते हैं कि अपने किये सविता अर्थ के विरुद्ध क्या मिश्रजी ने सविता पद का अर्थ सूर्य नहीं किया सविता शब्द का अर्थ सूर्य के ऊपर क्या पं० ज्वालाप्रसादजी ने दो चार सतर भी नहीं लिखी पाठकों को पढ़ना चाहिये और देखना चाहिये मिश्रजी ने तो सविता शब्द का अर्थ सूर्य जो किया है वह विस्तार से किया है और पिंडसार प्राण और ब्रह्माण्डसार आदित्य की एक भावना भी बतलाई है जब कि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र पहिले ही सविता का अर्थ सूर्य विस्तार पूर्वक कर आये हैं उस के पं० तुलसीराम उत्तर भी दे आये हैं फिर उस को न देखकर या भूलकर पाठकों पर मिथ्या ही यह प्रकट करना कि पं० ज्वालाप्रसाद ने सूर्य का अर्थ ब्रह्म किया है और सूर्य नहीं किया इसको हम कह सकते हैं कि दिन दोपहरी आंखों में धूल झोकना या धोखा देना है जब मिश्रजी ने यह अर्थ ही नहीं किया तो फिर "भर्गः" का अर्थ कैसे बिगड़ जावेगा और हम दुर्जनतोषन्याय से यह भी मान लें कि मिश्र ज्वालाप्रसादने सविता का अर्थ ब्रह्म किया फिर भी "भर्गः" का अर्थ कैसे बिगड़ जावेगा क्योंकि मिश्रजी पिण्डसार प्राण और ब्रह्माण्डसार आदित्य की एक भावना दिखला चुके इस में पं० तुलसीराम के पास कोई युक्ति या प्रमाण मौजूद हो तो पेश करें उसपर विचार किया जावेगा किन्तु बिना प्रमाण बिना युक्ति के हठ वश पाठकों पर मिथ्या यह साबित करना कि मिश्रजी पहिले कुछ लिख आये और अब कुछ और लिखते हैं यह पं० तुलसीराम के लिखने योग्य हरगिज़ हरगिज़ नहीं है।

इस के आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द का अर्थ संगत और शास्त्रानुकूल है इस को पढ़कर मारे हँसी के पेट फूल उठता है कि पं० तुलसीराम ने स्वामीजी के लेख की पुष्टि में एक भी प्रमाण या युक्ति न दी और इतने पर भी स्वामीजीका लेख शास्त्रानुकूल होगया यदि वास्तव में स्वामीजी का लेख शास्त्रानुकूल है तो फिर आपने उस की पुष्टि में कोई प्रमाण क्यों नहीं दिया? मिश्र ज्वालाप्रसादजी को तो देखिये कि जिन्होंने अपने अर्थ की पुष्टि में "अथ भर्ग इति" कितनी बड़ी वेद की निरुक्ति दी है आप जो बिना प्रमाण दिये या बिना युक्ति दिये

यह हुक्म चढ़ा दिया करते हैं कि स्वामी दयानन्दजी का लेख शास्त्रानुकूल है इससे आर्यसमाज के पक्ष की पुष्टि कदापि नहीं होती हमारी दृष्टि में तो आप भी हमारी भांति संसार के एक साधारण जीव हैं क्या समाज की दृष्टि में आप बिलकुल निराकार ब्रह्म हैं कि जो आप के हुक्म मात्र से समाज स्वामी दयानन्द के मत को सच्चा समझ लेती है ।

एक और भी शोक की बात है कि स्वामी दयानन्द के लेख की पुष्टि के लिये या यों कहिये कि स्वामी दयानन्द का सिद्धान्त असत्य न हो जावे इस के लिये पं० तुलसीरामजी ने "अथ भर्ग इति" इस वेद की निरुक्ति पर हड़ताल लगा दी है अर्थात् पं० तुलसीराम ने स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त को रखने के लिये हठ की "अथ भर्ग इति" निरुक्ति को ही नहीं माना क्या इसी के ऊपर समाज कहा करती है कि हम वेद को स्वतः प्रमाण मानते हैं क्या आर्यसमाज के मत में यही प्रमाण होता है कि एक अक्षर भी न मानना "हम मानते हैं हम मानते हैं" ऐसा कहते जाना क्या आर्यसमाज इसी घमंड पर वेद को ईश्वरकृत कहती है यदि समाज की दृष्टि में सच ही वेद ईश्वरकृत है और समाज उस को मानती है तो फिर इस निरुक्ति से सफाचट इन्कार क्यों ? समाज तो यह कहा करती है कि ईश्वर सर्वज्ञ है उस से कभी भूल नहीं होती उस की बराबर किसी में बुद्धि नहीं यदि सच ही समाज ऐसा मानती है तो फिर यहां पर दयानन्द की बुद्धि के विचारों को सत्य मानकर ईश्वर कृत वेद को तिलांजली क्यों दी ? यह कलंक समाज के ऊपर उस समय तक बराबर रहेगा कि जब तक समाज खुल्लमखुल्ला यह न कह दे कि हम वेदको तो नहीं मानते।

"अथ भर्ग इति" इस निरुक्ति में साफ दिखलाया है कि "भर्गः" उसी को कहते हैं कि जो यह आदित्यरूप तेज है और जो मनुष्यों के नेत्रों में कृष्ण तारारूप होकर स्थित है अब इस पर पाठक विचार कर सकते हैं कि वेद में "भर्ग" शब्द से सूर्य का ग्रहण किया है या नहीं ?

इस के अलावा यह भी लिख देना उचित समझता हूँ कि गायत्री मन्त्र उपासनाकाण्ड का है और उपासना विना साकार के कभी हो नहीं सकती इस नियम से भी गायत्री मन्त्र में सविता पद से या "भर्गः" पद से सूर्य का ही ग्रहण होगा ।

पिछले लेख से पाठकवर्ग यह अच्छीतरह जान गये होंगे कि आर्यसमाज वेद का केवल हल्ला मचाती है उस को मानती नहीं अब यह दिखाना है कि आर्यसमाज

जिसप्रकार वेद को तिलांजलि देती है उसीप्रकार स्वामी दयानन्द के लेख पर भी हड़ताल लगा देती है "भर्गः" शब्द के अर्थ में ही स्वामी दयानन्दजी ने ब्रह्म का स्वरूप माना है स्वामी दयानन्दजी "भर्गः" का अर्थ करते हैं। कि शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है। यहां पर स्वामी दयानन्दजी ने ब्रह्म को रूप वाला माना है जिसप्रकार से हम और आप। अन्तर केवल इतना है कि हमारा जो रूप है वह कर्म बन्धनों द्वारा मलीन है और ब्रह्म का रूप शुद्ध है कैसा भी हो उसके रूप जरूर है यदि रूप न होता तो स्वामीजी स्वरूप शब्द का व्यवहार न करते। स्वरूप का अर्थ ही यह है कि स्वकीय रूप अर्थात् अपना शरीर जब कि ब्रह्म शरीर रखता है तब तो साकार होगया जब ब्रह्म का साकार होना सिद्ध है तब फिर केवल निराकार मानना समाज की बड़ी भारी भूल है इस स्थान पर केवल निराकार ब्रह्म का खण्डन होकर उस को साकारता भी आती है इसी भय से आर्यसमाज स्वामी दयानन्दकृत "भर्गः" के अर्थ को ही गलत मानती है क्या कोई एक भी आर्यसमाजी संसार में ऐसा है कि जिसने स्वामीजी के कहे ब्रह्म के स्वरूप को मान लिया हो यदि एक भी नहीं मानता तो फिर हम साभिमान कह सकते हैं कि आर्यसमाज वेद और स्वामी दयानन्द के लेख दोनों परही श्रद्धा न रखकर उनपर हड़ताल लगा रही है।

देवस्य—दयानन्दजी ने इस पद का अर्थ लिखा कि (देवस्य) "यो दीव्यति दीव्यते वासदेवः" जो सर्व सुखों का देनेहारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो" इस के ऊपर मिश्र ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि जो देव पद की व्युत्पत्ति करी है "यो दीव्यति दीव्यते वासदेवः" इस व्युत्पत्ति से तो व्याकरण को भी समेट धरा क्योंकि दिवुक्रीडा-विजगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कांतिगतिषु, दिवादिगणीय परस्मैपदी इस धातु का प्रयोग लिखा है तो दीव्यति दीव्यते वासदेवः उस स्थान में धातु तो केवल परस्मैपदि और प्रयोग आत्मनेपद का भी लिख दिया सो प्रलाप है (प्रश्न) दीव्यते यह प्रयोग कर्म में प्रत्यय करके लिखा है (उत्तर) जो दयानन्दजी कर्म में प्रत्यय करते तो इस कर्तृपद में तृतीयाविभक्ति येन ऐसा होना योग्य था और देव शब्द का वाच्य अर्थ प्रकाश क्रिया का कर्म जगत जड़ वस्तु हो जाता और जो कर्म कर्तृ अर्थ में प्रयोग कहें तो भी असंगत है क्योंकि प्रथम परमात्मा प्रकाश क्रिया का कर्म हो पश्चात् उसी कर्म को कर्तृत्व रूप से विवक्षा हो तब कर्म कर्त्तरि प्रयोग हो सो परमात्मा प्रकाश क्रिया

का कर्म होगा इस तौर पर प्रकाश्य स्वरूप जड़ता की प्राप्ति होगी और जो स्तुति अर्थ में दिव धातु को मानकर कर्म में प्रत्यय करें तो देव शब्द का कर्त्तरि अर्थ के प्रकरण में पचादिगण में पाठ होने से असंगत है इस से दीव्यते यह प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है और अर्थ भाषा में (सब सुखों का देनेहारा लिखा है) विचारना चाहिये कि क्रीडा–किसी बाह्य साधन में विलास। विजिगीषा–जीतने की इच्छा। व्यवहार–क्रय विक्रय करना। द्युति–प्रकाश। स्तुति–स्तवन क्रिया। मोद–आनन्द होना। मद–अहंकार करना। स्वप्न–शयन क्रिया। कान्ति–इच्छा। गति–ज्ञान गमन वा प्राप्ति इतने अर्थ तो पाणिनीजी ने इस के स्पष्ट लिख दिये हैं परन्तु दयानन्दजी ने टोडा समझ सुख दान भी इस धातु का अर्थ और कल्पना कर लिया क्या पाणिनि ऋषि के अर्थों से आपका निर्बाह नहीं होता है परन्तु मनमाना अर्थ तो नहीं निकलता इस से दयानन्दजी ने नये अर्थ की कल्पना करी है।

इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि दीव्यते प्रयोग यथार्थ में कर्म वाच्य है और यही कारण आत्मनेपद लिखने का है और प्रकाश "प्रकट होने" को भी कहते हैं क्योंकि परमेश्वर भक्तों के हृदय में प्रकट होते हैं इस लिये प्रकाश क्रिया के कर्म भी कहे जा सकते हैं इस में कुछ दोष नहीं पचादिगण में कर्त्त वाच्य लिखने से हमारी हानि नहीं क्योंकि स्वामीजी ने कर्तृ वाच्य अर्थ भी तो लिखा ही है कर्तृवाच्य अर्थ में "यः" है ही कर्मवाच्य में कर्तृपद अप्रयुक्त "येन" का अध्याहार होजायगा "सब सुखों का देनेवाला" यह पदार्थ नहीं किन्तु भावार्थ है दिव धातुका "मोद–आनन्द" अर्थ है ही वस स्वयम् आनन्द स्वरूप है वही अपने भक्तों को सब सुख दे सकता है इस लिये स्वामीजी का तात्पर्य निर्दोष है।

स्वामी दयानन्दजी ने जो दीव्यते आत्मनेपद से व्युत्पत्ति की है और फिर कर्ता को प्रथमान्त दिखाकर यह भी साबित किया कि कर्तरि प्रत्यय है इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र लिखते हैं कि यहां पर तो व्याकरण को ही घर समेटा इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि "दीव्यते प्रयोग" कर्मवाच्य है इसी कारण से आत्मनेपद दिया है फिर लिखते हैं कि कर्मवाच्य में येनकर्त्ता का अध्याहार कर लेंगे गर्ज यह है कि स्वामी दयानन्द कुछ भी लिख दें किन्तु उस को झूंठ न कहेंगे चाहे सैकड़ों दिक्कतें सहें हम यह पूछते हैं जब कि दीव्यते के आगे साक्षात् प्रथमान्त कर्त्ता स्वामी दयानन्द ने लिख दिया फिर आप तृतीयान्तकर्त्ता का अध्याहार कैसे

करेंगे यदि वास्तव में आप अध्याहार करेंगे तो फिर स्वामी दयानन्दकृत भाषा भी गलत हो जावेगी तृतीयान्तकर्त्ता के अनुकूल भाषा बनानी पड़ेगी। स्वामी दयानन्द का भाषार्थ पुकार कर कह रहा है कि स्वामीजी ने दीव्यते यह कर्त्तरि प्रत्यय लिख दी है चाहे वे व्याकरण कम जानते हों या उन से भूल होगई हो किन्तु प्रत्ययकर्त्ता में ही है जो व्याकरण के विरुद्ध है। अब या तो स्वामी दयानन्दजी कृत भाषार्थ को गलत मानना होगा या पाणिनी आदि सभी वैय्याकरणों के विरुद्ध दिवु धातु को आत्मनेपद मानना पड़ेगा जिस का होनाही असम्भव है।

पं० तुलसीराम लिखते हैं कि प्रकाश का अर्थ प्रकट होना है और परमात्मा भक्तोंके हृदयमें प्रकट होता है ये दोनों बातें पं० तुलसीराम निर्मूल लिख रहे हैं प्रकाश का अर्थ प्रकट होना नहीं होसकता यदि ऐसा हो तो प्रकाश रहित वस्तुओं के प्रकट होने को प्रकट होनाही नहीं कह सकते पं० तुलसीराम ने जो भक्तों के हृदय में ईश्वर का प्रकट होना माना है यह आर्यसमाज के सिद्धान्त के विरुद्ध है प्रथम तो स्वामी दयानन्दजी ने यह लिखा है कि जैसे गुड़ गुड़ कहने से मुंह मीठा नहीं होता ऐसेही ईश्वर ईश्वर कहने से भी कुछ नहीं होता स्वामी दयानन्द के इस सिद्धान्त के अनुकूल न कोई ईश्वर का नाम लेगा और न कोई भक्त बनेगा जब कोई भक्त ही नहीं होगा तब फिर ईश्वर किस के हृदय में प्रकट होगा इसका पता लगना चाहिये।

दूसरे ईश्वर भक्तों के हृदय में कैसा प्रकट होता है क्या बिलकुल निराकार जैसा कि अब संसार में है। यदि कहो कि ऐसाही होता है ऐसी दशा में हम पूछते हैं कि अधिक बात कौन हुई जिस से उसका प्रकट होना कहा गया यदि कहो कि नहीं कुछ विशेषता होजाती है यदि ऐसा है तब तो स्वामी दयानन्द के एक रस माने हुए परमेश्वर में न्यूनाधिक होने से तुम्हारा एक रस का सिद्धान्त पाताल को चला जावेगा एक बात और भी पूछनी है कि जब वह भक्तों के हृदय में प्रकट होता है तब भक्तों को कैसा दीखता है काला काला या लाल लाल या पीला या बिलकुल सफेद कौन रंग का रहता है यदि कहो कि रंग तो उस में कोई नहीं होता तो फिर हम पूछते हैं कि प्रकट होना किस का नाम है क्या किसी विशेष रंग के बिना लम्बा लम्बा या मोटा चौड़ा या गोल मटोल दीखने लगता है यदि कहो कि नहीं २ यह नहीं तो फिर हम पूछते हैं प्रकट होना किस को कहते हैं यदि कहो कि ईश्वर के ज्ञान होने को ही प्रकट होना कहते हैं यदि ऐसा है तो फिर भक्त की क्या जरूरत

कोई ईश्वर है इतना ज्ञान तो आधी दुनियां को है यदि कहो कि विशेष ज्ञान होता है इस के ऊपर हमारा प्रश्न होगा कि वह कैसा क्या दो ईश्वर मालूम पड़ते हैं इस का उत्तर देने के लिये समाज की लेखनी में शक्ति ही नहीं पं० तुलसीराम कहते हैं कि प्रकट होने को प्रकाश कहते हैं तो क्या भक्तों के हृदय में प्रकट होने के समय "चांद" "सूर्य" सा या "लालटेन" या "हन्डा" सा कैसा दिखलाई देता है क्या आर्य समाज इस बात को मानती है कि जिस में प्रकाश हो और वह निराकार हो या यों कहिये कि जिस में तेज विशेष हो और वह रूप रहित हो पं० तुलसीराम को खूब विचारना चाहिये कि प्रकाश रखनेवाली कोई भी वस्तु ब्रह्माण्ड में निराकार नहीं होती बस सिद्ध होगया कि जिसप्रकार से गायत्री मन्त्र के "भर्गः" शब्द के अर्थ में स्वामी दयानन्दजी ने ईश्वर को रूपवाला माना है उसीप्रकार "देवस्य" के अर्थ में भक्तों के हृदय में प्रकाशित हुआ बतलाकर पं० तुलसीरामजी भी ईश्वर की साकारता सिद्ध करते हैं अब हम इस विषय पर प्रतिनिधियों की सम्मति लेना चाहते हैं कि वे स्वामी दयानन्द तथा पं० तुलसीराम के लेख पर क्या सम्मति रखती हैं।

अब पं० ज्वालाप्रसादजी उपाधि भेद दिखलाते हुए विस्तार पूर्वक लेख लिख कर स्वामी दयानन्द के अर्थ का खण्डन करते हैं मिश्रजी का लेख यह है अब गायत्री के तृतीय पाद से अध्यात्मतत्व का निर्णय करते है जिसके निर्णय से स्वामी जी स्वीकृत चेतन का वास्तव भेद पक्ष भी खंडित हो क्योंकि औपाधिक भेद तो स्वीकृत है "खल्वात्मनः" "विभुर्विग्रहे" "आत्मने वोपासीत" इत्यादि से अद्वैतपक्ष सिद्धकर यह भी बतलाया कि वेदों की शाखा ११२७ हैं। यह अयोग्य है क्योंकि महाभाष्यकार ने ११३१ शाखा हैं ऐसा लिखा।

इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि आप ने जो—

खल्वात्मनोत्मा नेता मृताख्यश्चेता मन्ता गन्तोत्सृष्टानन्दयिता कर्त्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोतास्पृशतिच॥ और–विभुर्विग्रहे सन्निविष्टा इत्येवंह्याह। इत्यादि।

लेख से बृहदारण्यक के इस पाठ को जोड़ दिया है कि—

आत्मेत्येवोपासीतात्र ह्येते सर्व एकं भवन्ति। वृह० अ० ३ ब्रा० ४।

सो आपने चातुर्य नहीं किया किन्तु खुल्लमखुल्ला झूठ लिखा है भला पूर्वोक्त पाठ का इससे क्या सम्बन्ध। धन्य! महाराज!! आपने इसी वास्ते अपने पूर्व लेख

(खल्वात्मनोत्मा नेता) का पता जान बूझकर नहीं लिखा जिस से कोई पता न चला लेवे भला इसप्रकार के चातुर्य से कभी सत्यार्थप्रकाश का खण्डन वा विद्वानों की आंखों पर धूल फेंककर कार्य सिद्धि हो सकती है वा अद्वैतपक्ष सिद्ध हो सकता है कभी नहीं तथापि हम आप के बे पते लेख का अर्थ करके आप को दिखलाते हैं कि इस में अद्वैत का क्या वर्णन है ।

(आत्मनः आत्मा नेता) आप के ही लेखानुसार आत्मा अर्थात् शरीरेन्द्रिय संघात का जो नेता आत्मा है वही चेता मन्तागन्ता उत्स्रष्टा आनन्दयिता कर्त्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोता और स्प्रष्टा है भला इस से द्वैत अद्वैत का क्या सिद्ध हुआ और दूसरे वाक्य —

विभुर्विगृहे सन्निविष्ट इत्येवं ह्याह । अथ यत्र द्वैतीभूतं विज्ञानं तत्रहि श्रृणोति पश्यति जिघ्रति रसयति चैवस्पर्शयति सर्वमात्मा जानीतेति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्य–कारण कर्म निर्मुक्तं निर्वचन मनौपम्यं निरुपाख्यं किंतदवाच्यम् ।

को अर्थ यह है कि व्यापक आत्मा देह में घुसा है यह कहते है जब द्वैतीभूत ज्ञान होता है तब समझा जाता है कि आत्मा सुनता देखता सूंघता चलता और छूता है तथा सर्व को जानता है परन्तु जब अद्वैत अर्थात् देहादि द्वितीय पदार्थों से संबंध छूट जाता है तब कार्य कारण कर्म से निर्मुक्त वचन उपमा और नाम से रहित किम् और तद् शब्द का भी वाच्य नहीं होता तात्पर्य यह है कि आत्मा में देखना सुनना आदि व्यवहार निर्देश देवदत्तादि नाम शरीर सम्बन्ध से बनते हैं केवल में नहीं भला इस से जीव ब्रह्म की एकता अनेकता क्या निकलती है कुछ नहीं स्वामीजी ने संक्षेप के कारण आप के समान तैत्तिरीय शाखा का पाठ नहीं भरा परन्तु जितना लिखा है वह सब तैत्तिरीय के अनुकूल ही है हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि जो अर्थ स्वामीजी ने लिखे हैं वही आपने भी लिखे हैं हां उन्होंने प्रकरणानुकूल संक्षेप से और आपने प्रकरण विरुद्ध विस्तार से लिखा है वेदों की ११३१ शाखाओं में ४ संहिता मूल वेद भी अन्तर्गत गिनी है उनको पृथक् करके स्वामीजी ने ११२७ गिनाई हैं समझकर देखिये —

पं० तुलसीरामजी "खल्वात्मनः" श्रुति देख क्रोध में आगये और पं० ज्वाला-प्रसादजी को लिखते हैं आप तो खुल्लमखुल्ला झूठ लिखते हैं पूर्व मन्त्र से और इस पाठ से क्या सम्बन्ध है वास्तव में पं० ज्वालाप्रसादजी बड़े झूठे हैं पं० ज्वालाप्रसाद

जी ही नहीं किन्तु पहिले स्वामी दयानन्दजी भी बड़े झूठे थे वह भी अद्वैतपक्ष को मानते थे इसी कायदे से वेदव्यास बाल्मीकि अष्टावक्र वशिष्ठ दत्तात्रय मनु याज्ञवल्क्य आदि २ यह सब झूठे थे क्योंकि यह सब अद्वैतपक्ष को मानते थे इस पाठसे और पूर्व मन्त्र से क्या सम्बन्ध इस का उत्तर यह है कि सविता (सूर्य) और ब्रह्म इन दोनों की एक भावना अर्थात् सूर्य के द्वारा निराकार की उपासना मिश्र ज्वालाप्रसादजी ने लिखी उस की पुष्टि में "खल्वात्मनः" इत्यादि श्रुतियों से, अद्वैतपक्ष सिद्ध किया है अब हमें नहीं मालूम कि इस में ज्वालाप्रसादजी क्या चालाकी करगये।

पं० तुलसीराम "खल्वात्मन:" इस मन्त्र का आप तो कुछ भी अर्थ नहीं करते नहीं मालूम कि समाज इस मन्त्र को बिना ही अर्थ मानती है क्या ? पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र के ही अर्थ को लिखकर पं० तुलसीराम कहते हैं कि भला इस से द्वैत अद्वैत का क्या सिद्ध हुआ पं० तुलसीराम को इतना तो विचारना चाहिये कि इस मन्त्र में "आत्मनः" शब्द से इन्द्रियों का ग्रहण किया है अद्वैत मानने पर ही इन्द्रियों का नाम आत्मा है नहीं तो कभी भी आत्मा शब्द से इन्द्रियों का ग्रहण करना नहीं बन सकता।

पं० तुलसीराम लिखते हैं कि इस चातुर्यता से कभी सत्यार्थप्रकाश का खंडन होसकता है पं० तुलसीराम की समझ में ही सत्यार्थप्रकाश का खण्डन नहीं होता या सभी की समझ में अब सत्यार्थप्रकाश में कौन प्रकरण है कि जिस को लिखे पढे असत्य न समझते हों अब तो खुद आर्यसमाजी ही सत्यार्थप्रकाश का खण्डन कर रहे हैं जरा कृपाकर प्रथम समुल्लास की भूमिका की समालोचना को पढिये।

"विभुर्विग्रहे" इस मन्त्र का अर्थ करके लिखते हैं कि इस में तो अद्वैत नहीं महात्मन् ! इस मन्त्र में तो "अद्वैतीभूतं" पद ही पड़ा है यह पद क्यों दिया गया यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि इस "अद्वैतीभूतं" पद का अर्थ तो हम लिख चुके कि देहादि द्वितीय पदार्थों से सम्बन्ध छूट जाता है यह अर्थ केवल आपकी कल्पना या चातुर्यता है वेद में "एक" "अद्वितीय" यह पद जहां पर आये हैं वहां पर ही शास्त्रकारों ने "एक" का अर्थ स्वजातीय भेदशून्य और "अद्वितीय" का अर्थ विजातीय भेदशून्य लिया है इस को आप अच्छीतरह से समझ सकते हैं "एकाकीहयमारुह्य जगाम गहनंवनम्" इत्यादि उदाहरण मिल सकते हैं घोड़ा रहने पर भी राजा को "एकाकी" बतलाया गया क्योंकि घोड़ा विजातीय (अन्य जाती) का था अर्थात्

राजा मनुष्य जाति का था और घोड़ा अश्व जाति का था एक कहने से स्वजाति मनुष्य ही का निषेध होता था इस कारण घोड़ा रहने पर भी "एकाकी" शब्द दिया गया शास्त्रों में या प्रत्यक्ष में एकले मनुष्य के लिये कहीं पर भी अद्वैत शब्द का प्रयोग नहीं पाया जाता इस का कारण यही है कि विजाति वस्त्रादि कुछ न कुछ मनुष्य के साथ रहता है ।

और आप ने जो लिखा कि "जब देहादि पदार्थों का सम्बन्ध छूट जाता है तब कार्य कारण कर्म से निर्मुक्त" क्या आर्यसमाज भी जीव को जो प्रथम द्वैतीभूत था उस को कार्य कारण कर्म से निर्मुक्त मानती है समाज के मत में तो मोक्ष में भी शरीर के कारण कर्म बने रहते हैं फिर समाज के मत में जीव कारण कर्म रहित कैसे हो जाता है इस के ऊपर यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि मोक्ष में कर्म नहीं रहते इस के ऊपर हम को यह पूछना है कि क्या बिना कर्म के भी आतमा की जीव संज्ञा हो सकती है ।

दूसरे जब कर्म नहीं रहे तो फिर वह जीव मोक्ष से लौटकर मनुष्य आदि शरीर किसप्रकार धारण करेगा क्या बिना कर्म के भी शरीर बंधन होता है आर्य समाज तो यह कहा करती है कि परमात्मा अवतार नहीं लेता शरीर धारण नहीं करता क्योंकि उसको कर्म बन्धन नहीं है क्या आज यह नियम बदल गया इस के अलावा यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि मोक्ष में कर्मों का नाश होजाता है और फिर वह जीव मोक्ष से लौट कर नहीं आता ऐसी दशा में मोक्ष से लौटकर आना स्वामी दयानन्द के इस सिद्धान्त का चकनाचूर होजाता है समाज की दृष्टि में मोक्ष में कर्म अवश्य रहते हैं यदि कर्म न रहें तो फिर मोक्ष से लौटकर मनुष्य आदि शरीर क्या उसको आर्यसमाज के शेष मेम्बरों के कर्म से मिलेंगे स्वामी दयानन्दजी भी मोक्ष में कर्म मानते हैं इस कारण से पं० तुलसीराम का यह लेख आर्यसमाज के एक सिद्धान्त पर पानी फेरता है अतएव यह समाज को अमान्य है ।

और यदि वास्तविक में कर्म नहीं रहते तो फिर अद्वैतपक्ष की सत्यता में संदेह ही क्या है कर्म के नाश पर जीव का ईश्वर होजाना सभी उपनिषदोंने मानाहै।

पं० तुलसीराम "आत्मेत्येवोपासीत" इसका कुछ उत्तर ही नहीं देते चाहे पं० तुलसीराम या कोई और समाजी कितनी भी लेखनी चलावे ब्रह्मविद्या अद्वैतपक्ष का खण्डन नहीं होसकता वेद गीता पुराण वेदान्त सब इस की पुष्टि करते हैं और

अद्वैतपक्ष की पुष्टि के लिये शांकर आदि ऐसे भाष्य मौजूद हैं कि जिनके समझने के लिये भी पं० तुलसीराम या कालूराम के पास दिमाग नहीं अद्वैतपक्ष का खण्डन करना चन्द्रमा के ऊपर धूल फेकना है।

स्वामी दयानन्दजी ने (धियो यो नः प्रचोदयात्) इस मन्त्र का अर्थ किया है कि ईश्वर हमारी बुद्धियों को प्रेरणा करे बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे इस के ऊपर हम पं० तुलसीराम तथा आर्यसमाज से प्रश्न करते हैं कि यह प्रार्थना क्या सच है क्या वास्तव में ईश्वर बुद्धियों को ऐसी कर देता है कि वह बुरे काम से छूटकर अच्छे में लग जावें क्या बुद्धियों का अच्छा बुरा करके हम से अच्छे बुरे काम करवाना यह ईश्वर के आधीन है यदि इस के ऊपर समाज कहे कि नहीं तो फिर हम समाज से पूछते हैं कि यह झूठी प्रार्थना क्यों करवाई जाती है और वेद के गायत्री मन्त्र में प्रार्थना करने के लिये वेद ने झूठ क्यों बोला यदि समाज कहे कि ईश्वर बुद्धियों को सुधार सकता है और बिगाड़ सकता है और ईश्वर हम को जैसी बुद्धि देगा हम वैसे ही कर्म करेंगे यदि ऐसा है तब तो मन्तव्या मन्तव्य संख्या ४१ में जो स्वामी दयानन्द ने जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र माना है यह कट जावेगा एक दृष्टि समाज को इस के ऊपर अवश्य डालना चाहिये।

स्वामी दयानन्दजी गायत्री के अर्थ को अपनी तरफ से लम्बा चौड़ा करके कुछ आगे भी लिखते हैं कि जो अर्थ गायत्री में से तो क्या निकलेगा सम्भव है कि चारों वेदों में भी न निकले आप लिखते हैं कि—

"हे परमेश्वर! हेसच्चिदानन्दस्वरूप! हे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव! हे अजनिरञ्जन निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार! जगत्पते! सकल जगदुत्पादक! हे अनादे! विश्वम्भर! सर्व व्यापिन! हे करुणामृत वारिधे! सवितुर्देवस्य तवयदों भूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेमवा कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह हे भगवन्! यहः सविता देवः परमेश्वरो भवानस्माकं धियः प्रचोदयात् स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्ट देवो भवतुनातोऽन्यं भवत्तुल्यं भवतोऽधिकंच कञ्चित् कदाचिन् मन्यामहे" हे मनुष्यों! जो सब समर्थों में समर्थ सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य शुद्ध नित्य बुद्ध नित्य मुक्त स्वभाव वाला कृपा सागर ठीक ठीक न्यायका करने हारा जन्म मरणादि क्लेश रहित आकार रहित सब के घट घट की जानने वाला सब का धर्त्ता पिता उत्पादक अन्नादि से विश्व का पोषण करने

हारा सकल ऐश्वर्य्य युक्त जगत् का निर्माता शुद्ध स्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतन स्वरूप है उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिए कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामी स्वरूप हम को दुष्टाचार अधर्म्मयुक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार सत्यमार्ग में चलावें उसको छोड़ कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें। क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है वही हमारा पिता राजा न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है गायत्री मन्त्र के अर्थ में यह इतनी बड़ी इबारत मिला देना अपने मन के भाव गायत्री मन्त्र के बहाने से लिखना या तो अयोग्य है और नहीं तो वेद बनाने के समय ईश्वर जो भूल गया था उसको स्वामीजी ने पूरा कर दिया।

पं० तुलसीराम जी लिखते हैं कि वेद की ११२७ शाखा हैं और चार संहिता मूल हैं इतना लिखते ही हैं किन्तु इसमें प्रमाण कुछ नहीं देते नहीं मालूम कि किस कारण से समाज ने चार शाखाओं को मूल और शेष ११२७ शाखाओं को गौण क्यों माना जिस तरह से ११२७ शाखा अन्य हैं उसीप्रकार से आर्य्य समाज जिन को मूल वेद बतलाती है वे भी शाखा हैं और उनके नाम क्रम से शाकल, और वाजसनेयी, और कौथुमी, तथा शौनकी शाखा हैं जब कि वे भी शाखा और ये भी शाखा फिर इनको प्रमाण मानना और उनको न मानना या इनको मूल मानना और उनको टीका मानना नहीं मालूम समाजने कहां से या किस वेद मन्त्र के अर्थ से सीखा है यदि आर्य्यसमाज के पास कोई प्रमाण हो तो लिखे किन्तु यह सिद्धान्त स्वामी का मनगढंत है अतएव इस में प्रमाण भी न मिलेगा और सभी शाखा एकसी हैं इस में पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र महाभाष्य का प्रमाण देते हैं महाभाष्य शोलेतूर के विज्ञापन के लिखे अनुसार समाज की दृष्टि में ईश्वरकृत है यहां पर पं० तुलसीराम ईश्वर कृत महाभाष्य को तो प्रमाण नहीं मानते किन्तु स्वामी दयानन्द के लिखे को मानते हैं इस से सिद्ध होता है कि समाज की दृष्टि में स्वामी दयानन्द ईश्वर से बड़े हैं नहीं मालूम कि समाज ने कहीं ईश्वर को रेल का कुली या सड़क का मजदूर तो नहीं माना कि स्वामी दयानन्द के लेख को सत्य मान कर ईश्वर के लेख को मिथ्या करदिया जाता है कुछ भी हो महाभाष्यकार ने ११३१ शाखाओं को ही वेद माना और एक सत्ववाली माना है अब या तो समाज को सभी छोड़ देनी होंगी या सभी स्वतः प्रमाण माननी होगी और दयानन्द का मनमाना लेख तो छोड़ना ही होगा।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि इस प्रकार गायत्री मन्त्र का अर्थ पढ़ाकर सन्ध्योपासन आदि सिखावें। इसके ऊपर हम अपने आर्यसमाजी भाइयों से पूंछते हैं कि यदि इस अशुद्ध अर्थ को न पढ़ाकर शुद्ध शुद्ध पढ़ा दें तो क्या पाप लग जावेगा? बस गायत्री मंत्र के विचार को यहीं समाप्त करते हैं।

प्राणायाम।

प्राणायाम के विषय में स्वामी दयानन्दजी ने जो कुछ भी लिखा वह हम सनातनधर्मियोंको स्वीकार है परन्तु एक बात से तो इनकार है कि सन्ध्या को ब्रह्मयज्ञ लिख दिया किन्तु प्राणायाम सब ठीक लिखा है अलबत्ते यह प्राणायाम आर्य समाज को स्वीकार नहीं क्योंकि प्राणायाम में सभी प्रमाण योग्यसूत्र के दिये हैं और योग्यसूत्र समाज की दृष्टि में स्वतः प्रमाण नहीं समाज का तो यह सिद्धान्त है कि चार शाखाओं में जो कुछ लिखा है उसी को प्रमाण माना जाता है अब स्वामी दयानन्दजी या पं० तुलसीराम इस प्राणायाम में वेद का प्रमाण दें जब तक वेद का प्रमाण न होगा समाज न मानेगी।

सन्ध्या का नाम ब्रह्मयज्ञ नहीं इसके ऊपर हम मनु का कहा प्रकरण ही लिखे देते हैं। मनुजी प्रथम पञ्चसूना (हत्या) दिखलाते हैं और फिर उनके दोषदूरी करणार्थ पञ्चयज्ञ बतलाते हैं—

पञ्चसूनागृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः।
कण्डनीचोदकुम्भश्च वध्यतेयास्तुवाहयन्॥

मनु० अ० ३ श्लो० ६८

गृहस्थ के ये पांच हिंसा के स्थान हैं १ चक्की २ बुहारी ३ ओखली मुसल ४ जल का घाट ५ चूल्हा इन को अपने काम में लाता हुआ पुरुष पापों करिके युक्त होता है। ६८।

तासाक्रमेणसर्वासां निष्कृत्यर्थंमहर्षिभिः ।
पञ्चक्लृप्तामहायज्ञाः प्रत्यहंगृहमेधिनाम् ॥
अध्यापनंब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तुतर्पणम् ।
होमोदैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥

मनु० अ० ३ श्लो० ६९ । ७०

अर्थ—उन चूल्हा आदि पांच वध के स्थानों से उत्पन्न पाप के नाश के लिए क्रम से पांच यज्ञ मनु आदि आचार्यों ने प्रतिदिन गृहस्थों के करने को कहे हैं ॥ ६९ ॥ उन पंचयज्ञों के नाम लिखते हैं (१) वेद का पढ़ना और पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ है (२) तर्पण कहिए अन्न आदि से अथवा जल से पितरों को तृप्त करना पितृयज्ञ है (३) अग्नि में होम करना देवयज्ञ है (४) भूतों को बलि देना यह भूतयज्ञ है (५) अभ्यागत का सत्कार करना यह मनुष्य यज्ञ है ये पांचों महायज्ञ कहे गये । ७० ॥

पञ्चैतान्योमहायज्ञान्नहापयतिशक्तितः ।
सगृहेऽपिवसन्नित्यं सूनादोषैर्नलिप्यते ॥

मनु० अ० ३ श्लो० ७१

अर्थ—जो मनुष्य इन पांच महायज्ञों को शक्ति से कभी नहीं छोडता है वह सदा घर में बसता हुआ भी सूना के दोषों करिके लिप्त नहीं होता है ॥ ७१ ॥

पाठक वर्ग ! ध्यान से देखें मनु ने वेद पढ़ना ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, हवन देवयज्ञ, भूतबलि भूतयज्ञ, अतिथि सत्कार मनुष्ययज्ञ लिखा है अब साबित होगया कि स्वामी दयानन्दका सन्ध्या को ब्रह्मयज्ञ में रखना और अग्नि होत्रको पञ्चयज्ञमें लेना

कितनी भूल है ।, हवन और अग्निहोत्र में बहुत अन्तर है क्या समाज मनु के लेख को देख कर सन्ध्या को ब्रह्मयज्ञ से पृथक् समझेगी समझना चाहिए समाज के समझाने के लिए ही यह पोथा लिखा है ।

आचमन प्रकरण ।

सत्यार्थप्रकाश—

उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ीसी होती है। पश्चात् "मार्जन" अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अंगों पर जल छिड़के उससे आलस्य दूर होता है जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे पुनः समन्त्रक प्राणायाम, मनसापरिक्रमण, उपस्थान, पीछे परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना की रीति सिखलावे। पश्चात् "अघमर्षण" अर्थात् पाप करने की इच्छा भी कभी न करे । यह सन्ध्योपासन एकान्त देश में एकाग्र-चित्त से करे ।

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः ।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥
मनु० अ० २ । १०४

जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा सावधान होके जल के समीप स्थित होके नित्यकर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थ-ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है। दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र और विद्वानोंका संग सेवादिक से होता है।

तिमिरभास्कर—

यदि आचमन करना कफ पित्त की शान्तिके लिये है तौ क्या सबही लोग संध्याकाल में कफ पित्त ग्रसित रहते हैं, और सबको आलस्य और निद्राही दबाये रहती है, वोह समय निद्राका कदापि नहीं और जलसे कफकी शान्ति नहीं किन्तु वृद्धि होती है, आच-

मन करना यदि कफ पित्तकी शान्तिके लिये है तौ हाथमें जल लेकर गायत्री और ब्रह्मतीर्थही से आचमन करने की क्या आवश्यकता है, क्या कोई आलस्य और कफने प्रतिज्ञापत्र लिख दिया है कि संध्या समय हम सब संस्कारकर्त्ता तथा संध्या करनेवालों के कंठ में फेरा करेंगे, यदि मार्जन का प्रयोजन आलस्यही दूर करने का होय तौ एक चुटकी हुलास न सूंघ लिया करैं, अथवा चाह व काफी पीलें जो पहरौं को काफी हो, नहीं सर्वोत्तम उपाय यह कि ऐमोनिया की शीशी सूंघलैं जिससे मूर्च्छांतक भंग होजाय, आलस्य की तौ बातही क्या है और स्नान करकेही प्रातःकाल संध्या करते हैं फिर स्नान करतेही आलस्य आगया तौ मार्जन से कैसे जासक्ता है, इससे स्वामीजी का यह कथन सर्वथा मिथ्याही है, मनुजी आचमन की विधि इसप्रकार लिखते हैं कि आचमन करने से आभ्यंतर शुद्धि होती है। तथाहि अध्याय २

ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ।
कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥ ५८ ॥
अंगुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ।
कायमंगुलिमूलेग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥ ५९ ॥
त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततोमुखम् ।
खानि चैव स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एवच ॥ ६० ॥
अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् ।
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः ॥ ६१ ॥
हृद्गाभिः पूयते विप्रः कंठगाभिस्तुभूमिपः ।
वैश्योद्भिःप्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरंततः ॥ ६२ ॥

अर्थ—ब्राह्मण ब्राह्मतीर्थ से सदा आचमन करे अथवा देवतीर्थ से आचमन करे परन्तु पितृतीर्थ से आचमन न करे ॥ ५८ ॥ क्योंकि उसकी विधि नहीं है अंगुष्ठमूल के नीचे ब्राह्मतीर्थ कहते हैं और कनिष्ठिका अंगुली के मूल में कायतीर्थ और उसीके अग्र-

भाग में दैवतीर्थ तथा अंगुष्ठ प्रदेशिनी के मध्य में पितृतीर्थ कहते हैं ॥ ५९ ॥ प्रथम जल से तीन आचमन करै अनन्तर दोबार मुख को जलसे स्पर्शकर ज्ञानेन्द्रिय को शिरको हृदय को जलसे स्पर्श करै ॥ ६० ॥ फेन रहित शीतल जलसे पवित्र होनेकी इच्छा करने वाला एकान्त और पवित्र भूमि में पूर्व या उत्तर मुख होकर आचमन करै ॥ ६१ ॥ वोह आचमन का जल हृदय में पहुँचने से ब्राह्मण पवित्र होता है, उसके कंठ में प्राप्त होने से क्षत्री, मुखमें पहुँचनेसे वैश्य, तथा स्पर्शमात्र से शूद्र पवित्र होते हैं ॥ ६२ ॥ क्या स्वामी जी इन श्लोकों को मनु में देखते २ ऊँघ गये थे भला जो संध्या करने को बैठैगा वोह दोनों समय नहीं तौ एक समय निश्चय ही स्नान करेगा पर आपके चेले तो कोट पतलूनही पहरकर करैंगे, फिर आपने मनसा परिक्रमा करनी लिखी सो काहे की परिक्रमा करै ? आपकी या सत्यार्थप्रकाशकी परमेश्वरको तौआप निराकारमानते हो उसकी परिक्रमा कैसी, जब मनने उसकी परिक्रमा करली तौ उसका महत्व जाता रहा और परमेश्वर निराकारकीही सीमा हो गई, फिर जल तौ कफ निवृत्ति के अर्थ है आप पं० १४ (अपांसमीपे) इस श्लोक से जल के धोरे बैठकर गायत्री का जप लिखते हैं परन्तु जिसे कफने घेरा हो वोह तो आपके मतानुसार कोठी बंगले या ऊसर में बैठकर जप करै ।

भास्करप्रकाश—

कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति कण्ठ में थोड़ा जल पहुंचने से अवश्य होती है। स्वर स्पष्ट हो जाता है। जल कफरोग को बढ़ाता है परन्तु यह किसी रोग का तौ इलाज नहीं किन्तु सामान्य प्रकार से कण्ठ में कफ रहता और मन्त्रोच्चारणादि में वहां का कफ बाधक होता है वह निवृत्त हो जाता है। यदि जल तर होने से कफरोग को उत्पन्न करता है यह नियम हो तौ जितने वैद्यक के प्रयोगों में मिश्री गुड़ शहत गुडूची आदि तर वस्तु खांसी के रोग में प्रयुक्त की हैं, सब व्यर्थ हो जावें। यथार्थ में तरी के द्वारा दोष का नाश नहीं करना है किन्तु उसे शान्त रखना अभीष्ट है। और आप ने जो मनु के श्लोक लिख दिये उन से स्वामी जी

के लिखे फल का निषेध तौ नहीं आया किन्तु आचमन के प्रकार का वर्णन है। और ब्राह्मणादि वर्णों की उत्तरोत्तर न्यून जल से शुद्धि का प्रयोजन यह है कि अपने अपने वर्णानुसार उन को उतनी उतनी शुद्धि भी न्यूनाधिक ही अपेक्षित है। ब्राह्मण को उत्तम होने से जितनी शुद्धि अपेक्षित है अन्यों को क्रमशः उस से न्यून अपेक्षित है, इत्यादि प्रकार से कारणवाद सर्वत्र खोजा जा सकता है। हम आप से यह पूंछते हैं कि स्वामी जी ने कर्म तौ वे वे लिखे ही जिन्हें आप भी मानते हैं परन्तु उस की पुष्टि के लिए यदि स्वामी जी ने कुछ युक्ति भी लिखदीं तौ क्या दोष हो गया ? और स्वामी जी के लिखने को तो आप न मानियेगा परन्तु वेदवचन को कैसे न मानियेगा। देखिये यजुर्वेद। ३६। १२॥

शन्नो देवी रभिष्ठय आपोभवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः

इस का आध्यात्मिक अर्थ तौ पञ्चमहायज्ञविधि के लिखे अनुसार है परन्तु आधिदैविक और भौतिक अर्थ पर दृष्टिपात कीजिये—देव्य आपः नः पीतये शंभुवन्तु। नोऽस्मान् अभिष्टये शंयोरभिस्रवन्तु। अर्थात् दिव्यजल हमारे पीने के लिए सुखदायक हो और वह हम को मनोवाञ्छित सुख को वर्षावे। तात्पर्य यह है कि उत्तम दिव्य जल से (जैसा कि मनु अ० २ श्लोक ६१ में स्वच्छ जल से आचमन लिखा है) आचमनादि करने से सुख की प्राप्त होती है। अर्थात् शारीरिक सुख तृप्तिशान्ति आदि के लिए जलको प्रयोग में लाना चाहिए। यही कारण इस मन्त्र के आचमन करने में विनियोग होने का है। और आलस्य-निवृत्यर्थ मार्जन पर जो आप ने लिखा कि क्या सब को आलस्य दबाये रहता है? और स्नान से आलस्य दूर न हुआ तौ मार्जन से क्या होगा। महाशय ! प्रथम तौ यह बात है कि जल के छींटा पड़ने से जैसी चेतनता होती है उस प्रकार की स्नान से नहीं होती दूसरी बात यह भी है कि भला प्रातः सन्ध्या में तौ स्नान करके बैठते हैं परन्तु सायंसन्ध्या में स्नान का नियम नहीं देखा जाता और तीसरी बात यह है कि जाड़े में भी एक बार नित्य स्नान करना उत्तम कर्म है और गरमी आदि में दो बार वा जितने बार से देह शुद्ध रहे। परन्तु स्नान की कर्त्तव्यता, सन्ध्याकी कर्त्तव्यता के बराबर नहीं रक्खी गई। जिस प्रकार मानवधर्मशास्त्र में—

नतिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्चपश्चिमाम्॥
सशूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः। २। १०३॥

दोष लिखा है कि "प्रातः सायं सन्ध्या न करे उसे शूद्रतुल्य बाहर किया जावे" इस प्रकार मन्वादि किसी धर्मशास्त्रकार ने प्रातः सायं स्नान न कर सकने वा न करने वालों को बाह्य करना नहीं लिखा इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि स्नान कर्त्तव्य नहीं किन्तु सन्ध्या के बराबर नहीं अर्थात् स्नान १ के स्थान में १० बार भी करे और सन्ध्या न करे तो पतित ही हो जायगा। परन्तु स्नान न करके भी सन्ध्योपासन कर लेने वाला पतित नहीं हो सकता तो सन्ध्या के अङ्ग आचमन मार्जनादि में स्नान से व्यर्थता लिखना ठीक नहीं। ब्राह्म तीर्थ से सुगम और उत्तम रीति से आचमन हो सकता है और धर्मशास्त्र ने भेद भी भिन्न भिन्न कर्मों के कर दिए हैं इस लिए ब्राह्म तीर्थ से आचमन करना अन्य रीति की अपेक्षा उत्तम है। हुलास की चुटकी से आलस्य दूर करने की विधि सन्ध्याकाल में सच्छास्त्रों में होती तो वह भी माननीय होती। परन्तु स्वामीजी का तो प्रयोजन यह था कि जो कुछ विधि शास्त्रानुकूल हैं उनको अनुकूल तर्क से पुष्ट किया जावे, न कि नई बात चलावें। स्वामीजी के चेले कोट पतलून पहर कर तो सन्ध्या कर लेंगे परन्तु आप के चेले तो वेद शास्त्र सन्ध्या आदि सभी से छुट्टी पागये और पाते जाते हैं। यदि स्वामीजी महाराज का पुरुषार्थ न होता तो अंग्रेज़ी शिक्षा के फैलते ही सब कर्म धर्म दूर हुआ था। धन्य है स्वामीजी को जो कोट पतलून वालों को गिरजों से बचाकर सन्ध्या सिखलाई। परिक्रमा मन से परमात्मा की हो सकती है। परिक्रमा का वह अर्थ नहीं जो आप ठाकुरजी की परिक्रमा समझते हैं कि बीच में ठाकुरजी को करके उनके चारों ओर घूमना। किन्तु परि=सब ओर, क्रम=घूमना अर्थात् सब ओर मन जावे और जहां जावे वहां परमात्मा को ही पावे, पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर ऊपर नीचे सर्वत्र परमात्मा को ही पावे। यह परिक्रमा है। (अपां समीपे०) जलाशयों के किनारे हरित वृक्ष पत्र पुष्पादि से रम्यस्थान में सन्ध्या करे और आप कोठी बंगलों पर क्यों चिढ़ हैं। यदि कोठी बंगलों में सुन्दर फव्वारे लगे हों, एकान्त हो, पुष्पादि के गमलों से सुसज्जित हो तो क्या हानि है। इस प्रसङ्ग में शास्त्रीय प्रमाणों से काम न लेकर आपने ठठोल-बाज़ी बहुत की है, अतः हम को अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं॥

समीक्षा—स्वामी दयानन्दजी सन्ध्या के समय में आचमन करना बतलाते हैं और साथ ही साथ उस आचमन का फल भी बतलाते हैं कि इस से कंठ का कफ दूर होता है इसके ऊपर मिश्रजी कुछ आपत्ति करते हैं वह यह कि (१) क्या सन्ध्या में सभी लोग कफ पित्त ग्रसित होते हैं (२) जल से कफ की शान्ति नहीं होती किन्तु बृद्धि होती है इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं "कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति कण्ठ में थोड़ा जल पहुंचने से अवश्य होती है" जिस प्रकार से स्वामी दयानन्दजी आचमन से कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति बतलाते हैं उसी प्रकार एक मनुष्य हम से कहता था कि कफ की निवृत्ति नहीं होती किन्तु दो लड़का होते हैं जिस प्रकार से पं० तुलसीराम स्वामी दयानन्द के अर्थ की पुष्टि करते हैं इसी प्रकार उस के पक्षपाती भी यही कहते थे कि जरूर लड़के होते हैं इस में किञ्चिन्मात्र भी संदेह नहीं। हम ने कहा कुछ प्रमाण दो आचमन से सन्तानोत्पत्ति बतलाने वाले ने उत्तर दिया कि स्वामी दयानन्दजी ने क्या प्रमाण दिया जो मुझ से मांगते हो पं० तुलसीराम भी इतने फड़-फड़ाये कि कहीं पर कुछ जरा सा भी ऐसा लेख मिल जावे कि जो जल से कफ की निवृत्ति बतलाता हो हजार बार पन्ने उथलने पर भी जब न मिला तब हार कर यही लिख दिया कि उस समय में थोड़ा सा कफ रहता है इस कारण थोड़े से जल से उस कफकी निवृत्ति होजाती है हमारे एक मित्र एक दिन इसपर त्रिराशिक(अर्वा) बनालाये और हम से बोले कि पं०जी हमने एक हिसाब लगाया है जरा सुन लीजिये हमने कहा क्या है वह सुनाने लगे कि पं० तुलसीराम के लेखानुसार थोड़े जल से थोड़े कफ की निवृत्ति और बहुत जल से बहुत कफ की निवृत्ति इस हिसाब से यदि ऐसे मनुष्य को कि जिस को कफ के कष्ट से नींद न आती हो यदि एक हण्डा, या मसक, जल पिला दिया जावे तो वह कफ के फन्दे से छूट कर इतने घर्राटे लगाता है कि पड़ोसियों को भी नहीं सोने देता। एक वैद्य हमारे पास आकर रोने लगा हमने पूछा कि यह क्यों उसने उत्तर दिया कि पहले चैत के महीने में कुछ मनुष्य रोग से पीड़ित हुआ करते थे और उनसे कुछ हमको मिल जाया करता था किन्तु पार-साल से गांव में सत्यार्थप्रकाश आगया है उसको पढ़कर कफ पीड़ित मनुष्य आच-मन कर अच्छे हो जाते हैं अब हमको कोई पूंछता भी नहीं यदि पहिले से हम को सत्यार्थप्रकाश के इस लेखका पता लग जाता तो फिर न तो हम बनवारीलाल पाठ-

शाला में भरती होते और न वैद्यकशास्त्र पर परिश्रम करते। इतने में एक आर्यसमाजी आगया उसने कहा कि वैद्यजी अभी आप कफ को क्या लिये फिरते हो हमारे यहां सब रोगों की दवाइयां तैयार हो गई सुनिये हम आप को दो चार सुनाते हैं यदि पैर के अंगूठे पर सन्ध्या के समय पानी छिड़का जावे तो चाहे कैसा भी अन्धा हो फौरन आंख खुल जाती है अगर पैर की छोटी अंगुली पर सन्ध्या में पानी छिड़का जावे तब तो एक आंख वाला दोनों नेत्रों से देखने लगता है यदि सन्ध्या का पानी एक बूंद कान में डाल दिया जावे तो फिर नये पुराने सभी प्रकार के आतशक और सुजाक भाग जाते हैं यदि एक बिन्दु जल कमर पर डाल दिया जावे तो फिर डाक्टर बर्मन की धातु पुष्ट की गोलियों की जरूरत नहीं। यह सुन कर हमने पूंछा कि इस का कहीं प्रमाण है तब उस ने उत्तर दिया कि प्रमाण का पचड़ा तो केवल सनातन धर्मी लगाते हैं हमारे मज़हब में तो यह बात है कि जो सम्भव असम्भव लिख दिया वह पत्थर की लकीर है यदि इतने पर भी उस लेख पर कोई खींचपड़ करे तो फिर उसको मुंहतोड़ उत्तर देने के लिये मेरठ निवासी पं० तुलसीरामजी तैयार रहते हैं।

हमको एक सिविल सर्जन मिले वह कुछ और ही कहते थे वह हमसे पूंछते थे कि आप हमको ऐसे मनुष्यों के नाम लिखवाओ कि जिन्होंने कफ रोग पर केवल जल (औषधि) दिया हो हम ऐसे मनुष्यों की लिस्ट तैयार करके जिला मजिस्ट्रेट को भेजेंगे ताकि जिलाधीश उनके ऊपर मुकदमा कायम करके और पुलिस द्वारा गिरफ्तार करवा अदालत भेजे अदालत में हम उनको सजा करवावेंगे कफ में जल देना अच्छा करना नहीं बल्कि इरादतन मार डालना है।

पं० तुलसीरामजी यह भी लिखते हैं कि पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो यह लिखा कि जल कफ रोग को बढ़ाता है यह किसी रोग का तो इलाज नहीं किन्तु सामान्य प्रकार के कंठ में कफ रहता है वह निवृत्ति होजाता है इस के ऊपर हम यह अवश्य कहेंगे कि कंठ में कफ का रुकना या ठहरना यह एक रोग है और उस को जल का दूर कर देना जल को कफ रोग की औषधि बतला रहा है फिर पं० तुलसीराम का लिखना न रोग है न इलाज है यह कितना विचार रखता है।

मिश्रजी ने यह लिखा कि जल तो कफ रोग को उत्पन्न करता है इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी तर और मिलाकर लिखते हैं कि यदि जल तर होने से कफ रोग को उत्पन्न करता है यह नियम हो तो जितने वैद्यक के प्रयोगों में मिश्री गुड़ शहद

गुडूची आदि तर वस्तु खांसी के रोग में प्रयुक्त की हैं सब व्यर्थ होजावें इसके ऊपर हमारा कथन यह है कि प्रथम तो मिश्रजी ने तर शब्द का प्रयोगही नहीं किया जब ऐसा नहीं किया तब फिर उन के नाम से तर शब्द मिला लेना यह एक अयोग्य बात है दूसरे क्या पं० तुलसीरामजी संसार में जितने तर पदार्थ हैं उन सब का एकही गुण है या भिन्न भिन्न यदि तर का एक गुण माना जावे तो हम पं० तुलसीरामजी से पूछते हैं कि दूध घृत दही मठा ये खुश्क हैं या तर ? वैद्यक के अनुसार यह तर हैं और तर होकर भी कफको बढ़ाते हैं जब तर पदार्थों में भी भेद है और तर भी कफ को बढ़ाते हैं फिर सभी तर कफ को दूर करते हैं इस लेख को कौन मानसक्ताहै।

इस के आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि आपने जो मनु के श्लोक लिख दिये उस से स्वामीजी के लिखे फल का तो निषेध नहीं आया किन्तु आचमन के प्रकार का वर्णन है इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी को ६२ वां श्लोक एकबार फिर पढ़ना चाहिए इस श्लोक में आचमन का फल महर्षि मनु ने पवित्र होना लिखा है। मनु तो आचमनका फल पवित्र होना मातते हैं और स्वामी दयानन्द कफ दूर होना। अब मनु के इस श्लोक से स्वामी दयानन्द के फल का निषेध हुआ या नहीं जब कि मनु कहते हैं कि आचमन का फल पवित्र होना है फिर ऐसी शक्ति किस वैदिक मनुष्य में है कि जो मनु के अर्थ पर पानी फेर कर प्रमाणशून्य स्वामी दयानन्द के कहे फल को मान ले आप मानें या न मानें किन्तु मनु के बतलाये आचमन के फल द्वारा स्वामी दयानन्द के बतलाये हुए फल का निषेध तो अवश्य होता है।

पं० तुलसीराम इन श्लोकों पर यह लिखते हैं कि "ब्राह्मणादि वर्णों की उत्तरोत्तर न्यून जल से शुद्धि का प्रयोजन यह है कि अपने अपने वर्णानुसार उनको उतनी उतनी शुद्धि भी न्यूनाधिक अपेक्षित है" यह तो हम भी मानते हैं और मनु का अभिप्राय भी यही है किन्तु इस लिखने से तुलसीराम के कौन से कार्य की सिद्धि हो गई क्या इस लिखने से मिश्रजी का लेख अशुद्ध हो गया या कि स्वामी दयानन्द का बतलाया कफ निवृत्ति फल सत्य हो गया।

किन्तु यह लेख कुछ न कुछ आर्यसमाज में ही भेद करनेवाला हो गया। सिकंदराबाद के गुरुकुल के उत्सव पर जनमेजय का व्याख्यान यह बतला रहा है कि ईश्वर के सन्मुख ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सब एक से हैं उस व्याख्यान में एकता की पुष्टि में यह भी प्रमाण दिया है कि सूर्य चन्द्र पृथिवी आदि सब के

लिये पकती है। कहना यह है कि वर्त्तमान आर्यसमाजियों की दृष्टि में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र सब एक हक रखते हैं उनकी दृष्टि में मनु के यह श्लोक अमान्य है फिर आप इनको मानकर आचमन में भेद डालते हुए ब्राह्मणादि का सत्व पृथक् पृथक् स्वीकार करते हैं इस के ऊपर हम को कहना पड़ता है कि आप समाज में पार्टियां बनाना चाहते हैं और नहीं तो यह दिखलाना चाहते हैं कि समाजी लोग डेढ़ डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकाते हैं।

इस के आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि "स्वामीजी" ने जितने कर्म लिखे उनको तो आप भी मानते हैं परन्तु उनकी पुष्टि के लिये कुछ युक्ति भी लिख दी तो क्या होगया अर्थात् पंडितजी का कहना यह है कि आचमन तो तुम भी करते हो और उस आचमन की पुष्टि में कफ निवृत्ति युक्ति बतला दी तो पं० ज्वालाप्रसाद चिढे क्यों। इस के ऊपर हम यह कहते हैं कि किसी मनुष्य ने लिखा कि यज्ञोपवीत पहिनना वैदिक और शुभकारक है तथा उस से लाभ भी है यदि किसी वक्त दीपक में बत्ती न रहे तो जनेऊ को तोड़कर बत्ती बनाकर दीपक में डाल सकता है। अब यहां पर हम पं० तुलसीराम से पूछते हैं कि इस पुरुष ने यज्ञोपवीत के महत्व को बढ़ाया या घटाया ? यदि पं० तुलसीराम कहें कि बढ़ाया है तब ऐसी दशामें हम पं० तुलसीराम से पूछते हैं कि क्या वास्तव में यज्ञोपवीत इसी लिये बना है कि उसको तोड़कर दीपक की बत्ती बना ली जावे ? यदि पं० तुलसीराम कहें कि इसने तो यज्ञो-पवीत की बत्ती बनाना यह बात बतलाकर शास्त्र के महत्व को ही नष्ट कर दिया तो फिर हम क्यों न कहें कि स्वामी दयानन्द की युक्ति से मनु के लेख का स्वाहा होगया।

इस के आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि स्वामीजी के लेख को आप न मानिये परन्तु वेद वचन को कैसे न मानियेगा देखिये यजुर्वेद। ३६। १२

शन्नोदेवीरभिष्टय आपोभवन्तुपीतये। शंयोरभिस्रवन्तुनः

इस का आध्यात्मिक अर्थ तो पंचमहायज्ञविधि के लिखे अनुसार है परन्तु आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थ पर दृष्टिपात कीजिये—देव्यः आपः नः पीतये शंभवन्तु। नोऽस्मान् अभिष्टये शंयोरभिस्रवन्तु। अर्थात् दिव्य जल हमारे पीने के लिये सुखदायक हो और वह हम को मनोवांछित सुख को वर्षावे। तात्पर्य यह है

कि उत्तम दिव्य जल से (जैसा कि मनु अ० २ श्लोक ६१ में स्वच्छ जल से आचमन लिखा है) आचमनादि करने से सुख की प्राप्ति होती है अर्थात् शारीरिक सुख तृप्ति शान्ति आदि के लिये जल को प्रयोग में लाना चाहिये। यही कारण इस मन्त्र के आचमन करने में विनियोग होने का है।

पं० तुलसीरामजी इस मन्त्र के अर्थ से जबर्दस्ती यह सिद्ध करना चाहते हैं कि आचमन से कफ दूर होता है। एक दूसरा आर्यसमाजी कहता था कि जब शरीर में फोड़ा होजाय तब इस मन्त्र को पढ़ना चाहिये फोड़ा तुरन्त अच्छा होजाता है और स्वामी दयानन्दजी "अभिष्टये" का अर्थ यह करते हैं कि इष्ट सुख की सिद्धि के लिये जल हमको सुखकारक हो जिसका यह अर्थ हुआ कि जो सुख हम चाहें वही सुख हम को जल देवे स्वामीजी जलों को समस्त सुखों का भण्डार कहते हैं किसी भांति का भी तुम सुख चाहो वह सब आप को जल ही दे देगा प्रत्यक्ष में जल से फोड़ा अच्छा नहीं होता, बुखार भी नहीं जाता, किसी की आंख का दर्द भी दूर नहीं होता फिर जब कोई भी रोग दूर नहीं होता तब आचमन से केवल कफ कैसे दूर हो जावेगा यह सब टालने की बातें हैं इस से तो आर्यसमाज जल पूजक और सिद्ध होती हैं। यदि आप कहो कि सनातनधर्म जल पूजक सिद्ध नहीं होजावेगा इस के ऊपर हमारा उत्तर यह है कि हम तो स्वामी दयानन्दकृत इस अर्थ को या तुलसीराम के अर्थ को मानते ही नहीं किन्तु इस मन्त्र के अर्थ में जलों के देवता गायत्री से प्रार्थना करते हैं कि वह हम को सुखकारक हो ऐसी दशा में हम जड़-पूजक नहीं ठहर सकते किन्तु जो समाज देवकोटी सिद्ध होने के भय से केवल जलों से सुख की प्रार्थना करती है वह जड़-पूजक क्यों नहीं ? इस के ऊपर समाज क्या उत्तर देती है ? स्वामीजी मार्जन से आलस्य की निवृत्ति लिखते हैं इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद लिखते हैं कि अभी तो वह स्नान करके आया है स्नान से भी जिसका आलस्य न गया तो फिर जरा से जल के छीटों से कैसे चला जावेगा और हमने मान भी लिया कि स्नान करने में भी जिसका आलस्य दूर न हुआ हो तो फिर उसको हुलास क्यों न सुंघा दी जावे या चाह व काफी क्यों न पिला दी जावे। सब से उत्तम उपाय तो यह है कि एमोनियां की शीशी सूंघ लें कि जिस से मूर्च्छा तक भी दूर हो जावे। इस के उत्तर में पं० तुलसीरामजी कुछ दबे दबे से लिखते हैं कि महाशय प्रथम तो यह बात है कि जल के छीटा पड़ने से जैसी चैतन्यता होती है वैसी स्नान से नहीं दूसरी बात यह है कि भला प्रातः संध्या में तो स्नान करके बैठते हैं परन्तु सायं

संध्या में स्नान का नियम नहीं तीसरी बात यह है कि जाड़े में भी एक बार नित्य स्नान करना उत्तम कर्म है और गर्मी में दो बार या जितने बार से देह शुद्ध रहे। इस के ऊपर पहिली युक्ति में हम कह सकते हैं कि पं० तुलसीराम का लेख प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। जिस मनुष्य का आलस्य स्नान से दूर न हुआ, लोटों और कलशों भर धम धम पानी के गिरने से भी दूर न हुआ उस कुम्भकरण का आलस्य ढाई रत्ती जल के छीटेबाजी से दूर होजावेगा ? भला क्या कोई मनुष्य इस बात को मान सकता है कि स्नान करने पर भी आलस्य रह जावे। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि कृपा कर ऐसे आलसियों का जन्म या इन दूसरे कुम्भकरणों की उत्पत्ति भारतवर्ष में न कीजिये। सब से अच्छा तो यह है कि एक मनुष्य नौकर रख लिया जावे जो स्नान के समय में आंखों पर इतने छोटे मारे कि जब तक आलस्य दूर न होजावे इन कुम्भकरण आर्यसमाजियों को दम न लेने दे जिस से वहीं आलस्य उतर जावे अभिप्राय यह है कि कितना भी आलसी क्यों न हो किन्तु स्नानसे आलस्य अवश्य उतर जाता है और सायंकाल की संध्या में यदि कोई स्नान कर ले तो कुछ पाप है ? जिस को आलस्य आ रहा हो उस को तो स्नान आवश्यकीय है फिर सूंघनी तथा चाह व काफी का पीना अथवा ऐमोनियां की शीशी का सूंघना कि जिस से आलस्य का भूत पास भी न आसके यह काम क्यों न कर ले विद्या बारिधि के इस लेख पर पं० तुलसीराम उत्तर क्यों नहीं देते ? मालूम होता है कि कुछ बन नहीं पड़ता। जिन को आलस्य न हो वह मार्जन क्यों करें चलो सन्ध्या के मार्जन की सफाई होगई।

आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि शास्त्रकार स्नान की कर्तव्यता की अपेक्षा सन्ध्या की कर्तव्यता उत्तम मानते हैं इस कारण से यह लिख दिया कि जो सन्ध्या न करे वह द्विजाति वर्ण से बाहर निकाल दिया जावे जैसे सन्ध्या न होने पर द्विजाति का बाहर निकालना लिखा है वैसा स्नान न करने पर नहीं लिखा।

पं० तुलसीराम क्या यह सिद्ध करना चाहते हैं कि स्नान तो छः महीने न करे और सन्ध्या रोज करे ? देवताजी ! स्नान होनेके पश्चात् ही सन्ध्या होती है। सन्ध्या के प्रायश्चित्त में स्नान का भी प्रायश्चित्त हो गया। शास्त्रकारों को यह खूब मालूम था कि बिना स्नान के सन्ध्या होती ही नहीं अतएव वे यह समझते थे कि इस दण्ड में स्नान का दण्ड भी आ गया।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने एक कटाक्ष यह किया कि आप के चेले तो कोट पतलून पहिन कर सन्ध्या करेंगे इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि यदि स्वामीजी पुरुषार्थ न करते तो गिरजा छुटा कर सन्ध्या कौन सिखलाता। यह पं० तुलसीराम का भ्रम है। स्वामीजी ने कोट पतलून छोड़ना नहीं सिखलाया किन्तु पहिनना सिखलाया है और उदाहरण के लिए स्वामीजी सन्यासी हो कर भी आप ही कोट पतलून पहिनने लग गये थे। अभिप्राय यह है कि जिन्होंने देश के भेस से ही छुट्टी पा ली वे क्या खाक सन्ध्या करेंगे ? आजकल प्रतिनिधि के बड़े बड़े पद के अधिकारी कोट पतलून वाले कितने सन्ध्या करते हैं यह पं० तुलसीराम को लिस्ट बनाने पर ज्ञात होगा। कोट पतलून वाले वैदिक धर्म की रक्षा करते हैं या भक्षण करते हैं इसके लिये आप को सम्वत १९७१ का अपना वेदप्रकाश देखना चाहिए कि जिसमें आपके और आप के भाई छुट्टनलाल के लेख छपे हैं। पं० तुलसीराम को याद रखना चाहिये कि कोट पतलून वाले त्रिकाल में भी वैदिक धर्म की रक्षा नहीं कर सकते इसके लिये हम नरदेव शास्त्री तथा पं० अखिलानन्द आदि आर्यसमाजी पंडितों को या उनके लेखों को या आप के लेख को प्रमाण में दे सकते हैं।

स्वामी दयानन्दजी ने सन्ध्या में निराकार ईश्वर की मानसिक परिक्रमा लिखी है इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद लिखते हैं कि स्वामीजी और स्वामीजी के लिखे सत्यार्थप्रकाश का ईश्वर तो निराकार है फिर निराकार की परिक्रमा कैसी ? पं० तुलसीराम इसका कुछ उत्तर तो दे नहीं सकते किन्तु परिक्रमा का अर्थ बदलते हुए लिखते हैं कि परिक्रमा का वह अर्थ नहीं जो आप ठाकुरजी की परिक्रमा समझते हैं कि बीच में ठाकुरजी को करके उनके चारों ओर घूमना। किन्तु परि=सब ओर, क्रम=घूमना अर्थात् सब ओर मन जावे और जहां जावे वहां परमात्मा को ही पावे, पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर ऊपर नीचे सर्वत्र परमात्मा को ही पावे। यह परिक्रमा है क्या सच ही इसी का नाम परिक्रमा है ? कल्पना करो कि हम मेरठ गये और वहां हमें पं० तुलसीराम मिले फिर हम अजमेर गये वहां पर भी हमको पं० तुलसीराम मिल गये बस पं० तुलसीराम के सिद्धान्तानुकूल हमने तुलसीराम की परिक्रमा की और पं० तुलसीराम ने हमारी। परिक्रमा का यह अर्थ त्रिकाल में भी नहीं हो सकता परिक्रमा का अर्थ खास चारोंतरफ घूमना है बस निराकार सर्वव्यापक के चारों तरफ घूमना यह त्रिकाल में भी नहीं हो सकता और जिस के चारों तरफ घूमा जावे वह परिमित शरीरी होगा और परिक्रमा करना यह भी मूर्तिपूजन है।

स्वामी दयानन्दजी ने जल के समीप जाकर सन्ध्या करनी लिखी इसके ऊपर मिश्र ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं परन्तु जिसे कफ ने घेरा हो वह तो आपके मतानुसार कोठी बंगले या ऊसर में बैठकर जप करे इसके ऊपर पं० तुलसीराम कहते हैं कि आप कोठी बंगलों पर क्यों चिढे हैं यदि कोठी बंगलों में सुन्दर फव्वारे लगेहों, एकान्त हो, पुष्पादि के गमलों से सुसज्जित हो तो क्या हानि है। इस प्रसंग में शास्त्रीय प्रमाणों से काम न लेकर आपने ठठोलबाजी बहुत की है, अतः हमको अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। पं० ज्वालाप्रसादजी न तो कोठी बंगलों से चिढ़ते हैं और न मसखरी करते हैं किन्तु यह पूछते हैं कि जिसके गले को कफ ने घेरा हो वह जलके समीपही जाकर सन्ध्या करे या कोठी बंगले में करले इसका उत्तर न तो आप देते है और न दे सकते हैं। पं० ज्वालाप्रसाद कोठी बंगलों से चिढ़ते हैं, मसखरी करते हैं, इत्यादि शब्द लिख कर टालमटोला करते हैं आप जितनी टालम टोला करेंगे स्वामी दयानन्द के लेख की उतनी ही पोल प्रकट होगी।

सन्ध्याकाल।

सत्यार्थप्रकाश—

सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल में करे दो ही रात दिन की संधिवेला हैं अन्य नहीं, न्यून से न्यून एक घंटा ध्यान अवश्य करे जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे। तथा सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है उसके लिए एक किसी धातु वा मट्टी की ऊपर १२ वा १६ अंगुल चौकोन उतनी ही गहिरी और नीचे ३ वा ४ अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनावें अर्थात् ऊपर जितनी चौड़ी हो उसकी चतुर्थांश नीचे चौड़ी रहै। उसमें चन्दन पलाश वा आम्रादि के श्रेष्ठ काष्ठों के टुकड़े उसी वेदि के परिमाण से बड़े छोटे करके उसमें रक्खे उसके मध्य में अग्नि रखके पुनः उस पर समिधा अर्थात् पूर्वोक्त इन्धन रखदे एक प्रोक्षणीपात्र ऐसा और तीसरा प्रणीतापत्र इस प्रकार का और एक इस प्रकार की आज्यस्थाली अर्थात् घृत रखने का पात्र और चमसा ऐसा

सोने चांदी वा काष्ठ का बनवा के प्रणीता और प्रोक्षणी में जल तथा घृतपात्र में घृत रख के घृत को तपा लेवे प्रणीता जल रखने और प्रोक्षणी इस लिए है कि उससे हाथ धोने को जल लेना सुगम है। पश्चात् उस घी को अच्छे प्रकार देख लेवे फिर इन मन्त्रों से होम करे।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। भुवर्वायवे पानाय स्वाहा। स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा॥

इत्यादि अग्निहोत्र के प्रत्येक मन्त्र को पढ़ कर एक २ आहुति देवे और जो अधिक आहुति देना हो तोः—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानिपरा सुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥ यजु० अ० ३०। ३।

इस मन्त्र और पूर्वोक्त गायत्री मन्त्रसे आहुति देवे "ओं" "भूः" और "प्राणः" आदि ये सब नाम परमेश्वर के हैं इनके अर्थ कह चुके हैं।

तिमिरभास्कर—

यह तौ स्वामीजी ने खूबही कही दोकाल से अधिक ईश्वरका नाम लेना क्या कोई पाप है तपस्वी तौ वर्षों निरन्तर परमात्मा का ध्यान करते रहे हैं इससे दोही कालमें उसका अर्चनवन्दन करै यह कहना ठीक नहीं परमेश्वरका नाम लेना सर्वथा श्रेयस्कारकहै।

इससे त्रिकाल संध्या करना किसी प्रकार हानिकारक नहीं किन्तु लाभही की दायक है, इसमें प्रमाण यह है कि, जहां तैत्तिरीयारण्यक में प्रभात संध्या के आचमन आये हैं वहीं मध्यान्हकी संध्या का आचमन लिखा है यथा—

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवीपूता पुनातुमाम्।
पुनन्तु ब्राह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातुमाम्॥
यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वादुश्चरितंमम।
सर्वं पुनन्तुमामापोऽसतां च प्रति ग्रह ॐ स्वाहा॥

तैत्ति० आ० अनु० २३

अर्थ—जल पृथिवी को पवित्र करें वा मेरे पार्थिव शरीर को पवित्र करें यह पृथिवी जलों से पवित्र हुई अपने गुणों से मुझे पवित्र करे यही जल ज्ञान के पति वा वेदों के धारण करनेसे पति आत्मा को पवित्र करें सबके पवित्र करनेवाले ब्रह्म मुझको पवित्र करें जो मैंने जूठा निन्दित भोजन किया है जो मेरा बुरा कर्म है जो असत् अर्थात् जिनका धान्य ग्राह्य नहीं है उनका मैंने अन्न ग्रहण किया हो इन सब से जलके अधिष्ठातृ देवता मुझे पवित्र करें विशेष विवरण हमारी त्रिकाल संध्या में देखो।

जब राजा युधिष्ठिरसे दुर्वासाजीने दुपहरको भोजन मांगा और उन्होंने स्वीकार किया तब दुर्वासाजी दुपहरकी संध्या करने गये यथा—

ते चावतीर्णा सलिले कृतवन्तोघमर्षणम् ॥

महाभारत वनपर्व अ० २६३ श्लो० २८ वे नदी में जाय जल में अवतीर्ण हो अघमर्षण जपने लगे।

गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमेदिने ॥
सरस्वती च सायाह्ने सैव संध्या त्रिषु स्थिता ॥ व्या०
संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनात्मविदा सदा ॥
त्रिकालसंध्याकरणात्तत्सर्वं च विनश्यति ॥ याज्ञ०

व्यासजी कहते हैं प्रभातकी संध्या गायत्री, मध्याह्नकी सावित्री, संध्याकी सरस्वती है। याज्ञवल्क्यका वचन है कि ब्राह्मणको तीनो कालकी संध्या करनी चाहिये तथा त्रिकाल संध्या से सब पाप दूर होते हैं।

भास्करप्रकाश—

जब आप को त्रिकाल सन्ध्या का कोई प्रमाण न मिला तो धन्य ! यही लिख दिया कि परमेश्वर का नाम श्रेयस्कर है। हम भी तो कहते हैं कि परमेश्वर का जितना अधिक स्मरण करो अच्छा है परन्तु प्रसंग तो यह है कि जिस सन्ध्यो-

पासन के बिना किये द्विज पतित होजाता है उस का विधान तो स्वामीजी के लेखानुसार ही शास्त्र से केवल दो काल में सिद्ध है। यूं तो "अधिकस्याधिकं फलम्" के अनुसार त्रिकाल सन्ध्या की अपेक्षा भी समस्त दिन उस की उपासना करो तो क्या पाप है ? तब आप की त्रिकाल सन्ध्या जो वेद और धर्मशास्त्र की मर्यादा से भिन्न आप में प्रचरित है उस की निर्मूलता स्वामीजी ने लिखी सो ठीकही है।

समीक्षा—स्वामी दयानन्दजी ने दो काल सन्ध्या करना लिखा। मिश्र ज्वालाप्रसादजी त्रिकाल सन्ध्या सिद्ध करते हुए मध्यान्ह की संध्या का एक प्रमाण तैत्ति० आ० अनु० २३ और दूसरा प्रमाण व्यासस्मृति, और तीसरा याज्ञवल्क्यस्मृति, और चौथा महाभारत बनपर्व (जिस को स्वामी दयानन्दजी ने ईश्वरकृत माना है) प्रमाण दिये हैं। इन प्रमाणों का कुछ भी उत्तर न देकर पं० तुलसीराम फिर भी मध्यान्ह की सन्ध्या को वेदशास्त्र मर्यादा से भिन्न बतलाते हैं जिस में चार चार प्रमाण लिखे हों उसके लिए वेदशास्त्र मर्यादा से भिन्न लिखना यह पं० तुलसीराम ने जान बूझ कर अनुचित किया है। पाठक वर्ग इसके ऊपर विचार करें कि त्रिकाल सन्ध्या कि जिसमें सैकड़ों प्रमाण मौजूद हैं उसको तो पं० तुलसीराम वेदशास्त्र मर्यादा से भिन्न कहते हैं और जिस स्वामी दयानन्द के लेख में वेद शास्त्र पुराण इतिहास आदि कुछ भी प्रमाण नहीं उसको वेदशास्त्र मर्यादानुसार ठीक बतलाते हैं। पं० तुलसीराम लिखते हैं कि परन्तु प्रसंग तो यह है कि जिस सन्ध्योपासन के बिना किये द्विज पतित हो जाता है उसका विधान तो स्वामीजी के लेखानुसार ही शास्त्र से केवल दो काल में सिद्ध है यदि शास्त्रकार यह लिख दें कि जो दिन में एक वक्त भी सन्ध्या नहीं करता तो वह द्विजाति वर्ण से बहिष्कृत करने के योग्य है क्या इससे एक वक्त की ही सन्ध्या करना शास्त्रों की आज्ञा हो जावेगी ? यदि कहो कि नहीं तो फिर दोकाल की सन्ध्या न करने पर जो प्रायश्चित्त बतलाया उससे दो ही बार की सन्ध्या का होना पं० तुलसीराम ने किस युक्ति और प्रमाण से मान लिया ?

—— ० ——

स्वाहा शब्दार्थ ।

सत्यार्थप्रकाश—

"स्वाहा" शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोले विपरीत नहीं जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत के पदार्थ रचे हैं वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिये ।

तिमिरभास्कर—

यह स्वाहाशब्द का अर्थ कौन से निघण्टु निरुक्त से निकाला भला ऊपर जो आपने लिखाहै कि, प्राणाय स्वाहा तौ इसका यह अर्थ हुआ कि, प्राण अर्थात् परमेश्वर के अर्थ जैसा ज्ञान आत्मामें होवे वैसा बोले भला यह क्या बात हुई इससे हवन की कौनसी कला सिद्ध होती है, सुनिये स्वाहा अव्यय है, जिसके अर्थ हवि-त्यागन करने के हैं जो देवता के उद्देश से अग्नि में हवि दिया जाता है उसमें स्वाहाशब्द का प्रयोग होता है जैसे "प्राणाय स्वाहा" प्राणों के अर्थ हवि दिया वा प्राणों के अर्थ श्रेष्ठ होम हो (स्वाहाकारञ्च वषट्कारञ्च देवा उपजीवन्तीति श्रुतेः) ॥

भास्करप्रकाश—

स्वाहा शब्द के उक्त स्वामीजी कृत अर्थ में प्रमाण सुनिये जो उन्हों ने "पञ्चमहायज्ञविधि" में लिखा भी है :—

स्वाहा कृतयः स्वाहेत्येतत्सुआहेति वा स्वावागाहेतिवा स्वं
प्राहेतिवा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा तिसामेषा भवति ॥

निरु० दैवत कां० आ० ८ खं० २० ॥

इसमें से "स्वा वागाहेति" का अर्थ भी "पञ्चमहाय०" में लिख दिया है कि "यास्वकीया वाग्ज्ञानमध्ये वर्त्तते सा यदाह तदेव वागिन्द्रियेण सर्वदा वाच्यम्"। अर्थात् जैसा ज्ञान मन में हो वैसा कहे किन्तु बाहर भीतर में भेद करके कपट व्यव-हार न करे। यह तौ प्रमाण हुआ। अब यह भी सुनिये कि प्राण नाम परमेश्वर का

है तौ " प्राणायस्वाहा " का क्या अर्थ हुआ। इसका यह अर्थ हुआ कि परमेश्वर के लिये अर्थात् उसकी प्रसन्नता के लिये सत्य ही बोलना कपट न करना और आपने जो आहुति देना अर्थ लिखा है वह भी ठीक है और वह स्वामीजी ने भी " पञ्चमहायज्ञविधि " में निरुक्त के " स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा " इस वाक्य का प्रमाण देकर लिखा है परन्तु यहां सत्यार्थप्रकाश में यह समझ कर कि पञ्चयज्ञ का विधिपूर्वक लेख तौ पञ्चमहायज्ञविधि में है ही वहां सब लोग पढ़ कर जानलेंगे कि इसलिये संक्षेप से सन्ध्योपासनादि की शिक्षा के प्रसङ्ग में थोड़ा सा लिख दिया। संक्षेप के कारण जैसा " पञ्चमहा० " में स्वाहा शब्द के कई अर्थ निरुक्त के प्रमाण से लिखे हैं वे विस्तारभय से यहां नहीं लिखे और "स्वाहा अव्यय है" यह जो आपने लिखा तौ क्या स्वामी जी ने इसके अव्ययत्व का निषेध किया है? यदि नहीं किया तौ व्यर्थ आप क्यों पुस्तक बढ़ाते हैं?

समीक्षा—स्वामी दयानन्दजी कहते हैं कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोले यह स्वाहा शब्द का अर्थ है इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद लिखते हैं कि यह अर्थ कौन से निघण्टु और निरुक्त से निकाला इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि स्वाहा शब्द के उक्त स्वामीजीकृत अर्थ में प्रमाण सुनिये जो उन्होंने पञ्चमहायज्ञ विधि में लिखा है "स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येतत्सुआहेति वा स्वावागाहेतिवा स्वंप्राहेति वास्वाहुतंहविर्जुहोतीतिवातिसा मेषाभवति" "यास्वकीया वाग्ज्ञानमध्ये वर्त्ततेसायदा हतदेववागिन्द्रियेण सर्वदावाच्यम्" अर्थात् जैसा मन में हो वैसा कहें किन्तु बाहर भीतर में भेद करके कपट व्यवहार न करें यह तो प्रमाण हुआ इसके ऊपर हम यह कहते हैं कि बेशक पं० तुलसीराम का दिया प्रमाण निरुक्त का है किन्तु जो अर्थ पं० तुलसीराम ने किया है वह अर्थ इस निरुक्त का हो ही नहीं सकता। पं० तुलसीराम ने (१) स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येत्तत्सु आहेतिवा स्वंप्राहेतिवा स्वाहुतं हविर्जुहोतीतिवातिसा मेषाभवति इतने पदों का अर्थ नहीं किया केवल मंत्र की एक पूंछ स्वावागाहेति इसका अर्थ किया है (२) या स्वकीया वाग्ज्ञान मध्ये वर्त्ततेतदेव वागिन्द्रियेण सर्वदा इतने शब्द पं० तुलसीराम ने अपनी तरफ से मिला दिये हैं इस भांति का अर्थ करना किसी भी विचारशील मनुष्य को तोषदायक नहीं होसकता पं० तुलसीराम जैसे योग्य पुरुष के द्वारा ऐसे अनुचित कार्य का होना

शोकजनक है निरुक्त का असली अर्थ यह है कि स्वाहाकृति स्वाहा यह उत्तम रीति से कहै अपनी वाणी से कहै आप कहै और हवन योग्य हवि को अग्नि में छोड़े निरुक्त के इस असली अर्थ से स्वामी दयानन्दकृत स्वाहा शब्द का अर्थ पाताल को चला जाता है ।

पं० ज्वालाप्रसाद लिखते हैं कि प्राणाय स्वाहा इस का अर्थ यह हुवा कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो परमेश्वर के लिये वैसा ही बोले यह कौन बात हुई और इस से हवन की कौनसी कला सिद्ध होती है इस के ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि ठीक तो है इस का यह अर्थ हुवा कि परमेश्वर के लिये अर्थात् उसकी प्रसन्नता के लिये सत्यही बोलना कपट न करना । इसके ऊपर (१) प्राणाय इस चतुर्थ्यंतपद को पं० तुलसीराम ने षष्ठ्यंत समझा (२) प्रसन्नता इतनी इबारत अपनी तरफ से मिलाकर ईश्वर की प्रसन्नता के लिये ऐसा अर्थ किया है जो अर्थ प्राणाय स्वाहा इस पद में से निकलही नहीं सकता यदि तुलसीराम को यह अर्थ करना स्वीकार था तो प्रार्थना मूल को ऐसा (प्राणस्य प्रसन्नतायै) बनाते कि जिस में से पं० तुलसीरामकृत अर्थ निकलता प्राणाय स्वाहा इसका अर्थ ईश्वर की प्रसन्नता के लिये कभी हो ही नहीं सकता मनमाने अर्थ करना यह कोई पाण्डित्य नहीं है ।

फिर स्वामी दयानन्दजी ने जो संस्कार विधि में अश्विन्यै स्वाहा भरण्यै स्वाहा लिखा है पं० तुलसीराम के मन्तव्यानुसार इनका अर्थ अश्विनी नक्षत्र के प्रसन्नता के निमित्त तथा भरणी नक्षत्र की प्रसन्नता के लिए सच बोलता हूँ क्या अब जड़ नक्षत्रों की प्रसन्नता से समाज को सुख मिलेगा ? अच्छा होगा । पं० ज्वालाप्रसाद जी ने यह लिखा था कि इस अर्थ से हवन की कौनसी कला सिद्ध हुई इसके ऊपर पं० तुलसीराम ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया उत्तर तो तब दें जब कि स्वामी दयानन्द कृत स्वाहाशब्द के अर्थ से हवन की सिद्धि होती हो ।

इसके अनन्तर पं० ज्वालाप्रसादजी स्वाहा शब्द का अर्थ दिखलाते हैं और उस में एक (स्वाहाकारश्चवषट्कारश्च देवा उपजीवन्तीतिश्रुतेः) श्रुति का प्रमाण देकर सिद्ध करते हैं कि स्वाहा शब्द देवताओं के हविदान में रहता है इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि आप ने जो आहुति देना अर्थ लिखा है वह भी ठीक है और वह स्वामीजीने भी पञ्चमहायज्ञविधिमें निरुक्तके "स्वाहुतंहविर्जुहोतीतिवा" इस वाक्य का प्रमाण देकर लिखा है परन्तु यहां सत्यार्थप्रकाश में यह समझकर

कि विस्तारपूर्वक लेख तो पञ्चयज्ञविधि में है ही वहां सब लोग पढ़कर जान लेंगे इस लिये संक्षेप से सन्ध्योपासनादि की शिक्षा के प्रसंग में थोड़ासा लिख दिया संक्षेप के कारण जैसा "पञ्चमहा०" में स्वाहा शब्द के कई अर्थ निरुक्त के प्रमाण से लिखे हैं वे विस्तार भय से यहां नहीं लिखे इसके ऊपर (१) तो पं० तुलसीराम ने जो पं० ज्वालाप्रसाद के अर्थ को ठीक माना है केवल इसी से स्वामीदयानन्दकृत अर्थ कपोल कल्पित ठहर जाता है जब कि स्वाहा शब्द का अर्थ देवताओं को हविदान है तब फिर जैसा मन में ज्ञान हो वैसाही बोलो यह कब सत्य होसक्ता है (२) स्वामी दयानन्द ने पञ्चमहायज्ञ विधि में स्वाहा शब्द का वही अर्थ किया है जो पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र कर गये सत्यार्थप्रकाश में लिखा अर्थ स्वामी दयानन्द ने वहां भी नहीं लिखा फिर किस अभिमान के ऊपर स्वामी दयानन्दकृत स्वाहा शब्द के इस स्थान में लिखे अर्थ को सत्य कह सकते हैं यह तो सब प्रकार से मिथ्या ही सिद्ध होता है।

पं० तुलसीरामजी ने जो यह कहा कि स्वामीदयानन्द ने पञ्चमहायज्ञविधि में स्वाहा शब्द के कितने ही अर्थ किये हैं स्वाहा शब्द क्या ठहरा गोरखधंधा ठहरा जो चाहें वही अर्थ स्वाहा शब्द से निकल आवे स्वामीजी ने जितने अर्थ पंचमहा-यज्ञविधि में इस शब्द के किये हैं उन में एक को छोड़कर शेष समस्त कल्पित और वेदशास्त्र के विरुद्ध हैं उन को सत्य बतलाने के लिये आर्यसमाज के पास वेद शास्त्रादि का एक अक्षर भी प्रमाण नहीं फिर ऐसे ऐसे अनर्गल अर्थों का तैयार करना वेदशास्त्र के असली सिद्धान्त को रसातल को पहुंचाना है फिर पञ्चमहायज्ञ विधि के लेखों का प्रकरण उठाने से सत्यार्थप्रकाश लिखित स्वाहा शब्दार्थ सत्य न होगा किन्तु असत्य ही ठहरेगा जो अर्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखा वह अर्थ तो स्वामी दयानन्दजी भी असत्य ही मानते हैं इस में पञ्चमहायज्ञविधि प्रमाण है। स्वामी दयानन्द पञ्चमहायज्ञविधि में स्वाहा शब्द के समस्त अर्थ लिखते हैं कि जितने अर्थ समाजी मत में इस शब्द के होते हैं उन अर्थों में सत्यार्थप्रकाश लिखित अर्थ का न होना साबित करता है कि वास्तव में यह अर्थ भंग के नशे में ही लिखागया है और इस की सत्यता साबित करने के लिये समाज के पास कोई प्रमाण नहीं।

इस अर्थ की सत्यता में जब कोई प्रमाण न मिला तब पं० तुलसीराम लिखते हैं कि स्वाहा शब्द का ठीक अर्थ तो पञ्चमहायज्ञविधि में लिखा है यहां पर तो

संक्षेप से अर्थ कर दिया है इस संक्षेप के मारे नाक में दम है जब पं० तुलसीराम को कुछ उत्तर नहीं सूझता तब संक्षेप का अड़ंगा लगा देते हैं और यह अजीब तरह का संक्षेप है। यह ऐसा संक्षेप है कि परीक्षा में किसी विद्यार्थी से पूछा कि गज माने वह लड़का बोला कि गज माने बिल्ली यह सुनकर डिपटी साहब ने लड़के को फेल कर दिया जब मास्टर को मालूम हुआ कि लड़का फेल कर दिया गया तब आप डिपटीसाहब के पास पहुंचकर बोले कि इस लड़के को फेल क्यों किया डिपटी साहब ने उत्तर दिया कि इस ने गज के माने गलत बिल्ली बतलाए मास्टर ने पूछा कि असलियत में गज के माने क्या हैं डिपटी बोले कि हाथी यह सुनकर मास्टर बोला कि लड़के ने संक्षेप से बतलाया था जैसा संक्षेप लड़के के कथन में है वैसाही संक्षेप स्वाहा शब्द के अर्थ में स्वामी दयानन्द ने रक्खा। जिस स्वाहा शब्द का अर्थ देवताओं को हविदान देना है उसी का अर्थ जैसा मन में हो वैसा ही बोले लिखा इसी को पं० तुलसीरामजी संक्षेप कहते हैं मेरी समझ में तो आर्यसमाजी भी इस अर्थ को संक्षेप नहीं कह सकते नहीं मालूम पं० तुलसीराम की बुद्धि इस को संक्षेप कैसे मानती है आशा है कि यह संक्षेप हमको समझा दिया जावेगा। पं० ज्वालाप्रसादजी ने लिखा कि "स्वाहा" शब्द अव्यय है इस के ऊपर पं० तुलसीराम कहते हैं कि अव्यय होने में हमारी क्या हानि इस के ऊपर हम को कहना पड़ता है कि इस को अव्यय मानने से स्वामीकृत अर्थ फर्जी होजाता है क्योंकि अव्ययार्थ में स्वाहा शब्द का अर्थ "स्वाहा–देवताभ्योदाने" लिखा है हम को कहना पड़ता है कि पं० तुलसीराम लेख में विचार नहीं करते कागज रंगने में ही प्रशंसा समझते हैं।

हवनफल।

सत्यार्थप्रकाश—

(प्रश्न) होम से क्या उपकार होता है? (उत्तर) सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है। (प्रश्न) चन्दनादि घिस के किसी के लगावे या घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं। (उत्तर) जो तुम

पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो जहां होम होता है वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का गृहण होता है वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है। (प्रश्न) जब ऐसा ही है तो केशर कस्तूरी सुगंधित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से सुगंधित वायु हो कर सुखकारक होगा। (उत्तर) उस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके क्योंकि उसमें भेदकशक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्ध युक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हलका करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश कर देता है। (प्रश्न) तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है? (उत्तर) मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जांय और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें वेद पुस्तकों का पठन पाठन और रक्षा भी होवे। (प्रश्न) क्या इस होम करने के बिना पाप होता है? (उत्तर) हां! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न हो के वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिए। और खिलाने पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुखविशेष होता है जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके इससे अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिये परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है इसलिये होम करना अत्यावश्यक है। (प्रश्न) प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक एक आहुति का कितना परिमाण है? (उत्तर) प्रत्येक मनुष्य को सोलह सोलह आहुति और छः छः माशे घृतादि एक एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिए और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसलिए आर्यवरशिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे लोग बहुतसा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त्त देश

रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाय। ये दो यज्ञ अर्थात् एक ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना पढ़ाना संध्योपासन ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करना। दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र से ले के अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ और विद्वानों की सेवा संग करना परन्तु ब्रह्मचर्य में केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है।

तिमिरभास्कर—

प्रथम तौ अग्निहोत्रों की विधि ही वेदविरुद्ध लिखी गई है, दूसरे यज्ञपात्रों की आकृतियां सब मनः कल्पित लिखदी हैं, वेद में कहीं इनकी ऐसी रचना नहीं है तीसरे अग्निहोत्र का प्रयोजन जो जल वायुकी शुद्धि होना सिद्धान्त किया है सो यह भी शास्त्र और युक्ति दोनों के विरुद्ध है यदि स्वर्ग फल न होकर अग्निहोत्र घी जलाकर जल वायुकी शुद्धि के निमित्त है, तौ इन पांच आहुतियों से क्या होगा, किसी घी के आढतिये की दूकान में आग लगा देनी चाहिये, जो सैकड़ों मन घी जलकर खूब जलवायुकी शुद्धि होकर अनेक अनेक लोकोपकार होजांय, पदार्थविद्या को जाननेवाले पंडित लोग इस बातको जानते हैं, कि जलवायुकी शुद्धि तो परमेश्वर के प्राकृतिक नियम सेही होती रहती है, सूर्यकी आकर्षण शक्ति जलकी तरलता और वनमें अनेक सुगन्धि पुष्प औषधियोंका उत्पन्न होना वायुकी प्रसरण शक्ति सुगन्धित पुष्पादिकों के परमाणुओं का वायुमें मिलना ऋतुका परिवर्तन इन सब कारणों से जलवायुकी शुद्धि होती है और यदि जलवायुकी शुद्धि परही तात्पर्य्य हो तौ ऐसा उपाय न करैं कि, कमखर्च और बाला नशीन गन्धककी धूनी दिया करैं, जिससे डाक्टर लोग (हैजे) तककी वायु शुद्ध करलेते हैं और जलकी शुद्धिको दमड़ीकी फटकरी वा निर्मली के बीज ठीक हैं, और देखो गायत्री में स्वाहा लगाकर होम करना भी लिखा है, भला इसमें कौन से अग्निहोत्र के लाभका अर्थ है (अर्थ इसका पूर्व प्रकाश करचुके हैं) अग्निहोत्र का अर्थ तौ है नहीं पर घी फूंके जाइये प्रथम इससे स्वामीजी ने

चुटिया बँधवाई फिर रक्षा की फिर जप किया अब घी फूंका एक गायत्रीही से कितने काम लिये हैं, आगे जब और विद्याकी उन्नति होगी तब इसमें इंजन लगाकर चलावैंगे और पंख लगाकर बेलून उड़ावैंगे, जब हवन से वायुकी शुद्धिमात्र होती है, तो प्रातःसंध्या का नियम वृथा है फिर तौ चाहे जब आग में घी डालदें और उस के लिये स्नानादिक की कुछ आवश्यकता नहीं चाहैं जब चूल्हे वा भट्टी में घृत झोंकदें, फिर क्यों इकतालीस ४१ बयालीस ४२ पृष्ठ में चमचा थाली प्रोक्षणीपात्रादिका विधान लिखा केवल पली भर भर कै डाल देना लिख देते और मंत्र पढ़नेसे होम के लाभ विदित होते हैं यह भी आप का कथन मिथ्याही है भला आपने जो गायत्री मंत्र और (विश्वानिदेव) इन दो मंत्रों से हवन करना लिखा है इन मंत्रों से कौनसा हवन का लाभ प्रतीत होता है फिर आप लिखते हैं कि, इसप्रकार करने से मंत्र कंठ रहैंगे ठीक है जब मंत्र कंठ करनाही इष्ट है तौ याद करनेवाले बिनाही हवनके किये परिश्रम कर कंठ करसक्ते हैं और जब मंत्र कंठ करनेही का लाभ है तौ स्वाहा लगाने की फिर क्या आवश्यकता है चाहैं जहां के मंत्र पढ़ दिये फिर नियत मंत्रसे आहुति देनी यह क्यों लिखा है इससे यह कहना स्वामीजी का ठीक नहीं कि, केवल जलवायुकी शुद्धि होतीहै, हवनसे स्वर्गलोककीभी प्राप्ति होतीहै, यथा यजुर्वेद।

अयन्नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयम्मृधः पुर एतु प्रभिन्दन्। अयं वाजांजयतु वाजसाता वय ँ शत्रूंजयतु जर्हषाणः स्वाहा ॥

अ० ५ मं० ३७ यजु०

अर्थ—यह अग्नि हमारे धनको सम्पादन करो यह अग्नि संग्रामों को विदीर्ण करता आगे आओ यह अन्न विभाग निमित्त अन्नों को हमें देने के लिये शत्रुओं को जीतो उसके लिये श्रेष्ठ होम हो "अग्निही यह हवि देवताओं के पास पहुंचाता है और यजमान का कल्याण करता है" यथा—

सीद होतः स्वउ लोकेचिकित्वान्त्सादयायज्ञ ७ँ सुकृतस्ययोनौ।
देवावीर्देवान्हविषायजास्यग्नेबृहद्यजमानेवयोधाः॥

यजु० अ० ११ मं० ३५

भावार्थ—हे देवताओं के आह्वान करनेवाले अग्नि देवता सब कुछ जाननेवाले तुम अपने लोकमें ठहरो और २ श्रेष्ठकर्म यज्ञ के स्थान कृष्णाजिन परही यज्ञ को स्थापन करो, हे अग्ने! जिस कारण देवताओं के तृप्ति करनेवाले तुम हव्यसे देवताओंको पूजते हो, इसीकारण यजमान में बड़ी आयु और अन्नको धारण करो (कृष्णाजिनं वैसुकृतस्ययोनिरिति) श० ६, ४, २, ६।

स ७ँ सीदस्वमहा ७ँ २॥ असि शोचस्व देववीतमः। विधूममग्ने अरुषम्मियेद्ध्यसृजप्रशस्तदर्शतम्॥ अ० ११ मं० ३७

अर्थ—हे यज्ञके योग्य उत्कृष्ट अग्नि देवताओंके अत्यन्त तृप्त करनेवाले तुम महान् हो पुष्करपर्णपर भले प्रकार बैठो, प्रदीप्तहो, दर्शन योग्य शान्तरूप धूम्रको छोड़ो ३७ और अग्निहोत्रसे पाप भी दूर होते हैं अघनाशन प्रकरणमें (यद्ग्रामे यदरण्ये) श्रुतिका अर्थ देखो॥

इसीप्रकार सामवेदमें भी अग्निको देवताओं का दूत लिखाहै इत्यादि वेदों में अनेक प्रकार से अग्निकी स्तुति परलोक प्राप्त्यर्थ लिखीहै अब जो मनुजी हवनके लाभ कहतेहैं सो श्रवण कीजिये—

स्वाध्यायेनव्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्ययासुतैः॥
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः। मनु० २। २८

सब विद्या पढ़ने पढ़ाने व्रतोंके करने हवन करने त्रैविद्य नामक व्रत करने तथा यज्ञादिके करने से यह शरीर ब्रह्म प्राप्तिके योग्य होताहै मुक्तिके साधनमें मनुजी ने हवनभी लिखा है अब लौकिक लाभ सुनिये—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥
आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नंततःप्रजाः ॥ अ० ३ श्लो० ७६
जपो हुतोहुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः ॥
ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥ ७४ ॥
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि ॥
दैवकर्मणि युक्तोहि बिभर्तीदं चराचरम् ॥ ७५ ॥

यजमान करकै अग्निमें डाली आहुति सूर्यको पहुंचती है सूर्य से अच्छी वृष्टि समयपर होती है वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजा होती है ७६ अहुत अर्थात् जपहुत हवन प्रहुत अर्थात् भूतबलि ब्राह्म्यहुत श्रेष्ठ ब्राह्मणकी पूजा प्राशित श्राद्ध पितृतर्पण ७४ मनुष्य वेदाध्ययन में सर्वदा युक्त होकर अग्निहोत्रमें भी सर्वदा युक्त होय तौ यह सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है ॥ ७५ ॥

पूर्वांसन्ध्यांजपंस्तिष्ठन्नैशमेनोऽव्यपोहति ॥ पश्चिमांतुसमा-
सीनोमलं हन्तिदिवाकृतम् ॥ मनु० अ० २ श्लो० १०२

प्रातःकालकी संध्या करनेसे रात्रिका, संध्याकालकी संध्या करनेसे दिनका किया पाप दूर होताहै इसीप्रकार हवनसे भी पाप दूर होता है क्योंकि वेदमंत्र पापक्षयकारक होते हैं और जिनकी विधि है वोही हवनमें उच्चारण किये जाते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि, हवन करने से पाप निवृत्ति होता है और पुण्य होता है ॥

भास्करप्रकाश—

आप कृपा करके वेदोक्त आकृति लिखते तो जाना जाता कि स्वामीजी ने वेदविरुद्ध लिखा। परन्तु आप के प्रमाणशून्य कथनमात्र से कोई नहीं मान सक्ता।

हम भी आप से कह सकते हैं कि यदि अन्न से क्षुधानिवृत्ति होती है तो क्या किसी हलवाई की दूकान लूट खाइयेगा वा अनाजमण्डी का चर्वण कर लेना उचित होगा ? जैसे आप किसी की घृत की दूकान में आग लगाने से कहते हैं। प्राकृत नियम से जैसे दुर्गन्धयुक्त पदार्थों के बदले सुगन्ध का प्रसाद परमात्मा करते

हैं वैसे ही मनुष्यों के उत्पन्न किये गये दुर्गंत फैलाना रूप पाप की निवृत्ति के लिये वा अग्नि वायु जल आदिभौतिक देवऋण की निवृत्ति करने अर्थात् जलादि अशुद्ध को शुद्ध करने के लिये परमात्मा ने वेद में हम को हवन का फल बताया है। यथा—

वसोः पवित्रमसि द्यौरस पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोसि० ।

इत्यादि । यजुः अ० १ मं० २

" यज्ञो वै वसुः " शतपथ १।५।४।९। वसु जो यज्ञ है वह पवित्र है। दिव्यगुणयुक्त है। विस्तार युक्त है, वायुशोधक है। मूल मन्त्र में मातरिश्व शब्द वायु के लिये है। " मातरिश्वा के वायुः " निरु० ७।२६॥ इत्यादि शतशः प्रमाण वेदों में यज्ञफल सूचक हैं जिन्हें विस्तारभय से यहां कहां तक उद्धृत करें। गन्धक में सुगन्ध है वा दुर्गन्ध जो यह भी नहीं जानता उससे गन्धक की गन्ध आप ही को भावेगी। निर्मली से जल की मट्टी ही केवल नीचे बैठ सकती है, अन्य रोगकारक वस्तु नहीं। परन्तु वायु और मेघों तक की शुद्धि करके यज्ञ संसार भर का उपकार करता है! यदि प्रत्येक मनुष्य पूर्वकालिक ऋषियों के समान गौ आदि पालें और नित्य हवन यज्ञ करैं तो थोड़ी आहुति न रहें किन्तु भारत के २० करोड़ आर्यवंशियों की १०।१० आहुति मिलकर २ अरब प्रतिदिन की आहुतियों से समस्त देश में आनन्द मङ्गल हो जावे। परन्तु वेद में तो देवतों (जल वायु आदिकों) का दूत "अग्नि" लिखा है जैसा कि हम नीचे लिखेंगे और आप स्वयं देवदूत बनकर सूर्य चन्द्रादि भौतिकदेवों के नाम की सामग्री पुजवाकर अपने घर लेजाने की ही परिपाटी स्थिर रखना चाहते हैं तब भला यह लोकोपकार कैसे हो॥

मुख्यमन्त्रों में जैसे अग्नये स्वाहा। सोमायस्वाहा। वायवेस्वाहा। वरुणायस्वाहा। प्राणायस्वाहा। इत्यादि में वायु जल प्राण आदि के अर्थ तो हैं ही परन्तु हवन की सामग्री विशेष हो तो गायत्री आदि मन्त्रों से परमात्मा की स्तुतिप्रार्थनोपासना करता जावे और शेष सामग्री को अग्नि में चढ़ादेवे यह तात्पर्य स्वामी जी का है। किसी मुख्य यज्ञ की कोई आहुति विशेष तो गायत्री से स्वामीजी ने नहीं लिखी। जो अग्निहोत्र के विशेष मन्त्र "समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोध-

यतातिथिम् । आस्मिन्हव्याजुहोतन" इत्यादि हैं उनमें तो अग्नि में समिधाहोम घृतहोमादि का अर्थ स्पष्ट है ही । दुर्गापाठ के तुल्य—

"गर्जगर्जक्षणंमूढ मधुयावत्पिवाम्यहम्" मदिरा की आहुति वेदमें नहीं लिखीं ॥

स्वामीजी ने यदि रक्षादि कार्य्य किये तो अनर्थ क्या किया परन्तु आप तो अपने बड़ों को मानते हैं कि उन्हों ने गायत्री के जप से ही इतना सामर्थ्य बढ़ाया था कि धोती निराधार आकाश में सुखाते, जल से अग्नि जलाते, किसी का प्राण चाहते तो ले लेते इत्यादि । और इसमें संदेह नहीं कि हम आप के समान गायत्री को सामर्थ्यहीन नहीं समझते, जैसा आप का भाई धर्म से विधर्म हो जावे तो आप की गायत्री गङ्गा यमुना आदि कुछ नहीं कर सकतीं । यहां यह बात नहीं, किन्तु आपके मुरादाबाद में और अन्यत्र शतशः पतित भाइयों का उद्धार इस सामर्थ्यवान् गायत्रीमन्त्र से हम ने किया और देखिये आगे आगे क्या करेंगे, घबराते क्यों हो । गायत्री मन्त्र की विचित्र शक्ति को देखना क्या क्या काम देती है । कदाचित् आप भी तो भूत प्रेत गायत्री से दूर किया करते हैं और यजमानों से दक्षिणा लिया करते हैं । फिर बिना दक्षिणा मांगे स्वामी जी ने गायत्री से रक्षा और होमादि का विधान किया तो बुरा क्या किया ॥

प्रातःसायं ही सब कामों के प्रथम और सब के पश्चात् प्रधान कार्य करने चाहियें । तथा वेद ने भी "सायं सायं गृहपतिर्नो० प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो०" (अथर्ववेद कां० १९ अनु० ७ मं० ३ । ४ ॥) प्रातःसायं ही इसका विधान किया है । समय भी यही ऐसा है जिस में प्रायः चित्त स्थिर शान्त और अन्यकामों से निश्चिन्त होता है इत्यादि अनेक कारण हैं जिनसे प्रातः सायं समय ही उत्तम है । शुद्धिकारक कर्म करते हुवे क्या देह को शुद्ध करना आवश्यक नहीं जो स्नान को व्यर्थ बताते हो ! पात्रों के बिना यह कार्य सिद्ध नहीं होता जैसा उस कार्य के लिए बनाये हुए विशेष पात्रों से और यूं तो कड़ाही का काम तवे और थाली का काम तंबिये आदि से अभाव में लिया ही जाता है और अभाव में हवन भी स्थण्डिल पर करते ही हैं, परन्तु जिस जिस कार्य के लिये जो जो पात्र बनाये गये हों वह वह कार्य उन उन पात्रों से जैसा उत्तम होता है वैसा अन्यथा कदापि नहीं हो सकता इस कारण पात्रविशेष का लिखना सार्थक है ॥

हम आप के किए अर्थों को मानलें तब भी कोई हमारे पक्ष की हानि नहीं क्योंकि जल वायु की शुद्धि से शौर्य धैर्य आरोग्य बल पुष्टि आदि बढ़ते हैं जिस से धन, जय, अन्न, कल्याण की प्राप्ति होती है। इससे वह बात खण्डित नहीं होती जो हम ने ऊपर यजुः अ० १ मं० २ से वायु की शुद्धि यज्ञद्वारा सिद्ध की है। और अग्नि को देवदूत अर्थात् वायु आदि देवतों को उनके लिये दिया हुआ भाग पहुंचाने और उससे उनको प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ शुद्ध अनुकूल करनेवाला तौ हम भी मानते हैं, स्वामीजी ने भी माना है। परन्तु आप तौ अग्नि के स्थान में अग्निमुख ब्राह्मणों (नाममात्र) के ही द्वारा सब देवतों की पूजा सामग्री के चढ़ कराने की रीति ही अच्छी समझते हैं। अग्नि के द्वारा (जो देवदूत है) देवभाग उनको प्राप्त कराना तौ आप " आग में झोकना फूंकना " आदि कठोर शब्दों से व्यवहार करते हुवे अच्छाही नहीं समझते। और द० ति०भा० पृ० ३२। पं० २९ और पृ० ३३ पं० ३ में जो मनु के अ० ३ श्लोक ७६। ७४। ७९ से यह लिखा है कि " विद्या पढ़ने पढ़ाने, व्रत, हवन, ३ वेद पढ़ने और यज्ञादि के करने से ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है। अग्नि में डाली आहुति सूर्य को प्राप्त होती, उस से वृष्टि, वृष्टि से अन्न, अन्न से प्रजा को उत्पन्न करती है। ७६। आहुतजप, हुत हवन, प्रहुत, भूतवलि, ब्राह्महुत श्रेष्ठब्राह्मण की पूजा, प्राशितश्राद्ध। ७४। अग्निहोत्र में युक्त होय तौ जगत् को धारण करता है " इत्यादि का उत्तर यह है कि वेदादि के पढ़ने से आभ्यन्तर और हवनयज्ञ से बाह्य जलादि की शुद्धि होकर अन्तःकरण की शुद्धिपूर्वक मनुष्य, परब्रह्म की प्राप्ति के योग्य होता है, इस में विवाद ही किसे है। परन्तु आप स्वामीजी के विरुद्ध वायु आदि की शुद्धि को हेतुता न हो, ऐसा कोई फल यज्ञ का बतावें। किन्तु आप तौ आहुति से वर्षा और अन्नादि द्वारा प्रजा का धारण पोषण मनु के प्रमाण से लिखते हैं, जिसे स्वामीजी और हम लोग निर्विवाद मानते हैं और वह वायु की शुद्धि वृद्धि होकर अन्नादि शुद्ध पदार्थ खाने योग्य उत्पन्न होवें तभी संसार का धारण पोषण होसकता है, सो ठीक है। हमें आपके समान पक्षपात नहीं कि ठीक बात आप लिखें और स्वामीजी के लेख की पुष्टि करें, तब भी हम न मानें। श्लोक ७४ में अहुत, प्रहुत, हुत, प्राशित, ब्राह्महुत ये पञ्चमहायज्ञों के नामान्तर हैं, इससे हमारा कोई विरोध नहीं, आप की विशेष इष्टसिद्धि नहीं, व्यर्थ पुस्तक बढ़ाईगई है। और पृ० ३३ पं० १४

में मनु के श्लोक में जो संध्या और हवन से पाप निवृत्ति लिखी है, सो ठीक है, संध्या के द्वारा आभ्यन्तर रागद्वेषादि और हवन से वायुविकारादि बाह्यदोष निवृत्त होते हैं, इस में स्वामीजी के लेख का खण्डनही आपने क्या किया। देवयज्ञ का विशेष मण्डन देखना हो तौ मेरा व्याख्यान "दैविकदेवपूजा" देखिये।

समीक्षा—स्वामी दयानन्दजी के बतलाये यज्ञपात्रों को पं० ज्वालाप्रसादजी कहते हैं कि वेदविरुद्ध हैं इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि प्रमाणशून्य तुम्हारे कथन को कोई नहीं मान सकता पं० तुलसीराम ने पीछे आज तक जितना भास्करप्रकाश लिखा है दयानन्द के जितने सिद्धान्तों की पुष्टि की है सब बातोंही में की है प्रमाण कहीं पर नहीं लिखा तथापि पं० तुलसीराम के प्रमाणशून्य अनेक लेखों को समाज मानती है किन्तु पं० ज्वाला-प्रसादजी के लेख को नहीं मानती भला इससे बढिया धर्म निर्णय का कोई भी और तरीका संसारमें मिलसकता है इस रीतिसे धर्मका निर्णय होगा या कि जिद्दमजिद्दा।

एक आर्यसमाजी ने किसी पुस्तक में लिखा कि समाजियों को तीस रोजे अवश्य रखने चाहिये क्योंकि इनका विधान वेद में लिखा है इस को पढ़कर किसी दूसरे आर्यसमाजी ने लिखा कि वेद में रोजे का रखना लिखा ही नहीं अतएव रोजा रखना वेद विरुद्ध है किसी ने दूसरे मनुष्य के लेख के खंडन में लिखा कि प्रमाणशून्य तुम्हारे लेख को कोई नहीं मान सकता यदि यह मामला प्रतिनिधि के पास चला जाय तो प्रतिनिधि इसका क्या फैसला करेगी यह हम जानना चाहते हैं। प्रतिनिधि कुछ भी करे किन्तु न्याय यह बतलाता है कि पहिले मनुष्य के लेख की पुष्टि के लिए वेद प्रमाण होना चाहिए पहिला मनुष्य या उसके पक्षपाती जब तक यह सबूत न देदें कि वेद के अमुक मंत्र में रोजे रखना लिखा है तब तक न इस लेख की पुष्टि होगी और न रोजे रखने के लेखको कोई सत्य ही मानेगा इस इंसाफ का त्याग करके जो तीसरा मनुष्य रोजे रखवाने की डिगरी देता है उसके लेख में कितनी विद्वता और कितनी सच्चाई है इसका निर्णय पाठकों के ऊपर छोड़ा जाता है।

जिस तरह से यहां पर प्रथम मनुष्य या उसके पक्षपातियों से रोजे रखने में वेद का प्रमाण मांगना इंसाफ है इसी प्रकार स्वामी दयानन्द और उसके पक्षपातियों

से यज्ञपात्रों में वेद का प्रमाण मानना क्या इंसाफ नहीं है और जिस प्रकार से रोजों के रखने में तीसरे मनुष्य का लेख कुछ भी कद्र नहीं रखता इसी प्रकार से पं० तुलसीराम का लेख क्या किसी की दृष्टि में तोषदायक हो सकता है ? जब तक आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द के लिखे यज्ञपात्रों में वेदादि शास्त्रों का प्रमाण न देदें तब तक इंसाफपसंद मनुष्य यह कैसे मान सकता है कि स्वामी दयानन्द के बतलाये यज्ञपात्रों में वेदादिशास्त्र प्रमाण हैं इन पात्रों की पुष्टि वेदादिशास्त्र त्रिकाल में भी नहीं कर सकते समस्त पात्रों की आकृति तथा लंबाई चौड़ाई मनगढ़न्त है इसी कारण से तुलसीराम प्रमाण न देसके प्रमाणशून्य पं० ज्वालाप्रसाद के लेख को कोई नहीं मान सकता इतना लिखकर सिर आई बलाय को टालकर किनारे हुए ।

क्या कोई आर्यसमाजी संसार में ऐसा है कि जो स्वामी दयानन्द के यज्ञपात्रों को वेद शास्त्रानुकूल सिद्ध करदे ? हमारा यह विश्वास है कि जब तक जमीन सूर्य बने रहेंगे तब तक कोई भी आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द के पात्रों में प्रमाण नहीं दे सकता । कोई कोई सभ्य मनुष्य यह भी कहेंगे कि आर्यसमाजी लोग वेदोक्त यज्ञपात्रों को नहीं बतलाना चाहते क्योंकि उनके बतलाने से स्वामी दयानन्द के पात्र फर्ज़ी ठहरते हैं किन्तु आप क्यों नहीं बतलाते यदि आप बतलायेंगे तो पाठकों को यज्ञपात्रों का तो ज्ञान होगा इस विचार को मद्देनज़र रख कर यज्ञ के पात्रों का वर्णन नीचे लिखते हैं—

अथ यज्ञपात्राणि कात्यायन सूत्रे ।

वैकङ्कतानि पात्राणि १ खादिरः स्रुवः २ स्फ्यश्च ३ पालाशी जुहूः ४ आश्वत्थ्युपभृत् ५ वारणान्यहोमसंयुक्तानि ६ बाहुमात्र्यः स्रुचः पाणिमात्रपुष्करास्त्वग्बिलाह ७ समुखप्रसेका मूलदंडा भवन्ति ७ अरत्निमात्रः स्रुवोऽङ्गुष्ठपर्ववृत्तपुष्करः ८ स्फ्योऽस्याकृतिः ९ आदर्शाकृतिप्राशित्रहरणं चमसाकृतिवा १० चत्वालोत्करावन्तरेणसञ्चरः ११ प्रणीतोत्कराविष्टिषु १२

कातीये यज्ञपात्राणि सर्वाणि वैकङ्कतानि यथा उलूखलमुसल कूर्चेडापात्री शम्याशृतावदानमेक्षण भूर्युपवेशान्तर्धान कटप्राशित्र हरणषड्वर्तब्रह्म यजमानासनहोतृषदनादीनि ।

अर्थ—यज्ञपात्र सामान्यतः विकङ्कत (वेहली कंटाय) वृक्ष के होने चाहिये यह स्वादु कण्टक और ग्रंथिल कहाता है चीते के पैर के समान इसकी जड़ होती है १ खैरका स्रुव २ तथा इसी की सामान्य इष्टि में स्फ्य होती है ३ जिससे अग्नि में आहुति दी जाती है वह जुहू ढाक की बनानी चाहिए ४ जुहू के निकट धरी जाती है यह उपभृत पीपल की होनी चाहिए ५ उलूखल मूसल आदि होम से पृथक् कार्य में आने वाले यज्ञपात्र सामान्यतः वरना वृक्ष के होने चाहिए ६ जो एक स्थान में निश्चल धरा रहै वह ध्रुवा विकङ्कत का होना चाहिए तीनों स्रुवे बाहुमात्र (डेढ़ हाथ) लंबे हों हाथ के चुल्लू के समान मुख की गहराई वाले त्वचा भाग की ओर से खुदे मुखवाले चीरी लकड़ी के भीतर से जिनका मुख न खुदा हो हंस के मुख की समान घृत गिरने के निमित्त एक ढालू नाली जिनमें बनी हो मूल अर्थात् काष्ट के अग्रभाग की ओर जिनका दण्ड (मुख) हो ऐसे तीनों स्रुवे बनावे ७ स्रुवा चौबीस अंगुल लंबा हो अंगुष्ट के पोरे प्रमाण गहरा और उतनाही गोलाकार मुख हो ८ तलवार की आकृति वाली (दुधारा खांड़ा) स्फ्य बनावै ९ दर्पण के समान गोल व चमस तुल्य चतुष्कोण प्राशित्र प्रहरण बनावै १० उत्तर वेदी जिनमें बनाई जाती है ऐसे चत्वाल वाले वरुण प्रघास महाहविष् पशुयाग और सोमयागों में चत्वाल और उत्कर के बीच से सबके निकलने का सञ्चर मार्ग होता है ११ दर्श पौर्णमासादि इष्टियों में प्रणीता और उत्कर के मध्य से सञ्चर मार्ग माना जाता है १२ ऊखल मूसल कूर्च इडापात्री पुरोडाश पात्री शम्या शृता वदानमेक्षण अग्नि उपवेश अन्तर्धान कट प्राशित्र हरण षड्वर्त ब्रह्मा यजमान और होता के आसन यह अहोमसंज्ञक पात्र वरना के बनाने चाहिये ।

क्रम से लक्षण—

उलूखलं च मुसलं स्वायते स्वद्दढे तथा ।
इच्छा प्रमाणे भवतः शूर्पं वैण्वमेवच ॥ १ ॥

अन्यञ्च—

खादिरं मुसलं कार्यं पालाशः स्यादुलूखलः ।
यद्वोभौवारणौकार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ ॥ २ ॥
कौशःकूचोवाहुमात्रो मकराकारउच्यते ।
इच्छाप्रमाणातुदृशत्प्रोक्ता पाषाणसम्भवा ॥ ३ ॥
उपलोवर्त्तुलःप्रोक्तो वितस्तिपरिमात्रकः ।
इडापात्रीतथाचान्या रत्निमात्राप्रकीर्तिता ॥ ४ ॥
प्रोताहविर्धानपात्री विपुलाद्वादशांगुला ।
पिष्टपात्रीचसैवोक्ता चतुरस्राप्रकीर्तिता ॥ ५ ॥
पुरोडासस्यपात्रीतु चतुरस्रासमानतः ।
खातेनवर्त्तुलेनैव युतायज्ञेप्रशस्यते ॥ ६ ॥
शम्याप्रादेशमात्रीस्यात्खादिरःस्फ्यप्रकीर्तितः ।
खड्गाकारोरत्निमात्रो वज्ररूपोमखेस्मृतः ॥ ७ ॥
अंगुष्टपर्वमात्रन्तु तीक्ष्णाग्रंपृथुवक्रकम् ।
श्रितावदानंप्रादेश मात्रदीर्घमुदाहृतम् ॥ ८ ॥
इध्मजातीयमिदमार्धं प्रमाणंमेऽक्षणंभवेत् ।
अभ्रिस्तीक्ष्णमुखाज्ञेया खादिरारत्निसंमिता ॥ ९ ॥
उपवेशोरत्निमात्रो हस्ताकारस्तुखादिरः ।
अन्तर्धानकटःप्रोक्तो द्वादशांगुलसंमितः ॥ १० ॥
अर्धचन्द्रसमाकारः किंचिदुच्छ्रितशीर्षकः ।
षडंगुलप्रमाणन्तु षड्वर्तंचतुरस्रकम् ॥ ११ ॥
तथाचोभयतःखातं वारणंतत्प्रक्षते ।
यजमानासनंपत्न्याः आसनं च पृथक् पृथक् ॥ १२ ॥

होत्रासनंतथाब्रह्मासनंविस्तारयोगतेः ।
अरत्निमात्राण्येतानि कथितानिमनीषिभिः ॥ १३ ॥

अर्थ—उलूखल मूसल काष्ठ के होने चाहिये पत्थर के नहीं अच्छे पुष्ट और दृढ़ बने हों लम्बाई इच्छानुसार करै अथवा नाभि मात्र ऊंचे करे खैर का मूसल और ढाक का उलूखल बनावे कहीं गूलर का बनाना लिखा है अथवा दोनों वरना वृक्ष के बनावे यह नहो तो अन्य यज्ञीय वृक्ष के हों पर वरना मुख्य है छाज बांस का ही हो सिरकी आदि का नहीं कुशाका कूर्च बाहु मात्र मकराकार बनावे अग्निहोत्र में अग्निहोत्र हवणी व स्रुव कूर्च पर धरी जाती है शिल पत्थर की इच्छानुसार बनावे लोढ़ा गोल एक बिलस्त के परिमाण का हो इडापात्री दो प्रादेश २४ अंगुल लम्बी बीच में संकुचित पतली निर्माण करै भाग परिहरण के समय में इस में सब पुरोडाशादि हवियों के अंश लेकर यजमानों को ऋत्विज पांच भाग धरके उपह्वान करते हैं इसी को पंचावत्तइडा कहते हैं दूसरी हविष धरने की बड़ी पात्री को पिष्टपात्री कहते हैं पुरोडाशपात्री १२ अंगुल लम्बी चौड़ी समचतुष्कोण अर्थात् जिस इष्टि में जितने पुरोडाश हों उतनी ही पुरोडाशपात्री रक्खे शम्या १२ अंगुल लम्बी हो जिसे गाड़ीके जुएमें लगातेहैं जो लोकमें सैला कहातीहै यह इष्टियोंमें हविष पीसते समय उत्तरको अग्र भाग कर शिलके नीचे लगाई जाती है और सोमयागमें सोम ले चलने के समय शकट में बैल जोतने के समय लगाई जातीहै यह खैर की होतीहै और स्फ्य खड्ग के आकार अरत्नि (२४ अंगुल) लंबा वज्ररूप होता है शृतावदान एक प्रादेश मात्र लंबा अंगुष्ट के पोरुएभर जिसका मुख मोटा चौड़ा हो अग्रभाग इतना तीक्ष्ण हो कि जिससे पक्व पुरोडाश के टुकड़े हो सकें इसी से इस की शृतावदान संज्ञा है। सामिधेनी ऋचाओं में चढ़ाने वाली समिधा जिन जिन ढाकवेल कंभारी आदि वृक्षों की होती हैं उन्हीं काष्ठों में किसी का प्रादेश मात्र लंबा अग्रभाग करके उसमें करछी के सदश गोल अंगुष्ट के पोरुए की समान व्यासवालाचरू के अवदान करने का पात्र मेक्षण कहाता है एक अरत्नि मात्र लंबी अग्र भाग में तीक्ष्ण अभ्रिवेदी खोदने के निमित्त बनानी चाहिए यह भी खैर की हो कपालोपधानादि के समय अग्नि के अंगार संभालने के निमित्त हस्ताकार खैर का एक अरत्नि मात्र लंबा उपवेश बनावै आधे चंद्रमा की समान बारह अंगुल का अन्तर्धान कट कुछ ऊंचे शीर्षवाला बनावे

पत्नी संयाज में देवपत्नियों को आहुति देते समय यह गार्हपत्यकुण्ड से पूर्व में किया जाता है दोनों ओर खानों वाला बारह अंगुल लम्बा षड्वर्त होता है इस में आग्नीध्र के भोजन को द्यावा पृथिवी सम्बन्धी दो भाग रक्खे जाते हैं यजमानासन पत्न्यासन होत्रासन ब्रह्मासन यह चौबीस अंगुल लम्बे हों चतुष्कोण हों वरना के बने हों सब पात्र मूल जानने के निमित्त मूल की ओर कुछ गोल और मोटे हों अग्र-भाग की ओर वैसा चिन्ह न हो। नित्य अग्निहोत्र होम के निमित्त अग्निहोत्र हवणी नामक स्रुव विकङ्कतका होना चाहिए पौर्णमासादि इष्टियों में यही प्रोक्षणीपात्र होता है अग्निहोत्र होम का स्रुव विकङ्कतका ही हो पौर्णमासादिकध्रुव खैर का हो सोमयाग में ग्रहचमस और द्रोण कलशादि पात्र विकङ्कतके होने चाहिए उनमें हविर्धान (सोम ले चलने का शकट) अधिषवण (सोम कूटने की चौकी) परिप्लवा संभरणी आदि होम से भिन्न कार्यों के पात्र वरना के ही हों षोड़शी याग का पात्र खादिर का हो अश्वदाभ्य ग्रहग्रहण का पात्र गूलर का हो वाजपेय याग में ११ सोम ग्रहपात्र और १७ आसव ग्रहपात्र वरणा के ही होते हैं कोई आसव ग्रहपात्र मट्टी के कहते हैं यज्ञपार्श्व ग्रंथ में यज्ञ के चमस नाम सोम पीने के पात्रों का इसप्रकार वर्णन है—

चमसानांप्रवक्ष्यामि दण्डास्युश्चतुरंगुलाः ।
त्र्यंगुलस्तुभवेत्स्कन्धो विस्तारश्चतुरंगुलः ॥ १४ ॥
विकंकतमयाःश्लक्ष्णास्त्वग्बिलाश्चमसाःस्मृताः ।
दशांगुलमितादीर्घाश्चतुरंगुलविस्तृताः ॥ १५ ॥
चतुरंगुलखाताश्च दण्डास्तुद्ध्यंगुलामताः ।
षडंगुलमितोच्छ्रायास्तेषांदण्डेषुलक्षणम् ॥ १६ ॥
अन्येभ्योवापिवाकार्या तेषांदण्डेषुलक्षणम् ।
होतुर्मंडलएवस्याद्ब्रह्मणश्चतुरस्रकः ॥ १७ ॥
उद्गातृणाञ्चत्र्यस्त्रिःस्याद्याजमानःपृथुःस्मृतः ।
प्रशास्तुरवतष्टःस्यादुत्तष्टोब्रह्मशंसिनः ॥ १८ ॥

पोतुरग्रेविशाखीस्यान्नेष्टुःस्याद्विगृहीतकः ।
अच्छावाकस्यशस्नाव आग्नीध्रस्यमयूखकः ॥ १९ ॥
इत्येतेचमसाःप्रोक्ताऋत्विजांयज्ञकर्मणि ।
पलाशाद्वावटाद्वान्यवृक्षाद्वाचमसाःस्मृताः ॥ २० ॥
नैयग्रोधाश्चमसाश्चतुरस्राःप्रस्थोदकग्राहिणः ॥

इति निगमेविशेषः । स्मृत्यर्थसारे—

समित्पवित्रंवेदंच मुसलोलूखलंग्रहान् ।
नाभ्युखासन्द्युपरवाञ्छम्यास्रुक्पुष्कर्णणच ॥ २१ ॥
शाखास्वरुविषाणानिचरूणांमेक्षणानिच ।
कुर्यात्प्रादेशमात्राणि महावीरास्त्रयस्तथा ॥ २२ ॥
द्रोणकलशःपलशतग्राहीपारिप्लवाकृतिः ।
जानुमात्रमुलूखलंपालाशम् । पञ्चविंशतिपलमिडापात्रम् ॥
मुसलंखादिरंत्र्यरत्नि । अरत्निप्रमाणाद्दृषदित्यादि ॥

अर्थ—सब चमसों की डंडी चार अंगुल होनी चाहिए उनकी डंडी के समीप तीन अंगुल के स्कंध हों उनकी लम्बाई चार अंगुल हो यह सब विकङ्कतके हों चिकने बने हों उनमें त्वचा की ओर से गढा खुदा हुआ हो (सब चमस दश अंगुल लम्बे चार अंगुल चौड़े चार अंगुल खातवाले दो अंगुल के दण्ड और छः अङ्गुल ऊँचे हों) अथवा अन्य यज्ञीय बृक्षों के बने हों पर उनके डंडों में ऐसे चिन्ह करने चाहिए जिससे विदित हो जाय कि यह अमुक ऋत्विज का है होता का गोलाकार ब्रह्मा का चतुष्कोण उद्गाता का त्रिकोण यजमान का हाथ की बराबर लम्बा प्रशास्ता का नीचे से छिन्न ब्राह्मणाच्छंसीका ऊपर से छिन्न पोता का अग्रभाग में विशाखावाला नेष्टा का अग्रभाग में ग्रहीत (जिसमें सब ओर दुहरी रेखा हों) अच्छा वाक का रास्ना व आग्नीध्र का मयूख के आग्रभाग में तीक्ष्ण हो यह सब चमस यज्ञ कर्म में पलाश वा अन्य बृक्षों के बनाये जांय निगद में इतना विशेष है किन्यग्रोध बृक्ष के [illegible] चौकोन [illegible] चमस हो तथा समिध पवित्र वेद मूसल

उलूखल ग्रहनाभि हण्डी चौकी उपरवशम्या स्रुचोंके मुखशाखा स्वरूप कृष्णविषाणा चरूओं के मेक्षण (कुर्छी) तीनों महावीर यह सब प्रादेश मात्र बनावै सौ पल रस समानेवाला तौवे के आकार द्रोण कलश बनावै जानु मात्र व सवा हाथ लम्बा ढाक का उलूखल यज्ञ में बनावै पच्चीस पल रस समानेवाला इडा पात्र बनावै खादिर का मूसल ३ अरत्नि ढाई हाथका लम्बा हो २० वा चौवीस अंगुलकी सिल होनीचाहिए ।

आजस्थालीतैजसीवा मृन्मयीवप्रकीर्तिता ।
द्वादशांगुलविस्तीर्णा प्रादेशोच्चाशुभास्मृता ॥ २३ ॥
आजस्थालीसमानैव चरुस्थालीप्रशस्यते ।
प्रणीतावारणाग्राह्या द्वादशांगुलसम्मिता ॥ २४ ॥
खातेनहस्तलवदाकृत्यापद्मपत्रवत् ।
खादिरोवाहुमात्रस्तु जुहूस्रुकसंज्ञकःस्रुवः ॥ २५ ॥
अरत्निमात्रोहंसास्यो वर्तुलोंगुष्टपर्ववत् ।
अर्धपर्वप्रणाल्याच युक्तोनासाकृतिर्भवेत् ॥ २६ ॥
उपभृत्स्रुग्ध्रुवास्रुक्च पुस्करस्रुक्तथैवच ।
अग्निहोत्रस्यहवणीतथावैकङ्कतःस्रुवः ॥ २७ ॥
एतेचान्येचवहवाः स्रुवभेदाप्रकीर्तिताः ।
वर्तुलोस्याःशंकुमुखा पर्वखाताःसमानकाः ॥ २८ ॥
अश्वत्थोयःशमीगर्भः प्रशस्तोर्वीसमुद्भवः ।
तत्ययाप्रांमुखीशाखा उदीचीचोर्ध्वगापिवा ॥ २९ ॥
अरणिस्तन्मयीप्रोक्ता तन्मध्येचोत्तरारणिः ।
सारवद्दारवंचात्रमोविलीचप्रशस्यते ॥ ३० ॥
संसक्तमूलोयःशम्यः सशमीगर्भउच्यते ।
अलाभेत्वशमीगर्भा दाहरेदविलम्बितः ॥ ३१ ॥

चतुर्विंशतिरंगुष्टैर्दर्घ्यंषडपिपार्थिवम् ।
चत्वारउच्छ्रयेमानमरण्योःपरिकीर्तितम् ॥ ३२ ॥
अष्टांगुलःप्रमस्थः (प्रमन्थः) स्याच्चात्रंस्याद्द्वादशांगुलम् ।
ओविलीद्वादशैवस्यादेतन्मन्थनयंत्रकम् ॥ ३३ ॥
अंगुष्ठांगुलमानंतु यत्रयत्रोपदिश्यते ।
तत्रतत्रबृहत्पर्वग्रंथिभिर्मिनुयात्सदा ॥ ३४ ॥
गोवालैःशणसंमिश्रैस्त्रिवृंतममलात्मकम् ।
व्यामप्रमाणंनेत्रंस्यात्प्रमथ्यस्तेनपावकः ॥ ३५ ॥
मूर्द्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कंधराचापिपंचमी ।
अंगुष्ठमात्राण्येतानिद्वयंगुलंवक्षउच्यते ॥ ३६ ॥
अंगुष्ठमात्रंहृदयंत्र्यंगुष्ठमुदरंस्मृतम् ।
एकांगुष्ठाकटिर्ज्ञेया द्वौवस्तीद्वौचगुह्यकम् ॥ ३७ ॥
उरूजंघेचपादौच चतुस्त्रयेकैर्यथाक्रमम् ।
अरण्यवहवाहेते याज्ञिकैःपरिकीर्तितः ॥ ३८ ॥
यत्तद्गुह्यमितिप्रोक्तं देवयोनिस्तुसोच्यते ।
अस्यांयोजायतेवन्हिः सकल्याणकृदुच्यते ॥ ३९ ॥
यजमानस्यपात्रीच पत्नीपात्रीतथैवच ।
मखेकृष्णाजिनंग्राह्यं तदखण्डंविशिष्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—आज्यस्थाली चांदी वा मिट्टी की बनावै जो विस्तार में बारह अंगुल की प्रादेशमात्र ऊँची हो आज्यस्थाली की समान ही चरुस्थाली होती है प्रणीतापात्र वरने का बनावै यह बारह अंगुल का हो हथेली की समान खुदा हुआ आकृति में कमलपत्र की समान हो जुहूसंज्ञक स्रुवा खैर का बना हुआ बाहुमात्र लम्बा हो २४ अंगुल लम्बा हो अंगुष्ठ के पोरुए के समान गहरा हंस के मुख की समान घृत गिरने के निमित्त ढालू नाली से युक्त नासिका की समान आकृति हो उपभृत् स्रुक ध्रुवास्रुक

पुष्कर स्रुक अग्निहोत्र हवणी वैकंकत स्रुव यह तथा और भी अनेक स्रुवों के भेद हैं यह गोलमुख शंकुमुख पर्व में खुदेहुए समानही होतेहैं अब अरणीको कहतेहैं जो पीपल अच्छी भूमि में उत्पन्न हुआ हो उस के मध्य में शमी का वृक्ष उगा हो उसकी जो पूर्व उत्तर वा ऊपर को गई शाखा हो उस की अरणी होती है उसी के मध्य की उत्तर अरणी होती है और रचे हुये सारवाले काष्ठ की ओविली बनती है जो शमी के मूल का काष्ठ है उसको शमीगर्भ कहते हैं यदि शमीगर्भ न मिले तो ऊपर के ही काष्ठ की निर्माण करै २४ अंगुष्ठ लम्बी और छः अंगुल चौड़ी हो और चार अंगुल की ऊँची हो यह अरणी का मान है. १८ अंगुल का प्रमंथ होता है १२ अंगुल का चात्र हो ओविली १२ अंगुल की हो इसप्रकार यह मन्थन यन्त्र बनता है जहां जहां अंगुष्ठ अंगुल का मान दिया है वहां वहां बड़े पोरुए की ग्रंथि से प्रमाण मानै गोबाल और सन मिलाकर तिलड़ी रस्सी करै यह रस्सी व्याममात्र* बड़ी हो इस से अग्नि मथी जाती है शिर नेत्र कान मुख कंधे यह सब एक अंगुष्ठमात्र हों छाती दो अंगुल की अंगुष्ठमात्र हृदय तीन अंगुष्ठ का उदर एक अंगुष्ठ की कटि दो की बस्ती अंगुष्ठ का गुह्यस्थल उरू जंघा चरण यह क्रम से चार तीन एक अंगुष्ठ के हैं यह अरणी के अवयव यज्ञ के ज्ञाताओं ने कहे हैं जो गुह्यस्थल है वही देवयोनि है इससे जो अग्नि उत्पन्न होती है वह कल्याणकारी कहाती है यजमानपात्री पत्नीपात्री अरत्निमात्र की लेनी और यज्ञ में अखंडित कृष्णाजिन मृगचर्म ग्रहण किया है पीछे यज्ञपात्रों की आकृति और उनके नाम लिखे हैं। इति यज्ञपात्राणि।

पाठकवर्ग ! अब विचार कर देखें कि वास्तव में दयानन्दजी ने जो यज्ञपात्र रक्खे हैं वह इन से मिलते हैं या नहीं जब कि इन शास्त्रोक्तपात्रों से न मिलें तो क्या उनको कल्पित कहना या आर्यसमाज के द्वारा उनका त्याग होना कोई पाप है प्रतिनिधि इसपर विचार करेगी।

स्वामी दयानन्दजी ने लिखा कि हवन से जल वायु शुद्ध होता है पं० ज्वाला-प्रसादजी लिखते हैं कि यदि ऐसा है तो फिर इन थोड़ी सी आहुतियों से क्या होगा किसी आढ़तियेकी दूकान में आग लगा दीजिये ताकि एकदम जलवायु बिल्कुल स्वच्छ निर्मल होजावें इस के ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि आप किसी हलवाई की दूकान लूट खाइये या अनाज की मण्डी में चरवण कर कीजिये ताकि हमेशा को

* दोनों भुजाओं को मिलाकर जो घेरा बनताहै उसे व्याम कहते हैं।

भूख बिदा होजावे पाठक विचार करें पं० ज्वालाप्रसादजी का लेख तो ठीक है अग्नि हजारों मन घी को दो चार घण्टे या एक दिन में खा सकती है किन्तु पं० तुलसीराम का कथन तो सर्वथा मिथ्या और असम्भव है जो पं० ज्वालाप्रसाद को हलवाई की दूकान खाना लिखा। मनुष्य एक तादाद रखता है पेट भरने पर वह नहीं खासकता चाहे आप कितने ही जिद्दी आर्यसमाजी को ले आवें किन्तु वह एक दिन में १० मन अन्न नहीं खा सकेगा नहीं मालूम पं० तुलसीराम ने असम्भव लेख क्यों लिखा या तो क्रोध में विचार जाता रहा नहीं तो किसी शुद्धि की पान्ति में या काशी जैसे ब्रह्मभोज में पं० तुलसीराम ५० या ६० मन खाचुके हैं नहीं तो क्या पं० तुलसीरामजी असम्भव लिख देते क्या यह किसी मनुष्य की समझ में आसकता है कि पं० तुलसी-राम को सम्भव (मुमकिन) असम्भव (गैर मुमकिन) का ज्ञान न हो इस के ऊपर दो लाख समाजियों को विचार करना चाहिये।

द्वितीय—हम माने लेते हैं कि समाज के रजिस्टर में नाम लिखवाने से यह शक्ति आजाती है कि वह अस्सी नब्बे मन रोज खासकता है फिर नतीजा क्या वह जितना भी खाले किन्तु उसके खाने से उसी एक मनुष्य की भूख जावेगी दूसरे की नहीं पहिले आध सेर नाज में भूख जाती थी अब ८५ मन में जाती है लाभ क्या हुआ? कुछ नहीं। पं० ज्वालाप्रसाद के बतलाये कार्य में लाभ है थोड़ी थोड़ी आहुतियों से जल वायु थोड़ा शुद्ध होता था अब अधिक हो जावेगा नतीजा यह निकला कि अन्य समाजी को हवन करने की आवश्यकता न रही दो लाख समाजी हवन करके जिस कार्य को करते उस को उतनाही दूकान करगई अब तो जल वायु बिलकुल स्वच्छ होगये।

पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि जल वायु की शुद्धि तो प्राकृत नियम से स्वतः ही होती रहती है पं० तुलसीराम इसका उत्तर देते हैं कि दुर्गन्धयुक्त पदार्थों के सुगन्ध का प्रसाद परमात्मा करते हैं वैसेही मनुष्यों के उत्पन्न किये गये दुर्गत फैलाना रूप पाप की निवृत्ति के लिये वा अग्नि वायु जल आदि भौतिकदेव ऋण की निवृत्ति करने अर्थात् जलादि अशुद्धको शुद्ध करने के लिये परमात्मा ने हमको हवन का फल बतलाया है क्या मसखरी की बात है परमात्मा शुद्ध करते हैं इसी कारण से आर्यसमाजी भी जल आदि की शुद्धि करते हैं जो काम ईश्वर करेगा वही आर्यसमाजी करेंगे। ईश्वरने तो सृष्टि रची है अब आर्यसमाजी भी रचैं। ईश्वर ने वेद बनाये हैं अब आर्यसमाज का प्रत्येक मनुष्य वेद बनावेगा। जो काम ईश्वर करता है उस को

तुम कैसे कर सकोगे ? दयानन्दके सिद्धान्तानुसार ईश्वर तो शरीर नहीं धारण करता तो क्या तुम भी शरीर धारण करना छोड़ दोगे ? आर्यसमाजी हवन क्या करते हैं ईश्वर की बराबरी करते हैं यदि ईश्वरने किसी आर्यसमाजी को नरक में भेज दिया तो वह आर्यसमाजी भी ईश्वर को नरकमें ढकेल देगा। (२) पं० तुलसीराम लिखते हैं कि दुर्गंत फैलाना रूप पाप की निवृत्ति के लिये हवन है इसके विरुद्ध स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि जो पाप होता है वह विना भोगे कभी नहीं छूटता चाहे कैसा भी प्रायश्चित्त करै तो अब इन दो बातों में से किस की बात मानें ? हवन के बताने का क्या यही प्रयोजन तो नहीं कि स्वामी दयानन्द के लेखपर हड़ताल लगादी जावे ? (३) पं० तुलसीरामजी भौतिकदेव की ऋण निवृत्यर्थ हवन बतलाते हैं भौतिक देव का ऋण मनुष्य के ऊपर रहता है यह किसी शास्त्र का लेख नहीं किन्तु पं० तुलसीरामजी देवयोनि सिद्ध होने के भय से डर कर भौतिक देवता मानते हैं इस में दो नतीजे निकलेंगे एक तो यह कि १ हण्डा पानी और एक टोकरी कूड़ा तथा गर्म २ तमाखू का गुल आर्यसमाज के देवता ठहरेंगे। द्वितीय जहां पर वेद में देवताओं का पूजन लिखा है वहां पर या तो इन्हीं का पूजन करना होगा नहीं तो पूजन बतलाने वाले वेद को छोड़ देना होगा। वेद ने देवयोनि में उत्पन्न देव लिये हैं और उनका ऋण इस हवन से त्रिकाल में भी नहीं छूटता वह तो यज्ञोंसे उतरता है उसको श्रुति इस प्रकार बतलाती है—

ब्राह्मणोहवै जाय मानस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवाञ्जायते यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः स्वाध्यायेनर्षिभ्यः

अर्थ—उत्पन्न हुआ जो ब्राह्मण है वह तीन ऋणों से ऋणवान् है यज्ञ से देव ऋण प्रजा से पितृ ऋण और स्वाध्याय (वेद पाठ) से ऋषि ऋण का भार उतरता है यहां पर ब्राह्मण शब्द द्विज का उपलक्षण है इस कारण ब्राह्मण शब्द से ब्राह्मण क्षत्री वैश्य लिये जाते हैं।

इस श्रुति में देवऋण का उतारने वाला यज्ञ कहा है न कि हवन। आज कल वेदों की अनभिज्ञता तथा स्वामी दयानन्द के बहकाने से मनुष्यों का कुछ समुदाय ऐसा भी होगया है कि जो हवन को ही यज्ञ कहता और मानता है किन्तु वेद ने हवन को यज्ञ नहीं माना और यज्ञ को हवन नहीं माना।

वेदों में अग्निहोत्र, इष्टि, हवन, यज्ञ, ये कर्म पृथक् २ गिनाये हैं सब से प्रथम मनुष्य अग्निहोत्र करता है अग्निहोत्र सपत्नीक (स्त्री वाला) पुरुष ही कर सकता है जिसके स्त्री नहीं वह नहीं कर सकता। विधवाविवाह नियोग करनेवाला अग्निहोत्र का अधिकारी ही नहीं है। अग्निहोत्र करनेवाले पुरुष की स्त्री एकपत्नी सच्ची पतिव्रता होनी चाहिये नहीं तो शुभ के बदले अशुभ होगा इस कर्म में अग्नि शान्त नहीं होता यदि हुताग्नि शान्त हो जावे तो कर्ता को प्रायश्चित्त करना होगा।

अग्निहोत्र करने के पश्चात् मनुष्य इष्टियों का अधिकारी होता है दर्श पौर्णमास आदि इष्टियों के नाम हैं यजुर्वेद के प्रथम अध्याय से इनका वर्णन चलता है। इष्टि करने के पश्चात फिर मनुष्य यज्ञ का अधिकारी होता है यज्ञों में चैतन्य देवताओं के उद्देश्य से हवि दी जाती है। सोम, वाजपेय, सौत्रामणि, अश्वमेध आदि यज्ञों के नाम हैं।

किसी खास देवता के उद्देश्य को लेकर जो इष्टि की जावें वह होम कहलाता है। रुद्र होमादि इनके नाम हैं। रुद्र होम का वर्णन यजुर्वेद के अध्याय १६ में है इनसे भिन्न स्वामी दयानन्द का बतलाया हवन वैदिक ग्रन्थों में कहीं पर भी लिखा नहीं मिलता यह इन्होंने अपने आप चलाया है किसी समाजी में इतनी शक्ति न थी न है न होगी जो स्वामी दयानन्द के लिखे हवन को वैदिक सिद्ध कर दे।

यद्यपि स्वामी दयानन्दजी ने वेद के अर्थ बदल कर वेद में से अग्निहोत्र, इष्टि, यज्ञ, होम, ये सब निकाल दिये और वेद को फौजी कानून इञ्जन आदि तैयार करने शिल्प विद्या और साइन्स बना दिया है तथापि स्वामी दयानन्द के किये अर्थ इतने अयुक्त हैं कि पढ़ते ही फौरन मालूम हो जाता है कि स्वामी दयानन्द ने वेद का अर्थ नहीं किया किन्तु गला घोटा है दुर्जन तोषन्याय से हम यह भी माने लेते हैं कि स्वामी दयानन्द का अर्थ ठीक है तथापि यह कौन मान लेगा कि वेद में यज्ञों का वर्णन नहीं वेद में यज्ञ नहीं हैं और भारतवर्ष में अश्वमेधादि एक भी यज्ञ कभी भी नहीं हुआ स्वामी दयानन्द ने यज्ञों को वेद में से हमेशा के लिए छुट्टी दे दी और इस अनर्थ को पं० तुलसीराम आदि आदि लाखों आर्य समाजियोंने मान लिया कि वेद में यज्ञ न थीं न हैं न हो सकती हैं जब वेद से यज्ञ बिदा मांगगई तब पं० तुलसीराम लिखते हैं हवन से देवऋण का भार उतरेगा। पं० तुलसीराम आदि भले ही पक्षपात में पड़कर वैदिक कर्मयज्ञों को तिलाञ्जलि देदें किन्तु विचार-

शील मनुष्य यह कभी स्वप्न में भी नहीं मान सकता कि वेद में यज्ञ नहीं। जबकि वेद में यज्ञों का अस्तित्व मौजूद है जब कि वेद बुलन्द आवाज से कह रहा है कि यज्ञों के करने से देवऋण छुटता है फिर वेद को धक्का देकर सिर्फ पं० तुलसीराम के कहने से हवन से देवऋण का छुटना कैसे मानलें क्या कभी कोई आर्यजमाजी इस के ऊपर विचार करेगा कि देवऋण हवन से नहीं उतरता किन्तु यज्ञ से छूटता है।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने लिखा कि जल वायु की शुद्धि तो ईश्वर प्राकृत नियम से करता रहता है इसके ऊपर पं० तुलसीराम ने लिखा कि प्राकृत पदार्थों से जैसे परमात्मा दुर्गन्धि दूर करते हैं वैसे ही हम भी करें। हम पूंछते हैं कि जब परमात्मा दुर्गन्धी को हटाकर शुद्ध करदेता है तब फिर आपके शुद्ध करने की क्या आवश्यकता है? क्या आप परमात्माकृत शुद्धि को शुद्धि नहीं मानते? क्या परमात्मा की शुद्धि कुछ नीचे दर्जेकी है और आप कुछ बढ़िया शुद्धि करेंगे? क्या जितना शुद्ध करनेका ज्ञान आपको है उतना परमात्मा को नहीं यदि वास्तव में परमात्मा प्राकृत नियम से शुद्धि ठीक कर देता है और आप उस की शुद्धि को सर्वोत्तम मानते हैं तो फिर समाज की शुंद्धि करने से क्या होगा? जब कि घर में आटा पिसकर आगया तब उस पिसे हुए आटे को फिर पीसना यह भी कोई बुद्धिमत्ता है?

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं ईश्वर ने हम को हवन करना वेद में बतलाया है यह लिख "वसोः पवित्रमसि" वेद का मंत्र दे इस के अर्थ में लिखते हैं कि यज्ञ पवित्र है। इसके ऊपर हमको एक छोटासा किस्सा याद आगया–एक यात्री (मुसाफिर) सड़क पर चला जाता था उसको घोड़े का कोड़ा (चाबुक) पड़ा दिखलाई दिया दौड़कर उठाया और हाथ में लेकर राग गाने लग गया कि "रह गई बात थोड़ी—जीन लगाम घोड़ी" इसका कथन है कि अब पैदल न चलना पड़ेगा सवारी करने के लिये अब थोड़ी सी कसर रह गई केवल जीन (काठी) लगाम और घोड़ी की कसर है अब आगे चलकर इसी सड़क पर कहीं वह भी मिल जावेगी बस फिर बन्दा तो घोड़ी की पीठपर दिखलाई देगा। जिसप्रकार कोड़े के मिलने से इस मनुष्य ने अपने को सवार मान लिया था इसीप्रकार पं० तुलसीराम "वसोः पवित्रमसि" मन्त्र के पवित्र पद को देखकर प्रसन्न होगए, बाग बाग होगए समझ लिया कि अब हवन से जल वायु की शुद्धि सिद्ध करने में देरही क्या रह गई। क्या कोई मनुष्य इस बातको मान लेगा कि पवित्र शब्दसेही जलवायुकी शुद्धि

निकल पड़ेगी ? क्या कोई मनुष्य समाजके हवनको यज्ञ मान लेगा ? क्या यज्ञ पवित्र है इस इतने शब्द से जलवायु की शुद्धि समझ ली जावेगी ? फिर यह भी कोई मान लेगा "वसोः पवित्रमसि" मन्त्र की इस पूछ का तो अर्थ कर लिया जावे और शेष मन्त्र "द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनोघर्मोसि" छोड़ दिया जावे क्या इस मन्त्र को आर्यसमाज नहीं मानती ? यदि मानती है तो इसका अर्थ क्यों नहीं लिखा ? यदि इस का अर्थ लिख दें तो बस फिर हवन से जलवायु की शुद्धि की इतिश्री ही होजावे। मन्त्रों के टुकड़े करके अर्थ निकालना और बाकी के मन्त्र को फिजूल वाहियात समझना कितनी आस्तिकता है इसका निर्णय पाठकोंपर छोड़ाजाता है। पं० तुलसीरामजी मंत्र के अर्थ में "दिव्यगुणयुक्त" "विस्तारयुक्त" "वायुशोधक" यह तीन पद अपनी तरफ से मिलाते हैं यदि न मिलावें तो उस से शुद्धि का पता ही नहीं चलेगा। खैर जो कुछ हुआ वह तो हुआ किन्तु इतनी खुशी है कि जिन शब्दों को ईश्वर वेद बनाने के समय भूल गया था और जिनके विना वेद मन्त्र का अर्थ ही नहीं होता था आज उन शब्दों के मिलानेवाले भी मौजूद होगए, आर्यसमाज भलेही इस कार्य को धार्मिक समझे, भले ही पं० तुलसीराम को ईश्वर का भी ईश्वर समझे किन्तु हम इस काम को पाप समझते हैं कोई भी विचारशील मनुष्य ऐसे अर्थ को तोषदायक नहीं समझता कि जिस में अपनी तरफ से शब्द मिला मिलाकर असली अर्थ को वलि के दर्वाजे (पाताल) भेजा जाता हो।

यदि घटाने या बढ़ाने से ठीक अर्थ मान लिया जावेगा तब तो अनर्थ होजावेगा किसी न किसी दिन इसी वेद में से मक्का मदीना रोजे नमाज भी निकल पड़ेंगी। और यदि ऐसा अर्थ करने लगें तो चोरी व्यभिचार आदि पाप भी धर्म होजावेंगे। यह खुदग़र्ज़ी और और मनुष्यों में रहती है आज ख़ुदग़र्ज़ी में पड़कर पं० तुलसीराम कुछ के कुछ अर्थ कर रहे हैं कल को और भी करेंगे बस वेद का बचना तो बिल्कुल गैर मुमकिन हो जावेगा हमें विश्वास है कि इसप्रकार के अर्थों से प्रतिनिधि भी घृणा करती होगी।

"वसोः पवित्रमसि" यह मन्त्र यजुर्वेद अध्याय प्रथम दर्श पौर्णमास इष्टि प्रकरण का है इस मन्त्र को बोलकर पलास शाखा में कुशा बांधी जाती है इस मन्त्र में पलास शाखा का वर्णन है इस के शाक्षी महीधर और उव्वट गिरधर आदि समस्त भाष्य तथा कातीय श्रौतसूत्र और शतपथ हैं यदि वास्तव में समाज वेद

मानती है तब तो हम दावे के साथ कह सकते हैं कि वेद जानतेही समाज आवाज उठावेगी कि पं० तुलसीराम ने वेदों के गला घोटने में कुछ कसर नहीं रक्खीऔर वास्तव में इस मन्त्र में पलास शाखा का वर्णन है क्या कोई मनुष्य पं० तुलसीराम के अर्थ को सच्चा साबित कर सकता है? हमें आशा नहीं कि कोई समाजी लेखनी उठावे। फिर पं० तुलसीराम यह भी कहते हैं कि शतशः प्रमाण वेद में इस बात के मौजूद हैं कि हवन से जलवायु की शुद्धि होती है क्या वेदकर्त्ता ईश्वर बार बार इसी बात को लिखता है दो मन्त्र कहे फिर एक जलवायु की शुद्धि का कह दिया फिर चार मन्त्र दूसरे प्रकरण के कहे फिर हवन की शुद्धि लिख दी फिर एक मन्त्र रेल तार का कहा कि फिर शुद्धि याद आगई। यदि वेद ऐसा करता है तब तो वेद में पुनरुक्त (कहकर कहना) दोष आजावे और जहां पुनरुक्त दोष आया फिर वेद मानने के लायक ही न रहेगा क्योंकि गौतम न्याय शास्त्र में लिखते हैं "तद प्रमाण्य मनृत व्याघात पुनरुक्त दोषेभ्यः" जिस में अनृत (झूठ) व्याघात (विरुद्ध कथन) पुनरुक्त (एक बात को कई बार कहना) ये दोष हों वह वेद भी अप्रमाण्य है। यहां पर पं० तुलसीराम का यही मतलब होगा कि इसी बहाने से वेदों में पुनरुक्त दोष बतलाकर संसार को वेदों से घृणा करादें और यदि वास्तव में हवन के गुण जलवायु की शुद्धिकारक बारबार वेद में बतलाए हैं तो फिर उन मन्त्रों को दिखलाया क्यों नहीं जाता वेद में हवन से जलवायु की शुद्धि कहीं नहीं लिखी पं० तुलसीराम सोलह आना झूठ लेख लिखकर धमकी देते हैं यह कार्य योग्य है या अयोग्य यह विचार पाठकों के ऊपर रक्खा जाता है।

पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि गन्धक को घर में क्यों नहीं रख लेते जिस से वायु शुद्ध होजावे इस के ऊपर पं० तुलसीराम कहते हैं कि गन्धक में तो दुर्गन्ध होती है यहां पर दुर्गन्ध के कारण गन्धक रखने का निषेध है यदि गन्धक में उत्तम गन्ध हो तो फिर पं० तुलसीरामजी हवन को बन्दकर गन्धक रखने की ही आज्ञा देते क्योंकि दुर्गन्ध के सिवाय और कोई हेतु ऐसा नहीं देते कि जिससे हवन ही करना पड़े और गन्धक रखने से हवन का काम न निकले अस्तु गन्धक को जाने दें उत्तम उत्तम इत्र तेल फुलेल घर में रख लें जिनसे शुद्धि होजावे अब इसके ऊपर एक भी उत्तर समाजियों के पास ऐसा नहीं कि वह फिर हवन की आवश्यकता दिखलावे इसपर तो पं० तुलसीरामजी ही क्या किन्तु किसी भी आर्यसमाजी के पास कोई हेतु ऐसा नहीं कि जिस से फिर हवन की सिद्धि हो।

एक हवन पर ही क्या मुनहसर है स्वामी दयानन्दजी के समस्त ही सिद्धान्त ऐसे हैं। स्वामीजी के पास एक ब्राह्मण रहा करता था उसने एक दिन ऐसा तमाशा किया कि मारे हंसी के पेट फूलगये वह बाल बनवाकर आया और स्वामी दयानन्दजी से बोला कि स्वामीजी मैं बाल बनवा आया स्वामीजी ने कहा कि अच्छा किया इसमें डुग्गी पीटने की क्या आवश्यकता है ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि डुग्गी की तो कोई आवश्यकता नहीं किन्तु आज तो ऐसे बाल बनवाये हैं कि जिन की समस्त कथा स्वामीजी को तो सुनानी ही पड़ेगी स्वामी बोले आज ऐसी क्या बात है ब्राह्मण ने हँस कर कहा कि आज बाल क्या बनवाये बिलकुल सफाचट करा दिये स्वामी जी ने कहा कि सफाचट तो तुम हमेशा ही करवाते थे आज क्या हुआ ब्राह्मण देवता बोले कि आज भगवती चुटिया देवी का मन्दिर भी केश शून्य हो गया इसको सुनकर स्वामीजी बोले कि तुम बड़े नीच हो हिन्दू धर्म में सन्यासी को छोड़ कर क्या अन्य भी कोई मनुष्य चुटिया की सफाई करा सकता है ब्राह्मण ने कहा कि स्वामी आप ही ने तो लिखा है कि सन्ध्या में चुटिया की गांठ लगा दे ताकि बाल न बिखरें अब न चुटिया रहेगी और न बाल बिखरेंगे सन्ध्या में लिखा चुटिया में गांठ लगाने का पचड़ा अपने आप बिदा हो गया और हम भी एक निकम्मे फिजूल काम से छुट्टी पा गये इतना सुनते ही स्वामी दयानन्दजी ने नीचे को मुंहकर लिया और इनको कुछ भी उत्तर न सूझा।

चुटिया कटवाने से सन्ध्या में चुटिया की गांठ गई शरीर शुद्ध हो तो स्नान गया आलस्य न हो तो मार्जन गया और गन्धक में दुर्गन्ध न हो तो हवन गया गन्धक को जाने दीजिए हवन का फल तो इत्र तेल फुलेल से ही सिद्ध हो जावेगा।

पं० तुलसीरामजी ने जो गन्धक में दुर्गन्ध बतलाई है क्या इससे गन्धक की वायु शोधक शक्ति मिट गई समस्त वैद्य डाकटर इसबात को कहते हैं कि गन्धक की धूनी देने से हैजा प्लेग की वायु शुद्ध हो जाती है चाहे उसमें दुर्गन्ध हो या सुगन्ध किन्तु वायु के शुद्ध करने की शक्ति उसमें मौजूद है हैजे प्लेग आदि वायु की शुद्धि डाकटरों ने बतलाई है यह बात पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने लिखी किन्तु आप तो इसके ऊपर लेखनी ही नहीं उठाते।

जल की शुद्धि मिश्रजी ने निर्मली से बतलाई इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि इससे तो केवल मिट्टी ही नीचे बैठती है अन्य रोगकारक वस्तु नहीं

दूर हो सकतीं। वे कौन वस्तु हैं इसका विचार उठाने पर यह पता लगता है कि वे लकड़ी और घास के टुकड़े हैं जो हलके होने के कारण पानी में बैठ नहीं सकते इनके दूर करने के लिए पानी का छानना ही काफी है छानने से एक भी नहीं रहता यदि जल को विशेष सुगन्धित बनाना है तो थोड़े से केवड़े आदि का प्रयोग ही काफी है फिर हवन का क्या होगा।

पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि यज्ञ से मेघों तक की शुद्धि और संसार भर का उपकार होता है। दयानन्द के हवन की पुष्टि तो कर नहीं सकते यज्ञों के फल पर दौड़ लगाते हैं। इस हवन को यज्ञ कहता कौन है ? यज्ञ का जिक्र छोड़िये और दयानन्द के हवन की पुष्टि करिये जिसकी पुष्टि करने में लाचार हो कर यज्ञों पर जाते हैं। हम थोड़ी देर के लिए दुर्जनतोषन्याय से दयानन्दी हवन को ही वाजपेय यज्ञ माने लेते हैं यज्ञों से संसार का उपकार तो हिन्दू ग्रन्थ कहते हैं किन्तु मेघों तक की शुद्धि तो कहीं भी नहीं लिखी यह तो केवल पं० तुलसीराम ने गढी है। यज्ञ से मेघों तक की शुद्धि सिद्ध करना उतना ही कठिन है कि जितना मेघों* को शुद्ध कर के पवित्र वर्णों के साथ में उनका सबन्ध सिद्ध करना है।

पं० तुलसीराम लिखते हैं कि २० करोड़ मनुष्यों की दी आहुतियों से देश में आनन्द मङ्गल दिखलाई देगा। कैसा आनन्द मङ्गल ? इसका पता न दिया क्या घर घर करोड़पति [illegible] जावेंगे याकि रोज विवाह अथवा लड़के हुआ करेंगे ? जिस समय भंगी चमार कंजर मुसलमान ईसाई वेद पढ़कर आहुति देंगे उस समय देश का नाश हो जावेगा यह वेद का सिद्धान्त है और प्रत्यक्ष में भी देखा जाता है कि दयानन्द की कृपा से थोड़े हवनकर्ता हुए किन्तु इतने ही हवन से प्लेग चलगई आगे न जाने क्या होगा।

पं० तुलसीरामजी अग्नि को ईश्वर का दूत मान कर कहते हैं कि तुम सूर्य चन्द्रादि भौतिक† देवों के नाम की सामिग्री पुजवा कर अपने घर ले जाते हो क्या इसी में लोकोपकार समझते हो। इसके ऊपर हमारा कहना यह है कि अग्नि को देवदूत वेद में माना है इसके ऊपर हमको कोई भी संदेह नहीं संदेह इस बात का है कि "अग्नि दूतं पुरोदधे" इस मन्त्र में यह कहीं नहीं लिखा कि जल वायु की शुद्धि

* पंजाब इस नाम की जाती है।

† समाज में ईंट गारा पत्थर आधि भौतिक देवों के सिवाय और देव ही नहीं।

होती है जब यह नहीं लिखा तब इस मन्त्र को प्रमाण में देना तुलसीराम का घबरा जाना है।

पं० तुलसीराम को कुछ क्रोध आ गया और वेद को एकदम तिलाञ्जली दे कर लोकोपकार की धमकी के ऊपर आ गये। हम आप से पूंछते है कि आप के भाई पं० लुट्टनलाल जो कट्टर आर्यसमाजी हैं वह जब गरुड़ बांच कर रुपये लेकर घर में आता है तब तो लोकोपकार हो जाता है या आर्यसमाजी पण्डित जिस समय यज्ञोपवीत या विवाह संस्कार करवा के माल लेकर घर में आते हैं उनसे लोकोपकार होता है। पं० तुलसीराम का हिसाब ही बड़ा बेढंगा है जो काम आर्यसमाजी करें उसको तो वह लोकोपकार समझते हैं परन्तु यदि वही काम कोई दूसरा करे तो उससे वह लोक की हानि समझते हैं।

पं० तुलसीराम ने यज्ञों से लोकोपकार माना है सनातनधर्मी अब भी कोई कोई किसी समय किसी यज्ञ को करता ही है परन्तु आज तक आर्यसमाज ने एक भी यज्ञ नहीं किया तो अब बतलावें आर्यसमाज लोकोपकार कैसे कर रही है ? किन्तु आज आर्यसमाज वेदों का खण्डन कर जाती का बंधन तोड़ भक्ष्याभक्ष्य को खा लोक को रसातल को ले जा रही है। तुलसीराम को सोच लेना चाहिए कि जब तक आर्यसमाज ईश्वर को न मानेंगी या वेद के ठीक अर्थ को स्वीकार न करेंगी तब तक वल्लभगढ़ के चमारों को जनेऊ पहिना कर गौड़ और सनाढ्य बनाने से लोकोपकार हर्गिज़ नहीं होगा।

यदि इस देश के ऊपर ईश्वर की कृपा हो जावे और आर्यसमाज अपनी तरफ से नोन मिर्च मिलाना वेद मन्त्रार्थ में छोड़ दे, वेद के ठीक ठीक अर्थ मान ले और फिर आर्यसमाज का कोई पुरुष यज्ञ करे या घर घर यज्ञ होने लगें फिर उन यज्ञों में जो दान दक्षिणा मिले उसको लेकर ब्राह्मण जब घर आवें तो क्या उस वक्त संसार का बिल्कुल नाश हो जावेगा क्या एक भी मनुष्य न बचेगा ? यदि कहो कि नहीं नहीं तो फिर हम पूंछते हैं कि हमारे पुजवाने से देशोपकार क्यों नष्ट हो जाता है ? आर्यसमाजी पुजवा लावें तब तो देश का उपकार हो और सनातनधर्मी पुजवा लावे तो देश रसातल को चला जावे। वाह वाह पं० तुलसीरामजी कितना बढ़िया इन्साफ करते हैं यदि ऐसे इन्साफपसंद मनुष्य को कहीं गवर्नमेंट मजिस्ट्रेट या जज कर दे तो फिर सनातनधर्मियों का ईश्वर ही मालिक है। यह हम जोर से कहते हैं

कि पं० तुलसीराम सनातनधर्मियों की अक्ल तो ठिकाने लगा दें ।

स्वामी दयानन्दजी ने गायत्री मन्त्र से हवन करना लिखा है इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र लिखते हैं कि गायत्री मन्त्र में तो हवन का महत्व भी नहीं लिखा फिर क्या कोरा घी फूंकने से काम है । इसके उत्तर में लिखते हैं कि मुख्य मन्त्रों में जैसे "अग्नयेस्वाहा" "सोमायस्वाहा" "वायवेस्वाहा" "वरुणायस्वाहा" "प्राणायस्वाहा" इत्यादि में वायु जल प्राण आदि के अर्थ तौ हैं हीं परन्तु हवन की सामग्री विशेष हो तौ गायत्री आदि मन्त्रों से परमात्मा की स्तुति प्रार्थनोपासना करता जावे और शेष सामग्री को अग्नि में चढ़ा देवे यह तात्पर्य स्वामीजी का है । पं० तुलसीरामजी बहुत जल्दी भूल जाते हैं हम फिर याद करवाते हैं कि स्वामी दयानन्दजी ने जैसा ज्ञान मन में हो वैसा ही बोलै यह स्वाहा शब्द का अर्थ किया है अब इसी हिसाब से इन मन्त्रों के अर्थ करिये ।

जैसा ज्ञान मन में हो अग्नि के लिए वैसा ही बोलै और जैसा ज्ञान मन में हो सोम के लिए वैसा ही बोलै जैसा ज्ञान मन में हो हवा के लिए वैसा ही बोलै जैसा ज्ञान मन में हो वरुण के लिए वैसा ही बोलै और जैसा ज्ञान मन में हो जल के लिए वैसा ही बोलै स्वामी दयानन्द के मत में इन मन्त्रों का यह अर्थ हुआ । पूर्व में इस अर्थ पर पं० ज्वालाप्रसाद ने "प्राणायस्वाहा" यह आपत्ति की थी कि यह क्या अर्थ हुआ कि जैसा ज्ञान मन में हो ईश्वर के लिए वैसा ही बोलै । आप ने उत्तर दिया था कि प्राणाय नाम ईश्वर की प्रसन्नता के लिए सत्य बोलै उसीके अनुकूल अब "वायवेस्वाहा" इसका यह अर्थ होगा कि हवा की प्रसन्नता के लिए सच बोलै स्वामी दयानन्द और पं० तुलसीराम के इन अर्थों को सुन कर पांच वर्ष के बच्चे भी हँस पड़ते हैं और आप के मत में जो इनके अर्थ हुए उन में से कितना हवन का महत्व निकला जरा इसका भी पता लगे ।

फिर स्वामी दयानन्द के मत में यह सब नाम ईश्वर के हैं । ईश्वर के नामों से आहुति देकर तुम ईश्वर की शुद्धि करते हो या जलवायु की ? स्वामी दयानन्द के अर्थों के अनुसार तो यह शुद्धि ईश्वर की है क्योंकि यह सब नाम दयानन्द के मत में ईश्वर के ही हैं । पं० भोजदत्त वगैरह आर्यसमाजी मुसलमान ईसाई तथा भंगी चमारों की शुद्धि करते हैं और पं० तुलसीराम तथा दयानन्द ईश्वर की शुद्धि करते हैं इस की भी शुद्धि जरूर होनी चाहिये क्योंकि यह सृष्टि के आरम्भ से आज

तक सनातनधर्मी रहा है भोजदत्त वगैरह ईसाई मुसलमान आदि की शुद्धि १५ मिनट में कर लेते हैं किन्तु जब से आर्यसमाज का जन्म हुआ आज तक सैकड़ों आर्यसमाजी "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि मन्त्र बोल बोलकर ईश्वर की शुद्धि करते हुए थक गये किन्तु यह आज तक शुद्ध न हुआ मालूम होता है कि आर्यसमाज के मत में ईश्वर बहुत ही अशुद्ध है। पाठकवर्ग ! आर्यसमाज की इस बच्चों कैसी तहरीर पर कुछ विचार करें।

हम को नहीं मालूम कि "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि मन्त्रों में पं० तुलसीराम जो वायु जल आदि की शुद्धि या हवन महत्व मानते हैं वह किस अर्थ से मानते हैं कोई भी अर्थ इन अक्षरों में ऐसा नहीं है कि जिस से जलवायु की शुद्धि होने या हवन महत्व निकल पड़ने की ज़रा भी गुंजाइश रखता हो नहीं मालूम तिमिरभास्कर को देखकर पं० तुलसीराम घबरा गये और कुल का कुछ लिखने लग गये या स्वामी दयानन्दजी के नशे के चक्कर में पड़ गये ऐसा उत्तर देते हैं कि जिस को सुनकर विना पढे भी ताली पीटते हैं।

हम पं० तुलसीराम से यह भी पूछना चाहते हैं कि "अग्नये स्वाहा" इत्यादि जो पांच मन्त्र आपने हवन के महत्व के लिखे हैं यह मंत्र आर्यसमाज के स्वतः प्रमाण वेद के हैं या ऐसा तो नहीं कि ईश्वर ने अपनी भूल से कोई बड़ा मंत्र बना दिया हो और स्वामी दयानन्दजी ने ईश्वर के लेख को गलत और ईश्वर की बुद्धि को तुच्छ बुद्धि समझकर एक मन्त्र के टुकड़े करके कई एक मन्त्र बनाये हों या सनातनधर्मियों के कि जिन ग्रन्थों का समाज रात दिन खण्डन करती है उन्हीं (किसी झूठे पोपकृत ग्रन्थ) में से निकाल लिये हों कुछ भी हो ये हवन के पांच मन्त्र तो आर्यसमाज के स्वतः प्रमाण वेद में कोई भी आर्यसमाजी किसी भी जमाने में नहीं दिखला सकता। लीजिये हवन के लिये पहिले वेद मन्त्र तो अपने घर के बनाइये आज आर्यसमाज सनातनधर्मियों के मन्त्रों से हवन करती है कल को कुरान शरीफ की आयतें बोल बोलकर हवन करेगी कहीं इस अन्धेर का ठिकाना है। क्या इसपर कोई आर्यसमाजी विचार करेगा या सर्वदा ऊँट की पूँछ से ही ऊँट बँधा रहेगा।

पं० तुलसीराम ऐसा कोई प्रमाण नहीं दे सके कि जिस से हवन का महत्व सिद्ध हो अतएव पं० ज्वालाप्रसादजी का यह कहना सत्यही है कि कुछ ही मुंह से बोलते जावो और आग में घी फूंकते जावो।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि जो अग्निहोत्र के विशेष मन्त्र "समिधाग्निं दुवस्यतघृतैर्बोध यतातिथिम्" "आस्मिन्हव्या:जुहोतन" इत्यादि हैं उनमें तो अग्नि में समिधा होम घृत होमादि का अर्थ स्पष्ट है ही हम इस समय हवन का विचार करते हैं न कि अग्निहोत्र का पं० तुलसीरामजी नहीं मालूम हवन को छोड़ कर अग्निहोत्र के विचार पर क्यों जाते हैं । अग्निहोत्र के लिये तुलसीराम का लेख लिखना व्यर्थ है क्योंकि आज तक किसी भी आर्यसमाजी ने अग्निहोत्र नहीं लिया और न आगे को अग्निहोत्र लेने की किसी समाजी की आशा ही है किन्तु आर्यसमाज ऐसे नियमों को जारी करती है कि जिनसे अग्निहोत्र संसार से ही उठ जावेगा । उदाहरण के लिये आप देख सकते हैं कि आर्यसमाज विधवा विवाह की पक्षपाती है और यदि समस्त मनुष्य विधवा विवाह करने लगें तो समाज की दृष्टि में पूरी उन्नति हो जाय किन्तु विधवा विवाह करनेवाला अग्निहोत्र का अधिकारी ही नहीं रहता फिर पं० तुलसीराम का अग्निहोत्र प्रकरण उठाना फिज़ूल है ।

इसके अलावा "समिधाग्नि" लिखा है यह इनका लिखना बेमतलब है क्यों कि सनातनधर्म यह नहीं कहता कि तुम अग्नि को घृत ही न दिखाओ । सनातन धर्म का कहना तो यह है कि तुम वेद में कहा हुआ होम करो नित्य अग्निहोत्र करो इष्टि करो और यज्ञ करो । किन्तु स्वामी दयानन्दजी ने जो हवन निकाला है यह वेद विरुद्ध है और इस का फल जो वायु शुद्धि लिखा है यह अयोग्य है अग्नि होत्रादि से वायु शुद्ध होना कहीं पर भी नहीं लिखा किन्तु प्रत्यक्ष फल में वर्षा होना स्वर्ग की प्राप्ति होना संसार बन्धन टूटना इत्यादि फल लिखे हैं जब सनातन धर्म का यह सिद्धान्त है तब "समिधाग्निं" मन्त्र को लिखकर नहीं मालूम पं० तुलसीराम क्या सिद्ध करना चाहते हैं पाठक वर्ग इसके ऊपर स्वतः विचार करें । भास्करप्रकाश में इस मन्त्र से आर्यसमाज की किसीप्रकार की भी पुष्टि पं० तुलसी-रामजी ने नहीं लिखी ।

जब कि हवन से आर्यसमाज के मत में केवल वायु ही शुद्ध होता है तो मेरी राय में यह बहुत अच्छा हो कि आर्यसमाजी अपने अपने घर से चन्दा मुकर्रर कर दें और म्युनिसिपिल्टी के द्वारा उस स्थान में हवन होजावे जहां कि म्युनिसिपिल्टी के मुलाज़िम गाड़ियों में ढो ढो कर शहर के वायु बिगाड़नेवाले परमाणुओं को पट-

कते हैं ताकि हवन की वायु उस स्थान पर अपना प्रभाव बढ़ाकर दुर्गन्धि की वायु को दबा दे और जब हवन का फल केवल वायु शुद्ध करना है तो वेद के मंत्र पढ़ने की भी कोई आवश्यकता नहीं क्या जब तक वेद मन्त्र न पढे जावें तब तक हवा शुद्ध न होगी। इसके ऊपर यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि स्वामी दयानन्दजी ने तो लिख दिया कि वेद मन्त्र केवल इस लिये बोले जाते हैं कि वह कण्ठ रहें क्या हवन ने कण्ठ करवाने का ठेका लिया है यदि ऐसा है तब तो कालेजों में अवश्य हवन होना चाहिये ताकि लड़के बिना याद किये भी कण्ठ करके पास होजावें वेद मन्त्र तो रोज पाठ करने पर भी याद हो सकते हैं हवन से और मुखाग्र से कोई सम्बन्ध नहीं।

यह समाज का हवन फल एक बच्चों कैसा खेल है और वेद विरुद्ध है अतएव सर्वथा त्याज्य है। पं० तुलसीराम जब हवन फल की पुष्टि न कर सके तब एक दौड़ "गर्ज गर्ज क्षणं मूढ़" दुर्गा के इस पाठ पर लगा गये इस में से पं० तुलसीराम "मधु यावत्पिवाम्यहम्" इस पद से यह साबित करना चाहते हैं कि सनातनधर्मी शराब का हवन करते हैं क्योंकि आपने मधु का अर्थ शराब कर लिया है। यहां पर हम इतना अवश्य कहेंगे कि तुलसीराम ने ऐसी चालाकी की है कि जैसे कोई यह लिख दे कि "अहं हरिं भजामि" इस का अर्थ यह हुआ कि मैं हरि विष्णु का भजन करता हूं। कोई मसखरीबाज़ उस का यह अर्थ कर ले कि अरे राम राम बन्दर का भजन करता है क्योंकि हरि नाम विष्णु का है और बन्दर का भी है विष्णु अर्थ को छोड़कर बन्दर अर्थ लेना जिस प्रकार मसखरी या अज्ञता कही जा सकती है इसी प्रकार मधु के अर्थ शहद आदि को छोड़कर शराब लेना है यदि वास्तव में मधु का अर्थ शराबही है तब तो सनातनधर्मियों का शराब का हवन करना और आर्यसमाजियों का शराब का खाना दोनों ही सिद्ध हैं। आप स्वामी दयानन्दकृत संस्कारविधि देखिये जिसमें मधु शब्दों का ढेर लग रहा है और जिसमें मधु का खाना भी लिखा है प्रथम मन्त्र "मधुवाता" दूसरा मन्त्र "मधुनक्तम्" तीसरा मन्त्र "मधुमान" चौथा मन्त्र नीचे देखिये—

ओं यन्मधुनो मधव्यं परम ७ं रूपमान्नाद्यम्। तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि।

पार० कां० १। कं० ३

पं० तुलसीराम प्रकरण को छोड़कर लाचार होकर जब स्वामीजी के लेख पर कुछ भी न लिख सके तब सनातनधर्म को नीचा दिखाने के लिये सप्तसती में पहुंच कर मधु का शराब अर्थ करके कलंक लगाया किन्तु वह कलंक दयानन्द की मिहरबानी से आर्यसमाज के ही ऊपर आ गया।

पं० ज्वालाप्रसाद लिखते हैं कि पहिले चुटिया बंधवाई फिर रक्षा की फिर जप किया अब घी फूंका आगे आगे इंजन लगा कर रेल चलावेंगे दुनिया के सब काम गायत्री मन्त्र ही करता रहेगा। इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि स्वामीजी ने यदि रक्षादि कार्य्य किये तौ अनर्थ क्या किया परन्तु आप तौ अपने वड़ों को मानते हैं कि उन्हों ने गायत्री के जप से ही इतना सामर्थ्य बढ़ाया था कि धोती निराधार आकाश में सुखाते जल से अग्नि जलाते किसी का प्राण चाहते तौ ले लेते इत्यादि। पाठकवर्ग! पं० तुलसीराम ने गायत्री मन्त्र से चुटिया बांधने का कैसा उत्तम प्रमाण दिया कि जिस को सुन कर एक बार तो स्त्रियां भी हँस पड़ती हैं तुलसीराम को चाहिए था कि गायत्री से चुटिया बांधने में कोई वेदादि शास्त्र का प्रमाण देते किन्तु स्वामी दयानन्द के लेख में जैसे आरम्भ से अंत तक कहीं भी वेद प्रमाण नहीं यदि यही हाल यहां पर था तो साफ लिखते कि वेदादि सच्छास्त्रों में गायत्री से चुटिया बांधना नहीं लिखा यह न लिख कर सनातनधर्मियों पर कलंक लगाना चाहते हैं। आकाश में धोती का सूखना जल से अग्नि जलना गायत्री मन्त्र से मनुष्य का मार डालना यह सनातनधर्म की किस पुस्तक में लिखा है? किसी में नहीं है तुलसीराम ने अपने मन से गढ़ कर तैयार किया है। एक तो गायत्री मन्त्र से जो जो काम स्वामी दयानन्द ने करवाये हैं उनकी पुष्टि में एक अक्षर न लिखना दूसरे स्वामी दयानन्द की भांति अपने मन से गढ़ कर सनातन धर्म पर कलंक लगाना यह आर्य समाजियों को ही शोभा देता है भाव यह है कि सनातनधर्म की किसी पुस्तकमें यह तीनों बातें नहीं हैं उत्तर टालने के लिए तुलसीराम अपने मन से लिखते हैं।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि और इसमें संदेह नहीं कि हम आप के समान गायत्री को सामर्थ्यहीन नहीं समझते जैसा आप का भाई धर्म से विधर्म हो जावे तौ आप की गायत्री गङ्गा यमुना आदि कुछ नहीं कर सकतीं। इसके ऊपर पं० तुलसीराम से हमको फिर पूछना पड़ा कि क्या वास्तव में गायत्री मन्त्र में आर्य

समाज की दृष्टि में इतनी शक्ति है कि वह भंगी को ब्राह्मण मुसलमान को क्षत्री आदि आदि बनादे ? यदि ऐसा है और तुलसीराम को इसका दावा है तो मिहरबानी करके दस बीस या सौ पचास वार गायत्री मन्त्र पढ़ के एक गधे को गौ तो बनावें। इसके ऊपर यदि तुलसीराम कहें कि यह नहीं हो सकता जाति जाति ही बनती है गैर जाति नहीं इसके ऊपर तुलसीराम को सोचना होगा कि जिस प्रकार पशु जाति में गाय भैंस बकरी घोड़ा गधा आदि अवान्तर जाति हैं इसी प्रकार मनुष्य जाति में भी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, श्वपच, म्लेच्छ, यवन आदि अवान्तर जाति हैं जब एक म्लेच्छ यवन आदि को ब्राह्मण जो अवान्तर जाति में भिन्न है बना दिया जाता है तो फिर गधे को अवान्तर जाति में भेद और पशु जाति में अभेद रखने वाली गौ क्यों नहीं बनाते।

इसके अलावा आप यह तो प्रमाण दें कि गायत्री मन्त्र से शुद्ध हो कर नैनीताल के भंगी बनिया बन जाते हैं यह अमुक वेद मन्त्र में लिखा है जब कि ऐसा कहीं पर भी नहीं लिखा और जब कि इस बात को स्वामी दयानन्दजी ने भी नहीं माना तब एक नया सगूफा गढ़ के तैयार करना पं० ज्वालाप्रसाद का लेख सत्य है कि आगे आगे सब काम समाज गायत्री मन्त्र से ही करेगी इससे न तो सनातनधर्म का खण्डन ही होता है और न गायत्री से चुटिया बांधने की पुष्टि होती है नहीं मालूम प्रकरण के विरुद्ध अंड बंड लेख पं० तुलसीरामजी क्यों लिख रहे हैं।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि यहां यह बात नहीं किन्तु आप के मुरादाबाद में और अन्यत्र शतशः पतित भाइयों का उद्धार इस सामर्थ्यवान गायत्री मन्त्र से हम ने किया और देखिये आगे आगे क्या करेंगे घबराते क्यों हो। एक मरतबा हम मुरादाबाद गये सरांय में जाकर देखा तो वहां पर न तो कोई भठियारा है न भठियारी है। हमने पूछा कि यहां के भठियारे और भठियारियां कहां गईं। आस पास के लोगों ने बतलाया कि आर्यसमाज ने उनकी शुद्धि कर जनेऊ पहिना उनको गौड़ ब्राह्मण बना दिया है अब कोई तो धर्मेन्द्र देवशर्मा और कोई धर्मदेवशर्मा इत्यादि नामों से विभूषित हो कर आर्यसमाज के नेता बन गये हैं और अब वे सब का एक भोजन बना कर देश का उपकार कर रहे हैं और जितनी भठियारियां थीं उनकी भी शुद्धि हो गई है अब वे गायत्रीदेवी, सीतादेवी, आदि नाम धरवा कर नियोग और विधवा विवाह का प्रचार करके समाज में पूजनीया पदवी को पा

गई । हम पं० तुलसीराम से पूछते हैं कि यही करोगे कि कुछ और इससे भी बढ़िया करोगे सम्भव है कि आर्यसमाजी भाई पाखाने हो कर आबदस्त न लिया करें गायत्री से ही शुद्धि हुआ करे । हमें इस बात का ज़रा भी रंज नहीं है कि पं० तुलसीराम गायत्री से क्या क्या काम लेंगे । सवाल तो यह है कि गायत्री मन्त्र से चुटिया बांधने पर मनुष्य की रक्षा हो जावेगी या नहीं इस का उत्तर तो पं० तुलसीराम देते ही नहीं शुद्धि का विषय छेड़ते हैं खैर अच्छा है किन्तु देखते हैं कि यह शुद्धि का मामला समाज में कब तक जारी रहता है । पं० शिवचन्द्र सत्ती व पं० बद्रीदत्त जी आदि आदि तो शुद्धि को मानते ही नहीं । खुशी की बात है कि काशी के ब्रह्मभोज के मामले में भास्कर प्रकाश के कर्त्ता पं० तुलसीराम लिख गये कि इस शुद्धि को हम शुद्धि ही नहीं मानते आर्यसमाज की यह शुद्धि अंग्रेजी चाल की शुद्धि है । जब पं० तुलसीराम आप ही शुद्धि का खण्डन करने लग गये तब फिर हम को कागज रँगने की क्या आवश्यकता है ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि कदाचित् आप भी तो भूत प्रेत गायत्री से दूर किया करते हैं और यजमानों से दक्षिणा लिया करते हैं फिर विना दक्षिणा मांगे स्वामीजी ने गायत्री से रक्षा और होमादि का विधान किया तो बुरा क्या किया । हम जो गायत्री मन्त्र से भूत प्रेत का दूरिकरण मानते हैं इसके लिये तो शास्त्रों में लेख मिलते हैं किन्तु जो पार्टी भूत प्रेत को नहीं मानती और मन्त्रमें रक्षा शक्ति नहीं मानती और जिसके लिये वेद शास्त्र का कुछ प्रमाण नहीं मिलता वह पार्टी नहीं मालूम गायत्री से रक्षा कैसे और किसप्रकार के भय का दूरिकरण मानती है । अब रहा दक्षिणा के बाबत् इसका उत्तर पीछे हो चुका है जहां पर आपने पुजवाना लिखा था हम दक्षिणा लेते ही जांयगे और आप अपने मन में खूब दुखित होते जाइये । स्वामीजी ने जो गायत्री से रक्षा लिखी है यह वेद विरुद्ध है जो सभा केवल वेद को मानती है उस को तो सब काम वेद से ही करने चाहिये यदि पं० तुलसीराम वेद से गायत्री मन्त्र द्वारा रक्षा होना दिखला दें तो फिर हम को कुछ उजर भी नहीं ।

यह सब हुआ किन्तु पं० ज्वालाप्रसाद के प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ उन का तो कथन यह है कि स्वामी दयानन्द ने पहिले गायत्री से चुटिया बंधवाई फिर रक्षा की फिर जप किया फिर घी फूंका आगे इंजन लगाकर रेल दौड़ाई जावेगी इन

सब कार्यों की पुष्टि में पं० तुलसीराम ने कुछ भी प्रमाण न दिया किन्तु गायत्री मन्त्र से एक काम शुद्धि और बतला दिया जब पिछले ही कामों की कर्त्तव्यता में कोई प्रमाण नहीं तो शुद्धि में प्रमाण कहां से आवेगा पं० ज्वालाप्रसाद का यह प्रश्न नहीं था जो पं० तुलसीराम ने समझा कि गायत्री से क्या क्या काम होंगे किन्तु यह प्रश्न था कि गायत्री से बतलाये हुए कार्यों में प्रमाण क्या है ? यदि पं० तुलसीराम इस प्रश्न को समझे होते तो शुद्धि का जिक्र न उठाते और इन प्रश्नों का उत्तर देते।

स्वामी दयानन्दजी ने सायं प्रातःकाल स्नान करके पात्रों में हवन करना लिखा इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि स्नान की क्या आवश्यकता दो ही काल में वायु का शुद्ध करना क्यों चूल्हा भट्टी रहने पर पात्रों की आवश्यकता क्या ? इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि "सायं सायंगृहपतिर्नो० प्रातःप्रातगृहपतिर्नो०" इस से दिखाते हैं कि हवन सायं प्रातःकाल ही होना चाहिये इस मंत्र में सायं प्रातः शब्द तो जरूर पड़े हैं परन्तु हवन करना कहीं नहीं लिखा। एक आर्यसमाजी कहता था सुबह शाम व्याख्यान देना चाहिये हमने पूछा कहां लिखा है उसने यही मन्त्र बतला दिया अब कोई २ सुबह शाम पाखाने जाना भी इसी मन्त्र से बतला दिया करेंगे मन्त्र न ठहरा भानमती का पिटारा ठहरा जो चाहें वही अर्थ इसमें से निकाल लें जब इसमें हवन करना या पाखाने जाना या व्याख्यान देना कुछ भी नहीं लिखा फिर अपनी तरफ से मनवांछित शब्द मिलाना ईश्वर को बेवकूफ समझना नहीं तो और क्या है पं० तुलसीराम को खूब सोच लेना चाहिये कि इन चालाकियों से स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों की रक्षा नहीं हो सकती।

स्नान के ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि शुद्धिकारक कर्म करते हुए क्या देह को शुद्ध करना आवश्यक नहीं। पं० तुलसीराम बतलावें कि देह का शुद्ध करना आवश्यकीय है यह किस वेद मन्त्र में लिखा है कि शुद्धि के समय में शरीर शुद्ध करो और पं० तुलसीराम यह भी दिखलावें कि जल से शरीर शुद्ध होता है यह किस वेद मन्त्र में लिखा है मनु का प्रमाण न दें क्योंकि समाज की दृष्टि में मनु स्वतः प्रमाण नहीं है इस के अलावा यदि शरीर शुद्ध हो धूल गर्दा या मलमूत्र न लगा हो तब तो तुलसीराम के लेखानुसार स्नान की भी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि स्नान तो शरीर की शुद्धि के लिये है और शरीर पहिले ही शुद्ध है अब स्नान की क्या जरूरत।

पात्रों में हवन करने की बाबत पं० तुलसीराम लिखते हैं कि पात्रों के बिना यह कार्य सिद्ध नहीं होता और यों तो कढ़ाई के स्थान में तवा और थाली से भी काम चल जाता है इस के ऊपर हम पं० तुलसीराम से पूछते हैं कि क्या चूल्हे भट्टी को तवे थाली की उपमा दी जासकती है तवे थाली में पूरी करते हुए दिक्कत आती है चूल्हे भट्टी में ज़रा भी तकलीफ नहीं होती उपमा तो ऐसी देनी चाहिये कि जिस से उपमेय ठीक मिले। पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि जो पात्र जिस जिस कार्य के लिये बने हैं उन उन पात्रों के बिना उत्तम कार्य नहीं होता इस के ऊपर हम को हँसी आजाती है पं० तुलसीराम हवन बतलाते हैं वेद में और वेद बना सृष्टि के आरम्भ में किन्तु पात्र बने दयानन्द के वक्त में सृष्टि से आज तक हवन किन पात्रों में हुआ? यदि दैवयोग से स्वामी दयानन्द का जन्म न होता तो फिर यह हवन किन पात्रों में होता? यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि स्वामी दयानन्दजी ने जो पात्र लिखे हैं ये वेदोक्त हैं इसके ऊपर हम जोर देकर कह सकते हैं कि आर्यसमाज दयानन्द के पात्रों में एक भी वेदशास्त्र का प्रमाण नहीं देसकती यह सब फ़र्ज़ी हैं दयानन्द ने अपने मन से तैयार किये हैं फिर पं० तुलसीराम यह कैसे कह सकते हैं कि जो पात्र जिसके लिये बने हों हवन के लिये तो यह पात्र बने ही नहीं।

पं० ज्वालाप्रसादजी वेद के तीन मंत्र देकर हवन का फल दिखाते हैं कि ये मंत्र परलोक स्वर्ग प्राप्त्यर्थ अग्नि की स्तुति विधान करते हैं। अग्नि देवदूत है। अग्नि हमारा धन सम्पादन करो। संग्रामों को विदीर्ण करो। अन्न हमें देओ। शत्रु को जीतो। देवतों को हवि पहुंचाओ। यजमान का कल्याण करो। अपने लोक में ठहरो। पुष्करपर्ण पर भले प्रकार बैठो। इत्यादि अग्नि की स्तुति लिखी हैं इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि हम आप के किये अर्थों को मान लें तब भी कोई हमारे पक्ष की हानि नहीं क्योंकि जलवायु की शुद्धि से शौर्य धैर्य आरोग्य बल पुष्टि आदि बढ़ते हैं जिससे धन, जय, अन्न, कल्याण की प्राप्ति होती है इस से वह बात खण्डित नहीं होती जो हमने ऊपर यजु० अ० १ मं० २ से वायु की शुद्धि यज्ञ द्वारा सिद्ध की है और अग्नि को देवदूत अर्थात् वायु आदि देवतों का उनके लिये दिया हुवा भाग पहुँचाने और उस से उनको प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ शुद्ध अनुकूल करनेवाला तो हम भी मानते हैं और स्वामीजी ने भी माना है।

पं० तुलसीराम का हवनसे जलवायु की शुद्धि और उससे शौर्य धैर्य आरोग्य

बल पुष्टि का बढ़ना मानना अयोग्य है क्योंकि वेद के मंत्र में यह नहीं दिखलाया है कि हवन के धुंवें से यह जल वायु शुद्ध होकर ऊपर लिखे गुणों को देते हैं और पूर्व समय में जब कि दयानन्द का बतलाया यह हवन नहीं था उस जमाने में भी इन गुणोंवाले मनुष्य होते रहे हैं आज भी पश्चिमीय देशों में जहां कि स्वामी दयानन्द के बतलाये हवन का धुंवां नहीं उड़ता उपरोक्त गुणवाले मनुष्य मौजूद हैं फिर हवन के धुंवें से ही शौर्यादि गुण मानना यह आग्रह करना है।

और यजुर्वेद अ० २ के मन्त्रार्थ का खण्डन पीछे हो चुका है उस में न धुवां है न हवन है और न इनके द्वारा किसी की पवित्रता है वह मन्त्र तो दर्श पूर्णमास इष्टि का है स्वामी दयानन्द के फ़र्ज़ी हवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

और पं० तुलसीरामजी यह कहते हैं कि अग्नि को देवदूत हम भी मानते हैं बेशक पं० तुलसीराम अग्नि को देवदूत मानते हैं किन्तु जिन देवताओं का अग्नि दूत है उन को नहीं मानते। नाली का जल, सिगरेट की आग, पाखाने की हवा, पेशाब करने की जमीन, पं० तुलसीराम इन्हीं को आर्यसमाज के देवता मानते हैं जो वेद और स्वामी दयानन्द के लेख के विरुद्ध है। वेद की तो कौन कहे स्वामी दयानन्द ने भी अश्विनीकुमार, इन्द्र, कुबेर, पूषा आदि देवता संस्कारविधि में लिखे हैं जिन को हम प्रथम समुल्लास में दिखला चुके हैं किन्तु पं० तुलसीराम की दृष्टि में वेदशास्त्र और स्वामी दयानन्द सब मिथ्यावादीहैं। जब आप वेदोक्त देवताओं को ही नहीं मानते तो फिर देवदूत मानने से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा?

नाम मात्र के ही ब्राह्मणों द्वारा देवताओं की सामग्री चटकर जाने का उलहना देना व्यर्थ है क्योंकि हम नाम मात्र के तो ब्राह्मण लेते हैं वह भी कब जब कि हम को लिखा पढ़ा ब्राह्मण नहीं मिलता है किन्तु आर्यसमाज तो "अग्निस्वाहा" मंत्र का अर्थ बदल कर अग्नि के पेशा करनेवालों को देव और पितृ भाग लिखावेगी अब अगर इस बात की तहकीकात उठे कि अग्नि का पेशा कौन करते हैं तो सुनार लोहार ड्राइवर और भड़भूजे आदिही निकलेंगे। सनातनधर्मी तो नाममात्र के ब्राह्मणों को देवभाग देते हैं और आर्यसमाज ड्राइवर और भड़भूजों को। इन दो में अच्छा कौन है इसका निर्णय पं० तुलसीराम अपने आप करें।

फिर पं० तुलसीराम यह तो बतलावें कि बिना पढे ब्राह्मण को देव भाग देना यह हिन्दुओं के किस शास्त्र में लिखा है? यदि कहो कि देते तो हैं तो इस देने से

देनेवालों पर ऐतराज़ होसकता है न कि हिन्दू शास्त्र पर । यहां पर शास्त्रीय विचार हो रहा है इस में अन्य कटाक्ष करना फिज़ूल है । पं० तुलसीराम की भांति हम भी कह सकते हैं कि आर्यसमाजी अभक्ष्य पदार्थों के खाने में ही अपने को वैदिक समझते हैं किन्तु मनुष्यों का दोष किसी के धर्मपुस्तक पर नहीं लगाया जासकता और हिन्दुओं का शास्त्र कैसे ब्राह्मण को देवभाग का देना लिखता है इसको आप नीचे देखें—

श्रोत्रियायैवदेयानि हव्यकव्यानिदातृभिः ।
अर्हत्तमायविप्राय तस्मैदत्तंमहाफलम् ॥

मनु० अ० ३ श्लो० १२८

अर्थ—दाताओं को देव पितृयज्ञ अर्थात् हव्य कव्य के अन्न श्रोत्रिय जो वेद पाठी है तिस को यत्नसे देने चाहिये क्योंकि वेद आचार और कुटुम्ब से अति योग्य ब्राह्मण को दिया हुआ बड़े फल का देनेवाला होता है ।

इस श्लोक में देव पितृभाग का देना पढे हुए ब्राह्मण को लिखा है पं० ज्वाला-प्रसाद ने यज्ञ और हवन से स्वर्ग की प्राप्ति भी दिखलाई किन्तु पं० तुलसीराम इस को उड़ाये उड़ाये फिरते हैं कारण इस का यह है कि स्वामी दयानन्द ने स्वर्ग नहीं माना । समाजियों का अजब किस्म का सिद्धान्त है कि जिसको दयानन्द न मानें उसको वे वेद में होने पर भी नहीं मानते और वेद में न भी हो केवल स्वामी दयानन्द मान लें उस को आर्यसमाज वेद का सिद्धान्त कहती है और इतने पर भी समाज अपने को वैदिकधर्म को माननेवाली बतलाती है कुछ भी हो वेद से यज्ञ का फल स्वर्ग प्राप्ति सिद्ध है और इस के ऊपर पं० तुलसीराम की लेखनी कुछ भी नहीं लिख सकती ।

पं० ज्वालाप्रसाद ने घी का फूंकना लिखा है इस के ऊपर पं० तुलसीराम कठोर शब्द बतलाते हैं आश्चर्य की बात है कि स्वामी दयानन्द पोप, धूर्त, स्वार्थी, म्लेच्छ लिखें या वेदव्यास को कसाई के नाम से याद करें या भट्टोजी दीक्षित पर ऐसे लेख निकलें कि जिसको पढ़ कर आर्यसमाजियों की बुद्धि का परिचय मिले और यदि कोई उस लेख को अनुचित बतलादे तो उसके पास मार डालने की धमकी पहुंचे कड़ी समालोचना पर पत्रों का बाइकाट होजाय । पं० तुलसीराम की इस कार-

रवाई में एक भी कड़ा शब्द न दिखलाई दे किन्तु हवन करने की जगह यदि कोई घी फूंकना लिख दें तो कड़ा शब्द होकर आर्यसमाज की मानहानि हो जाय। भारत वर्ष के मजिस्ट्रेटों से हमारी प्रार्थना है कि कुछ रोज पं० तुलसीराम से अवश्य शिक्षा पावें जब तक ऐसा न करेंगे इनको ठीक ठीक इन्साफ करना नहीं आवेगा।

क्या वास्तव में पं० तुलसीराम परस्पर में कठोर शब्दों के व्यवहार का त्याग करना चाहतेहैं ? यदि पं० तुलसीराम सच्चे दिल से कठोर शब्दों के व्यवहार का त्याग करना चाहते हैं तो ऐसी दशा में हम आप को धन्यवाद देते हैं और साथ ही साथ इकरार करते हैं कि आइन्दा से यह पाठ दयानन्द तिमिर भास्कर से निकाल दिया जावेगा। कब ? जबकि आर्यसमाज भी अपनी पुस्तकों में से कठोर शब्दों के निकालनेके लिए तैयारहो। यह नहीं होसकता कि हम तो निकाल दें और तुम बनाये रक्खो दोनों को ही निकालना होगा मंजूर हो तो पत्र लिखें। फूंकना शब्द जिस तरह से पं० तुलसीराम को खटका है इसी प्रकार और और धर्मों के मनुष्यों को सत्यार्थ प्रकाश भी खटकता होगा जिसमें सैकड़ों जगह अनेक धार्मिकों के बुजुर्गों की अच्छी खबर ली गई है।

पं० ज्वालाप्रसाद ने "स्वाध्यायेन" मनु के इस श्लोक से यज्ञका फल ब्रह्म की प्राप्ति होना बतलाया इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखतेहैं कि इसमें विवाद किसको है पं० तुलसीराम को न होगा स्वामी दयानन्द को तो है क्योंकि मनु तो ब्रह्म की प्राप्ति बतलाते हैं और स्वामी दयानन्द धूमसे केवल वायु शुद्धि मानते हैं इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि ऐसा कोई प्रमाण दो कि जिससे धूम द्वारा वायु की शुद्धि का न होना सिद्ध होता हो। इसके ऊपर हमारा उत्तर यह है कि पहिले आर्य समाज अपने पक्ष की तो स्थापना करे अभी तक तो आर्यसमाज ने एक भी ऐसा प्रमाण नहीं दिया कि जिससे धूम द्वारा जलवायु की शुद्धि होना सिद्ध होताहो जब पक्ष की स्थापना नहींहुई फिर उत्तर कैसा ? बिना जुर्म के सफाई मांगना पं० तुलसी-राम को ही आता है।

अब हम एक प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं। स्वामी दयानन्दजी ने आर्यसमाज का स्थापन किया। इस आर्यसमाज में कुछ थोड़े बहुत अंग्रेज़ी पढ़े लिखे मनुष्य शामिल होते गये। ऐसे ही धीरे धीरे ढचरा चला। सम्वत् १९५१ से आर्यसमाज ने जोर पकड़ा। इसके मेम्बर बढ़े। घर घर हवन होने लगे। जल और वायु शुद्ध हुये।

इस शुद्धी के कारण भारतवर्ष में प्लेग चली यह हमारा प्रत्यक्ष प्रमाण है । आप पुरानी से पुरानी हिष्ट्री देख लें भारतवर्ष में प्लेग कभी नहीं हुआ यदि हुआ तो उसी समय में हुआ जब कि स्वामी दयानन्द का बतलाया हवन आर्यसमाज के प्रत्येक घर में होने लगा । कैसी अच्छी शुद्धि हुई ? जब समाज धर्मप्रकाश का खण्डन करेंगी तब और भी कई एक प्रमाण देंगे ।

पं० ज्वालाप्रसाद यज्ञ का कितना भी महत्व दिखलावें जैसा कि "अग्नौ प्रास्ताहुतिः" इत्यादि कितने भी प्रमाण लिखे । पं० तुलसीराम उनका कुछ उत्तर तो दे नहीं सकते किन्तु यह लिख देते हैं कि आभ्यान्तर शुद्धि वैसे ही होती है और वाह्य शुद्धि हवन के धूम से शुद्ध जल वायु के द्वारा तब ये फल होता है । इस लेख को देख कर हमको एक बात याद आ जाती है वह यह है कि किसी मनुष्य ने एक मनुष्य से कहा कि हमारा राजा बड़ा विद्वान् है दूसरा आदमी बोला कि मास्टर की बदौलत यदि मास्टर न होता तो इतना विद्वान् कैसे हो जाता फिर वह मनुष्य बोला कि हमारा राजा बड़ा बलीहै तब उसने जवाबदिया मास्टरकी बदौलत मास्टर ब्रह्मचर्य की शिक्षा न देता तो फिर बली कहां से होता फिर वह बोला हमारे राजा के बड़ा खूबसूरत लड़का हुआ है यह बोला मास्टर की बदौलत यदि मास्टर गर्भाधान की शिक्षा न देता तो खूबसूरत लड़का कहां से होता वह बोला कि हमारा राजा घोड़े पर खूब चढ़ता है यह बोला कि मास्टर की बदौलत यदि मास्टर मना कर देता तो राजा घोड़े पर ही न चढ़ता फिर घोड़े की सवारी की निपुणता कैसे आती । इस महात्मा की दृष्टि में संसार के सब काम मास्टर ही की बदौलत होते हैं । जिस तरह से उस महात्मा की दृष्टि से संसार में कोई काम मास्टर के बिना होही नहीं सकता सब मास्टर की ही बदौलत होते हैं इसी प्रकार पं० ज्वालाप्रसाद ने यज्ञ के जितने लाभ बतलाये उसमें पं० तुलसीराम ने जल वायु की शुद्धि द्वारा इतना और लिख दिया पं० ज्वालाप्रसाद के बतलाये यज्ञों के फल पं० तुलसीराम ने सब माने किन्तु जल वायु की शुद्धि द्वारा इतना पुछल्ला और बढ़ा दिया कि संसारके जितने काम या जितनी उन्नति होतीहै वह जल वायु की शुद्धि द्वारा ही होती है यह पं० तुलसीराम का सिद्धान्त है कि जो किसी भी मनुष्य की बुद्धि में ठीक नहीं है । क्या हवन के बिना कोई काम हो ही नहीं सकता यह विचार करने लायक है ।

प्रश्न तो यह है कि वेद शास्त्र में यज्ञों से लोकोपकार स्वर्ग प्राप्ति मोक्ष

सिद्धि आदि फल कहे हैं और स्वामी दयानन्द जल वायु की शुद्धि मानते हैं इन दो में कौन सच्चा है। दूसरा सवाल यहहै कि वेद ने रुद्रीय आदि होम और दर्श आदि इष्टि सौत्रामणि आदि यज्ञ और अग्निहोत्र करने बतलाये स्वामी दयानन्द ने इन सब से विरुद्ध वेद शास्त्र की विधि वर्जित वायुशोधक जो हवन चलाया यह क्यों ? दयानन्द के बताये हवन में वेद शास्त्र का कोई अक्षर प्रमाण है ? यदि नहीं है तो इस को करैं क्यों जब इसका जिक्र वेद में नहीं तब इसको वैदिक कहैं क्यों ? इन प्रश्नों का कोई उत्तर पं० तुलसीराम ने नहीं दिया और न आगे को कोई समाजी दे सकता है ऐसे मन गढ़न्त मामलों की रक्षा समाज तभी तक कर सकती है जब तक कि इसको कोई मनुष्य देखता नहीं जब कोई देखने लगताहै तब सब हाल खुल जाता है और लेखक को नीचा देखना पड़ता है। इस बात की कोइ जरूरत नहीं है कि स्वामी दयानन्द के मन कल्पित लेख को समाज मानें किन्तु समाज का यह सब से पहिला धर्म है कि स्वामी दयानन्द के लेख को वेद से मिलावें अनुकूल को रखलें विरुद्ध को त्याग दें आशा है कि समाज हमारे इस लेख पर गौर करेगी।

शूद्रे वेदानधिकारः ।

सत्यार्थप्रकाश—

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति । राजन्योद्वयस्य । वैश्यो वैश्यस्ये-वेति । शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके ॥

यह सुश्रुत के सूत्रस्थान के दूसरे अध्याय का वचन है। ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, क्षत्रिय क्षत्रिय और वैश्य तथा वैश्य एक वैश्य वर्ण का यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है। और जो कुलीन शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उस को मन्त्र संहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े परन्तु उसका उपनयन न करे, यह मत अनेक आचार्यों का है। पश्चात् पांचवें वा आठवें वर्ष से लड़के लड़कों की पाठशाला में और लड़की लड़कियों की पाठशाला में जावें। और निम्न लिखित नियम पूर्वक अध्ययन का आरम्भ करें।

तिमिरभास्कर—

प्रथम तौ वोह वार्ता लिखते हैं जो शूद्र के विषय में स्वामी जी मान चुके हैं।

स० पृ० ४३ पं० २६ शूद्रमपिकुलगुणसम्पन्नं मंत्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके सुश्रुत ४०। २५

अर्थ—और जो कुलीन शुभ लक्षणयुक्त शूद्र हो तौ उसको मंत्र संहिता छोड़कै सब शास्त्र पढ़ावै यह मत किन्हीं आचार्यों का है (सुश्रुत का मत यह नहीं है) और

स० पृ० ३४ पं० १ शूद्रादिवर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यासके लिये गुरुकुल में भेजदे। २६। १६

स० पृ० ७५ पं० २ और जहां कहीं निषेध है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवै वोह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है॥ ७५। २३

इतने स्थानों में तौ स्वामीजी ने यह माना कि, शूद्रको यज्ञोपवीत न देना चाहिये और यह भी कहा कि, मंत्र संहिता छोड़कर और सब कुछ पढ़ाना और फिर कहा कि, जो मूर्खहो जिसे पढ़ाये से कुछ न आवै वोह शूद्र है उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है जब शूद्र मूर्ख कोही कहते हैं जिसे पढ़ाये से कुछ न आवै तौ फिर भला स्वामीजीने कौनसी भंगकी तरंग में शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार दे दिया सो आगे लिखते हैं।

स० प्र० पृ० ७४ पं० २ क्या स्त्री शूद्र भी वेद पढ़ैं जो यह पढ़ैंगे तौ फिर हम क्या करैंगे और फिर इनके पढ़ने का प्रमाण भी नहींहै जैसा यह निषेधहै कि, "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" इतिश्रुतेः॥ १४। २३

स्त्री और शूद्र न पढ़ैं यह श्रुति है (उत्तर) सब स्त्री और मनुष्य

मात्र को पढ़ने का अधिकारहै तुम कुआ में पड़ो और यह तुम्हारी श्रुति कपोल कल्पना से हुई है किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं और सब मनुष्यों को वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने का अधिकार है यजुर्वेद के २६ वें अध्याय का दूसरा मंत्र है।

यथेमांवाचंकल्याणीमावदानिजनेभ्यः ब्रह्मराज
न्याभ्याꣳशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥

परमेश्वर कहताहै कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख को देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी को (आवदानि) उपदेश करता हूं वैसे तुम भी किया करो। परमेश्वर कहता है कि, हमने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र और अपने भृत्य वा स्त्रियादि और अति शूद्रादिकों को भी वेदों का प्रकाश किया है, कहिये अब तुम्हारी बात मानें या परमेश्वर की, क्या ईश्वर पक्षपाती है यदि वोह पढ़ाना न चाहता तौ इनके वाक् और श्रोत्र इन्द्रियों को क्यों बनाता, वेदमें कन्याओंका पढ़ना लिखा है पृ० ७५ पं० ७

ब्रह्मचर्येणकन्यायुवानंविन्दते पतिम् ॥ अथर्व०

कुमारी ब्रह्मचर्य सेवनसे वेदादि शास्त्रोंको पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होकै पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को प्राप्त होवै (प्रश्न) क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ैं (उत्तर) अवश्य देखो श्रौतसूत्रादिमें (इमं मंत्रं पत्नी पठेत्) स्त्री यज्ञमें इस मंत्र को पढ़ै जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ी न हों तौ उच्चारण कैसे करसकैं।

समीक्षा—प्रथम तो स्वामीजी लिख चुके कि, शूद्र मंत्रभाग न पढ़ै और अब लिखते हैं कि, पढ़ै और तुम कुआमें पड़ो यह दुर्वचन नहीं तो और क्या है तुम्हारीही पुस्तक और तुमही प्रश्नकर्त्ता तुम्हारीही पढ़ीहुई श्रुति इससे तुमही कुएमें गिरे संसाररूपी कूप

में गिराने को आपके वाक्य निश्चय प्रबल हैं, जब शूद्र महामूर्ख कोही कहते हैं कि, जिसे पढ़ाने से कुछ न आवै फिर जब पढ़ाने से कुछ न आवै तो उसे वेद पढ़ाना कैसा और जब आप जातिकर्मानुसार मानते हैं तो भी वेद पढा हुआ शूद्र नहीं होसक्ता वोह तो उच्चवर्ण होजायगा, फिर भी मूर्ख बेपढ़ाही शूद्रसंज्ञक रहा इस से आपके वचन से भी शूद्र वेद पढा नहीं होसक्ता अब व्यास सूत्र सुनिये ॥

संस्कारपरामर्शात्तद्भावाभिलापाच्च ॥ अ० १ पा० ३ सू० ३६

विद्या पढनेके लिये उपनयनादि संस्कार व सुनने से शूद्र वेद विद्या पढने का अधिकारी नहीं है ॥

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ शा० अ० १ पा० ३ सू० ३८

शूद्र को वेदका अधिकार नहीं है क्योंकि श्रवण अध्ययन वास्ते निषेध होने से स्मृति में ऐसा लिखा है ॥

वेदप्रदानादाचार्यंपितरंपरिचक्षते ॥
नह्यस्मिन् युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबंधनात् ॥ १७१ ॥
नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ॥
शूद्रेणहिसमस्तावद्यावद्वेदेनजायते । १७२ अ० २

वेदके प्रदान से आचार्य को पिता कहते हैं मौञ्जीबंधन से पूर्व वेदका कुछ भी अंश उच्चारण न करे और श्राद्धादिकों में जो वेदोक्त मंत्र हैं उनको छोड़कर और मंत्र उच्चारण न करे कारण कि जब तक वेद पढ़नेका अधिकार नहीं हुआ तब तक शूद्र के तुल्य है यहां बिना यज्ञोपवीत हुए शूद्र की समान तीनों वर्ण कहे १७१-१७२ अब आगे शूद्र का उपनयन नहीं होता यह दिखाते हैं ॥

नशूद्रेपातकं किंचिन्नचसंस्कारमर्हति ॥
नास्याधिकारोधर्मेस्तिनधर्मात्प्रतिषेधनम् ॥ १२६ ॥
यथायथाहिसद्वृत्त मातिष्ठत्यनसूयकः ॥

तथातथेमंचामुंचलोकं प्राप्नोत्यनिंदितः ॥ १२८ ॥
धर्मेप्सवस्तुधर्मज्ञाः सतांवृत्तमनुष्ठिताः ॥
मंत्रवर्जं नदुष्यान्तिप्रशंसांप्राप्नुवंतिच १२७ अ० १०

शूद्र को कोई पातक नहीं है और न कोई संस्कार योग्य है और न कोई वैदिक धर्म में इसको अधिकार है और कहे हुये धर्म करने का निषेध नहीं है ॥ १२६ ॥

निंदा को न करनेवाला शूद्र जैसा २ अच्छे पुरुषों के आचरणों को करता है, वैसा २ इस लोक तथा परलोक में उत्कृष्टताको प्राप्त होता है १२८ धर्मकी इच्छावाले तथा धर्म को जाननेवाले शूद्र मंत्रसे रहित होकर भी सत्पुरुषों के आचरण करते हुए दोषों को नहीं प्राप्त होते किन्तु प्रशंसा को प्राप्त होते हैं १२७ अब वेदमंत्रका अर्थ सुनिये (यथेमां) इसमें प्रसंग देखना योग्य है सो इससे पहला यह मंत्र है इस मंत्रमें इमाम् इदम् शब्द से प्रयोग है ॥

अग्निश्च पृथिवीच सन्नतेतेमेसन्नमता मदोवायुश्चान्तरिक्षं चसन्नतेतेमेसन्नमतामद आदित्यश्च द्यौश्च सन्नतेतेमे सन्नम तामद आपश्च वरुणश्च सन्नतेतेमे सन्नमतामदः सप्तस ७ सदोअष्टमीभूतसाधनीसकामाँ ॥ २ ॥ अध्वनस्कुरुसंज्ञान मस्तुमेऽमुना १

(अग्निः) अग्नि (च) और (पृथिवी) भूमि (च) भी (सन्नते) परस्पर अनुकूलता से संगत हैं (ते) वे दोनों (मे) मेरे (अदः) अमुक कामना को (सन्नमताम्) इसीप्रकार वशवर्ती करो (च) और (वायुः) वायु (च) और (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (सन्नते) संगतहैं (ते० वे मेरे इत्यादि) (च) और (आदित्यः) आदित्य (च) और (द्यौः) द्युलोक (सन्नते) जैसे परस्पर वशवर्तीहै (ते० वे इत्यादि) (च) और (आपः) जल (च) और (वरुणः) वरुण (सन्नते) परस्पर संगत है (ते० वे) हेदेव जिस आपके (सप्त) सात (संसदः) अधिष्ठान अग्नि, वायु अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, अप, वरुण

हैं (अष्टमी आठवीं भूतसाधनी) प्राणियों की आधारस्वरूप वा उत्पादक भूमि है इन सबके अधिष्ठानस्वरूप तुम (अध्वनः) हमारे मार्गों को (सकामान्) सफल (कुरु) करो (मे) मेरी (अमुना) इस इष्ट से वा सबसे (संज्ञानं) संगति (अस्तु) हो, अर्थात् हे देव पथस्वरूप सप्तसंसद और आठवीं भूतसाधनी बुद्धि को हमारे आधीन करो अथवा विज्ञानात्मा के प्रति कहते हैं हे देव ! कि सप्त संसद, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि यह सात स्थान और आठवीं प्राणियों को वश करनेवाली वाणी है आप हमारे मार्गों को सकाम करो इनके संग मेरी संगति हो । विशेष अर्थ हमारे वेद भाष्य में देखो अनन्तर यह मंत्र है ॥

यथेमांवाचंकल्याणीमावदानिजनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्याᳬशूद्रा यचार्य्यायचस्वायचारणाय प्रियोदेवानां दक्षिणायैदातुरिह भू- यासमयंमेकामः समृध्यतामुप मादोनमतु ॥ य० अ० २६ मं० २

पूर्व मंत्र में स्थित भूतसाधनी वाणी का अध्याहार होताहै तब इसका यह अर्थ होता है कि यज्ञके अन्त में यजमान अपने भृत्यों से कहता है (दक्षिणाये यथेमां भूतसाधनीं कल्याणीं वाचं जनेभ्यः आवदानि तथा त्वं कुरु इति शेषः)

भाव यह है कि (दक्षिणायै) दान देने को जनों के अर्थ (यथा) जैसे (इमाम्) इस भूतसाधनीं (कल्याणीं) शोभना (वाचं) (दीयतां भुज्यताम्) दो भोजन करो ऐसी वाणी को (जनेभ्यः) सम्पूर्ण जनों के निमित्त (आवदानि) सबप्रकार से कहता हूँ वैसे तुम भी करो और कहो किन जनों के लिये (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रियों के निमित्त (च) और शूद्राय शूद्र के निमित्त (अर्य्याय) वैश्यके निमित्त (स्वाय) अपने भृत्य के निमित्त तथा (अरणाय) अति शूद्रादि के निमित्त आशय यह कि दान भोजन में किसी जाति का विचार नहीं है सबको देना चाहिये ऐसा करने से (देवानाम्) देवताओं का (दातुः) सबके देनेवाले परमेश्वर का

(प्रियः) प्यारा (भूयासम्) हूँगा (मे) मेरा (अयम्) धन पुत्र लाभरूप (कामः) कार्य (समृध्यताम्) समृद्धको प्राप्तहो (अदः) परलोक सुखादि (उपनमतु) प्राप्त हो २ इसमें 'दक्षिणाये' और 'दातु' पद आने से स्पष्टही अन्न और दान की महिमा विदित होती है।

यदि दयानन्दजी काही अर्थ माना जाय तौ परमेश्वरकी वाणी भी माननी होगी जब वाणी हुई तौ शरीर भी होगा और वेदाविर्भाव प्रसंग भी स्वामीजी का स्वामीजी केही लेख से भ्रष्ट हो जायगा क्योंकि जब इस मंत्र उपदेशवत् अग्नि आदि को उपदेश कर सक्के थे तौ उनके अन्तर्वेद का प्रादुर्भाव होना असंगत है इस स शूद्र को वेद पठन पाठन का उपदेश करना अशुचि में शुचि बुद्धिरूप अविद्या है और प्रथम तौ यहां स्वामीजी से यह पूछना है कि यह ब्राह्मणादि शब्द मंत्र में जाति के बोधक हैं अथवा जो कि तुमने पच्चीसवें वर्ष में परीक्षा से नियत करी है यह ब्राह्मणादि जाति उसके बोधक हैं, जैसे आपने ८८ पृष्ठ में माना है यदि प्रथम पक्ष कहोगे तौ ब्राह्मणत्वादि जाति सिद्ध होगई तौ आपकी स्वकपोल कल्पित वर्ण व्यवस्था है सो दत्तजलांजलि होगई, और यह भी विचारना चाहिये कि यह उपदेश आदि में होना चाहिये वा अन्त में होना चाहिये मध्य में कैसे होसक्ता है क्योंकि (इमाम्) यह शब्द प्रयोग समीप वस्तु का बोधक है सो अभी तक चतुर्वेद विद्या समीपहै नहीं वक्ष्यमाणहै और यदि गुणकृत वर्णव्यवस्था को मानकर मंत्रमें ब्राह्मणादि शब्द कहेंगे तब ब्राह्मणत्वादि शून्य में ब्राह्मणादि शब्द प्रयोग करनेसे ईश्वर भ्रान्त होगा क्योंकि तुम्हारे सिद्धान्त में पूर्ण तौ विद्वान् ब्राह्मण है सो अभी तक हुआ नहीं और जो पूर्ण विद्वान् है तिसको वेद विद्या उपदेशरूप ईश्वर की आज्ञा निष्फल है और शूद्रशब्द तमोगुण विशिष्ट का वाचक है तिसको भी वेद विद्या उपदेश की आज्ञा निष्फल है, और अरण शब्दार्थ जो अति शूद्र है तिसमें तौ सर्वथा उपदेश निष्फल है, जैसे

ऊषर में बीज बौना तैसे शूद्र और अति शूद्र में उपदेश निष्फल है और जब जातिही ब्राह्मणादिकों की लिख दी तौ फिर (स्वीय अपने भृत्यों को) यह शब्द प्रयोग निष्फलही होजायगा क्या वे भृत्य चार वर्णों से पृथक् हैं इसकारण शूद्र को वेदका अधिकार कदापि नहीं और भी सुनिये ॥ शूद्र के सिवाय इतनों का और निषेध है।

विद्याहवैब्राह्मणमाजगाम गोपायमा शेवधिष्टेऽहमस्मि ॥
असूयकायानृजवेऽयतायनमाब्रूयावीर्यवतीतथास्याम् ॥

नि० अ० २ खं० ४

अर्थ—विद्या अधिदेवता कामरूपिणी होकर नियमित वेद वेदाङ्ग के जाननेवाले ब्राह्मण के पास आकर बोली (गोपायमाम्) मेरी रक्षाकर (अहम्) मैं रक्षित हुई (शेवधिः) खजाना हूँगी किनसे रक्षा करनी चाहिये (असूयकायानृजवेऽयताय) (असूयकः) पराया अपवाद निन्दा करनेवाले (अनृजु) जिसकी मन वाणी देहकी असमानवृत्तिहों (अयतः) विप्रकीर्णेन्द्रियः जिसकी इन्द्रियां शुद्ध न हों ऐसे पुरुष से मुझे मत कहो ऐसा करने से मैं वीर्यवती हूँगी। स्वामीजी लिखते हैं कि चाण्डाल तक को वेद विद्या पढ़ा दो यह निरुक्त भाष्ययुक्त कौन से चूरणके साथ गड़ाप गये इससे नीचको कुटिल शूद्रों को कदापि विद्या नहीं देनी, इसी प्रकार स्त्रियों को वेदादि पढ़ने में अधिकार दिया है और (ब्रह्मचर्येण कन्या) इस मंत्र का अर्थ उल्टा लिखा है और इसमें स्त्रियों को वेद पढ़ना नहीं लिखा और जो चाहैं सो पढ़ैं केवल स्त्री शूद्रको मंत्रभागका पढ़ना मने किया है और वेदवाक्य का अर्थ यह है कि (ब्रह्मचर्येणयुवानंपतिंकन्याविन्दते) यह अन्वय हुआ अर्थात् ब्रह्मचर्य से जवान हुए पतिको कन्या प्राप्त होवे और (इमं मंत्रं पत्नी पठेत्) पहले तो इसका पताही नहीं लिखा कि कहां का है तो भी इसकी व्यवस्था इसप्रकार है कि—

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ मनुः ॥

विवाह में वेदमंत्रसे संस्कार होताहै यही स्त्रियों का यज्ञोपवीत है, पति सेवा करनी यही गुरुकुल का वासहै, गृह का काम काज करना अग्निकी सेवाहै, पति के सन्निधि में विवाह में संस्कार के अर्थ तथा कहीं यज्ञमें पत्नीके मंत्र बोलनेकी विधिहै, सो ऋत्विक् कहला देते हैं कुछ पढ़नेकी विधि नहीं है, गार्गी आदि स्त्रियें मंत्र भाग को छोड़ और सब कुछ पढ़ी थीं, इससे स्त्री शूद्रको वेद न पढ़ाना और भी सुनिये ।

योनधीत्यद्विजोवेद मन्यत्रकुरुतेश्रमम् ।
सजीवन्नेवशूद्रत्वमाशुगच्छतिसान्वयः ॥ मनुः ॥ २ । १६८

जो ब्राह्मण वेदको छोड़ और विद्याओं में परिश्रमकरता है वो जीते हुए ही शूद्रपनेकूं वंश सहित प्राप्त होजाता है अब विचारने की बात है जब कि वेद नहीं पढ़ने से शूद्रपना प्राप्त होता है तौ शूद्र कैसे वेद पढ़सकते हैं क्योंकि जो ब्राह्मण भी वेद न पढ़े तौ शूद्र सरीखा होजाय जब शूद्र वेद पढ़े तौ वोह शूद्र कैसा तीनवर्ण तौ वेद बिना पढ़े शूद्र सरीखे होजाते हैं, आप उन्हीं अवैदिक शूद्रों को वेद का अधिकार देते हो, धन्य है आपकी बुद्धि, मालूम होता है कि किसी शूद्रने कुछ झुका दिया है नहीं तौ शूद्रोंकी ऐसी तरफदारी न करते कि पूर्व तौ अधिकार नहीं यहां लिखदिया और शूद्र को वेद में अनधिकार होनेसे ईश्वर में पक्षपात का दोष नहीं आ सक्ता, क्योंकि उसके कर्महीं जब अनधिकार और शूद्रपने के थे तब तौ उसका कल्याण उस शरीरकेही धर्मसे है इससे कर्मानुसार सुख दुःख ब्राह्मण शूद्रादि होनेसे अपने अपने कार्य धर्म के सब पृथक् पृथक् अधिकारी हैं यदि दोष देते हो तौ ईश्वर धन संतान भी सबको बराबर देता और जब कर्म से न्यूनाधिक है तौ जाति भी कर्म से है इसका विशेष वर्णन जाति प्रकरण में लिखेंगे ॥

भास्करप्रकाश—

अधिकार शब्द के दो अर्थ हैं १ 'योग्यता' २ 'स्वत्व'। स्वामीजी ने वा अन्य किसी ऋषि ने जहां २ शूद्र को मंत्र संहिता छोड़ कर अन्य सब कुछ पढ़ना लिखा है उसका तात्पर्य योग्यतापरक है अर्थात् शूद्र मन्त्रसंहिता पढ़ने के अयोग्य है वा उस के पढ़ने की योग्यता से रहित है। जैसे स्कूल में सब विद्यार्थी ऊंची क्लास में पढ़ने को योग्य नहीं होते किन्तु कोई २ होते हैं। जो नहीं होते उन्हें कहा जा सक्ता है कि वे ऊंची कक्षा (क्लास) के योग्य नहीं वा उन्हें उस कक्षा में पढ़ने का अधिकार नहीं है।

'स्वत्व' अपनापन को कहते हैं। और जहां २ वेदमन्त्रों ऋषिवाक्यों और सत्यार्थप्र० में वेद पढ़ने का शूद्र को अधिकार है यह लिखा है उस का तात्पर्य स्वत्व (इसतहक़ाक़) परक है। अर्थात् जैसे ईश्वररचित अन्य पदार्थों से उपकार ग्रहण करने का योग्यतानुसार सब को स्वत्व (अधिकार वा इसतहक़ाक़) है उसी प्रकार वेद जो ईश्वर का दिया ज्ञान है उस पर भी सब का स्वत्व (हक़) है। तदनुसार शूद्र का भी अधिकार (हक़) है॥

योग्यता और स्वत्व में भेद है। योग्यता न होने से अयोग्य पुरुष उस पद पर बैठाया भी जावे तौभी अशक्त होवे। और स्वत्व न होना वह कहाता है कि चाहे योग्य भी हो तब भी स्वत्व न होने से उस पद पर नहीं बैठाया जा सके। जैसे देवदत्त के धन का स्वत्व (हक़) उस का पुत्र ही रखता है। अन्य किसी का पुत्र चाहे इस योग्य है कि वह उस धन को लेकर बर्त्त सके परन्तु अधिकारी (हक़दार) नहीं है बस इसी प्रकार शूद्र अपनी अयोग्यता के कारण अनधिकारी है परन्तु स्वत्व के कारण अधिकारी (मुस्तहक़) है। क्योंकि एक ही पिता परमात्मा की वेद विद्या होने से उस के पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि सब ही अधिकारी (मुस्तहक़) हैं। जैसे किसी पिता के चार पुत्र में से योग्यता के तारतम्य (कमी बेशी) से कोई अधिकारी हो और कोई न हो परन्तु स्वत्व सब को है अर्थात् जब ही उन में से कोई अयोग्य अपनी अयोग्यता दूर करले तब ही अधिकारी हो जायगा। परन्तु दूसरे पुरुष का पुत्र पूर्वोक्त अन्य पिता के धनादि का अधिकारी योग्यता होने पर भी नहीं हो सकता। इसी प्रकार परमात्मा के

चारों पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र हैं उनमें से जो अयोग्य है वह कोष का फल नहीं पाता परन्तु अयोग्यता दूर करके योग्य होने पर सब को उस पर अधिकार (इसतहक़ाक़) अवश्य प्राप्त है। जैसे अन्य किसी का पुत्र अन्य किसी के धनादि का अधिकारी योग्यता होने पर भी नहीं हो सकता। वैसे परमात्मा की वेद संपत्ति का अधिकारी योग्य होने पर भी कोई (शूद्रादिकुलोत्पन्न होने मात्र से) न हो यह नहीं होना चाहिये, न हो सकता है।

हम पूर्व लिख चुके हैं कि अनधिकार का जहां जहां वर्णन है वह योग्यता के अभाव से है।

अयोग्य दशा में शूद्र को अपनी अयोग्यता के कारण अधिकार नहीं। अयोग्यता से योग्यता को पहुंचने की सन्धि में यद्यपि शूद्र शब्द का प्रयोग पूर्वावस्था के अभ्यास से रहो परन्तु योग्यता प्राप्त होते ही वह अधिकारी हो जाता है जैसा कि आप के ही लिखे मनु के वक्ष्यमाण श्लोकों से सिद्ध है :—

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति ।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥ १० । १२६ ॥
धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ।
मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥ १२७ ॥
यथा यथाहि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः ।
तथा तथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ॥ १२८ ॥

अर्थ—न शूद्र में कुछ पातक है, न वह संस्कार योग्य है, न उस का धर्म में अधिकार है, न धर्म करने का उसे निषेध है ॥ १२६ ॥ धर्म की इच्छा वाले तथा धर्म को जानने वाले शूद्र मन्त्र से रहित करके भी सत् पुरुषों के आचरण करते हुवे दोषों को नहीं प्राप्त होते किन्तु प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ १२७ ॥ निन्दा को न करने वाला शूद्र, जैसा जैसा अच्छे पुरुषों के आचरणों को करता है वैसा वैसा इस लोक तथा परलोक में उत्कृष्टता को प्राप्त होता है ॥ १२८ ॥ यह श्लोक तथा अर्थ हम ने द० ति० भा० का ही उद्धृत किया है हम कुछ देर के लिए इसी को ठीक मान लेते हैं और पाठकों से निवेदन करते हैं कि ये श्लोक और इन का

अर्थ स्वामी जी के सत्यार्थप्रकाशस्थ सिद्धान्त को पुष्ट करता है वा पं० ज्वाला-प्रसादजी के सिद्धान्त को ?। १२६ वें श्लोक में स्पष्ट कहा है कि शूद्र को न धर्म का अधिकार न धर्म का निषेध है। अर्थात् साधारणतया अयोग्यता के कारण जिन जिन धर्मकार्यों को वह नहीं कर सकता उन्हीं का अधिकार नहीं परन्तु जिन जिन धर्मकार्यों की योग्यता उस में होती जावे उन उन को करता जावे क्योंकि धर्मकार्य का निषेध भी नहीं है। १२७ और १२८ वें श्लोकों में इसी को और भी स्पष्ट किया है कि धर्मज्ञ शूद्र, जैसे जैसे सदाचार (धर्म) को करता है वैसे वैसे इस लोक और परलोक में उत्कृष्टता को प्राप्त होता है। हम पं० ज्वालाप्रसादजी से पूछते हैं कि परलोक की उत्कृष्टता तो आप कहेंगे कि स्वर्ग प्राप्त होता है देव-योनि प्राप्त होती है परन्तु इस लोक की उत्कृष्टता इसके अतिरिक्त क्या है कि शूद्र, शूद्र न रहे। तात्पर्य यह है कि यद्यपि शूद्र अयोग्यता के कारण धर्माधिकारी नहीं होता परन्तु जैसे जैसे योग्यता बढ़ाता जावे वैसे वैसे अधिकारी होता जावे और अपने से उत्कृष्ट (वर्ण) पद को प्राप्त होता जावे इस में कोई धर्मशास्त्र का निषेध (रोक टोक) नहीं है।

आप इस मन्त्र में वाणी का प्रयोक्ता यजमान को बताते हैं परन्तु आप के माननीय महीधर अपने भाष्य में इस ऋचा को ब्राह्मी गायत्री लिखते हैं जिस का तात्पर्य यह है कि इस ऋचा का ब्रह्म वा ब्रह्मा देवता और गायत्री छन्द है। तब बताइये कि आप का लेख महीधर के विरुद्ध कैसे माना जावे। नहीं नहीं आप का लेख तो अपना कुछ है ही नहीं किन्तु आप ने तो महीधर से ही लिया है महीधर को भी यह न सूझा कि प्रथम मन्त्र के आरम्भ में तो इस द्वितीय मन्त्र को गायत्री ब्राह्मी लिखा फिर टीका करते समय एक अर्थ में स्मरण रक्खा द्वितीय में भूल गये। इस से पूर्व मन्त्र का अर्थ महीधर ने प्रथम इस प्रकार लिखा है :—

परमात्मानं प्रत्युच्यते। हे स्वामिन् ! यस्य तव सप्तसंसदनानि अधिष्ठानानि अग्निवाय्वन्तरिक्षादित्यद्युलोकाम्बुवरुणाख्यानि तत्राष्टमी भूतसाधनी पृथ्वी भूतानि साधयति उत्पादयति भूतसाधनी भूमिं विना भूतोत्पत्तेरभावात्० इत्यादि।

अर्थ—परमात्मा के प्रति कहा जाता है कि हे स्वामिन् ! जिस आप के ७ अधिष्ठान १ अग्नि, २ वायु, ३ अन्तरिक्ष, ४ आदित्य, ५ द्युलोक, ६ जल, ७

वरुण हैं। उन में ८ वीं पृथ्वी है जो कि भूतसाधनी है क्योंकि भूमि के विना भूतोत्पत्ति असम्भव है इस कारण पृथ्वी को भूतसाधनी कहा।

आगे चलकर महीधर ने दूसरा अर्थ किया कि :—

विज्ञानात्मा वोच्यते। यस्य तत्र सप्त संसदः पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि मनोबुद्धिश्चेति सप्तायतनानि अष्टमी भूतसाधनी भूतानिसाधयति वशीकरोति भूतसाधनी वाक्० इत्यादि।

अर्थ——अथवा विज्ञानात्मा के प्रति कहा जाता है कि जिस आप के ७ आयतन हैं ५ ज्ञानेन्द्रियां ६ मन ७ बुद्धि। इन में ८ वीं वाणी है जो भूतसाधनी अर्थात् भूतों को वश में करने वाली है।

अब विचार करना चाहिए कि मूल मन्त्र "अग्निश्च पृथिवी च" इत्यादि में अग्नि आदि ७ अधिष्ठात्रों के नाम और ८ वीं पृथ्वी का नाम स्पष्ट आया है फिर खेंचतान करके भी ५ ज्ञानेन्द्रि ६ मन ७ बुद्धि ८ वाणी यह अर्थ कैसे हो सकता है और महीधर ने ज्ञानेन्द्रियादि अर्थ किया तो उसे योग्य था कि अग्नि आदि ८ पदों से जो मन्त्र में आये हैं अपने अभीष्ट अर्थों को व्याकरण निरुक्त आदि किसी प्रमाण से सिद्ध करता और महीधर ने नहीं किया तो उसको मानने और उस के सहारे से अपना प्रयोजन सिद्ध करने वाले पं० ज्वालाप्रसादजी को वह अर्थ किसी प्रकार सिद्ध करना था ऐसा न करके केवल अप्रामाणिक लेखमात्र से ७ ज्ञानेन्द्रियादि और ८ वीं वाणी अर्थ लेना सर्वथा असंगत है। हम कोई दूसरा अर्थ भी नहीं करते किन्तु महीधर ने जो प्रथम एक अर्थ मूलमन्त्रके अक्षरानुकूल किया है उसी के ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी तथा पाठकों को ध्यान दिलाते हैं कि वहां वाणी का वर्णन नहीं, फिर उसी वाणी की अनुवृत्ति से जो (यथेमां वाचम्०) इस अगले मन्त्र में वेदवाणी का ग्रहण नहीं करते सो ठीक नहीं हैं। और पूर्वमन्त्र में यदि मनघडन्त अर्थ में से वाणी की अनुवृत्ति लाई भी जावे तो सामान्य करके विज्ञानात्मा की सामान्य वाणी का ग्रहण होगा परन्तु यजमान की दीयताम् भुज्यताम् आदि वाणी का अर्थ करना तो महीधरकल्पित द्वितीय अर्थ से भी असंगत है।

हमारे पक्ष में दोनों मन्त्रों की सङ्गति इस प्रकार हो जाती है कि पूर्व मन्त्र में अग्नि वायु पृथिवी आदि शारीरिक उपकार करने वाले ८ पदार्थों का वर्णन करके अगले मन्त्र में कृपालु परमात्मा ने आत्मिक उपकारार्थ वेद का वर्णन करके आत्मा के उपकार का मार्ग बताया और कहा कि मैंने तुम को यह कल्याणी वाणी दी है, तुम ब्राह्मण क्षत्रियादि सब लोगों को इस का उपदेश करो यह ज्ञान की दक्षिणा है इस दक्षिणा का दाता देवों का प्रिय होता है इत्यादि ।

यहां तक हमने इन के और महीधर के द्वितीय अर्थ की असङ्गति तथा स्वामी जी कृत अर्थ की सङ्गति दिखायी अब जो तर्क इन्हों ने स्वामीजी के अर्थ पर किये हैं उनका प्रत्युत्तर देते हैं ।

वेद को वाणी शब्द से व्यवहार करना, भाविनी संज्ञा को लेकर है अर्थात् परमात्मा जानते हैं कि हमारे उपदेश किये मन्त्रों को ऋषि लोग वाणी द्वारा संसार में फैलायेंगे तब यह उपदेश वेदवाणी कहलायगा । भाविनी संज्ञा इसको कहते हैं जैसे कोई पुरुष भींत चिनते समय आरम्भ की ईंट रखता हो और उससे कोई पूंछे कि क्या करते हो तो वह भाविनी = आगे होने वाली संज्ञा का प्रयोग करके कहता है कि भींत चिनता हूं तो यद्यपि उसको "इष्टका चीयते" कहना था परन्तु "भित्तिश्चीयते" कहता है । इसी प्रकार तार पूरने वाला कहता है कि कपड़ा बुनता हूं क्योंकि तार पूरने से कपड़ा बन जायगा और ईंट चिनने से भींत बन जायगी । इसी प्रकार परमात्मा भी यह जानते हुवे कहते हैं कि ऋषियों के हृदय में उपदेश करने से उन की वाणी द्वारा प्रचार होगा, इस लिये शरीर को शङ्का करना व्यर्थ है। सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्० यजुः ४० । ८ इत्यादि अनेकशः प्रमाण इस विषय के हैं कि परमात्मा अकाय = शरीर रहित है । शूद्र को अध्ययन करना अशुचि को शुचि मानना नहीं किन्तु अज्ञानी अशुचि जीव को पवित्र वेदोपदेश के द्वारा शुचि करना है ।

इस मन्त्र में आये ब्राह्मणादि पद गुणकर्मस्वभावानुकूल वर्णों के सन्तानपरक हैं और पिछली तथा होने वाली संज्ञापरक हैं । और हम भी तो आप से पूंछेंगे कि ब्राह्मणादि पद केवल जन्मपरक हैं वा गुणकर्मस्वभावानुगत जन्मपरक हैं । यदि केवल जन्मपरक हैं तो ईसाई मुसल्मानादि मतों में गये हुए जन्म के ब्राह्मणों को भी ब्राह्मणत्व प्राप्त है । यदि गुणकर्म स्वभाव और जन्म सब मिला कर ब्राह्मणादि

के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरणरहित सम्बन्ध होता है इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा के संयोग से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु जो व्यपदेश्य अर्थात् संज्ञासंज्ञी के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है वह ज्ञान न हो । जैसा किसी ने किसी से कहा कि "तू जल ले आ" वह ला के उस के पास धर के बोला कि "यह जल है" परन्तु वहां "जल" इन दो अक्षरों की संज्ञा लाने वा मँगानेवाला नहीं देख सकता है । किन्तु जिस पदार्थ का नाम जल है वही प्रत्यक्ष होता है और जो शब्द से ज्ञान उत्पन्न होता है वह शब्द प्रमाण का विषय है । "अव्यभिचारि" जैसे किसी ने रात्रि में खम्भे को देख के पुरुष का निश्चय कर लिया जब दिन में उसको देखा तो रात्रि का पुरुषज्ञान नष्ट होकर स्तम्भज्ञान रहा ऐसे विनाशीज्ञान का नाम व्यभिचारी है सो प्रत्यक्ष नहीं कहाता। "व्यवसायात्मक" किसी ने दूर से नदी की बालू को देख के कहा कि "वहां वस्त्र सूख रहे हैं जल है वा और कुछ है" "वह देवदत्त खड़ा है वा यज्ञदत्त" जब तक एक निश्चय न हो तब तक वह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है किन्तु जो अव्यपदेश्य, अव्यभिचारि और निश्चयात्मक ज्ञान है उसी को प्रत्यक्ष कहते हैं।

दूसरा अनुमान :—

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतो दृष्टञ्च ॥

न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० ५ ॥

जो प्रत्यक्षपूर्वक अर्थात् जिसका कोई एक देश वा सम्पूर्ण पदार्थ किसी स्थान वा काल में प्रत्यक्ष हुआ हो उसका दूर देश से सहचारी एक देश के प्रत्यक्ष होने से अदृष्ट अवयवी का ज्ञान होने को अनुमान कहते हैं। जैसे पुत्र को देख के पिता, पर्वतादि में धूम को देख के अग्नि, जगत् में सुख दुःख देख के पूर्व जन्म का ज्ञान होता है। वह अनुमान तीन प्रकार का है। एक "पूर्ववत्" जैसे बादलों को देख के वर्षा, विवाह को देख के सन्तानोत्पत्ति, पढ़ते हुए विद्यार्थियों को देख के विद्या होने का निश्चय होता है, इत्यादि जहां जहां कारण को देख के कार्य का ज्ञान हो वह "पूर्ववत्"। दूसरा "शेषवत्" अर्थात् जहां कार्य को देख के कारण का ज्ञान हो जैसे नदी के प्रवाह की बढ़ती देख के ऊपर हुई वर्षा का, पुत्र को देख के पिता का, सृष्टि को देख के अनादि कारण का तथा कर्ता ईश्वर का और पाप पुण्य के आच-

रण देख के सुख दुख का ज्ञान होताहै इसी को "शेषवत्" कहते हैं। तीसरा "सामान्यतोदृष्ट" जो कोई किसी का कार्य कारण न हो परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक दूसरे के साथ हो जैसे कोई भी विना चले दूसरे स्थान को नहीं जा सकता वैसे ही दूसरों का भी स्थानान्तर में जाना विना गमन के कभी नहीं हो सकता। अनुमान शब्द का अर्थ यही है कि "अनु अर्थात् प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम्" जो प्रत्यक्ष के पश्चात् उत्पन्न हो जैसे धूम के प्रत्यक्ष देखे विना अदृष्ट अग्नि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

तीसरा उपमान :—

प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम् ॥

न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० ६ ॥

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान की सिद्धि करने का साधन हो उसको उपमान कहते हैं। "उपमीयते येन तदुपमानम्" जैसे किसी ने किसी भृत्य से कहा कि "तू विष्णुमित्र को बुला ला" "वह बोला कि मैंने उसको कभी नहीं देखा" उसके स्वामी ने कहा कि "जैसा यह देवदत्त है वैसा ही वह विष्णुमित्र है" वा जैसी यह गाय है वैसी ही गवय अर्थात् नीलगाय होती है, जब वह वहां गया और देवदत्त के सदृश उसको देख निश्चय कर लिया कि यही विष्णुमित्र है उसको ले आया। अथवा किसी जंगल में जिस पशु को गाय के तुल्य देखा उसको निश्चय कर लिया कि इसी का नाम गवय है॥

चौथा शब्द प्रमाण :—

आप्तोपदेशः शब्दः ॥ न्या० । अ० १ । आ० १ । सू० ७ ॥

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जानता हो और जिससे सुख पाया हो उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो अर्थात् जो जितने पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होताहै। जो ऐसे पुरुष और पूर्ण आप्त परमेश्वर के उपदेश वेद हैं उन्हीं को शब्दप्रमाण जानो ॥

पांचवां ऐतिह्य :—

न चतुष्ट्व मैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात् ॥

न्याय० । अ० २ । आ० २ । सू० १ ॥

जो इतिह अर्थात् इस प्रकार का था उसने इस प्रकार किया अर्थात् किसी के जीवनचरित्र का नाम ऐतिह्य है ।

छठा अर्थापत्ति :—

"अर्थादापद्यते सा अर्थापत्तिः" केनचिदुच्यते "सत्सु घनेषु वृष्टिः सति कारणे कार्य्यं भवतीति किमत्र प्रसज्यते, असत्सु घनेषु वृष्टिरसति कारणे च कार्यं न भवति" जैसे किसी ने किसी से कहा कि "बादल के होने से वर्षा और कारण के होने से कार्य उत्पन्न होता है" इससे बिना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि बिना बादल वर्षा और बिना कारण कार्य्य कभी नहीं हो सकता ॥

सातवां सम्भव :—

"सम्भवति यस्मिन् स सम्भवः" कोई कहे कि "माता पिता के बिना सन्तानोत्पत्ति हुई, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और वन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया" इत्यादि सब असम्भव हैं क्योंकि ये सब बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं । जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल हो वही सम्भव है ॥

आठवां अभाव :—

"न भवन्ति यस्मिन् सोऽभावः" जैसे किसी ने किसी से कहा कि "हाथी ले आ" वह वहां हाथी का अभाव देखकर जहां हाथी था वहां से ले आया । ये आठ प्रमाण । इनमें से जो शब्द में ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति सम्भव अभाव की गणना करें तो चार प्रमाण रह जाते हैं । इन पांच प्रकार की परीक्षाओं से मनुष्य सत्यासत्य का निश्चय कर सकता है अन्यथा नहीं ॥

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ॥ वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ४ ॥

जब मनुष्य धर्म के यथायोग्य अनुष्ठान करने से पवित्र होकर "साधर्म्य" अर्थात् जो तुल्य धर्म हैं जैसा पृथिवी जड़ और जल भी जड़ "वैधर्म्य" अर्थात् पृथिवी कठोर और जल कोमल इसी प्रकार से द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थों के तत्वज्ञान अर्थात् स्वरूपज्ञान को प्राप्त होता तब उससे "निःश्रेयसम्" मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥
वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ५ ॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव द्रव्य हैं ।

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥
वै० । अ० १ । आ० १ । सू० १५ ॥

"क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्ते यस्मिंस्तत् क्रियागुणवत्" जिसमें क्रियागुण और केवल गुण रहें उसको द्रव्य कहते हैं । उनमें से पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य क्रिया और गुणवाले हैं । तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन क्रियारहित गुणवाले हैं (समवायि) "समवेतुं शीलं यस्य तत् समवायि, प्राग्वृत्तित्वं कारणं समवायि च तत्कारणं च समवायिकारणम्" "लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्" जो मिलने के स्वभावयुक्त कार्य से कारण पूर्वकालस्थ हो उसी को द्रव्य कहते हैं जिससे लक्ष्य जाना जाय जैसा आंख से रूप जाना जाता है उसको लक्षण कहते हैं ॥

रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी ॥
वै० । अ० २ । आ० १ । सू० १ ॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्शवाली पृथिवी है । उसमें रूप, रस और स्पर्श अग्नि जल और वायु के योग से हैं ॥

व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः ॥
वै० । अ० २ । आ० २ । सू० २ ॥

पृथिवी में गन्ध गुण स्वाभाविक है । वैसे ही जल में रस, अग्नि में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द स्वाभाविक है ॥

रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः ॥
वै० । अ० २ । आ० १ । सू० २ ॥

रूप, रस और स्पर्शवान् द्रवीभूत और कोमल जल कहाता है। परन्तु इनमें जल का रस स्वाभाविक गुण तथा रूप स्पर्श अग्नि और वायु के योग से हैं ॥

अप्सु शीतता ॥ वै० । अ० २ । आ० २ । सू० ५ ॥

और जल में शीतलत्व गुण भी स्वाभाविक है ॥

तेजो रूपस्पर्शवत् ॥ वै० । अ० २ । आ० १ । सू० ३ ॥

जो रूप और स्पर्शवाला है वह तेज है। परन्तु इसमें रूप स्वाभाविक और स्पर्श वायु के योग से है ॥

स्पर्शवान् वायुः ॥ वै० । अ० २ । आ० १ । सू० ४ ॥

स्पर्श गुणवाला वायु है। परन्तु इसमें भी उष्णता शीतता तेज और जल के योग से रहते हैं ॥

त आकाशे न विद्यन्ते ॥ वै० । अ० २ । आ० १ । सू० ५ ॥

रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आकाश में नहीं हैं। किन्तु शब्द ही आकाश का गुण है।

निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् ॥ वै० । अ० २ । आ० १ । सू० २० ॥

जिसमें प्रवेश और निकलना होता है वह आकाश का लिङ्ग है ॥

कार्य्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः ॥
वै० । अ० २ । आ० १ । सू० २५ ॥

अन्य पृथिवी आदि कार्यों से प्रकट न होने से शब्द स्पर्श गुणवाले भूमि आदि का गुण नहीं है। किन्तु शब्द आकाश ही का गुण है ॥

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ॥
वै० । अ० २ । आ० २ । सू० ६ ॥

जिसमें अपर पर (युगपत्) एकवार (चिरम्) विलम्ब (क्षिप्रम्) शीघ्र इत्यादि प्रयोग होते हैं उसको काल कहते हैं ॥

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति ॥

वै० । अ० २ । आ० २ । सू० ९ ॥

जो नित्य पदार्थों में नहो और अनित्यों में हो इसलिये कारण में ही काल संज्ञाहै।

इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम् ॥

वै० । अ० २ । आ० २ । सू० १० ॥

यहां से यह पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर, नीचे जिसमें यह व्यवहार होता है उसी को दिशा कहते हैं ॥

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची ॥

वै० । अ० २ । आ० २ । सू० १४ ॥

जिस ओर प्रथम आदित्य का संयोग हुआ, है, होगा, उसको पूर्व दिशा कहते हैं । और जहां अस्त हो उसको पश्चिम कहते हैं पूर्वाभिमुख मनुष्य के दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर दिशा कहाती है ॥

एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि ॥

वै० । अ० २ । आ० २ । सू० १६ ॥

इससे पूर्व दक्षिण के बीच की दिशा को आग्नेयी, दक्षिण पश्चिम के बीच को नैऋति, पश्चिम उत्तर के बीच को वायवी और उत्तर पूर्व के बीच को ऐशानी दिशा कहते हैं ॥

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमिति ॥

न्याय० । अ० १ । सू० १० ॥

जिसमें (इच्छा) राग, (द्वेष) वैर, (प्रयत्न) पुरुषार्थ, सुख, दुःख, (ज्ञान) जानना गुण हों वह जीवात्मा कहाता है। वैशेषिक में इतना विशेष है।

प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः
सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्ना श्चात्मनो लिङ्गानि ॥

वै० । अ० ३ । आ० २ । सू० ४ ॥

(प्राण) बाहर से वायु को भीतर लेना (अपान) भीतर से वायु को निकालना

(निमेष) आंख को नीचे ढांकना (उन्मेष) आंख को ऊपर उठाना (जीवन) प्राण का धारण करना (मनः) मनन विचार अर्थात् ज्ञान (गति) यथेष्ठ गमन करना (इन्द्रिय) इन्द्रियों को विषयों में चलाना उनसे विषयों का गृहण करना (अन्तर्विकार) क्षुधा, तृषा, ज्वर, पीड़ा आदि विकारों का होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्मा के लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं।

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् ॥

न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० १६ ॥

जिससे एक काल में दो पदार्थों का गृहण ज्ञान नहीं होता उसको मन कहते हैं। यह द्रव्य का स्वरूप और लक्षण कहा अब गुणों को कहते हैं :—

रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्यापरिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः ॥

वै० १ । अ० १ । अ० १ । सू० ६ ॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द ये २४ गुण कहाते हैं।

द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ॥

वै० । अ० १ । आ० २ । सू० १६ ॥

गुण उसको कहते हैं कि जो द्रव्य के आश्रय रहे अन्य गुण का धारण न करे संयोग और विभाग में कारण न हो अनपेक्ष अर्थात् एक दूसरे की अपेक्षा न करे।

श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाऽभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः ॥

महाभाष्ये ॥

जिसकी श्रोत्रों से प्राप्ति, जो बुद्धि से गृहण करने योग्य और प्रयोग से प्रकाशित तथा आकाश जिसका देश है वह शब्द कहाता है नेत्र से जिसका गृहण हो वह रूप, जिह्वा से जिस मिष्टादि अनेक प्रकार का गृहण होता है वह रस, नासिका से जिसका गृहण होता वह गन्ध, त्वचा से जिसका गृहण होता वह स्पर्श, एक द्वि इत्यादि गणना जिससे होती है वह संख्या, जिससे तोल अर्थात् हलका

भारी विदित होता है वह परिमाण, एक दूसरे से अलग होना वह पृथक्त्व, एक दूसरे के साथ मिलना वह संयोग, एक दूसरे से मिले हुए के अनेक टुकड़े होना वह विभाग, इससे यह पर है वह पर, उससे यह उरे है वह अपर जिससे अच्छे बुरे का ज्ञान होता है वह बुद्धि, आनन्द का नाम सुख, क्लेश का नाम दुःख, इच्छा—राग, द्वेष—विरोध, (प्रयत्न) अनेक प्रकार का बल पुरुषार्थ, (गुरुत्व) भारीपन, (द्रवत्व) पिघल जाना, (स्नेह) प्रीति और चिकनापन, (संस्कार) दूसरे के योग से वासना का होना, (धर्म) न्यायाचरण और कठिनत्वादि, (अधर्म) अन्यायाचरण और कठिनता से विरुद्ध कोमलता ये चौबीस (२४) गुण हैं।

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि ॥
वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ७ ॥

"उत्क्षेपण" ऊपर को चेष्टा करना "अवक्षेपण" नीचे को चेष्टा करना "आकुञ्चन" सङ्कोच करना "प्रसारण" फैलाना "गमन" आना जाना घूमना आदि इनको कर्म कहते हैं। अब कर्म का लक्षण :—

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् ॥
वै० । अ० १ । आ० १ । सू० १७ ॥

"एकन्द्रव्यमाश्रय आधारो यस्य तदेकद्रव्यं न विद्यते गुणो यस्य यस्मिन् वा तदगुणं संयोगेषु विभागेषु चाऽपेक्षारहितं कारणं तत्कर्मलक्षणम्" "अथवा यत् क्रियते तत्कर्म, लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्, कर्मणो लक्षणं कर्मलक्षणम्" द्रव्य के आश्रित गुणों से रहित संयोग और विभाग होने में अपेक्षारहित कारण हो उसको कर्म्म कहतेहैं।

द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् ॥
वै० । अ० १ । आ० १ । सू० १८ ॥

जो कार्य द्रव्य गुण और कर्म का कारण द्रव्य है वह सामान्य द्रव्य है ॥

द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् ॥
वै० । अ० १ । आ० १ । सू० २३ ॥

जो द्रव्यों का कार्य द्रव्य है वह कार्यपन से सब कार्यों में सामान्य है ॥

द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेषाश्च ॥
वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ५ ॥

द्रव्यों में द्रव्यपन गुणों में गुणपन कर्मों में कर्मपन ये सब सामान्य और विशेष कहाते हैं क्योंकि द्रव्यों में द्रव्यत्व सामान्य और गुणत्व कर्मत्व से द्रव्यत्व विशेष है इसी प्रकार सर्वत्र जानना ॥

सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम् ॥
वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ३ ॥

सामान्य और विशेष बुद्धि की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं । जैसे—मनुष्य व्यक्तियों में मनुष्यत्व सामान्य और पशुत्वादि से विशेष तथा स्त्रीत्व और पुरुषत्व इनमें ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व शूद्रत्व भी विशेष हैं । ब्राह्मण व्यक्तियों में ब्राह्मणत्व सामान्य और क्षत्रियादि से विशेष हैं इसी प्रकार सर्वत्र जानो ॥

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः ॥
वै० । अ० ७ । आ० २ । सू० २६ ॥

कारण अर्थात् अवयवों में अवयवी कार्यों में क्रिया क्रियावान् गुण गुणी जाति व्यक्ति कार्य्य कारण अवयव अवयवी इनका नित्य सम्बन्ध होने से समवाय कहाता है और जो दूसरा द्रव्यों का परस्पर सम्बन्ध होता है वह संयोग अर्थात् अनित्य सम्बन्ध है ॥

द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम् ॥
वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ९ ॥

जो द्रव्य और गुण का समान जातीयक कार्य्य का आरम्भ होता है उसको साधर्म्य कहते हैं । जैसे पृथिवी में जड़त्व धर्म और घटादि कार्योत्पादकत्व स्वसदृश धर्म है वैसे ही जल में भी जड़त्व और हिम आदि स्वसदृश कार्य का आरम्भ पृथिवी के साथ जल का और जल के साथ पृथिवी का तुल्य धर्म है अर्थात् "द्रव्य गुणयोर्विजातीयारम्भकत्वं वैधर्म्यम्" यह विदित हुआ है कि जो द्रव्य और गुण का विरुद्ध धर्म और कार्य्य का आरम्भ है उसको वैधर्म्य कहते हैं जैसे पृथिवी में कठिनत्व शुष्कत्व और गन्धवत्व धर्म जल से विरुद्ध और जल का द्रवत्व कोमलता

और रस गुणयुक्तता पृथिवी से विरुद्ध है ॥

कारणभावात्कार्यभावः ॥ वै० । अ० ४ । आ० १ । सू० ३ ॥

कारण के होने ही से कार्य्य होता है ॥

न तु कार्याभावात्कारणाभावः ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० २ ॥

कार्य के अभाव से कारण का अभाव नहीं होता ॥

कारणाऽभावात्कार्याऽभावः ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० १ ॥

कारण के न होने से कार्य कभी नहीं होता ॥

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः ॥ वै० । अ० २ । आ० १ । सू० २४ ॥

जैसे कारण में गुण होते वैसे ही कार्य्य में होते हैं । परिमाण दो प्रकार का है :—

अणुमहदिति तस्मिन्विशेषभावाद्विशेषाभावाच्च ॥
वै० । अ० ७ । आ० १ । सू० ११ ॥

(अणु) सूक्ष्म (महत्) बड़ा जैसे त्रसरेणु लिक्षा से छोटा और द्व्यणुक से बड़ा है तथा पृथिवी से छोटे वृक्षों से बड़े हैं ॥

सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ७ ॥

जो द्रव्य गुण कर्मों में सत् शब्द अन्वित रहता है अर्थात् "सद् द्रव्यम्—सन् गुणः—सत्कर्म" सत् द्रव्य, सत् गुण, सत् कर्म अर्थात् वर्त्तमान कालवाची शब्द का अन्वय सब के साथ रहता है ॥

भावोनुवृत्तेरेव हेतुत्वात्सामान्यमेव ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ४ ॥

जो सब के साथ अनुवर्त्तमान होने से सत्तारूप भाव है सो महासामान्य कहाता है यह क्रम भावरूप द्रव्यों का है और जो अभाव है वह पांच प्रकार का होता है ॥

क्रियागुणव्यपदेशाभावात्प्रागसत् ॥ वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० १ ॥

क्रिया और गुण के विशेष निमित्त के प्राक् अर्थात् पूर्व (असत्) न था जैसे घट, वस्त्रादि उत्पत्ति के पूर्व नहीं थे इसका नाम प्रागभाव ॥ दूसरा :—

सदसत् ॥ वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० २ ॥

जो होके न रहे जैसे घट उत्पन्न होके नष्ट होजाय यह प्रध्वंसाभाव कहाता है ॥ तीसरा :—

सच्चासत् ॥ वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० ४ ॥

जो होवे और न होवे जैसे "अगौरश्वोऽनश्वो गौः" यह घोड़ा गाय नहीं और गाय घोड़ा नहीं अर्थात् घोड़े में गाय का और गाय में घोड़े का अभाव और गाय में गाय घोड़े में घोड़े का भाव है। यह अन्योन्याभाव कहाता है ॥ चौथा :—

यच्चान्यदसदतस्तदसत् ॥ वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० ५ ॥

जो पूर्वोक्त तीनों अभावों से भिन्न है उसको अत्यन्ताभाव कहते हैं। जैसे— "नरशृङ्ग" अर्थात् मनुष्य का सींग "खपुष्प" आकाश का फूल और "बन्ध्यापुत्र" बन्ध्या का पुत्र इत्यादि ॥ पांचवां :—

नास्ति घटो गेह इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः ॥
वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० १० ॥

घर में घड़ा नहीं अर्थात् अन्यत्र है घर के साथ घड़े का सम्बन्ध नहीं है, ये पांच प्रकार के अभाव कहाते हैं ॥

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या ॥ वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० १० ॥

इन्द्रियों और संस्कार के दोष से अविद्या उत्पन्न होती है ॥

तद्दुष्टज्ञानम् ॥ वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० ११ ॥

जो दुष्ट अर्थात् विपरीत ज्ञान है उसको अविद्या कहते हैं ॥

अदुष्टं विद्या ॥ वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० १२ ॥

जो अदुष्ट अर्थात् यथार्थ ज्ञान है उसको विद्या कहते हैं ॥

पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्या नित्यत्वादनित्याश्च ॥
वै० । अ० ७ । आ० १ । सू० २ ॥

एतेननित्येषु नित्यत्वमुक्तम् ॥ वै० । अ० ७ । आ० १ । सू० ३ ॥

जो कार्यरूप पृथिव्यादि पदार्थ और उनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, गुण हैं ये

सब द्रव्यों के अनित्य होने से अनित्य हैं और जो इससे कारणरूप पृथिव्यादि नित्य द्रव्यों में गन्धादि गुण हैं वे नित्य हैं।

सदकारणवन्नित्यम् ॥ वै० । अ० ४ । आ० १ । सू० १ ॥

जो विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो वह नित्य है अर्थात्:— "सत्कारणवदनित्यम्" जो कारणवाले कार्यरूप गुण हैं वे अनित्य कहाते हैं॥

अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि चेति लैङ्गिकम् ॥
वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० १ ॥

इसका यह कार्य वा कारण है इत्यादि समवायि, संयोगि, एकार्थसमवायि और विरोधि यह चार प्रकार का लैङ्गिक अर्थात् लिङ्गलिङ्गी के सम्बन्ध से ज्ञान होता है। "समवायि" जैसे आकाश परिमाणवाला है "संयोगि" जैसे शरीर त्वचावाला है इत्यादि का नित्य संयोग है "एकार्थसमवायि" एक अर्थ में दो का रहना जैसे कार्यरूप स्पर्श कार्य का लिङ्ग अर्थात् जनानेवाला है "विरोधि" जैसे हुई बृष्टि होनेवाली बृष्टि का विरोधी लिङ्ग है "व्याप्ति" :—

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः ॥
निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः ॥
आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः ॥
सांख्य० ॥ अ० ५ । सू० २९ । ३१ । ३२ ।

जो दोनों साध्य साधन अर्थात् सिद्ध करने योग्य और जिससे सिद्ध किया जाय उन दोनों अथवा एक, साधनमात्र का निश्चित धर्म का सहचार है उसी को व्याप्ति कहते हैं जैसे धूम और अग्नि का सहचार है॥ २९ ॥ तथा व्याप्य जो धूम उसकी निज शक्ति से उत्पन्न होता है अर्थात् जब देशान्तर में दूर धूम जाता है तब बिना अग्नियोग के भी धूम स्वयं रहता है। उसी का नाम व्याप्ति है अर्थात् अग्नि के छेदन, भेदन, सामर्थ्य से जलादि पदार्थ धूमरूप प्रकट होता है॥ ३१ ॥ जैसे महत्तत्त्वादि में प्रकृत्यादि की व्यापकता बुद्ध्यादि में व्याप्यता धर्म के सम्बन्ध का नाम व्याप्ति है। जैसे शक्ति आधेयरूप और शक्तिमान आधाररूप का सम्बन्ध है॥ ३२ ॥ इत्यादि शास्त्रों के प्रमाणादि से परीक्षा करके पढ़ें और पढ़ावें अन्यथा विद्यार्थियों को सत्य बोध कभी नहीं हो सकता जिस २ ग्रन्थ को पढ़ावें उस २

की पूर्वोक्त प्रकार से परीक्षा कर के जो सत्य ठहरे वह २ ग्रन्थ पढ़ावें जो २ इन परीक्षाओं से विरुद्ध हों उन २ ग्रन्थों को न पढ़ें न पढ़ावें क्योंकि—

लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः ॥

लक्षण जैसा कि "गन्धवती पृथिवी" जो पृथिवी है वह गन्धवाली है ऐसे लक्षण और प्रत्यक्षादि प्रमाण इनसे सब सत्याऽसत्य और पदार्थों का निर्णय हो जाता है इसके बिना कुछ भी नहीं होता ॥

तिमिरभास्कर—

नजाने स्वामीजी स्वप्नावस्था में कभी महम्मद साहब की तरह ईश्वरके पास होआयेथे जो उसने इन्हें सारी सृष्टिका क्रम उपदेश करादिया जिससे इन्हें यह बात निर्भ्रान्त मालूम होगई है कि ईश्वर की सृष्टिका विषय इतनाही है वेदमें तो ऐसा लिखाहैकि

एतावानस्यमहिमातोज्यायांश्चपूरुषः । पादोस्यवि-
श्वाभूतानित्रिपादस्यामृतंदिवि ॥ यजु० अ० ३१ मं० ३

ईश्वरकी विभूति इतनीही है यह नहीं किन्तु इससेभी अधिक है, यह जो कुछ विश्व जीवों सहित है यह उसकी महिमाका एक भाग है, और शेष तीन भागमें प्रकाशमान मोक्षस्वरूप आप है, और ब्राह्मणवाक्य भी कहते हैं (नाहं विदाथ नतं विदाथ) हे मैत्रेयी ! मैं कौनहूं तू नहीं जानती सो कौन है यह भी तू नहीं जानती, और गीता में भी लिखा है कि (बुद्धेः परतस्तु सः) कि वोह परमेश्वर बुद्धि से परे हैं जब वोह बुद्धि से परे हैं तौ उसके कार्य पूर्णता से कौन जान सकता है पर स्वामी जी तौ शरीर रहते भी सृष्टि का क्रम सब उससे पूछि आये क्योंजी ॥

तस्मादश्वाअजायन्तये केचोभयादतः ॥ गावोहजज्ञि
रेतस्मात्तस्माज्जाताअजावयः ॥ यजु० अ० ३१ मंत्र ८

उस परमेश्वर से अश्व और जो कोई दूसरे पशु ऊपर नीचे के दांतवाले हैं उत्पन्न हुए उससे गौ बैल उत्पन्न हुए उससे भेड़

बकरी उत्पन्न हुई ॥

अब स्वामीजी बतावें कि आप तौ उत्पत्ति स्त्री पुरुषके योगसे मानते हैं यह घोड़े बैल भेड़बकरी कैसे उत्पन्न हुए और भी सुनिये।

योवैब्रह्माणंविदधातिपूर्वम् । श्वे०

जिस परमेश्वर से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, जब आप स्त्रीपुरुषके योग से उत्पत्ति मानते हैं तौ आपने ईश्वरकीभी लुगाई बनाई होगी जिससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और घोड़े आदिके उत्पन्न करने को भी स्त्रियें होनी चाहिये फिर वे ईश्वरकी स्त्रियें कहांसे आईं यह प्रश्न होगा इससे यह आपका कपोलकल्पित सृष्टिक्रम सब भ्रष्ट हुआ जाता है धन्य है उसकी महिमाको जाननेकी कहां सामर्थ्य है वोह सब कुछ करता है उसे कोई जान नहीं सक्ता क्योंकि (परास्य शक्तिर्विविधैवश्रूयते) उसकी पराशक्ति अनेक प्रकारकी सुनी जाती है अबभी कभी २ ऐसे आश्चर्य प्रतीत होते हैं जो कभी पूर्व नहीं हुए सृष्टिक्रमतौ दूररहै स्वामीजी को अपनी खबर नहीं है यदि खबर होती तौ आप कहीं कुछ कहीं कुछ यह विरुद्धतासे भरा हुआ 'सत्यार्थप्रकाश' न लिखते, तथा पहला सत्यार्थप्रकाश भी भ्रष्ट होजानेसे आपको वोह अप्रमाण कर नया गढना न पड़ता, जोकि यहां आपने सृष्टिक्रम का बहानाकर टट्टीकी ओलटमें शिकार खेला है, जो बात समझ में नहीं आई लिख दिया कि सृष्टिक्रम के विरुद्ध है कहीं तो लिख दिया होता कि सृष्टि क्रम इतना है जो मालूम तौ होजाता फिर आपको वैसेही प्रमाण देते, वेदानुकूलताका वर्णन आगे लिखेंगे।

स्वामीजीका मत तौ उनकी बुद्धि है जो बात इनकी बुद्धि के अनुकूल हो वही सत्य जो बुद्धिके प्रतिकूल हो वोह सृष्टिक्रम के भी प्रतिकूल होगी आप वेदानुकूल और सृष्टिक्रमानुकूल क्यों नाम धरते हो यों कहो कि हमारी बुद्धि के अनुकूल होना चाहिये यदि किसी योगी से आपकी भेट होती वोह मुर्दाभी जिलाकर

दिखा देता और आपकी इस बुद्धिको भी सुधार देता, तथापि जिन ग्रंथोंका आपने सत्यार्थप्रकाश में प्रमाण लिखा है उसीसे हम यह सब बातें दिखाते हैं महाभारत के अश्वमेध पर्व के ६९ अध्यायमें देखो श्रीकृष्णने परीक्षितूको जो मृतक उत्पन्न हुआथा पुनर्जीवित किया, बाल्मीकिमें लिखा है कि रामचंद्र के राज्यमें एक शंबुक नाम शूद्र तप करता था इस कारण उस अनधिकारी के पाप से एक ब्राह्मण का पुत्र मरगया रामचंद्रने उस शूद्रको मार ब्राह्मणकुमार को जीवित किया और श्रीकृष्णने गोवर्द्धन उठाया, महावीरजी लक्ष्मणजी के अर्थ संजीवन बूंटीवाला पहाड़ उठालाये थे, समुद्रपर पुल बांधा हुआ आजतक मौजूदहै, आंखैं होय तो देख आओ यह लंकाकाण्डमें स्पष्ट है और (आप्तोपदेशः शब्दः) शब्द प्रमाण आप मानही चुके हैं सो बाल्मीकिजी पूर्ण आप्त थे उन्होंने ही नल नील को लिखा है कि इन्होंने पुल बांधा यह पत्थर समुद्र में नहीं तौ क्या आप के सत्यार्थप्रकाश पर तरे थे और सम्भव किसे कहते हैं जो कुछ भी हो जाय उसे सम्भव कहते हैं समर्थ पुरुषों से जो सम्भव है वही असमर्थों को असम्भव है अवतार विषय सप्त समुल्लास में लिखेंगे इससे यह भी विदित हो गया कि शूद्र को तप करने का अधिकार नहीं है पर जो कहीं आज दिन रेल तार न होता तौ स्वामीजी को यह भी असम्भव विदित होता।

भास्करप्रकाश—

निस्सन्देह परमात्मा अनन्त और उस की समस्त सृष्टि का क्रम मनुष्य को अविज्ञेय है परन्तु इस से आप सम्भव असम्भव की व्यवस्था का लोप न कीजिये। स्वामी जी ने उतनी ही बातों को असम्भव लिखा है जो रात्रि दिन एक क्रम से हमारे आप के देखने में आती हैं। परमात्मा की वह सृष्टि जहां तक हमारा ज्ञान नहीं पहुंचा चाहे कैसी ही हो परन्तु तथापि जानी हुई बातों में कोई क्रम अवश्य है। यदि क्रम न हो तो गेहूं बोने वाले कृषक को यह विश्वास न होना चाहिये कि इस के फल गेहूं ही होंगे कदाचित् चणे

आदि हो जावें और परमात्मा की अमैथुनी सृष्टि को आप मानुषी मैथुनी आदि सृष्टियों से मिलाकर दोष देते हैं यह बेसमझी है। सृष्टिक्रम सृष्टिके लिये है वैसे परमात्मा का क्रम परमात्मा के लिये है। जैसे सृष्टि के मनुष्यादि प्राणी अपने २ गुण कर्म स्वभाव सामर्थ्य नियम के विरुद्ध नहीं करते वैसे ही परमात्मा भी अपने पवित्र गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता। यदि करता है तौ क्या परमात्मा कभी पाप करता है? झूंठ बोलता है? मरता है? नहीं, नहीं। इस लिये परमात्मा का भी क्रम है और सृष्टि का भी क्रम है। रामायण महाभारत को स्वामी जी ने माना यह लिखना झूंठ है। देखो सत्यार्थप्र० पृ० ६८ पं० २९ में "मनुस्मृति वाल्मीकि रामायण महाभारत के उद्योगपर्वान्तर्गत विदुर नीति आदि अच्छे २ प्रकरण पढ़ावें" इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों के अच्छे २ प्रकरण पढ़ाये जावें बुरे २ नहीं महाभारत के आदि पर्व में लिखा है:—

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।

व्यासजी ने २४००० श्लोकों में भारत संहिता बनाई। वर्त्तमान समय में १००००० एक लक्ष से अधिक श्लोक महाभारत में हैं वे सब व्यासरचित नहीं हैं यही दशा रामायणादि की है। दूसरी बात यह है कि रामायण भारत भागवतादि में लिखी सृष्टिक्रम विरुद्ध असम्भव बातें तौ साध्य पक्ष में हैं जिन को अन्य प्रमाणों से सिद्ध करना आप का काम था। आप ने "साध्य" ही को प्रमाण में धर दिया। न्यायशास्त्र में "साध्यसम" हेतु भी हेत्वाभास=मिथ्या हेतु माना है तो आप तौ साक्षात् साध्य ही को हेतुरूप से प्रमाण कोटि में धरते हैं। असमर्थ मनुष्य को इतना समर्थ मानना कि अंगुली पर पर्वत उठाया यही तौ असम्भव है और उन मनुष्यों को ईश्वर मानना साध्य है, सिद्ध नहीं। इस लिये सृष्टिक्रम का न मानना न्यायशास्त्र के ८ प्रमाणों में ७ वें सम्भव प्रमाण को अपने हठसे न मानना है और सृष्टिक्रम ईश्वरक्रम सब ठीक है और उस के विरुद्ध बातों का मानना मूर्खता है॥

समीक्षा—स्वामी दयानन्दजी कहते हैं कि जो २ सृष्टि क्रम से अनुकूल है वह सत्य और जो सृष्टि क्रम से विरुद्ध है वह असत्य। इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी कहते हैं कि क्या परमेश्वर ने सृष्टिक्रम आपको बतला दिया क्या आप ईश्वर के पास पहुँच कर समस्त ही सृष्टिक्रम पढ़ आये? वेद तो यह बतलाता है कि यह जीव ईश्वर के कार्य और ईश्वर को तथा ईश्वर के महत्व को जान ही नहीं सकता। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने इस की पुष्टि में तीन प्रमाण दिये हैं प्रथम यजुर्वेद अ० ३१ "एतावानस्य" फिर ब्राह्मण "नाहं विदाथ नतं विदाथ" फिर गीता "बुद्धेः परतस्तु सः" इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि निस्सन्देह परमात्मा अनन्त और उसकी समस्त सृष्टि का क्रम मनुष्य को अविज्ञेय है परन्तु इससे आप सम्भव असम्भव की व्यवस्था का लोप न कीजिये। जब कि पं० तुलसीराम ईश्वर के सृष्टिक्रम को अविज्ञेय मानते हैं फिर उस अविज्ञेय का सम्भव असम्भव जानना भी लिखते हैं। जिस पदार्थ को ही नहीं जानते उसके सम्भव असम्भव का फैसला देना कहां तक सत्य और विचार कहला सकता है इसके ऊपर पाठकों को ध्यान देना चाहिये। पं० तुलसीराम लिखते हैं कि स्वामी जी ने उतनी ही बातों को असम्भव लिखा है जो रात्रि दिन एक क्रम से हमारे आप के देखने में आती हैं परमात्मा की वह सृष्टि जहां तक हमारा ज्ञान नहीं पहुंचा चाहे कैसी ही हो परन्तु तथापि जानी हुई बातों में कोई क्रम अवश्य है यदि क्रम न हो तो गेहूं बोने वाले कृषक को यह विश्वास न होना चाहिये कि इसके फल गेहूं ही होंगे कदाचित् चणे आदि हो जावें रात दिन के क्रम देखने से यह सिद्ध नहीं होता कि यही सत्य है और इसको छोड़ कर और सब असत्य है यदि आर्यसमाज इसी को सत्य मानती है तब तो वेद का ऋषियों के द्वारा प्रकट होना जो स्वामी दयानन्द ने माना है यह भी समाजियों को छोड़ना होगा क्योंकि आज कल न तो कोई ऋषि ही होता है और न उसके द्वारा वेद ही प्रकट होते हैं जो वर्तमान समय में नहीं होता ऐसे ज्ञान रूप वेद को ऋषियों के द्वारा मानना भी छोड़ना पड़ेगा क्यों कि समाज तो उसी क्रम को सत्य मानती है जो रात दिन देखने में आता है वर्तमान समय में दिन के बाद रात्रि और रात्रि के बाद दिन यही क्रम देखने में आता है इसके विरुद्ध होने वाली प्रलय भी समाज को नहीं माननी होगी क्योंकि वह वर्तमान क्रम के विरुद्ध है।

पं० तुलसीराम ने जो यह लिखा कि हम सृष्टिक्रम को जानें या न जानें

किन्तु कोई सृष्टि क्रम है अवश्य नहीं तो चने बो कर चने काटने का ज्ञान या गेहूं काटने का ज्ञान न होता। पं० तुलसीराम जी तो कहते हैं कि सृष्टिक्रम का हमको ज्ञान नहीं किन्तु कोई न कोई क्रम अवश्य है। पं० तुलसीराम सृष्टिक्रम के ज्ञान से इन्कार करते हैं और स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि सृष्टिक्रम के ज्ञान से मिलावो जो अनुकूल हो उसको सत्य कहो और जो प्रतिकूल हो उसको असत्य कहो जब कि पं० तुलसीराम मनुष्यों को सृष्टिक्रम के ज्ञान से ही इन्कार करते हैं फिर उसको बिना जाने किस प्रकार मिलावें और बिना मिले सत्यासत्य का निर्णय कैसे करें ? क्या कोई आर्यसमाजी दयानन्द के लेख की पुष्टि कर सकता है ? सृष्टि क्रम कौन से वेद में कहा या कि स्वामी दयानन्द का कहा है कि जिसमें जवान २ पुरुष और जवान २ स्त्रियां तथा ऐसे २ घोड़े घोड़ी गधे गधी निकल भागे।

यदि चना बोने से चना तथा गेहूं बोने से गेहूं यही सृष्टिक्रम माना जावे तो सृष्टि के आरम्भ में जब कि प्रथम ही प्रथम अन्न तथा औषधि का प्रादुर्भाव हुवा था क्या उस समय में भी चने ही बो कर चने या गेहूं बो कर गेहूं काटे गये थे क्या प्रलय में भी गेहूं चना आदि बीज के लिये ईश्वर रख छोड़ता है जब कि पांचों तत्वों का प्रलय हो जाता है फिर गेहूं चना आदि में तत्व बने भी रहते हैं ? सृष्टिक्रम में वेद बतलाता है कि पांचों तत्वों की रचना के पश्चात् ईश्वर पृथिवी में इस प्रकार की शक्ति देता है कि कहीं पर नीम और कहीं पर आम कहीं पर गेहूं और कहीं पर चना जैसी शक्ति जहां पर पहुंचेगी उसके अनुकूल ही वृक्ष औषधि अन्न आदि उत्पन्न होंगे यहां पर तो बिना ही बीज के अन्न औषधि आदि उत्पन्न हो जाते हैं। अब जब कि ऐसा है कि बिना बोये भी चने आदि उत्पन्न हो जाते हैं तो फिर चने बो कर चने काटना यह सृष्टि नियम कहां तक सत्य रहा ? यदि कोई समाजी यह कहे कि हम इस सृष्टिक्रम को नहीं मानते जो आंख से देखते हैं वही मानते हैं इस के ऊपर हम कह सकते हैं कि यदि सच ही मनुष्य समुदाय प्रत्यक्ष के सिवाय और कुछ नहीं मानता तब तो यह अपने पिता तथा जीव व ईश्वर को भी मानने से इन्कार कर देगा पिता से गर्भाधान और जीव ईश्वर कभी भी प्रत्यक्ष नहीं हुए।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसादजी ने "तस्माद्श्वा अजायन्त" इस यजुर्वेद का प्रमाण देकर स्टष्टि के क्रम को बतलाया तथा "योवै ब्रह्माणंविदधाति पूर्वम्" प्रमाण

देकर ईश्वर से ब्रह्मा का प्रकट होना और ब्रह्मा के द्वारा समस्त संसार का प्रकट होना बतलाया। साथ ही साथ यह भी बतलाया कि यदि स्त्री पुरुष के द्वारा ही सन्तानोत्पत्ति होती है तो फिर आर्यसमाज को उस परमात्मा की स्त्री भी माननी पड़ेगी जिसके द्वारा ब्रह्मा प्रकट हुआ है और स्वामी दयानन्दजी ने तो स्त्री पुरुष के द्वारा ही मनुष्य की उत्पत्ति होती है यही सृष्टिक्रम बतलाया है इसके विरुद्ध जो हो उसको असत्य जानों। स्वामी दयानन्द के इस लेख से यजुर्वेद और श्वेता श्वेततरो उपनिषद् आदि आदि उपनिषद और मनु आदि स्मृति जिन में ब्रह्मा के द्वारा संसार का प्रकट होना लिखा है सब असत्य हो गये इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि और परमात्मा की अमैथुनी सृष्टि को आप मानुषी मैथुनी आदि सृष्टियों से मिला कर दोष देते हैं यह बेसमझी है सृष्टिक्रम सृष्टि के लिए है वैसे परमात्मा का क्रम परमात्मा के लिए है। वास्तव में पं० ज्वालाप्रसाद को सृष्टिक्रम में ब्रह्मा आदि के उदाहरण नहीं देने चाहिये क्योंकि आर्यसमाज इनका कोई उत्तर नहीं दे सकती और इनको देखने से स्वामी दयानन्द के सृष्टिक्रम का और उसके द्वारा प्राप्त हुए सत्य का एकदम ढेर हो जाता है सारी पोल खुल जाती है तभी तो पं० तुलसीराम ने लिखा कि ब्रह्मादि का उदाहरण देना बेसमझी है। पं० तुलसीराम का यह उत्तर क्या आर्यसमाज को तोषदायक नहीं है इससे तो आर्यसमाज के पक्ष की पूरी पुष्टि हो गई समाज वेद शास्त्र मानती ही नहीं केवल आंख से देख कर मानती है ब्रह्मा की उत्पत्ति को देखकर दयानन्द का माना प्रत्यक्ष सृष्टिक्रम उड़ गया इससे विविध क्रम निकल आया स्वामी दयानन्द जिसको झूठ बतलाते हैं उसीको वेद ने सत्य कर दिया।

पं० तुलसीराम यह भी लिखते हैं कि सृष्टिक्रम सृष्टि के लिए है और परमात्मा का क्रम परमात्मा के लिए है इस लेख पर हंसी आये बिना नहीं रहती हम आजतक यही समझते थे कि सृष्टि क्रम परमात्मा का क्रम है परन्तु आज समाज की कृपा से हमको यह भी पता लग गया कि परमात्मा का क्रम और है और सृष्टि का क्रम और है। पं० तुलसीराम ब्रह्मा के द्वारा संसार का प्रकट होना इसको परमात्मा का क्रम मानते हैं यदि कोई पूछे कि यह परमात्मा का क्रम क्यों है तो इसके ऊपर उत्तर देंगे कि यह परमात्मा का बनाया है और पं० तुलसीराम चने से चने का उत्पन्न होना इसको परमात्माक्रम नहीं मानते किन्तु सृष्टिक्रम मानते हैं अब यदि पूंछे क्यों तो इसका उत्तर या तो यह दे सकते हैं कि ईश्वर की सृष्टि में से किसी आर्य

समाजी ने इस क्रम को बनाया है या उत्तर देने के समय चुप रह जाय और क्या हो सकता है पं० जी संसार में जितने भी सृष्टिक्रम हैं वे सब परमात्मा के ही बनाये हैं और सब के सब हमारे और तुम्हारे सृष्टि के जीवों के लिए हैं परमात्मा के लिए एक भी नहीं।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि जैसे सृष्टि के मनुष्यादि प्राणी अपने अपने गुण कर्म स्वभाव सामर्थ्य नियम के विरुद्ध नहीं करते वैसेही परमात्मा भी अपने पवित्र गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता यदि करता है तो क्या परमात्मा कभी पाप करता है, झूठ बोलता है, मारता है ? नहीं नहीं। इस लिए परमात्मा का भी क्रम है और सृष्टि का भी क्रम है यहां पर तो पं० तुलसीराम जी ईश्वर और सृष्टि इन दोनों का एक ही नियम बनाते हैं कि जैसे सृष्टि के मनुष्यादि प्राणी अपने अपने गुण कर्म स्वभाव सामर्थ्य नियम के विरुद्ध नहीं करते वैसे ही परमात्मा भी अपने पवित्र गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता। यहां पर तो पं० तुलसीराम ने ईश्वर को सामान्य जीवों के बराबर बना कर उसकी सर्वशक्तिमत्ता पर पानी फेर दिया भला अब वह पं० तुलसीराम के लेख में बंध कर क्या कर सकेगा उसको ऐसा कैद किया कि पूरे ही बन्धन में बांध दिया इससे तो कुछ भी प्रयोजन न निकला। ईश्वर को बन्धन में भी बांधा और स्वामी दयानन्द के सृष्टिक्रम की भी पुष्टि न हुई। पं० तुलसीराम लिखते हैं कि जैसे मनुष्य आदि प्राणी अपने गुण कर्म स्वभाव को नहीं बदलते इसके ऊपर हंसी आती है। यह कौन कहता है कि नहीं बदलते यह लेख तो आर्यसमाज के विरुद्ध है आर्यजमाज तो यह मानती है कि एक शूद्र अपने गुण कर्म स्वभाव बदल कर ब्राह्मण हो सकता है। इतना ही नहीं बल्कि एक अब्दुलगफूर मुसलमान अपने गुण कर्म स्वभाव को बदल कर समस्त आर्य समाजियों का गुरू बन कर समाज से महात्मा की डिगरी पा सकता है। जब ऐसा है तब फिर नहीं मालूम पं० तुलसीराम मनुष्य के गुण कर्म स्वभाव के बदलने का क्यों निषेध करते हैं। पं० तुलसीराम लिखते हैं कि यदि परमात्मा अपने गुण कर्म स्वभाव को बदलता होगा तो फिर कभी पाप करता होगा कभी झूठ बोलता होगा और कभी मर जाता होगा। जब तक आर्यसमाजी दो चार गाली न सुना लें तब तक इन का मन ही नहीं भरता। भारतवर्ष के ही नहीं किन्तु समस्त संसार के विद्वानों को तथा देवताओं को संसार के पितरों को पुस्तक निर्माताओं को तो स्वामी दयानन्दजी पेट भर गालियां दे चुके ईश्वर इनसे बाकी रह गया था इनकी खबर पं० तुलसीराम

जी ने लेली। ईश्वर को गाली देने से आर्यसमाज में निन्दा नहीं होती किन्तु गाली देने वाला सभ्य और विद्वान गिना जाता है। पं० तुलसीराम लिखते हैं कि परमात्मा मर भी जाता होगा। क्या पं० तुलसीराम संसारी जीवों का मरना मानतेहैं? जब जीव ही नहीं मरता तो फिर ईश्वर किस न्याय से मर जावेगा? क्या आर्यसमाज इसका कुछ उत्तर दे सकती है? क्या उत्तर देगी सर्वदा के लिये मौनी बाबा बन जायगी। और ईश्वर पाप भी करता होगा। हम पं० तुलसीराम से पूछते हैं कि संसार के बड़े बड़े विद्वानों को मारना पाप है या पुण्य? यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि पुण्य है तो फिर हम यह प्रश्न करेंगे कि पं० लेखराम को मारनेवाला मनुष्य आर्यसमाज की दृष्टि में उत्तम गति को गया या मोक्ष को? यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि विद्वानों का मारना तो महा पाप है तब फिर हम कहेंगे कि संसार के समस्त विद्वानों का मारने वाला क्या ईश्वर नहीं है यदि नहीं है तो उनको कौन मारता है? यदि कोई समाजी यह कहे कि उनके कर्म ही मार डालते हैं तब इसके ऊपर हम यह कहेंगे कि कर्म तो जड़ हैं वे स्वतः कुछ नहीं कर सकते बतलावो कौन मारता है? समाज को यहां पर वेद का बतलाया हुआ कर्म फल का देनेवाला ईश्वर मानना पड़ेगा। प्रत्येक पुस्तक से यह सिद्ध है कि कर्मों के फल का देनेवाला परमात्मा ही है अतएव सब को जन्म देनेवाला या सब को मारने वाला परमात्मा ही रहेगा। अब बड़े बड़े विद्वानों के मारने का पाप ईश्वर के ऊपर आगया फिर पं० तुलसीराम किस जोर पर कहते हैं कि परमात्मा पाप नहीं करता परमात्मा सब कर्म करता है अच्छे भी करता है बुरे भी करता है न अच्छे कर्मों का फल सुख से गर्ज रखता है और न बुरे कर्मों का फल दुःख से। ईश्वर कर्म करता हुआ भी कर्म बन्धन में नहीं आता। प्लेग हैजा घोर संग्राम वर्षा अकाल प्राणी का जीवन मरण सब ईश्वर ही तो कर रहा है नहीं मालूम पं० तुलसीराम को यह शंका क्यों पैदा हुई मालूम होता है कि पं० तुलसीराम यह मानते हैं कि ईश्वर कुछ भी नहीं करता और यह सब आप ही आप होता जाता है। पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि ईश्वर की महिमा को और उसके क्रम को जीव सर्वथा कभी भी नहीं जान सकता और स्वामी दयानन्दजी तो इस विषय में कुछ भी नहीं जानते इस विषय में तो क्या स्वामी दयानन्दजी तो यह भी नहीं जानते कि हमने सत्यार्थप्रकाश में पीछे क्या लिखा है और अब क्या लिखतेहैं यदि इतना जानते तो फिर सत्यार्थप्रकाश में कुछ का कुछ न लिखते और न पहिले के सत्यार्थप्रकाश को रद्द करना पड़ता और द्वितीयावृत्ति के पश्चात्तृतीयादि वृत्तियों में

सत्यार्थप्रकाश का कलेवर भी न बदलता पं० ज्वालाप्रसाद के इस लेख को पढ़ कर पं० तुलसीराम लेखनी भी न उठा सके बिना ही लेखनी उठाये बिना ही उत्तर दिये आर्य-समाज ते यह मान लिया कि पं० तुलसीराम ने दयानन्दतिमिरभास्कर का खंडन कर दिया । इसके ऊपर पाठकों को यह विचार करना चाहिये कि आर्य समाजी वास्तव में कभी अपने ग्रन्थ भी पढ़ते हैं या बिना ही ग्रन्थ देखे गप्पें हांका करते हैं ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि योगी मुर्दे को जिला सकता है स्वामी दयानन्द बतलावें कि यह उन के मन से उत्पन्न हुए सृष्टिक्रम में सम्भव है या असम्भव ? फिर जिन ग्रन्थों को स्वामी दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में प्रमाणिक लिखते हैं उन्हीं ग्रन्थों में आश्चर्यजनक घटनायें देखने में आती हैं । महाभारत के अश्वमेध पर्व अ० ६९ में श्रीकृष्ण ने उस परीक्षित को जीवित कर दिया जो मरा हुआ उत्पन्न हुआ था और बाल्मीकि रामायण में शंबुक शूद्र को मार कर प्रभू रामचन्द्र जी ने मरे हुए ब्राह्मण के पुत्र को जिला दिया, श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठा लिया, हनुमानजी संजीवनी वाला पहाड़ उठा लाये यह सब बातें स्वामी दयानन्द सृष्टिक्रम में सम्भव मानते हैं या असम्भव ? स्वामी दयानन्दजी "आप्तोप-देशः शब्दः" से शब्द प्रमाण मान चुके हैं हमारी समझ में तो यदि रेल तार न होते तो स्वामी जी की दृष्टि में यह भी असम्भव ही होते । इसके ऊपर पं० तुलसीराम जी लिखते हैं कि मनुस्मृति बाल्मीकि रामायण महाभारत के उद्योग पर्वान्तर्गत विदुर नीति आदि अच्छे २ प्रकरण को पढें पढ़ावें । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों के अच्छे २ प्रकरण पढ़ाये जावें और बुरे २ नहीं । हमको शोक के साथ लिखना पड़ता है कि आर्यसमाज धर्म का निर्णय नहीं करती किन्तु उस में छल करती है । जिन प्रकरणों को पं० तुलसीराम अच्छे समझते हैं वे अच्छे हैं इसमें समा-जियों के पास क्या सबूत है ? यदि कहो कि वे प्रकरण वेद से मिलते हैं क्यों कि वेद में उनका वर्णन है । प्रथम तो यदि वेद में उनका वर्णन है तो फिर वेद से ही उस प्रकरण को मानों महाभारतादि के प्रकरण क्यों लेते हो और यदि कोई समाजी कहे कि वेद में वे प्रकरण नहीं हैं यदि ऐसा है तो फिर तुमको अच्छे और बुरे का ज्ञान कैसे हुआ ? इसके ऊपर यदि ये यह कहें कि हमने अपने मन से सम्भव असम्भव की जांच कर ली यदि ऐसा है तो फिर आर्यसमाज वेद की मानने वाली कैसे कहला सकती है यह तो मन स्वीकृत सिद्धान्द की माननेवाली हो गई । फिर यह भी कोई मानना है कि एक ही ग्रन्थ में से कुछ को मान्य समझना और कुछ को

अमान्य ? यदि आर्यसमाज में ग्रन्थ इसी प्रकार माने जाते हैं तब तो आर्यसमाज को कुरान शरीफ भी प्रमाण है क्योंकि दो चार आयतें उस में भी ऐसी निकल आवेंगी जिनको समाज मान ले इसके अलावा स्वामी दयानन्दजी ने सोलेतूर के विज्ञापन में महाभारत को ईश्वर कृत माना है। ईश्वर के बनाये महाभारत में से कुछ प्रकरण को पं० तुलसीराम उत्तम समझते हैं और कुछ को असम्भव। ईश्वर अनादि और सर्वशक्तिमान और सर्वथा ज्ञानी कहलाता है तथापि आज तक उसको इतनी अक्ल न हुई कि सम्भव असम्भव की जांच कर सके यदि यह बुद्धि निकली तो स्वामी दयानन्द और पं० तुलसीराम आदि २ आर्य समाजियों में निकली। महाभारत के कर्त्ता ईश्वर को सम्भव असम्भव ज्ञानशून्य तथा मूर्ख मानना और अपने को ईश्वर से अधिक विद्वान् समझना यह पं० तुलसीराम की खुल्लमखुल्ला नास्तिकता है। जब दयानन्द महाभारत को ईश्वर कृत मानते हैं तब फिर पं० तुलसीराम को क्या अधिकार है कि उसमें सम्भव असम्भव की जांच करके किसी स्थल को मानें और किसी को न मानें।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि महाभारत के आदि पर्व में लिखा है कि "चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारत संहिताम्" व्यास जी ने २४००० श्लोकों में भारत संहिता बनाई वर्त्तमान समय में १०८००० एक लक्ष से अधिक श्लोक महाभारत में हैं वे सब व्यास रचित नहीं हैं यही दशा रामायणादि की है। इसके ऊपर हम इतना ही उत्तर काफी समझते हैं कि "दयानन्द कृतः सत्यार्थप्रकाशस्त्रिपृष्ठकः" अर्थात् दयानन्द का बनाया सत्यार्थप्रकाश तीन ही पृष्ट है बाकी का सब दयानन्द के नाम से समाज ने बना लिया यह सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में लिखा है। इसके ऊपर यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि प्रथम समुल्लास में दिखाओ तब फिर हम यह कहेंगे कि तुम "चतुर्विंशति साहस्रीं चक्रे भारत संहिताम्" यह पाठ महाभारत के आदि पर्व में दिखलाओ। दो तीन प्रेसों के महाभारत हमने देखे किन्तु यह पाठ किसी भी महाभारत में नहीं मिला मालूम होता है कि पं० तुलसीराम ने महाभारत के नाम से आधा श्लोक बनाकर लिख दिया क्योंकि झूठ लिखना झूठ बोलना यह आर्यसमाजियों का परम धर्म है और इसी शुभ कर्म से यह मोक्ष को जावेंगे। जब महाभारत में यह पाठ है ही नहीं और इसी कारण से पं० तुलसीराम इसके अध्याय का भी पता नहीं देते फिर हम कैसे मान लें कि पं० तुलसीराम ने सनातन धर्म को झूठा कलंक नहीं लगाया जब यह झूठा ही है फिर हम इस का उत्तर ही क्या दें।

वादितोषन्याय से यदि हम इस पाठ को सत्य मान लें ऐसी दशा में भी हमारी क्या क्षति है प्रथम श्रीमद्भागवत भी तो चार ही श्लोक में बनी थी सृष्टि के आरंभ में वेद बनने के समय वेदों के प्रथम तो केवल ओंकार का ही बनना प्रमाण है ओंकार के बाद बने हुए वेद आर्यसमाज ने क्यों माने ? आर्यसमाज इस पर एतराज़ क्यों नहीं करती कि पहिले तो ओंकार ही बना था हम तो उसी को मानेंगे उसके बाद में बने हुए वेदों को हम नहीं मानेंगे जिस प्रकार से बाद के बने हुए वेदों को आर्यसमाज मानती है उसी प्रकार बाद के बने हुए महाभारत को सनातन धर्म मानता है पं० तुलसीराम यह साबित करना चाहते हैं कि चौबीस हजार श्लोकों को छोड़ कर शेष महाभारत पोपों ने बनाया। पं० तुलसीराम महाभारत के कर्त्ता पोपों को बनाना चाहते हैं किन्तु स्वामी दयानन्द महाभारत को ईश्वर कृत मानते हैं स्वामी दयानन्द के लेख से पं० तुलसीराम का लेख अपने आपही कट जाता है या तुलसीराम के लेख से दयानन्द का लेख कट जाता है अब हम देखना चाहते हैं कि इस गुरु चेला के महाभारत में प्रतिनिधि विजय की पगड़ी किस के सिरपर रखती है।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी गोबर्धन उठाना परीक्षित आदि का जीवित होना इस के लिये कहते हैं कि यह तो साध्य पक्ष है अर्थात् सनातन धर्म को यह सिद्ध करना होगा कि वास्तव में यह सब बातें सही हैं। पं० तुलसीराम जी आज इस बात को भूल गये कि स्वामी दयानन्द जी आप्त के उपदेश शब्द को प्रमाण मानते हैं महाभारत और पुराणों के कर्त्ता वेद व्यास तथा बालमीकि रामायण के कर्त्ता महर्षि वालमीकि यह आप्त थे इसमें आर्यसमाज को कुछ भी संदेह नहीं है जब कि यह ग्रन्थ आप्तों के बनाये हुये हैं और आप्तों के ग्रन्थ स्वामी दयानन्द ने प्रमाण माने हैं तब फिर हमें नहीं मालूम पं० तुलसीराम इनको साध्य पक्ष कैसे बतलाते हैं मालूम होता है कि पं० तुलसीराम का वही वेद भगवान मन जिस से तमाम वस्तुयें आर्यसमाज टकरा कर झूठ सच समझती है आज वे ही मनीराम इन कथाओं को असम्भव समझ बैठे हैं इसी लिए तो हम बार बार लिखते हैं कि आर्यसमाज वेद को नहीं मानता बल्कि इस का वेद बाबू मनीराम साहब बहादुर है मनीराम जिसको सम्भव कहेगा आर्यसमाजी उसको सम्भव मानेंगे और मनीराम जिसको असम्भव मानेंगे आर्यसमाज भी उसको असम्भव कहेगा जिनको आर्यसमाज असम्भव समझता है वे लेख पुराणों में ही नहीं किन्तु वेदों में भी पाये

जाते हैं । नीचे देखिए—

तस्या वैमनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् ।
वैन्यो धोक्तां कृषिं च सस्यंचाधोक् ॥
सोद् क्रामत्सा सुसुरा नागच्छत्ताम सुरा उपाहूयन्त ।
एहीतितस्या विरोचनः प्राल्हादिवत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् ॥

अ० का ८ अ० ५ सू० १३

अथर्व वेद के इन दो मन्त्रों में पृथिवी का गोरूप धारण करना और बैन के पुत्र पृथुका उसको दुहना और वैवस्वत मनु और प्रहलाद के पुत्र विरोचन का बछड़ा बनना साफ तौर से लिखा है अब देखना चाहते हैं कि जिस वेद को आर्य समाजियों का मन असम्भव समझता है उस वेद को आर्य समाज प्रमाण मानती है या नहीं ।

इसके आगे स्वामीदयानन्दजी न्याय के सूत्र लिख कर पदार्थ आदि का ज्ञान बतलाते हैं प्रथम तो आर्यसमाज न्याय दर्शन को प्रमाण ही नहीं मानती न्याय शास्त्र इनका धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं अतएव दूसरे मजहब के ग्रन्थों का पढ़ाना नहीं मालूम सत्यार्थप्रकाश में क्यों लिख दिया हमें विश्वास है कि यदि स्वामी दयानन्द कुछ दिन और जीते तो वे सत्यार्थप्रकाश में बाइबिल की कुछ आयतें पढ़ाने के लिए अवश्य लिखते दूसरे पदार्थों का बताना या पढ़ाना यह धर्म से ताल्लुक नहीं रखता कल को कोई आर्यसमाजी सत्यार्थप्रकाश में बीजगणित या रेखागणित लिख दे उसके ऊपर हमको कुछ भी प्रयोजन नहीं हमारा मतलब तो यह है कि स्वामी दयानन्द ने जो कुछ भी धर्म के विषय में लिखा है वह वेद शास्त्र के विरुद्ध है और धर्म को छोड़ कर अन्य जो कुछ लिखे उसके ऊपर आर्यसमाजी विचार करेंगे ।

पठन पाठन विधि

सत्यार्थप्रकाश—

अब पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं–प्रथम पाणिनिमुनिकृत शिक्षा जो कि सूत्ररूप है उसकी रीति अर्थात् इस अक्षर का यह स्थान यह प्रयत्न यह करण है जैसे "प" इसका ओष्ठ स्थान, स्पृष्ट प्रयत्न और प्राण तथा जीभ की क्रिया करनी करण कहाता है इसी प्रकार यथायोग्य सब अक्षरों का उच्चारण माता पिता आचार्य सिखलावें। तदनन्तर व्याकरण अर्थात् प्रथम अष्टाध्यायी के सूत्रों का पाठ जैसे "वृद्धिरादैच्" फिर पदच्छेद "वृद्धिः, आत्, ऐच् वा आदैच्" फिर समास "आच्च ऐच्च आदैच्" और अर्थ जैसे "आदैचां वृद्धिसंज्ञा क्रियते" अर्थात् आ, ऐ, औ की वृद्धि संज्ञा कीजाती है "तः परो यस्मात्स तपरस्तादपि परस्तपरः" तकार जिससे परे और जो तकार से भी परे हो वह तपर कहाता है इससे क्या सिद्ध हुआ जो आकार से परे त् और त् से परे ऐच् दोनों तपर हैं तपर का प्रयोजन यह है कि ह्रस्व और प्लुत की वृद्धि संज्ञा न हुई। उदाहरण (भागः) यहां "भज" धातु से "घञ्" प्रत्यय के परे "घ, ञ्" की इत्संज्ञा होकर लोप होगया पश्चात् "भज् अ" यहां जकार के पूर्व भकारोत्तर अकार को वृद्धिसंज्ञक आकार होगया है। तो भाज् पुनः "ज्" को ग् हो अकार के साथ मिलके "भागः" ऐसा प्रयोग हुआ "अध्यायः" यहां अधिपूर्वक "इङ्" धातु के ह्रस्व इ के स्थान में "घञ्" प्रत्यय के परे "ऐ" वृद्धि और उसको आय् हो मिल के "अध्यायः" "नायकः" यहां "नीञ्" धातु के दीर्घ ईकार के स्थान में "ण्वुल्" प्रत्यय के परे "ऐ" वृद्धि और उसको आय् होकर मिल के "नायकः" और "स्तावकः" यहां "स्तु" धातु से "ण्वुल" प्रत्यय होकर ह्रस्व उकार के स्थान में औ वृद्धि आव् आदेश होकर अकार में मिल गया तो "स्तावकः" (कृञ्) धातु से आगे "ण्वुल्" प्रत्यय ल् की इत्संज्ञा होके लोप "वु" के स्थान में अक आदेश और ऋकार के स्थान में "आर्" वृद्धि होकर "कारकः" सिद्ध हुआ। जो २ सूत्र आगे पीछे के प्रयोग में लगें उनका कार्य सब बतलाता जाय और स्लेट अथवा लकड़ी के पट्टे पर दिखला २ के कच्चा रूप धर के जैसे "भज्+घञ्+सु" इस प्रकार धर के प्रथम घकार का फिर ञ् का लोप होकर "भज्+अ+सु" ऐसा रहा फिर अ को आकार

बृद्धि और ज् के स्थान में "ग्" होने से "भाग्+अ+सु" पुनः अकार में मिल जाने से "भाग+सु" रहा अब उकार की इत्संज्ञा "स्" के स्थान में "रु" होकर पुनः उकार की इत्संज्ञा लोप होजाने पश्चात् "भागर्" ऐसा रहा अब रेफ के स्थान में (ः) विसर्जनीय होकर "भागः" यह रूप सिद्ध हुआ। जिस २ सूत्र से जो २ कार्य होता है उस २ को पढ़ पढ़ा के और लिखवा कर कार्य्य कराता जाय इस प्रकार पढ़ने पढ़ाने से बहुत शीघ्र दृढ़ बोध होता है। एक बार इसी प्रकार अष्टाध्यायी पढ़ा के धातुपाठ अर्थसहित और दश लकारों के रूप तथा प्रक्रिया सहित सूत्रों के उत्सर्ग अर्थात् सामान्य सूत्र जैसे "कर्मण्यण्" कर्म उपपद लगा हो तो धातुमात्र से अण् प्रत्यय हो जैसे "कुम्भकारः" पश्चात् अपवाद सूत्र जैसे "आतोऽनुपसर्गे कः" उपसर्गभिन्न कर्म उपपद लगा हो तो आकारान्त धातु से "क" प्रत्यय होवे अर्थात् जो बहुव्यापक जैसा कि कर्मोपपद लगा हो तो सब धातुओं से "अण्" प्राप्त होता है उससे विशेष अर्थात् अल्प विषय उसी पूर्व सूत्र के विषय में से आकारान्त धातु को "क" प्रत्यय ने गृहण कर लिया जैसे उत्सर्ग के विषय में अपवाद सूत्र की प्रवृत्ति होती है वैसे अपवाद सूत्र के विषय में उत्सर्ग सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे चक्रवर्त्ती राजा के राज्य में माण्डलिक और भूमिवालों की प्रवृत्ति होती है वैसे माण्डलिक राजादि के राज्य में चक्रवर्ती की प्रवृत्ति नहीं होती इसी प्रकार पाणिनिमहर्षि ने सहस्र श्लोकों के बीच में अखिल शब्द अर्थ और सम्बन्धों की विद्या प्रतिपादित करदी है। धातुपाठ के पश्चात् उणादिगण के पढ़ाने में सर्व सुबन्त का विषय अच्छे प्रकार पढ़ के पुनः दूसरी वार शङ्का, समाधान, वार्त्तिक, कारिका, परिभाषा की घटनापूर्वक, अष्टाध्यायी की द्वितीयानुवृत्ति पढ़ावे। तदनन्तर महाभाष्य पढ़ावे अर्थात् जो बुद्धिमान् पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृद्धि के चाहनेवाले नित्य पढ़ें पढ़ावें तो डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़ के तीन वर्ष में पूर्ण वैयाकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दों का व्याकरण से बोध कर पुनः अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़ पढ़ा सकते हैं किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरण में होता है वैसा श्रम अन्य शास्त्रों में करना नहीं पड़ता और जितना बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों में होता है उतना बोध कुगून्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमादि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता क्योंकि जो महाशय महर्षि लोगों ने

सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्योंकर हो सकता है महर्षि लोगों का आशय, जहां तक होसके वहांतक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहांतक बने वहांतक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़ के अल्प लाभ उठा सकें जैसे पहाड़ का खोदना कौड़ी का लाभ होना। और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाना। व्याकरण को पढ़ के यास्कमुनिकृत निघण्टु और निरुक्त छः वा आठ महीने में सार्थक पढ़ें और पढ़ावें। अन्य नास्तिककृत अमरकोशादि में अनेक बर्ष व्यर्थ न खोवें तदनन्तर पिङ्गलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ जिससे वैदिक लौकिक छन्दों का परिज्ञान नवीन रचना और श्लोक बनाने की रीति भी यथावत् सीखें इस ग्रन्थ और श्लोकों की रचना तथा प्रस्तार को चार महीने में सीख पढ़ पढ़ा सकते हैं। और बृत्तरत्नाकर आदि अल्पबुद्धिप्रकल्पित ग्रन्थों में अनेक बर्ष न खोवें। तत्पश्चात् मनुस्मृति बाल्मीकीयरामायण और महाभारत के उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति आदि अच्छे अच्छे प्रकरण जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हों और उत्तमता सभ्यता प्राप्त हो वैसे को काव्य रीति से अर्थात् पदच्छेद, पदार्थोक्ति, अन्वय, विशेष्य विशेषण और भावार्थ को अध्यापक लोग जनावें और विद्यार्थी लोग जानते जायें इनको बर्ष के भीतर पढ़लें तदनन्तर पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त अर्थात् जहां तक बन सके वहां तक ऋषिकृत व्याख्यासहित अथवा उत्तम विद्वानों की सरलव्याख्यायुक्त छः शास्त्रों को पढ़ें पढ़ावें परन्तु वेदान्त सूत्रों के पढ़ने के पूर्व ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक इन दश उपनिषदों को पढ़ के छः शास्त्रों के भाष्य बृत्तिसहित सूत्रों को दो वर्ष के भीतर पढ़ावें और पढ़ लेवें पश्चात् छः वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मण अर्थात् ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मणों के सहित चारों वेदों के स्वर, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रिया सहित पढ़ना योग्य है। इसमें प्रमाण :—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्। योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥ निरुक्त १। १८॥

जो वेद को स्वर और पाठमात्र पढ़ के अर्थ नहीं जानता वह जैसा वृक्ष, डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य पशु धान्य आदि का भार उठाता है वैसे भार-वाह अर्थात् भार का उठानेवाला है और जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़ पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्व शृण्वन्न शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥ ऋ० ॥ मं० १०। सू० ७१। मं० ४॥

जो अविद्वान हैं वे सुनते हुए नहीं सुनते, देखते हुए नहीं देखते, बोलते हुए नहीं बोलते अर्थात् अविद्वान लोग इस विद्या वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध का जाननेवाला है उसके लिए विद्या जैसे सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण करती अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है वैसे विद्या विद्वान के लिए अपने स्वरूप का प्रकाश करती है अविद्वानों के लिए नहीं।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥

ऋ० ॥ मं० १। सू० १६४। मं० ३९॥

जिस व्यापक अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर में सब विद्वान और पृथिवी सूर्य आदि सब लोक स्थित हैं कि जिसमें सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है उस ब्रह्म को जो नहीं जानता वह ऋग्वेदादि से क्या कुछ सुख को प्राप्त हो सकता है? नहीं नहीं किन्तु जो वेदों को पढ़ के धर्मात्मा योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं वे सब परमेश्वर में स्थित होके मुक्तिरूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं इसलिए जो कुछ पढ़ना वा पढ़ाना हो वह अर्थज्ञान सहित चाहिए। इस प्रकार सब वेदों को पढ़ के आयुर्वेद अर्थात् जो चरक, सुश्रुत आदि ऋषि मुनिप्रणीत वैद्यक शास्त्र है उस को अर्थ, क्रिया, शस्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तु के गुण ज्ञान पूर्वक ४ (चार) वर्ष के भीतर पढ़ें पढ़ावें। तदनन्तर धनुर्वेद अर्थात् जो राजसम्बन्धी काम करना है इसके दो भेद एक निज राजपुरुष सम्बन्धी और दूसरा प्रजा सम्बन्धी होता है। राजकार्य में सब सेना के

अध्यक्ष शस्त्रास्त्रविद्या नाना प्रकार के व्यूहों का अभ्यास अर्थात् जिसको आज कल "कवायद" कहते हैं जो कि शत्रुओं से लड़ाई के समय में क्रिया करनी होती है उनको यथावत् सीखें और जो २ प्रजा के पालन और वृद्धि करने का प्रकार है उनको सीख के न्याय पूर्वक सब प्रजा को प्रसन्न रक्खें दुष्टों को यथायोग्य दण्ड श्रेष्ठों के पालन का प्रकार सब प्रकार सीखलें इस राजविद्या को दो २ वर्ष में सीख कर गान्धर्ववेद कि जिसको गानविद्या कहते हैं उसमें स्वर, राग, रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदि को यथावत् सीखें परन्तु मुख्य करके सामवेद का गान वादित्र वादनपूर्वक सीखें और नारदसंहिता आदि जो २ आर्ष ग्रन्थ हैं उनको पढ़ें परन्तु भड़ुवे वेश्या और विषयाशक्तिकारक वैरागियों के गर्दभ-शब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें। अर्थवेद कि जिसको शिल्पविद्या कहते हैं उसको पदार्थ गुण विज्ञान क्रिया कौशल नानाविध पदार्थों का निर्माण पृथिवी से लेके आकाश पर्यन्त की विद्या को यथावत् सीख के अर्थ अर्थात् जो ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला है उस विद्या को सीख के दो वर्ष में ज्योतिष् शास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या है इसको यथावत् सीखें तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया यन्त्रकला आदि को सीखें परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त्त, आदि के फल के विधायक ग्रन्थ हैं उनको झूठ समझ के कभी न पढ़ें और पढ़ावें ऐसा प्रयत्न पढ़ने और पढ़ानेवाले करें कि जिस से बीस वा इक्कीस बर्ष के भीतर समग्र विद्या उत्तम शिक्षा प्राप्त होके मनुष्य लोग कृतकृत्य होकर सदा आनन्द में रहैं जितनी विद्या इस रीति से बीस वा इक्कीस बर्षों में हो सकती है उतनी अन्य प्रकार से शतबर्ष में भी नहीं हो सकती।

ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिए पढ़ना चाहिए कि वे बड़े विद्वान सब शास्त्र-वित् और धर्मातमा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्प शास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपातसहित है उनके बनाए हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं।

पूर्वमीमांसा पर व्यासमुनिकृत व्याख्या, वैशेषिक पर गौतममुनिकृत, न्याय-सूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य, पतञ्जलिमुनिकृत सूत्र पर व्यासमुनिकृत भाष्य, कपिलमुनिकृत सांख्य सूत्र पर भागुरिमुनिकृत भाष्य, व्यासमुनिकृत वेदान्त सूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य अथवा बौद्धायनमुनिकृत भाष्य वृत्तिसहित पढ़ें पढ़ावें

इत्यादि सूत्रों को कल्प अङ्ग में भी गिनना चाहिए जैसे ऋग्यजु, साम और अथर्व चारों वेद ईश्वरकृत हैं वैसे ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ चारों ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष् छः वेदों के अङ्ग, मीमांसादि छः शास्त्र वेदों के उपाङ्ग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद ये चार वेदों के उपवेद इत्यादि सब ऋषि मुनि के किये ग्रन्थ हैं इनमें भी जो २ वेदविरुद्ध प्रतीत हो उस २ को छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतःप्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है वेद की विशेष व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में देख लीजिये और इस ग्रन्थ में भी आगे लिखेंगे।

तिमिरभास्कर—

यहां तौ स्वामीजी ने बड़ी भारी चाल खेली है जरा आप आपने ऊपर लिखे हुएको तौ विचार कीजिये जो आप सत्यार्थ प्रकाश पृ० ७१ पं० १ में लिखते हो कि (ऋषिप्रणीत ग्रंथों को इस लिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान् सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे) जब कि ऋषि प्रणीत ग्रंथों में भी आप लिखते हैं कि वेदानुकूल जो बात होगी वोह मानी जायगी, तौ उन ऋषियों की पूर्णविद्वत्ता कहां रही, और वे धर्मात्मा किस प्रकार होसक्ते हैं, जो वेदविरुद्ध कोई बात कहैं यह आपने पूर्ण विद्वान् ऋषियों की निन्दा करी है तौ आपको मनुजी के वाक्यानुसार हम यह श्लोक भेंट करते हैं॥

योवमन्येततेमूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः।
ससाधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिकोवेदनिन्दकः॥ मनु० २। १९

जो वेद और आप्त पुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान करता है उस वेद निन्दक नास्तिक को जाति पंक्ति और देश से बाहर निकाल देना चाहिये॥

अब कहिये आप इन्हीं महात्माओं के ग्रंथों में वेदविरुद्धता ठहराते हो तौ अब आपकी क्या दशा कीजाय, जब आपको वेदा-

नुकूलही प्रमाणहै तौ वृथा और ग्रंथों में भटकते हो क्योंकि आपको तौ वही बात प्रमाण होगी जो वेद में होगी, फिर औरों के मानने की आवश्यकता क्या है, पर ऐसा करने से आपका काम कैसे चल सकता है आप तौ अपने अनुकूल होने से सब कुछ मानते हैं भला यह तौ कहिये यह सत्यार्थप्रकाश की रचना कौन से वेदके अनुकूल है, आप तौ प्राचीन ऋषियों से भी अपने को अधिक मानते हो उन महात्माओं का लेख तौ वेदविरुद्ध होगया जो कि पूर्ण विद्वान् थे, और आपका लेख जो स्वार्थपरता और वेदविरुद्ध अर्थों से पूर्ण है सत्य है, धन्य है यह बड़ाईही तौ आपका गुण प्रगट करती है भला यह तौ बताओ कि (अहरहः सन्ध्यामुपासीत, स्वर्गकामो यजेत) अर्थात् रोज रोज संध्या करो स्वर्गकी इच्छा हो तौ यज्ञ करै यह विधिवाक्य यज्ञोपवीत मंत्रोंके ऋषि देवता और उनके प्रयोग, यह पंचयज्ञ आदि यह कौन से मंत्र भागके अनुकूल हैं, और कौन से मंत्र इनके विधायक हैं बताओ तौ सही जब मंत्र भागमें यह वार्ता नहीं तौ आपके मतानुसार यह विधिकर्मकाण्ड सब वेदविरुद्ध हुआ, और यह पठन पाठन शिक्षा कौन से मंत्र भागके अनूकूल है, और संन्यासी होकर चोगा बूट जूता पहरना, हुक्का पीना, कुरसी मेजकोही इस्तेमाल में लाना, विरागी होकर रुपया जमाकरना यह कौनसे मंत्रभाग के अनुकूल है महात्माजी जब आप वेदके अर्थ लिखने बैठते हो तौ आप उसके अर्थको ब्राह्मण निघण्टु महाभाष्य उपनिषद से सिद्ध करतेहो, कि इस शब्द का निघण्टु में यह अर्थ है, शतपथमें इसका आशय इस प्रकार कथन कियाहै, इस कारण इसका यह अर्थ हुआ, जब यह दशा है कि बिना ब्राह्मण निघण्टुके आप वेदका अर्थ सिद्ध नहीं कर सक्ते तौ वे ब्राह्मण निघण्टु वेदके अर्थ को सिद्ध करने से स्वतः सिद्ध और स्वतः प्रमाण क्यों नहीं क्यों कि मंत्र वर्णन में तौ यह लिखाही नहीं, कि इसका अर्थ इस प्रकार कर करना, यह विधि तौ ब्राह्मण निघण्टु आदिमें ही कथन

करी है, कि मंत्रका यह अर्थ है और यह इसके प्रयोगकी विधि है इससे इनका वेदवत् प्रमाण है इन ग्रंथोंमें अंशभी वेद विरुद्ध नहीं है और इसीकारण से (मंत्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्) मंत्र और ब्राह्मणका नाम दोनों मिलकर वेद कहा जाता है अब कहिये इन ग्रंथोंसे अर्थ करने में वेदानुकूलता आपकी कहां गई और जिस ग्रंथ में थोड़ा भी असत्य है आप उसे त्यागन करने कहते हैं जैसा कि स० प्र० पृ० ७१ पं० ३० में लिखा है (विषसंपृक्तान्नवत् त्याज्याः) जैसे अत्युत्तम अन्न विष से संयुक्त होनेसे छोड़ने योग्य होता है वैसेही असत्यतामिश्रित ग्रंथ त्याज्य हैं और पृ० ७२ पं० १२ (असत्यमिश्रं सत्यंदूरतस्त्याज्यमिति) असत्य से युक्त सत्य भी दूरसे छोड़ना चाहिये ऐसेही असत्य मिश्रित ग्रंथभी त्यागने, क्योंकि जो सत्य है सो वेदादि सत्यशास्त्रों का है मिथ्या उनके घरका है वेदके स्वीकार में सब सत्यका ग्रहण हो जाता है और जो इन मिथ्या ग्रंथों से सत्यका ग्रहण करना चाहै तौ असत्य भी उसके गलेमें मढ़जाता है यह पृ० ७२ पं० ६ से १३ पंक्तितक कथन है ॥

जो यह दशा है तौ ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें भी आपके कथनानुसार असत्य है तौ विषवत् होनेसे इनका भी त्यागन करना चाहिये, फिर इनको क्यों मानते हो यह आपका बड़ाभारी अन्याय है कि जिस थाली में खांय उसी में छेद करैं, यह आपकी बड़ी भारी भ्रान्ति है, कि ब्राह्मणादि ग्रंथों में असत्य और वेदविरुद्धता मानते हो यदि आप इनमें भी असत्य और वेदविरुद्ध बताते हो तौ फिर इन्हीं का प्रमाण देते आप क्यों नहीं लजाते, आप अपने पूर्व लेखको बड़ी जल्दी भूलगये, कि विष मिला अमृतभी विषही हो जाता है बस इसीने मारदिया आपका सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्यभूमिका असत्य होनेसे त्याज्य है ॥

जाल ग्रन्थ ।

सत्यार्थप्रकाश—

अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उनका परिगणन संक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो २ नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह २ जालग्रन्थ समझना चाहिये। व्याकरण में कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि। कोश में अमरकोशादि। छन्दोग्रन्थ में वृत्तरत्नाकरादि। शिक्षा में अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा। इत्यादि। ज्योतिष् में शीघ्रबोध मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि। काव्य में नायकाभेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि। मीमांसा में धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि। वैशेषिक में तर्कसंग्रहादि। न्याय में जागदीशी आदि। योग में हठप्रदीपिकादि। सांख्य में सांख्यतत्वकौमुद्यादि। वेदान्त में योगवासिष्ठ पञ्चदश्यादि। वैद्यक में शार्ङ्गधरादि। स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति, सब तंत्र ग्रंथ, सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषारामायण, रुक्मिणीमङ्गलादि और सर्वभाषा ग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं (प्रश्न) क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं? (उत्तर) थोड़ा सत्य तो है परन्तु इस के साथ बहुतसा असत्य भी है इस से "विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्याः" जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं॥

तिमिरभास्कर

यहां तौ कौमुदी की यह निन्दा और जब आप मरे तौ निजवस्तेमें वैयाकरणसर्वस्व और सिद्धान्तकौमुदी यह दो ग्रन्थ निकले, इन व्याकरणों के ग्रंथों में क्या मिथ्यापना है क्या इन ग्रंथों ने अष्टाध्यायी का खंडन किया है, कौमुदी आदिकों में तौ पाणिनिकृत अष्टाध्यायी के सूत्रों की वृत्ति की है यदि वृत्ति करनेही से वे जाल ग्रंथ आपने बताये तौ तुम्हारा रचित वेदाङ्गप्रकाश जो अष्टाध्यायी की भाषाटीका कौमुदीकी रीति पर है वोह भी मिथ्याही होना चाहिये कोशमें यदि निघण्टु जिसमें वैदिक शब्द हैं पढ़ै और अमरकोशादि न पढ़ै तौ लौकिक शब्दोंके अर्थ आपके

सत्यार्थप्रकाश या वेदभाष्यभूमिका से करै काव्यों से आपकी शत्रुता क्यों है, क्या यह भी आजीविकाकोही रचना कियेहैं यदि यह काव्य जिनसे व्युत्पत्ति होती है न पढ़ैं तौ क्या आपका बनाया संस्कृत वाक्यप्रबोध जिसमें सैकड़ों अशुद्धि भरी पड़ी हैं उसे पढ़ें, जो और भी बुद्धिभ्रष्ट होजाय, तर्कसंग्रह में कौनसी बात वैशेषिकके विरुद्ध है, और आपने भी तौ ५४ पृष्ठ से ६६ पृष्ठ तक तर्क संग्रहही लिखीहै, यह आपकी बड़ी भारी चालाकी है, कि कोई हमारा चेला सत्यार्थप्रकाश में से निकालकर अलग छपालेगा, तौ तर्कसंग्रह के स्थानमें यही काम आवैगा और हमारा नाम होगा, यह लिखा तौ होता, कि तर्कसंग्रह ने कौनसी आपकी रोजी छीनली और उसमें विरुद्ध कौनसी बातहै पर हठ को क्या करिये और जब मनुमें प्रक्षिप्त श्लोक हैं तो यह भी विषमिश्रित अन्नकी नाईं आपने त्यागन क्यों नहीं किया, यदि इसे भी छोड़ते तो काम कैसे चलता पुराणोंकी सिद्धि आगे चल कर करैंगे, तुलसीदासजीने क्या बात विरुद्धताकी लिखी है और जब सब भाषाके ग्रंथ कपोलकल्पित हैं तो आपका सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य तथा भूमिका आर्य्योद्देश्यरत्नमाला आदि जो कुछ आपकी भाषाकी गढ़ंत है यह भी कपोलकल्पित और त्याज्य है, भाषाकी अतिव्याप्ति होनेसे, जो आप अपनी बनाई भाषा माने तो औरोंके बनाये क्यों प्रमाण नहीं ? बीमारी होनेसे आप तो अंग्रेजी दवाई उड़ाना और शाङ्गधरको जाल ग्रंथ बताना, धन्यहै यदि जन्मपत्र मुहूर्त मिथ्या हैं तो संस्कार विधि में यज्ञोपवीत विवाह में पुष्यनक्षत्र शुक्लपक्ष उत्तरायण आदि यह मुहूर्त्त विधि क्यों लिखी हैं, अब सुश्रुतका भी प्रमाण सुनिये जिसके प्रमाण आप सत्यार्थप्रकाश में बहुधा लिखते हैं ।

उपनयनीयस्तुब्राह्मणः प्रशस्तेषुतिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रेषुप्रशस्तायां दिशि शुचौसमेदेशे चतुर्हस्तं चतुरस्रं स्थंडिलमुपलिप्य गोम-

येनदर्भैः संस्तीर्य पुष्पैर्लाजभक्तैरत्नैश्च देवताः पूजयित्वा विप्रान् भिषजश्चेत्यादि ॥ सुश्रुतसूत्रस्थान अ० २

अर्थ-दीक्षा योग्य तो ब्राह्मण है अच्छी तिथि करण मुहूर्त्त अच्छे (पुष्यहस्त श्रवण अश्विनी) नक्षत्र में उत्तर वा पूर्व श्रेष्ठ दिशा में पवित्र समान देश में चोकोन चार बिलायंद अथवा चार हाथकी वेदी रचे, उसको गोबर से लीप उस पर कुशा बिछावे पुष्पखीलैं रत्नादि से देवताओं का पूजन कर ब्राह्मण वैद्यों का पूजन करे (जब शिष्यहो) पुनः शकुन ॥

ततोदूतनिमित्तशकुनमंगलानुलोम्येनातुरगृहमभिगम्योपविश्यातुरमभिपश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच्च० । सु० सूत्र० अ० १०

अर्थ-जब दूतके साथ वैद्य जाय तो निमित्त-सुन्दरगन्धादि शकुन-पक्षियोंकी चेष्टादि मंगल स्वस्तिक पूर्ण घटादि इनको विचारे फिर रोगीके पास जाय देखे छुवे और पूछे ।

इन वाक्यों से स्पष्ट है कि सुश्रुत आदि महर्षि भी ज्योतिष शकुन ग्रह नक्षत्रादि अनुसार शुभाशुभ फल मानते थे, जब आपने इन ग्रंथोंको प्रमाण माना है तो मुहूर्त्तादि स्वयं सिद्धही हैं तिससे ग्रहादि फलका न मानना आपकी बड़ी भूल है वेदसे आगे लिखैंगे।

भास्करप्रकाश—

पूर्ण विद्वान ऋषि थे इसका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि वे वेदप्रणेता परमात्मा से अधिक थे किन्तु मनुष्यों में वे पूर्ण विद्वान थे। उनके वेदविरुद्ध बचन को (यदि उनके ग्रन्थों में उनका वा उनके नाम से अन्य किसी का कोई बचन वेद विरुद्ध जान पड़े) न मानना उनका अपमान नहीं किन्तु मान्य है क्योंकि मनु आदि ऋषि लिख गये हैं कि वेदबाह्य स्मृति माननीय नहीं । यथा :—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः । इत्यादि

और जो वेद शास्त्र का अपमान करे वह बाहर किया जावे। यह बचन

स्वामीजी पर नहीं किन्तु आप पर घटता है क्योंकि स्वामीजी तौ यह कहते हैं कि "वेदविरुद्धस्मृतिवाक्य नहीं मानना" इससे वे वेद का मान्य करते हैं और आप उनके विरुद्ध मानो यह कहते हैं कि वेदविरुद्ध भी स्मृतिवाक्य मानना। वेद का अपमान साक्षात् ही आप करते हैं और ऋषियों का भी अपमान इसलिये करते हैं कि ऋषि लोग वेदबाह्य स्मृतियों को नहीं मानते और आप मानते हैं। इस प्रकार आप, परमात्मा और ऋषि दोनों का अपमान करते हैं। कहिये अब आप को कहां भेजा जावे।

प्रथम तो हम यह नहीं कहते कि हम मन्त्रों में साक्षात् ही सब विधि दिखला सकते हैं किन्तु हमारा सिद्धान्त तौ जैमिनीय मीमांसा के :—

विरोधेत्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्। मी० अ० १ पा० ३ सू० ३।

के अनुसार यह है कि शब्दप्रमाण के साक्षात् विरुद्ध बातें न मानी जावें परन्तु विरोध भी न हो और साक्षात विधिवाक्य भी न मिले तो अनुमान करना चाहिए कि यह विधि किसी प्रकार किन्हीं ऋषियों ने वेद में साक्षात् वा ध्वनि आदि से देखा ही होगा। तथापि उद्गाता आदि का विधान नीचे लिखे मन्त्र में मूलरूप पाया जाता है :—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान, गायत्रं त्वो गायति शक्करीषु। ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां, यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः। ऋ० मं० १० अष्टक ८ अध्याय २ मं० अन्तिम।

अन्वितव्याख्यानम्—(त्वशब्दः सर्वनामसु पठित एकशब्दपर्य्यायः) एको होता (पुपुष्वान ऋचां पोषमास्ते) स्वकर्माधिकतस्मन यत्र तत्र पठिता ऋचो यथाविनियोगविन्यासेन पोषयति सार्थकाः करोति (त्वः शक्करीषु गायत्रं गायति) एक उद्गाता शक्कर्युपलक्षितासुच्छन्दोविशेषयुक्तास्वृक्षुगायत्रं गायत्रादिनामकं साम गायति (त्वो ब्रह्मा जातविद्यां वदति) एको ब्रह्मा, अपराधे जाते तत्प्रतीकाररूपां विद्यां वदद्दि (त्वो यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ) एकोऽध्वर्युर्यज्ञस्य मात्रामियत्ता विमिमीते विशिष्टतया परिच्छिनत्ति।

अर्थात् एक होता ऋचाओं को विनियोगानुसार संघटित करता है, एक

उद्गाता शक्वर्यादिच्छन्दोयुक्त गायत्र गान करता है, एक ब्रह्मा यज्ञ में कुछ अपराध वा भूल चूक होने पर उसका प्रतीकार करता है और एक अध्वर्यु यज्ञ के परिणाम वा इयत्ता को निर्धारित करता है।

यह बात नहीं है कि निरुक्तादि की सहायता बिना वेदार्थ हो ही न सके। जब तक निरुक्तादि गून्थ नहीं बने थे तब भी वेद और उन का अर्थ था ही किन्तु निरुक्तादि के प्रमाण इस लिये दिये जाते हैं कि जो वेद का अर्थ हम करते हैं उस प्रकार अन्य भी अमुक २ ऋषि लिखते हैं जिस से हमारे समझे अर्थ की पुष्टि होती जावे॥

सत्यार्थप्र० में भी यह तौ नहीं लिखा कि निरुक्तादि ऋषिप्रणीत गून्थों में वेदविरुद्ध है ही है किन्तु यह लिखा है कि यदि इन में वेदविरुद्ध हो तौ त्याज्य है नहीं तौ नहीं। अर्थात् ऋषि यद्यपि पूर्ण विद्वान् थे, उन के गून्थो में पुराणप्रणेताओं के से गप्प नहीं हैं, यावच्छक्य ऋषियों ने वेदानुकूल ही लिखा है परन्तु तौ भी निदान ऋषि लोग सर्वज्ञ परब्रह्म न थे अतः एव यदि कहीं किसी आर्ष गून्थ में वेदसंहिता के विरुद्ध कुछ बचन पाये जावें तौ वहां वेद माना जावे अन्य गून्थ नहीं। और यह बात कुछ स्वामीजी ने ही नहीं लिखी किन्तु जैमिनि जी भी मीमांसा शास्त्र में लिखगये हैं कि—

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्। १। ३। ३॥

विरोध हो तौ त्याज्य है और विरोध न हो तौ अनुमान करे कि अनुकूल है। यदि वेद से विरुद्ध कोई बात भी इतर गून्थों में न होती तौ जैमिनि जी ऐसा क्यों लिखते। आप स्वामी दयानन्द स० जी के लेख को न मानियेगा तौ जैमिनीय मीमांसा को तौ मानियेगा? फिर आप का यह लेख कैसे सत्य हो सक्ता है कि इन गून्थों में अंश भी वेदविरुद्ध नहीं॥

यह आपस्तम्ब की यज्ञपरिभाषा है। पारिभाषिक शब्दों का जो अर्थ गून्थकार नियत करते हैं वह सार्वत्रिक नहीं किन्तु उसी अधिकरण में माना जाता है। जैसे पाणिनि जी अष्टाध्यायी में "अदेङ्गुणः" १। १। १७ लिखते हैं कि अ, ए, ओ, ये तीन गुण हैं तौ व्याकरण ही में गुण शब्द से अ, ए, ओ का अर्थ लिया

जायगा अन्यत्र नहीं। यदि सांख्य शास्त्र में गुण शब्द आता है तौ सत्व, रजः, तमः का अर्थ लिया जाता है। और वैशेषिक में रूप रस गन्धादि २४ गुण माने गये हैं। सो वे २ अपने अपने २ ग्रन्थ में पारिभाषिक (इस्तलाही) शब्द हैं। यदि कोई व्याकरण में गुण से सत्व रजः तमः समझे तौ अज्ञान है, वा सांख्य में गुण शब्द से अ, ए, ओ समझे तौ मूर्खता है। इसी प्रकार यज्ञ के प्रकार वर्णन करते हुए आपस्तम्ब के सूत्रों में जहां वेद शब्द आता है वहां ही मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का गृहण होता है न कि सर्वत्र ॥

पूर्वा पर प्रसङ्ग देखिये सत्यार्थप्र० पृ० ३० में पुराणों के लिये बिषयुक्त अन्न का दृष्टान्त है वह ऋषि प्रणीत ग्रन्थों में नहीं घटता। पुराणों के कर्त्ताओं ने इर्ष्या द्वेष आदि से असत्य बातों का ढेर किया है वह अवश्य विषतुल्य है जिस के सङ्ग से पुराणों का सत्य विषय भी विषयुक्तअन्न तुल्य हो गया है परन्तु ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंमें जो कुछ कहीं भूल भी हो वह ईर्ष्या द्वेषादि से नहीं किन्तु अल्पज्ञता से है इस लिए उसे विष नहीं कह सक्ते किन्तु वह ऐसा है जैसे किसी औषध में कुछ मिट्टी कङ्कर आदि मिल गया हो तौ उसे छांट कर औषधमात्र गृहण करना योग्य होता है इसी प्रकार ऋषिप्रणीत औषध रूप ग्रन्थ में अल्पज्ञता से आये मिट्टी कङ्कर आदि निकाल कर औषधोपम आर्षग्रन्थ पढ़ने चाहियें।

पुराणों का विष—

सर्वन्तु समवेक्ष्येदन्निखिलं ज्ञानचक्षुषा।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै ॥

अर्थ—विद्वान् पुरुष को उचित है कि सब बातों को ज्ञान की आंख से देखकर श्रुति अर्थात् वेद के प्रमाण से पहले धर्म को स्वीकार करे ॥

तिलकों में विरोध—

पद्मपुराण में कहा है:—

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्य श्मशानसदृशं मुखम्।
अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥

(तथा) ब्राह्मणः कुलजोविद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि ।
वर्जयेत्तादृशं देवि मद्योच्छिष्टं घटं यथा ॥

अर्थ—जो लम्बा तिलक (वैष्णवी मार्ग का) धारण नहीं करता उस का मुंह श्मशान के तुल्य है अतएव देखने योग्य नहीं कदाचित् देख पड़े तो इस का प्रायश्चित्त करे अर्थात् तुरन्त सूर्य्य का दर्शन कर लेवे ॥ १ ॥ ब्राह्मणकुलोत्पन्न जो विद्वान् होकर भस्म धारण करे उस को शराब के जूठे बासन की नाईं त्याग देवे ॥

अब देखिये इस के विरुद्ध शिवपुराण में क्या लिखा है :—

विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्षधारणम् ।
नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥

अर्थ—विभूति (भस्म) जिस के माथे पर नहीं और अङ्ग में रुद्राक्ष नहीं पहिने। मुंह से शिव २ ऐसा न कहे वह चाण्डाल की नाईं त्याज्य है ॥

इसी प्रकार पृथिवीचन्द्रोदय में भी वैष्णवों को लताड़ दी है :—

यस्तु सन्तप्तशङ्खादिलिङ्गचिन्हधरोनरः ।
स सर्वयातनाभोगी चाण्डालोजन्मकोटिषु ॥

अर्थ—जो मनुष्य तपे हुए शङ्खादिकों के चिन्ह को धारण करता है वह सब नरकयातनाओं को भोगता है और कोटिजन्मपर्यन्त चाण्डाल होता है ॥

ऊपर के श्लोकों से स्पष्ट विदित होता है कि तिलक धारण करने के विषय में पुराणों में सर्वथा परस्पर विरोध है अर्थात् शैवसम्प्रदायी चक्राङ्कित सम्प्रदायियों के तिलक को बुरा कहते और वैष्णवसम्प्रदायी शैवादिसम्प्रदायियों के तिलक को भ्रष्ट बताते हैं इस से यह निश्चित हुवा कि यदि पुराणों को सत्य माना जाय तो सर्व प्रकार के तिलकधारी भ्रष्ट पतित और नरक के अधिकारी ठहरते हैं अतएव पुराण भ्रमजाल में फँसाने वाले हुए जैसा कि पद्मपुराण में स्पष्ट लिखा है :—

व्यामोहाय चराचरस्य जगतश्चैते पुराणागमास्तां ।
तामेव हि देवतां परत्रिकां जल्पन्ति कल्पावधि ।

सिद्धान्ते पुनरेकएव भगवान् विष्णुस्समस्तागमा ।
व्यापारेषु विवेचनं व्यतिकरं नित्येषु निश्चीयते ॥

अर्थात् जितने पुराण हैं सब मनुष्य को भ्रम में डालने वाले हैं उन में अनेक देव ठहराये गये हैं एक ईश्वर का निश्चय नहीं होता । केवल एक भगवान् विष्णु पूज्य हैं ॥

हे पौराणिक भक्तो ! जब सभी पुराण भ्रम में डालने वाले हैं जैसा कि ऊपर के बचन से स्पष्ट है तो तुम्हें भ्रम से बचाने वाला आर्यसमाज के अतिरिक्त और कौन है ॥

पुराणों में देवताओं की निन्दा–

भागवत में लिखा है :—

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः ।
पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥
मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥

अर्थ–जो शिव के भक्त हैं और उन की सेवा करते हैं सो पाखण्डी और सच्चे शास्त्र के वैरी हैं इस लिये जो मोक्ष की इच्छा रखते हैं सो भयानक वेष भूतों के स्वामी अर्थात् महादेव को छोड़ें और नारायण की शान्तकलाओं की पूजा करें ॥

अब पद्मपुराण में शिव की स्तुति में यह श्लोक कहे हैं :—

विष्णु दर्शनमात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते ।
शिवद्रोहान्न सन्देहो नरकं याति दारुणम् ॥
तस्माद्वै विष्णुनामापि न वक्तव्यं कदाचन ।

अर्थ यह है कि–जब लोग विष्णु का दर्शन करते हैं तब महादेव क्रुद्ध होता है और उस के क्रोध से मनुष्य महानरक में जाते हैं इस कारण विष्णु का नाम कभी न लेना चाहिये ॥

उसी पुराण में ये श्लोक हैं :—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः ।
समं सर्वैर्निरीक्षेत स पाषण्डी भवेत्सदा ॥
किमत्र बहुनोक्तेन ब्राह्मणा येऽप्यवैष्णवाः ।
न स्पृष्टव्या न दृष्टव्या न वक्तव्याः कदाचन ॥

अर्थ यह है--जो कहते हैं कि और देवता अर्थात् ब्रह्मा महादेव इत्यादि नारायण के समान हैं सो पाखण्डी हैं इन के विषय में हम और बात न बढ़ावेंगे क्योंकि जो ब्राह्मण विष्णु को नहीं मानते उन को कभी न छूना न देखना और न उन से बोलना चाहिये ॥

फिर पद्मपुराण में विष्णु की स्तुतियों में यह श्लोक है :—

येऽन्यंदेवं परत्वेन वदन्त्यज्ञानमोहिताः ।
नारायणाज्जगन्नाथात् ते वै पाषण्डिनो नराः ॥

अर्थ यह है कि—जो लोग किसी दूसरे देवता को नारायण से जो जगत् का स्वामी है बड़ा करके मानते हैं सो अज्ञानी हैं और लोग उन को पाखण्डी कहते हैं।

फिर इसी पुराण में परस्पर विरोध देखो जैसे :—

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ।
न तस्मात्परमङ्किञ्चित् पदं समधिगम्यते ॥

अर्थ यह है कि--महादेव को महान् ईश्वर जानना चाहिये और यह मत समझो कि उस से कोई बड़ा है। फिर इस से विरुद्ध देखो :—

वासुदेवं परित्यज्य येऽन्यं देवमुपासते ।
तृ पतोजान्हवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥

अर्थ यह है कि—विष्णु को छोड़ कर जो दूसरे देव को मानते हैं सो उस मूर्ख के समान हैं कि जो गङ्गा के तीर प्यासा बैठा कुआ खोदता है ॥

इसी प्रकार ब्रह्मा विष्णु श्रीकृष्ण पराशर शिव चन्द्रमा बृहस्पति इन्द्र आदि महानुभाव जो कि प्राचीन काल में अत्यन्त प्रसिद्ध विद्वान् राजा महाराजा हुए हैं

और सत्यशास्त्रों में उन का बड़ा सत्कार किया गया है और जिन्हें ऋषि मुनि देवताओं की पदवियां दी गई हैं, पुराण उनकी निन्दा करते और कोई ऐसा दूषण नहीं जो इन देवताओं पर नहीं लगाते हैं ॥

द० ति० भा० पृ० ४० पं० १९ से कौमुदी की निन्दा करते थे परन्तु उन के मरणानन्तर बस्ते में निकली, भला व्याकरण में क्या मिथ्यापना है जो कौमुदी आदि को त्याज्य लिखा। काव्य न पढ़ें तो व्युत्पत्ति कैसे हो इनमें क्या बुराई है। आप के "संस्कृतवाक्यप्रबोध" में सैकड़ों अशुद्धि हैं जिस से बुद्धि भ्रष्ट हो जावे। तर्कसंग्रह क्यों त्याज्य है, उस में वैशेषिक के विरुद्ध क्या बात है। मनु में भी प्रक्षिप्त है तो यह भी विषाक्त अन्नवत् क्यों न त्याग किया। जब भाषा के सब ग्रन्थ कपोलकल्पित हैं तो क्या सत्यार्थप्रकाशादि भाषा के ग्रन्थ कपोलकल्पित नहीं? यदि मुहूर्त मिथ्या हैं तो संस्कारविधि के पुण्य नक्षत्र उत्तरायणादि मिथ्या क्यों नहीं? और सुश्रुत सूत्रस्थान २ अध्याय में :—

उपनीयस्तु ब्राह्मणः प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्तेषु० इत्यादि ॥

ब्राह्मण का उपनयन अच्छे तिथि करण मुहूर्त और नक्षत्र में करे इत्यादि और शकुन भी सुश्रुत में लिखा है। सूत्रस्थान प्र० १०—

ततो दूतनिमित्तशकुनं मङ्गलानुलोम्येन। इत्यादि ॥

अर्थात् वैद्य चिकित्सा को जावे तो शकुनादि अच्छे पड़ें तब रोगी को देखे छुवे और पूंछे। इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर—व्याकरणादि में भी विषयों के ऋषिप्रणीत ग्रन्थों का पढ़ना इस लिये अच्छा है कि उस में अपने मुख्य विषय के वर्णन के साथ साथ उदाहरणादि के मिष से उस समय के धर्म आचार व्यवहार आदि की भी चर्चा कुछ न कुछ आती ही है जिस से विद्यार्थी पर कुछ न कुछ प्रभाव ऋषियों के चालचलन का पड़ता ही है। इसी प्रकार कौमुदी आदि के पढ़ने से उस समय के सिद्धान्त विचार व्यवहारादि का भी विद्यार्थी पर बुरा प्रभाव न पड़े इस लिये स्वामीजी ने ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों के प्रचारार्थ लिखा है। आधुनिक व्याकरण काव्यादि में श्रीकृष्णादि पर मिथ्यारोपित दूषणों का वर्णन है इस लिये उन से विद्यार्थी पर बुरा प्रभाव पड़ेगा अतः त्याज्य लिखा है। संस्कृतवाक्यप्रबोध में छापे आदि की अशुद्धि हों वे

पढ़ने वाले शुद्ध करके पढ़ालेंगे परन्तु कोई ऋषि सिद्धान्तविरुद्ध बात तौ नहीं जिस से विद्यार्थी का आचरण बिगड़े। तर्कसंग्रह में वैशेषिक से क्या विरुद्ध है यह तौ आप को वैशेषिक पढ़ा होता तौ ज्ञात होता वैशेषिक में :—

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानामित्यादि।

छः पदार्थ हैं। तर्कसंग्रह में इस के विरुद्ध—

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाऽभावाःसप्तपदार्थाः०

इत्यादि में सात पदार्थ हैं। मनु में प्रक्षिप्त है परन्तु मनुस्मृति ऋषिप्रणीत तौ है और बहुत न्यून जो कुछ मिलावट हुई है उसे वेद का सिद्धान्त जानने वाले सहज में जान सकते हैं। वह पुराणों के समान जानबूझ कर ग्रन्थ का ग्रन्थ ही तो अनार्ष नहीं। भाषाग्रन्थ मात्र को स्वामी जी ने त्याज्य नहीं लिखा, सत्यार्थप्र० खोलकर देखिये पृ० ७१ पं० २७ में यह लिखा है कि "रुक्मिणीमङ्गलादि और सब भाषाग्रन्थ" इस लिखने से स्पष्ट विदित होता है कि रुक्मिणीमङ्गल के सदृश श्रीकृष्ण महाशय के शुद्ध चरित्रों को अश्लील अयुक्त रीति पर वर्णन करने वाले ही भाषाग्रन्थ त्याज्य हैं, न कि सत्यार्थप्रकाशादि उत्तम ग्रन्थ। मुहूर्त्तादि ग्रन्थों के मिथ्या लिखने का तात्पर्य यह है कि उन २ मुहूर्त्तों में लिखे फल मिथ्या हैं यथार्थ में मुहूर्त समयविशेष को कहते हैं। शुभमुहूर्त्त में उपनयनादि लिखने वाले सुश्रुतादि ग्रन्थकारों का आशय यह है कि जिस मुहूर्त्त में अनुकूलता सब प्रकार से हो वह शुभमुहूर्त्त है न कि अनुकूलता तौ १० बजे दिन को हो और ज्योतिषी जी कहते हैं कि ३॥ बजे रात्रि को मुहूर्त्त अच्छा है उत्तरायण इस लिये अच्छा है कि वह दैवदिन है क्योंकि १ वर्ष को दैवदिन मानने पर दक्षिणायण रात्रि और उत्तरायण दिन है। इसी प्रकार आर्षग्रन्थों की बातें निष्प्रयोजन नहीं हैं शकुन का केवल इतना फल युक्त है कि जब किसी कार्य को मनुष्य चलता है तब यदि अच्छे पदार्थ सम्मुख हों तो चित्त को आल्हाद होने से उस कार्य में अधिक उत्साह होता और उस से कार्य अच्छा बनना सम्भव है अन्य शकुनावली आदि में लिखे ऊट पटांग शकुनों को मानना और समझना कि "शकुन के विरुद्ध कार्य हो ही नहीं सकता" मूर्खता है। क्योंकि केवल अशुभ शकुन से चित्त पर कुछ बुरा प्रभाव भी पडे और दूसरी बातें सब अनुकूल हों तौ शकुन कुछ नहीं कर

सक्ता। तात्पर्य यह है कि ऋषियों की सम्मति के अनुसार शुभ अशुभ कार्यों को देख कर चित्त पर उसका कुछ न कुछ प्रभाव होता है यह ठीक है परन्तु जिस प्रकार प्रचरित ग्रन्थों में लिखे शकुनों के विरुद्ध लोग काम ही नहीं करते चाहे कैसी ही अन्य अनुकूलता हों और चाहे जितनी प्रतिकूलता होने पर भी केवल शकुन के भरोसे जो लोग काम बिगाड़ते हैं यह मूर्खता है।

समीक्षा—स्वामी दयानन्दजी ने पढ़ने पढ़ाने की विधि लिखकर आर्य-समाज के धार्मिक ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में रखदी कल को कोई आर्य-समाजी कपड़ा बुनना और घड़े बनाना या पुस्तकें छापने का तरीका लिख कर सत्यार्थप्रकाश में मिला देगा वह भी आर्यसमाज का धार्मिक ग्रन्थ हो जावेगा। स्वामी दयानन्दजी ने जो पठन पाठन की विधि लिखी है उससे आज कल की सर्कारी पाठविधि उत्तम है यदि सर्कारी विधि से पढ़े तो मनुष्य विद्वान हो सकता है और यदि स्वामी दयानन्द की विधि से पढे तो बारह वर्ष पढ़ कर भी "निरक्षर भट्टाचार्य" ही रहता है। इसमें दो प्रमाण हैं प्रथम तो यह कि गुरुकुल कांगड़ी कि जहां पर स्वामी दयानन्द के कायदे से पढ़ाई होती है वहां से आज तक भी कोई संस्कृत का विद्वान् होकर नहीं निकला यों नाम के लिये भले ही गुरुकुल से विद्यालङ्कार और वेदालङ्कार की उपाधि दे दें किन्तु ये गुरुकुल के लङ्कार पण्डितों में बैठ कर न संस्कृत बोल सकते हैं और न अपने विद्वान होने का किसी दूसरी रीति से परिचय दे सकते हैं किन्तु पण्डित मण्डली को देखते ही ऐसे भागते हैं कि जैसे बिल्ली को देखकर चूहा और यदि कोई पकड़ कर बिठला भी ले तो अपने लिये अंग्रेजी के विद्वान् होने का परिचय देते हैं संस्कृत का नाम तक नहीं लेते और जहां पर कोई संस्कृत का जाननेवाला नहीं वहां पर तो वेदालङ्कार बने ही बनाये हैं दूसरे गुरुकुल सिकन्दराबाद आदि २ गुरुकुलों में दयानन्द की बतलाई पठन पाठन विधि के अनुसार पाठप्रणाली न रख कर सर्कारी पाठप्रणाली रक्खी है फल यह निकला कि वहां के विद्यार्थी संस्कृत में योग्य होते हैं। स्वामी दयानन्दजी ने जो पठन पाठन विधि निराली ही निकाली इसका तो मतलब ही कुछ और है आर्यसमाज भले ही न समझे किन्तु हम समझते हैं वह यह है कि स्वामी दयानन्द को यह भय है कि कहीं ऐसा न हो कि कोई आर्यसमाजी संस्कृत का विद्वान् हो जावे यदि ऐसा हो गया तब तो हमारे पंजे से निकल जावेगा और जिनको हम वैदिक

सिद्धान्त कहते हैं उनको शेखचिल्ली की कहानियां समझने लगेगा इसी प्रयोजन के लिये स्वामी दयानन्द ने पठन पाठन विधि इस कायदे की बनाई कि पढ़ता रहे और विद्वान् न हो ।

स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि ऋषि प्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान् सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्प शास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपात सहित है उनके बनाये हुये ग्रन्थ भी वैसे ही हैं इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि जब ऋषि प्रणीत ग्रन्थ आपको इतने प्रमाणिक हैं तो फिर आपने यह क्यों लिखा कि जो बात ऋषियों की लिखी वेदानुकूल हो वही मानी जावेगी जब ऋषियों ने वेद विरुद्ध लिखा तब उनकी पूर्ण विद्वत्ता और धर्मात्मापन कहां रहा ? पहिले उनको ऋषि बनाना और फिर उनके लेख को वेद विरुद्ध बताना यह स्वामी दयानन्द ने ऋषियों की निन्दा की है जो स्मृतियों की और स्मृतिकारों की निन्दा करता है मनु ने "योवमन्येत" इस श्लोक में उसको वेदनिन्दक नास्तिक बतलाया और द्विजातियों को लिखा कि ऐसे पुरुष का बहिष्कार कर देना चाहिये इसके उपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि पूर्ण विद्वान् ऋषि थे इसका मतलब यह नहीं है कि वेदकर्ता ईवश्र से अधिक थे इसके ऊपर हम इतना ही लिखेंगे कि वे ईश्वर से अधिक तो नहीं थे किन्तु स्वामी दयानन्द की अपेक्षा अज्ञ अवश्य थे क्योंकि उन ऋषि मुनियों की अशुद्धता या तो स्वामी दयानन्द ही पकड़ेंगे या संस्कृतशून्य अंग्रेजी पढ़े आर्यसमाज के सभ्य जंटलमैन ही उन ऋषियों की गलतियां निकाल सकते हैं जिन ऋषियों ने संसारी सुख पर लात मार कर वन में जा कर गौमाता का पवित्र दूध पीकर अपना समस्त जीवन ईश्वराराधन योग और धार्मिक उपदेशों में ही लगा दिया और जिनको न्याय शास्त्र ने आप्त शब्द से याद कर उनके अक्षरों को प्रमाण माना उन ऋषियों के लेख को वेद विरुद्ध बतलाने का सत्व उस स्वामी दयानन्द को कहां तक हो सकता है कि जो अपने सिद्धान्तों को रोज २ बदलता रहा और जिसको किसी सिद्धान्त पर भी विश्वास न हुआ और जिसका जन्म कोट, बूट, हुक्का, भंग, आदि २ गुलछर्रों में ही गुज़रा हो या आर्यसमाज के उन सभ्यों को कि जिन्हों ने जन्म भर होटल में खाया और एल. एल. बी. का पास केवल इसलिये किया कि भारतवर्ष के दो भाइयों को आपस में लड़ाकर हम मालामाल हो जावेंगे । स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के सभ्यों के द्वारा ऋषियों का लेख अशुद्ध होना बेशक यह ऋषियों

की बड़ी भारी हतक (अपमान) करना है और प्रत्यक्ष में भी ऋषियों का अपमान हम आर्यसमाजियों की तरफ से हुआ देखते हैं इस समय हमको आर्यसमाज के किसी भजनोपदेशक के भजन की कड़ी याद आ गई "बालमीक भंगी के गुण गाते चतुर सुजान हैं" अब आर्यसमाज बतलावै कि इन भजनों से ऋषियों का अपमान होता है या मान ? आश्चर्य्य की बात है कि ऋषि तौ वेद विरुद्ध लिखैं और जो स्वप्न में भी वेद को नहीं जानते वह वेदानुकूल लिखें इसके ऊपर पाठकों को विचार करना चाहिये।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि इस से अपमान नहीं होता बलिक मान होता है इसकी पुष्टि में पं० तुलसीराम लिखते हैं कि "या वेद बाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टय:" अर्थात् जो स्मृति वेद के विरुद्ध हैं और जो दूषित हैं उनका न मानना मनुने भी लिखा है इसके ऊपर हमारा प्रथम ऐतराज़ तो यह है कि ऋषियों की बात वेदानुकूल हो तो मानना यदि प्रतिकूल हो तो उसका त्याग करना यह स्वामी दयानन्द ने अपने मन से ही गढ़ लिया या इस में कोई प्रमाण भी है समाज इसको किस प्रकार सत्य माने ? यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि हमने "या वेद बाह्याः स्मृतयः" प्रमाण दिया है इसके ऊपर हम यह कहेंगे कि इस वाक्य को या श्लोक को समाज प्रमाण ही नहीं मानती फिर समाज कैसे मानेगी कि वेद विरुद्ध को छोड़ दो और वेदानुकूल को मानो यह वाक्य जरूर लिखा है किन्तु आज तक किसी भी विद्वान् ने यह न दिखलाया कि अमुक स्मृतिकारने अमुक ऋषि ने यह वाक्य वेद विरुद्ध लिखा हमारा तो कहना यह है कि किसी भी ऋषि के लेख में कोई भी अक्षर ऐसा नहीं जो वेद विरुद्ध हो इसके विपरीत आर्यसमाज ने सैकड़ों श्लोक मनु के ही वेद विरुद्ध बना दिये इससे मनु का मान हुवा या अपमान ? और स्वामी दयानन्दजी तो इस लेख से कुछ और ही मतलब लेना चाहते हैं उनका तो अभिप्राय यही है कि जहां पर किसी ऋषि के लेख में अवतार मूर्तिपूजा या मृतक पितरों का श्राद्ध आजावे तो उसको वेद विरुद्ध कह दो चाहे वह वेद में भी हो किन्तु ऋषियों को तो वेद विरुद्ध का कलंक लगा ही दो इस कलंक लगाने को पं० तुलसीराम ऋषियों का मान समझते हैं।

यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि तो फिर "या वेद बाह्याः स्मृतयः" यह क्यों लिखा इसका यह तात्पर्य है कि यदि कोई मनुष्य अपने तपोबल से या योग

के द्वारा पारदर्शी या ऋतम्भरा बुद्धि वाला हो जावे और योग दर्शन के विभूति अध्याय में कही भूत भविष्यत वर्तमान काल को प्रत्यक्षवत् देखने की शक्ति उस में आजावे और वह समाधि अवस्था में विचार करता हुआ किसी ऋषि के किसी वाक्य में कोई भूल देखै तो वह उसके लिये फैसला दे सकता है मामूली मनुष्य नहीं स्वामी दयानन्द ऋषियों की गलती मामूली मनुष्यों द्वारा सिद्ध करते हैं यह प्रत्यक्ष में ऋषियों का अपमान है।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद जी लिखते हैं कि यदि आप को वेदानुकूल ही प्रमाण है तो तुम वेद को छोड़ कर और ग्रन्थों में वृथा भटकते हो आपको तो वही प्रमाण होगा जो वेद में मिलै फिर वेद ही से सब काम क्यों नहीं चला लेते ऐसा करने पर आप के पास कुछ नहीं रहता आप न तो वेद से कोई संस्कार आदि का निश्चय कर सकते हैं और न जनेऊ चुटिया रख सकते हैं और न योग और वेद के महत्व को पा सकते हैं इस कारण से आप यह चाल खेलते हैं कि जहां पर हमारे जीमें आवेगा वहां पर वेदानुकूल बना देंगे और जहां पर हमको नहीं मानना होगा वह वेद विरुद्ध बना देंगे। स्वामी जी की इन चालाकियों के पेंच में वही मनुष्य आसकता है जो रजिष्टर में नाम लिखवा कर वेदज्ञ बना है लिखा पढ़ा मनुष्य इन चालाकियों में नहीं फँस सकता हमें कोई आर्यसमाजी यही बतलावे कि वे रोज २ सन्ध्या क्यों करते हैं नित्य प्रति सन्ध्या करना वेद में कहां लिखा है ? कहीं भी नहीं मिलेगा। सन्ध्या हो गई। यदि कोई हम से पूछे कि तुम रोज की रोज क्यों सन्ध्या करते हो ऐसी दशा में हम उत्तर देंगे कि "अहरह संध्या मुपासीत" इसको सुन कर आर्यसमाजी कह देंगे कि हां "अहरह सन्ध्या मुपासीत" यह वेदानुकूल है फिर हम ब्राह्मण की दूसरी श्रुति कहेंगे कि "स्वर्ग कामोयजेत" इसके ऊपर आर्यसमाजी कह देंगे कि यह वेद विरुद्ध है क्योंकि यज्ञ से स्वर्ग नहीं मिलता किन्तु वायु शुद्धि होती है इसी प्रकार जहां पर आर्यसमाज को मानना होगा वहां पर वेदानुकूल और जहां पर न मानना होगा वहां पर वेद विरुद्ध कह कर किनारे होगी। इस भाव को लेकर पं० ज्वालाप्रसाद जी ने यह तिमिरभास्कर लिखा है इसके ऊपर पं० तुलसी-रामजी लिखते हैं कि प्रथम तो हम यह नहीं कहते कि हम मन्त्रों में साक्षात ही सब विधि दिखला सकते हैं बस बहिस तो यहां पर ही समाप्त हो गई आर्यसमाज अपने माने वेद मन्त्र भाग में विधि नहीं दिखला सकती अब वे ब्राह्मण कि जिनमें शिखा सूत्र की विधि लिखी है वेद के विरुद्ध हो गये क्योंकि वेद में शिखा सूत्र

रखना लिखा नहीं और ब्राह्मणों में लिखा है अतएव वेद विरुद्ध है। नहीं मालूम वर्तमान आर्यसमाजी वेद विरुद्ध होने पर भी हमारे वेद से शिखा सूत्र क्यों रखते हैं ? हम आर्यसमाजियों से प्रार्थना करते हैं कि वे वेद विरोधी हमारे ग्रन्थों को न माना करें और हमारे ग्रन्थों में रखवाई शिखा सूत्र हमें देदें और फिर उनके जी में आवे जहां जावें सब महाभारत यहां पर ही समाप्त हो जावेगा और यह लड़ाई का घर है कि समाज के जो जी में आया उसको वेदानुकूल कह दिया और जिसको जी में आया वेद विरुद्ध कह दिया।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं किन्तु हमारा सिद्धान्त तो जैमिनीय मीमांसा के "विरोधेत्वनपेक्ष्यं स्याद् सति ह्यनुमानम् मी० अ० १ पा० ३ सू० ३" के अनुसार यह है कि शब्द प्रमाण के साक्षात विरुद्ध बातें न मानी जावें परन्तु विरोध भी न हो और साक्षात विधि वाक्य भी न मिले तो अनुमान करना चाहिए कि यह विधि किसी प्रकार किन्हीं ऋषियों ने वेद में साक्षात वा ध्वनि आदि से देखा ही होगा। पं० तुलसीरामजी को जब उत्तर न मिला तब यह लिख दिया कि हम तो जैमिनी सूत्र के अनुसार मानते हैं। प्रथम तो आप जैमिनी सूत्र के प्रमाण होने में सबूत दें कि किस वेद मन्त्र में "विरोधेत्वनपेक्ष्यम" लिखा है यदि नहीं लिखा तब तो यह सूत्र भी वेद विरुद्ध है पं० ज्वालाप्रसाद का कथन तो यह है कि तुम वेद ही वेद मानों जो बात पं० तुलसीराम ने जैमिनी सूत्र से दिखलाई है वह वेद से ही दिखलाओ जब आप जैमिनी सूत्र को प्रमाण ही नहीं मानते फिर आप किस न्याय से जैमिनी सूत्र से अपने मत की पुष्टि करते हो आज आप ने गर्ज अटकने पर जैमिनी सूत्र को प्रमाण में ले लिया कल को आप तौरेत का प्रमाण देंगे यह कायदा अच्छा नहीं आप के ऊपर जो पं० ज्वालाप्रसाद ने प्रश्न किया है उसकी पुष्टि अपने धर्म पुस्तक मन्त्रभाग वेद से ही करो यह बात त्रिकाल में भी आर्य समाज नहीं कर सकता यहां पर तो समाज को प्रलय तक मौन धारण करना पड़ेगा।

पं० तुलसीराम यह लिखते हैं कि जैमिनी सूत्र कहता है कि शब्द प्रमाण के साक्षात विरुद्ध बातें न मानी जावें इसके ऊपर हम यही कहेंगे कि यह बात कहता कौन है कि तुम शब्द प्रमाण के विरुद्ध मानो। प्रथम तो यही बतलाओ कि शब्द प्रमाण क्या चीज है यहां पर शब्द प्रमाण से पं० तुलसीराम वेद लेना चाहते हैं यही तो शोक है कि आर्यसमाज पृष्ठ २ में गिरगट कैसा रंग बदलती है। इस लेख

के दो तीन पृष्ठ पूर्व स्वामी दयानन्दजी स्वतः लिख आये हैं कि "आप्तोपदेशः शब्दः" अर्थात् जो ऋषि आप्त हो गये हैं उन का जो उपदेश है वह शब्द प्रमाण है किन्तु अब पं० तुलसीराम इस न्याय सूत्र को उड़ा कर वेद के मन्त्र भाग को ही शब्द प्रमाण मानते हैं यदि हम स्वामी दयानन्द और महर्षि गौत्तम के लक्षण "आप्तोपदेशः शब्दः" को मानते हैं तब तो ऋषियों के प्रत्येक वाक्य को मानना होगा एक अक्षर पर भी चींचपड़ नहीं करनी होगी क्योंकि यह लोग मामूली नहीं थे आप्त थे ऐसा मानने से आर्यसमाज का मत बिना बुलाए रसातल को पहुंच जाता है और यदि हम यह मान लें कि "आप्तोपदेशः शब्दः" यह लक्षण गौत्तम ने अपनी भूल से लिख दिया क्योंकि वे वेद शास्त्र नहीं जानते थे और स्वामी दयानन्दजी ने जो "आप्तोपदेशः शब्दः" प्रमाण मान कर अपने सत्यार्थप्रकाश में लिख दिया यह इनकी गलती है क्योंकि यह कुछ लिखे पढ़े नहीं थे संसार में यदि कोई पण्डित हुआ है तो उसका नाम पं० तुलसीराम है जो केवल वेदों को ही शब्द प्रमाण मानता है जब कि पण्डितराज पं० तुलसीराम ही शब्द प्रमाण में वेद लेते हैं तो हम भी वेद ही प्रमाण मानेंगे ऐसी दशा में सन्ध्या अग्निहोत्र बलिवैश्यदेव आदि आदि सब कर्मकाण्ड रसातल को चला जावेगा क्योंकि वेद में इन कामों की विधि (आज्ञा) ही नहीं चलिये सब का सफाया हो गया बैठे बैठे मजे उड़ाइये और यह कहते रहिये कि हम वेद मानते हैं हम वेद मानते हैं हम वेद मानते हैं।

यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि यह कर्मकाण्ड वेद के विरुद्ध तो नहीं पड़ता और हमने सूत्र का यही अर्थ किया है कि शब्द प्रमाण के साक्षात् विरुद्ध बातें न मानी जावें ऐसी दशा में आर्यसमाज को क़ाबे की यात्रा करनी होगी और असवद (पत्थर) चूमना होगा क्योंकि शब्द प्रमाण वेद में इसका कहीं विरोध नहीं किया और पं० तुलसीराम यह कहते हैं कि साक्षात् विरुद्ध बातें न मानी जावेंगी वेद जिस का निषेध कर देगा उसीको हम नहीं मानेंगे।

आगे पं० तुससीराम लिखते हैं कि बिरोध भी न हो और साक्षात् विधि वाक्य भी न मिले तो अनुमान करेंगे इस लेख से मालूम होता है कि पं० तुलसीराम विधि वाक्य को मानते हैं और समस्त झगड़ा यह विधि वाक्य पर ही होरहा है उसी को अब पण्डित तुलसीराम प्रमाण मान लेते हैं। विधि वाक्य को प्रमाण मानने से दयानन्द कृत समस्त यजुर्वेद भाष्य मिथ्या हो जाता है क्योंकि विधि रूप वेद

ब्राह्मणों ने अश्वमेध, पुरुष मेध, सौत्रामणि, दर्श पूर्णमास, आदि २ यज्ञों की विधि दिखला कर मनुष्य कर्तव्य बतलाया है और स्वामी दयानन्द ने इन विधि वाक्यों को पोप कल्पित मिथ्या समझ कर यजुर्वेद से यज्ञ उड़ा दी यदि पं० तुलसीराम विधि को प्रमाण मानेंगे तो फिर विधि विरुद्ध दयानन्द भाष्य छोड़ना पड़ेगा।

अलावा इसके बहस तो इस बात पर चली है कि ऋषिवाक्य वेदानुकूल होने पर माना जावेगा दयानन्द के मत में विधिवाक्य वेद नहीं है किन्तु ऋषि वाक्य है उन संदिग्ध ऋषि वाक्यों को जो वेद के अनुकूल होने पर सत्य हो सकते हैं उन को जैमिनी सूत्र के टीका में पं० तुलसीराम स्वतः प्रमाण माने लेते हैं जब पं० तुलसीराम ही स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त को पुख्ता नहीं समझते और समस्त विधिवाक्य मानने को तैयार हैं चाहे वे वेद से मिलें या न मिलें ऐसी दशा में जो स्वामी दयानन्द ने यह लिखा था कि जो ऋषियों का वाक्य वेद विरुद्ध हो उसको न मानों यह साफ कट गया और सर्वथा वेद विरुद्ध जो मन्त्र भाग में नहीं कही गई ऐसी विधि को पं० तुलसीराम ने स्वतः प्रमाण माना ऐसे २ मामले देख कर समाजियों के लेख पर हंसी आजाया करती है और मन में यह विचार उठा करता है कि यह क्या बच्चों कैसा खेल करते हैं इनको लेख लिखने के समय आगे पीछे की कुछ खबर ही नहीं रहती।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि तथापि उद्गाता आदि का विधान नीचे लिखे मन्त्र में मूल रूप पाया जाता है "ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्, गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु। ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः॥ ऋ० मं० १० अष्टक ८ अध्याय २ मं० अन्तिम" अन्वित व्याख्यानम् [त्वशब्दः सर्वनामसुपठित एक शब्द पर्य्यायः] एको होता (पुपुष्वान् ऋचां पोषमास्ते) स्वकर्माधि कृतस्मन् यत्र तत्र पठिता ऋचो यथा विनियोग विन्यासेन पोषयति सार्थकाः करोति (त्वः शक्वरीषु गायत्रं गायति) एक उद्गाता शक्वर्युपलक्षितासुच्छन्दो विशेष युक्तास्वृक्षु गायत्रं गायत्रादिनामकं साम गायति (त्वो ब्रह्मा जातविद्यां वदति) एको ब्रह्मा अपराधे जाते तत्प्रतीकाररूपां विद्यां वददि (त्वो यज्ञस्य मात्रां विमिमीतउ) एकोऽध्वर्युयज्ञस्य मात्रामियत्ता विमिमीते विशिष्टतया परिच्छिनति॥ अर्थात् एक होता ऋचाओं को विनियोगानुसार संघटित करता है एक उद्गाता शक्वर्यादिच्छन्दोयुक्त गायत्र गान करता है एक ब्रह्मा यज्ञ में कुछ अपराध वा भूल

चूक होने पर उसका प्रतीकार करता है और एक अध्वर्यु यज्ञ के परिणाम वा इयत्ता को निर्धारित करता है।

इसके ऊपर यदि कोई विचार करे तो मालूम हो जावेगा कि इस मन्त्र में होता शब्द का कहीं पता भी नहीं। जिस प्रकार होता का पता नहीं इसी प्रकार उद्गाता का भी पता नहीं और न इसमें अध्वर्यु का पता है केवल ब्रह्मा शब्द के होने से वेद के असली अर्थ पर पानी फेर के मन माना अर्थ गढ़ा गया है विचारशील मनुष्य सायण भाष्य उठा कर देख सकते हैं इस मन्त्र का यह अर्थ ही नहीं अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये वेद का अर्थ बदल देना भी समाजियों के लिये कुछ पाप नहीं। यदि हम अर्थ के ऊपर वाद करें तो लेख बहुत बढ़ जावेगा अर्थ तो सायण आदि भाष्य में देख सकते हैं वा दीतोषन्याय से हम इसी अर्थ को सही माने लेते हैं यदि मन्त्र में होता उद्गाता अध्वर्यु आगया तो इससे क्या हुआ हमें कोई समाजी वेद से यही बतलावे कि इन चारों का काम क्या है भूल चूक का देखना काम ब्रह्मा का कहा है भूल चूक सभी काम में होती है न तो यही मालूम होता है कि यह चारों कपड़े धोवें या घास खोदें या यज्ञ करें या तप करें सिर्फ नाम भर आए हैं वे भी तुलसीराम के अनर्थ करने पर मूल में वे भी नहीं होता उद्गाता अध्वर्यु ब्रह्मा चारों का काम मूल में नहीं पं० तुलसीराम काम भी अपनी तरफ से मिलाये इन्होंने इनके द्वारा यज्ञ होना लिखा कोई समाजी खटिया बुनना लिखेंगे। अब यदि कोई इन से यज्ञ करवावेगा तो फिर हम कह देंगे कि आर्यसमाज के मत में यज्ञ होना वेद में कहीं नहीं लिखा अतएव यह यज्ञ भी नहीं करवा सकेंगे और इन चार के नाम आने से यज्ञ की सिद्धि मानेंगे तो इस कायदे से वेद में से मक्का और मदीना कूद पड़ेंगे। पं० तुलसीराम को यह बतलाना चाहिये था कि वेद के अमुक मन्त्र में यज्ञ करनी लिखी है और उसकी विधि विस्तार पूर्वक मय देश काल के अमुक मन्त्र में लिखी है और यज्ञ में इतने काम होते हैं और उस यज्ञ का फल यह है यह विषय मंत्र भाग में है नहीं इसके लिये वे ही ब्राह्मण जो दयानन्द के मत में ऋषि वाक्य हैं और जिन के प्रमाण होने में दयानन्द को शक है या जिन को स्वामी दयानन्द प्रमाण ही नहीं मानते वे यहां पर स्वतः प्रमाण मानने होंगे पं० तुलसीराम के लेख ने कुछ भी पुष्टि नहीं की केवल भास्करप्रकाश के पन्ने ही काले किये हैं।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद जी लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द ने सन्यासी

होकर चोगा बूट हुक्का कुर्सी मेज़ आदि का इस्तेमाल किया और रुपये संचय किये आप यह भी वेद से निकालोगे बतलाइये यह कौन वेद में लिखा है इसके ऊपर पं० तुलसीराम जी मौन ही रह गये।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद जी लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द जब वेद के अर्थ लिखने बैठते हैं तब ब्राह्मण, निघण्टु, महाभाष्य, उपनिषद, इन से अर्थ सिद्ध करते हैं और कहते हैं कि अर्थ ठीक हो गया क्योंकि इस में ब्राह्मणादि प्रमाण मिलते हैं फिर आज उन्हीं ब्राह्मणादि ग्रन्थों को अप्रमाण वतलाते है इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि यह बात नहीं है कि निरुक्तादि की सहायता बिना वेदार्थ हो ही न सके जब तक निरुक्तादि ग्रन्थ नहीं बने थे तब भी वेद और उनका अर्थ था ही किन्तु निरुक्तादि के प्रमाण इस लिये दिये जाते हैं कि जो वेद का अर्थ हम करते हैं उस प्रकार अन्य भी अमुक २ ऋषि लिखते हैं जिस से हमारे समझे अर्थ की पुष्टि होती जावे। निरुक्तादि की सहायता के बिना यदि वेद का अर्थ होगा तो फिर वैसा ही होगा जैसा कि स्वामी दयानन्दजी ने किया है कहीं पर तो फौजी कवायद और कहीं पर ताजीरात हिन्द के अनुकूल मजिस्ट्रेट सजा दे, कहीं लुहार बढ़ई का कानून, और कहीं पर रेल तार बनाने की विधि, कर्म काण्ड, उपासना काण्ड, और ज्ञान काण्डात्मक अर्थ तो तब ही होगा जब कि निरुक्तादिक को देख कर उसके अनुकूल करोगे।

पं० तुलसीराम लिखते हैं कि जब निरुक्तादि ग्रन्थ नहीं बने थे तब भी तो वेद और उनका अर्थ था ही पं० तुलसीरामजी सनातन धर्म का खण्डन करते २ दयानन्द के लेख का भी घोर खण्डन कर जाते हैं। यह सृष्टि के आरम्भ में पंडितों के द्वारा वेद के अर्थ का होना मानते हैं किन्तु स्वामी दयानन्दजी सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २०४ के "ऋषयो मंत्र दृष्टयः मंत्रान्सम्प्रादुदुः" निरुक्त के नीचे इबारत देते हैं जिस २ मंत्रार्थ का दर्शन जिस २ ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहिले उस मंत्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था किया और दूसरों को पढ़ाया भी इस लिये अद्यावधि उस २ मंत्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है अब यहां पर इतना विचार करना है कि पं० तुलसीराम तो मामूली पंडितों से वेद के अर्थ का होना मानते हैं और स्वामी दयानन्द समाधिस्थ ऋषियों के ज्ञान के द्वारा वेद के अर्थ का होना मानते हैं जिन याज्ञवल्क्यादि ऋषियों के द्वारा वेद अर्थ होना मानते हैं उन्हीं

ऋषियों के रचे हुए ग्रन्थ निरुक्तादि हैं सृष्टि के आरम्भ में भी समाधिस्थ ज्ञान वाले ऋषियों को छोड़ कर शेष को वेद के अर्थ का ज्ञान निरुक्तादि द्वारा ही होता था। पं० तुलसीराम यह कहते हैं कि अर्थ तो हम आप ही कर लेते हैं और निरुक्त निघण्टु तो इस लिये देते हैं कि अमुक ने भी यही अर्थ किया भाव यह है कि यहां पर स्वामी दयानन्द के लेख को सत्य मानें या पं० तुलसीराम के जो ब्राह्मण, निरुक्त निघण्टु को एक दम ही उड़ाते हैं। हम थोड़ी देर के लिये पं० तुलसीराम के अर्थ को सत्य मानते हैं जब कि ब्राह्मणादि ग्रन्थ आर्यसमाज को बिल्कुल प्रमाण नहीं तो फिर "शन्नो मित्रः" इस ब्राह्मण से स्वामी दयानन्द ने मंगल चरण क्यों किया तथा जगह २ के ऊपर जहां पर वेद का प्रमाण नहीं मिलता वहां पर स्वामी दयानन्द ने ब्राह्मण उपनिषद् निरुक्त निघण्टु का प्रमाण क्यों दिया? जैसे प्रथम समुल्लास में "अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते" तैत्तिरीयोपनिषद। यदि आप ब्राह्मणादि ग्रन्थों को प्रमाण नहीं मानते तो कृपा कर सत्यार्थप्रकाश से इन ग्रन्थों के प्रमाणों को निकाल दीजिये फिर देखिये सत्यार्थप्रकाश ५ पैसे का रहता है या ६ पैसे का।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि व्याकरण में कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि। कोश में अमरकोशादि। छन्दोग्रन्थ में वृत्तरत्नाकरादि। शिक्षा में अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा। इत्यादि। ज्योतिष में शीघ्रबोध मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि। काव्य में नायका भेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि। मीमांसा में धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि। वैशेषिक में तर्कसंग्रहादि। न्याय में जागदीशी आदि। योग में हठप्रदीपिकादि। सांख्य में सांख्य तत्त्व कौमुद्यादि। वेदान्त में योगवासिष्ठ पञ्चदश्यादि। वैद्यक में शार्ङ्गधरादि। स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति सब तंत्र ग्रन्थ सब पुराण सब उपपुराण तुलसीदास कृत भाषारामायण रुक्मिणी मङ्गलादि और सर्व भाषा ग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित जाल ग्रन्थ हैं।

इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद जी लिखते हैं कि यहां तौ कौमुदी की यह निन्दा और जब आप मरे तौ निजबस्ते में वैयाकरण सर्वस्व और सिद्धान्त कौमुदी यह दो ग्रन्थ निकले इन व्याकरणों के ग्रन्थों में क्या मिथ्यापना है क्या इन ग्रन्थों ने अष्टाध्यायी का खंडन किया है कौमुदी आदिकों में तौ पाणिनिकृत अष्टाध्यायी के सूत्रों कीवृत्ति की है यदि वृत्ति करने ही से वे जाल ग्रंथ आप ने बताये तौ तुम्हारा

रचित वेदाङ्गप्रकाश जो अष्टाध्यायी की भाषा टीका कौमुदी की रीति पर है वोह भी मिथ्या ही होना चाहिये कोश में यदि निघण्टु जिस में वैदिक शब्द हैं पढै और अमर-कोशादि न पढै तौ लौकिक शब्दों के अर्थ आप के सत्यार्थप्रकाश या वेदभाष्यभूमिका से करै काव्यों से आप की शत्रुता क्यों है क्या यह भी आजीविका को ही रचना किये हैं ? यदि यह काव्य जिन से व्युत्पत्ति होती है न पढैं तौ क्या आप का बनाया संस्कृत वाक्यप्रबोध जिस में सैकड़ों अशुद्धि भरी पडी हैं उसे पढैं जो और भी बुद्धि भ्रष्ट होजाय, तर्कसंग्रह में कौन सी बात वैशेषिक के विरुद्ध है, और आपने भी तौ ५४ पृष्ठ से ६६ पृष्ठ तक तर्कसंग्रह ही लिखी है, यह आप की बड़ी भारी चालाकी है, कि कोई हमारा चेला सत्यार्थप्रकाश में से निकाल कर अलग छपा लेगा, तौ तर्क संग्रह के स्थान में यही काम आवैगा और हमारा नाम होगा, यह लिखा तौ होता कि तर्कसंग्रह ने कौन सी आप की रोजी छीन ली और उसमें कौनसी बात विरुद्ध है पर हठ को क्या करिये और जब मनु में प्रक्षिप्त श्लोक हैं तौ यह भी विषमिश्रित अन्न की नाईं आपने त्यागन क्यों नहीं किया, यदि इसे भी छोड़ते तौ काम कैसे चलता पुराणों की सिद्धि आगे चल कर करेंगे, तुलसीदास जी ने क्या बात विरुद्धता की लिखी है ? और जब सब भाषा के ग्रन्थ कपोलकलिपत हैं तौ आप का सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य तथा भूमिका आर्य्योद्देश्यरत्नमाला आदि जो कुछ आप की भाषा की गढंत है यह भी कपोलकल्पित और त्याज्य हैं, भाषा की अति व्याप्ति होने से, जो आप अपनी बनाई भाषा मानें तौ औरों के बनाये क्यों प्रमाण नहीं ? बीमारी होने से आप तौ अंग्रेजी दवाई उड़ाना और शार्ङ्गधर को जाल ग्रंथ बताना, धन्य है यदि जन्मपत्र मुहूर्त मिथ्या हैं तौ संस्कारविधि में यज्ञोपवीत विवाह में पुष्य नक्षत्र शुक्लपक्ष उत्तरायण आदि यह मुहूर्त्त विधि क्यों लिखी है । अब सुश्रुत का भी प्रमाण सुनिये—जिसके प्रमाण आप सत्यार्थप्रकाश में बहुधा लिखते हैं । "उपनयनीयस्तु ब्राह्मणः प्रशस्तेषुतिथि करण मुहूर्त नक्षत्रेषुप्रशस्तायां दिशि शुचौ समेदेशे चतुर्हस्तं चतुरस्रं स्थंडिलमुपलिप्य गोमयेनदर्भैः संस्तीर्य पुष्पैर्लाजभक्तैरत्नैश्च देवताः पूजयित्वा विप्रान् भिषजश्चेत्यादि ॥ सुश्रुत सूत्रस्थान अ० २" (अर्थ) दीक्षा योग्य तो ब्राह्मण है अच्छी तिथि करण मुहूर्त्त अच्छे (पुष्य हस्त श्रवण अश्विनी) नक्षत्र में उत्तर वा पूर्व श्रेष्ठ दिशा में पवित्र समान देश में चौकोन चार विलायंद अथवा चार हाथ की वेदी रचे, उसको गोबर से लीप उस पर कुशा बिछावै पुष्पखीलैं रत्नादि से देवताओं का पूजन कर ब्राह्मण वैद्यों का

पूजन करै (जब शिष्य हो) पुनः शकुन "ततोदूतनिमित्तशकुनंमंगलानुलोम्येनातुरगृहम-भिगम्योपवि श्यतुरम भिपश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच्च०। सु० सूत्र० अ० १०" (अर्थ) जब दूत के साथ वैद्य जाय तौ निमित्त सुन्दरगन्धादि शकुन पक्षियों की चेष्टादि मंगल स्वस्तिक पूर्ण घटादि इनको विचारै फिर रोगी के पास जाय देखै छुवै और पूछै। इन वाक्यों से स्पष्ट है कि, सुश्रुत आदि महर्षि भी ज्योतिष शकुन ग्रह नक्ष-त्रादि अनुसार शुभाशुभ फल मानते थे, जब आप ने इन ग्रन्थों को प्रमाण माना है तौ मुहूर्त्तादि स्वयं सिद्ध ही हैं तिस से ग्रहादि फल का न मानना आप की बड़ी भूल है वेद से आगे लिखैंगे।

इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी कुछ भी नहीं लिख सके। जब कुछ भी उत्तर न बना तब हार कर पुराणों में दोष लगाने के लिये दौड़े प्रथम तौ यह कि स्वामी दयानन्द ने जिन ग्रन्थों को जाल ग्रन्थ बताया उनके जाल होने में स्वामी दयानन्द ने एक भी सबूत नहीं दिया जब कि पं० ज्वालाप्रसादजी ने सबूत मांगा तब फिर पं० तुलसीराम लाचार हो कर पुराणों पर भाग गये। प्रकरण को छोड़ कर प्रकरणा-न्तर में जाना वादी की पूरी हार होना है क्या कोई आर्यसमाजी इस बात का सबूत देगा कि यह जाल ग्रन्थ हैं और पं० तुलसीराम ने इन जाल ग्रन्थों के बारे में जो कुछ भी लिखा है वह यह है व्याकरणादि में भी विषयों के ऋषि प्रणीत ग्रन्थों का पढ़ना इस लिये अच्छा है कि उस में अपने मुख्य विषय के वर्णन के साथ साथ उदाहरणादि के मिष से उस समय के धर्म आचार व्यवहार आदि की भी चर्चा कुछ न कुछ आती ही है जिस से विद्यार्थी पर कुछ न कुछ प्रभाव ऋषियों के चाल चलन का पड़ता ही है।

पं० तुलसीरामजी की समझ में पहिले कोई और धर्म था और अब कोई और धर्म है और पं० तुलसीरामजी का दो धर्म बतलाना मनुष्यों को भ्रम में डालना है और फिर ऋषियों के ग्रन्थों को पढ़ा कर क्या करोगे तुम तो उन प्राचीन ऋषियों के कथन को भी नहीं मानते। व्याकरण के आचार्य महाभाष्यकार पतंजलि वेद की ११३१ शाखाओं को प्रमाण मानते हैं और स्वामी दयानन्दजी ४ चार शाखाओं को। ११३१ शाखाओं का महाभाष्य यह है—

चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधाभिन्ना एक शतमध्वर्यु

शाखा सहस्त्रवर्त्मा सामवेद एकविंशति धावाहूर्च नवधाऽथर्वणो वेदोवाक वाक्यमितिहास पुराण मेते शब्द विषयाः ।

अर्थ—चार वेद उनके अंग उनके रहस्य वह बहुत प्रकार के हुए । एक सौ एक शाखा यजुर्वेद की एक हजार शाखा वाला सामवेद २१ शाखा वाला ऋग्वेद नव शाखा में विभक्त अथर्व वेद वाको वाक्य इतिहास पुराण ये शब्द के विषय हैं ।

अब आर्यसमाज विचारे कि व्याकरण के पुराने आचार्य सनातन धर्म की पुष्टि करते हैं या स्वामी दयानन्द की और महर्षि पाणिनिजी लिखते हैं कि—

जीविकार्थे चापराये ५ । ३ । ९९

जीविकार्थं यद विक्रीयमाणं तस्मिन् वाच्ये कनोलु पस्यात् ।

जो प्रतिकृति (मूर्ति) जीविका के लिये हो किन्तु उनको बेचकर जीविका न की जावे वहां पर कन्प्रत्यय का लुप् हो । उदाहरण "शिवस्य प्रतिकृतिः शिवः" । अर्थात् जीविका के लिये अविक्रीयमाण जो शिव की मूर्ति उसको शिवः कहते हैं यहां पर तद्धित कन्प्रत्यय होकर प्रत्यय का लुप् होता है ।

महाभाष्ये पतञ्जलिः—यास्त्वेताः सम्प्रति पूजार्थास्तासुभविष्याति ।

अर्थ—जो प्रतिमा जीविकार्थ हों परन्तु वे बेची न जाती हों उस अर्थ में कन् प्रत्यय का लुप् होगा ।

पाठक वर्ग ! देख सकते हैं कि जिसको पं० तुलसीराम नवीन धर्म बतलाते हैं उसी धर्म के एक सिद्धान्त मूर्ति पूजा की पुष्टि व्याकरण के आचार्य महर्षि पाणिनि तथा पतञ्जलि दोनों ही करते हैं और दोनों ही ऋषियों का कहा हुआ मूर्ति पूजन आर्यसमाज गप्प और पोप कल्पित मानती है फिर पं० तुलसीराम क्या सबूत देते हैं कि ऋषियों के ग्रन्थों में यह उत्तमता है ।

इसके आगे पं० तुलसीराम जी लिखते हैं कि इसी प्रकार कौमुदी आदि के पढ़ने से उस समय के सिद्धान्त विचार व्यवहारादि का भी विद्यार्थी पर बुरा प्रभाव न पड़े इस लिये स्वामीजी ने ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के प्रचारार्थ लिखा है आधुनिक व्याकरण काव्यादि में श्रीकृष्णादि पर मिथ्यारोपित दूषणों का बर्णन है इस लिये

उनसे विद्यार्थी पर बुरा प्रभाव पड़ेगा अतः त्याज्य लिखा है। संस्कृतवाक्यप्रबोध में छापे आदि की अशुद्धि हों वे पढ़ाने वाले शुद्ध कर के पढ़ा लेंगे परन्तु कोई ऋषि सिद्धान्त विरुद्ध बात तौ नहीं जिस से विद्यार्थी का आचरण बिगड़े।

कौमुदी में ऐसी कौन सी बात लिखी है कि जिस का प्रभाव विद्यार्थी पर बुरा पड़ेगा जिन मूर्तिपूजा और मृतक पितरों का श्राद्ध आदि को आर्यसमाज बुरा प्रभाव समझती है वे तो अष्टाध्यायी और महाभाष्य के मूल में लिखे हैं पं० ज्वाला-प्रसादजी ने लिखा था कि यदि अष्टाध्यायी के सूत्रों का अर्थ (वृत्ति) करने से कौमुदी बुरी है तो इसी हिसाब से दयानन्द के वेदाङ्गप्रकाश भी बुरे हैं इसका उत्तर पं० तुलसीराम न दे सके और न आगे को कोई समाजी दे सकता है।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने यह भी लिखा कि जिस कौमुदी की स्वामी दयानन्द बुराई करते हैं उस कौमुदी को स्वामी दयानन्द ने अपने पास रक्खा और मरने पर भी उनके पास मिली जब वह बुरी थी तो उसको क्यों पढ़ते थे? स्वामी दयानन्द का तो यह स्वभाव था कि जिस पतली में खाना उसी में छेद करना। इसके ऊपर पं० तुलसीराम की लेखनी न उठ सकी। और पं० तुलसीराम जो यह लिखते हैं कि व्याकरण काव्यादि में श्रीकृष्णादि पर मिथ्या दोष लगाये हैं इसके ऊपर हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार पीलिया रोग वाले को सब जगह पीला ही पीला दीखता है उसी प्रकार विधवा विवाह और नियोग आंखों में भर जाने के कारण समाज को समस्त ग्रन्थों में बुरा ही बुरा दीखता है किन्तु जबानी कहने से कुछ नहीं होता उसकी पुष्टि के लिये कोई सबूत भी चाहिये पं० तुलसीराम ने एक भी सबूत नहीं दिया कि व्याकरण में अमुक जगह और अमुक काव्य में श्रीकृष्ण या रामचन्द्रजी पर यह कलंक लगाया है और न कोई समाजी कलंक लगाने का सबूत दे सकता है ग्रन्थों को तो पढ़ते नहीं इनको बिना पढ़े दूर से ही कलंक दीखते हैं। हमारा दावा है कि दो लाख आर्यसमाजी मिल कर अपने सब काम छोड़ कर दश बीस वर्ष ग्रन्थों में खोज करें तब भी व्याकरण काव्यादि में श्रीकृष्ण आदि पर कलंक न मिलेगा उन में कलंक न रहने पर भी बिना सबूत कलंक का दोष लगाना साबित कर रहा है कि पं० तुलसीराम तिमिरभास्कर का उत्तर नहीं दे सकते टालना चाहते हैं।

और पं० तुलसीराम जी जो यह लिखते हैं कि संस्कृतवाक्यप्रबोध में छापे की अशुद्धियां हैं इस पर हँसी आ जाती है। सत्यार्थप्रकाश प्रत्येक आवृत्ति में अपना

शरीर बदल लेता है और जितना पाठ सत्यार्थप्रकाश से निकाला जाता है वह सब छापे की अशुद्धि बतला दिया जाता है तो क्या समस्त ही सत्यार्थप्रकाश कम्पाजीटरों ने लिखा है ? आर्यसमाज प्रेस की अशुद्धि बतलाकर स्वामी दयानन्द की इज्जत बचाना चाहती है किन्तु स्वामी दयानन्द की इज्जत न बच कर साथ ही साथ और २ आर्यसमाजिओं के न्याय का भी परिचय मिल जाता है ताड़ने वाले ताड़ जाते हैं कि खास स्वामी दयानन्द की अशुद्धि को आर्यसमाज कम्पाजीटरों के मत्थे मढ़ती है। आर्यसमाज के इस असत्य लेख से आर्यसमाज की सभ्यता का परिचय मिल जाता है कि यह कितनी धार्मिक है। दयानन्द की इज्जत बचाने के लिये झूँठ बोलना झूठ लिखना आर्यसमाजी सभ्यों की दृष्टि में धर्म ही है।

और संस्कृतवाक्यप्रबोध में ऐसी अशुद्धियां हैं कि कर्ता में तो प्रत्यय गण की तो क्रिया किन्तु कर्ता में तृतिया विभक्ति यह ग़लती कम्पाज़ीटरों से हरगिज नहीं हो सकती क्योंकि कम्पाज़ीटर संस्कृत के हिसाब से गलती नहीं करते। ग़लती भी कैसी कि जिस में अक्षर और संस्कार (विभक्ति) न बिगड़े और गलती हो ही जाय। ऐसी २ गलतियां साबित कर रही हैं कि यह अशुद्धियां कम्पाजीटरों से नहीं हुईं किन्तु लेखक महाशय स्वामी दयानन्द की लेखनी की हैं।

समाज ने स्वामी दयानन्दजी की इतनी प्रशंसा की कि उनको महर्षि तक प्रसिद्ध कर दिया और व्याख्यान दे दे कर पबलिक को समझा दिया कि वह भारत वर्ष में एक अद्वितीय अनन्य विद्वान था यदि कोई संस्कृत वाला आज यह कहे कि स्वामी दयानन्द संस्कृत के भारी विद्वान् नहीं थे यह सुन कर अंग्रेजी वाले या संस्कृत रहित साधारण हिन्दी वाले समझ लेते हैं कि यह पुरुष आर्यसमाज से द्वेष रखता है और स्वामी दयानन्द की निन्दा करता है किन्तु संस्कृतवाक्यप्रबोध देखने वाले यह अच्छी प्रकार समझ लेते हैं कि स्वामी दयानन्द को लघुकौमुदी पढे हुए विद्यार्थी के समान भी बोध नहीं था। जिसने एक बार संस्कृतवाक्यप्रबोध देख लिया फिर उसके आगे स्वामी दयानन्द की कितनी भी प्रशंसा की जावे किन्तु उसका चित्त स्वीकार ही नहीं करता बल्कि प्रशंसा सुन कर क्रोध आता है कि जिस को मामूली संस्कृत लिखना पढ़ना नहीं आता यह उसकी नाहक में प्रशंसा करता है स्वामी दयानन्द ने संस्कृतवाक्यप्रबोध में जो संस्कृत लिखा है लघुकौमुदी पढे बच्चे उससे अच्छी संस्कृत बनाते हैं पं० तुलसीराम इस सब को प्रेस की अशुद्धि बतलाते

हैं आर्यसमाज में इसी का नाम न्याय (इन्साफ) है।

और वेदों के सिद्धान्तों के विरुद्ध उसमें बीसियों लेख हैं वेदों में मूर्तिपूजा, ईश्वरावतार, मृतक पितरों का श्राद्ध, अश्वमेधादि यज्ञ विस्तार रूप से लिखे हैं जिन का खण्डन कोई मनुष्य क्या ब्रह्मा भी नहीं कर सकता और संस्कृतवाक्यप्रबोध में स्वामी दयानन्द ने इनके खण्डन का इशारा किया नहीं मालूम पं० तुलसीराम इस बात को क्यों छिपाते हैं।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि तर्कसंग्रह में वैशेषिक से क्या विरुद्ध है यह तो आपको वैशेषिक पढ़ा होता तो ज्ञात होता। वैशेषिक में "द्रव्यगुण कर्मसामान्य विशेष समवायानां पदार्थानामित्यादि" छः पदार्थ हैं। तर्कसंग्रह में इसके विरुद्ध "द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाऽभावाः सप्तपदार्था०" इत्यादि में सात पदार्थ हैं। पं० तुलसीराम तर्कसंग्रह को यह दोष देते हैं कि उस में सात पदार्थ हैं इस लिये वह अशुद्ध है किन्तु महर्षि गौतम ने न्याय सूत्र में १६ पदार्थ माने हैं इस लिये न्याय दर्शन पं० तुलसीराम की दृष्टि में बिल्कुल ही अमान्य होना चाहिये किन्तु १६ पदार्थ वादी न्याय दर्शन पर पं० तुलसीराम ने टीका किया है उसको दोषरहित माना है बजाय छः के जिस में सोलह पदार्थ हों उसको तो ठीक कहते हैं और बजाय छः के जिस में सात हों उसको अशुद्ध कहते हैं इस पक्षपात का कहीं ठिकाना है। वैशेषिक में ६ और तर्कसंग्रह में ७ और न्याय दर्शन में १६ पदार्थों की सङ्गति तो ठीक मिला दी है जब सङ्गति मिल गई फिर दोष कैसा ? तर्क संग्रह तो आज तक भी गवर्नमेंट ने संस्कृत परीक्षा में ले रक्खा है स्वामी दयानन्द ने पृ० ५४ से ६६ तक सत्यार्थप्रकाश में तर्कसंग्रह ही जब वह शुद्ध था अब चार पृष्ठ बाद अशुद्ध होगया क्या इन चालाकियों से समाज की विजय होगी ? पं० तुलसी रामजी स्वामी दयानन्द के झूठे लेख को सत्य करने के लिये विचार का गला घांटते जा रहे हैं पं० तुलसीराम के लिये तो यह काररवाई निःसन्देह अयोग्य है।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि मनु में प्रक्षिप्त है परन्तु मनुस्मृति ऋषि प्रणीत तो है और बहुत न्यून जो कुछ मिलावट हुई है उसे वेद का सिद्धान्त जानने वाले सहज में जान सकते हैं। पं० तुलसीरामजी ऋषियों की भी खबर लेते हैं आप लिखते हैं कि मनु में भी लोगों ने मिलावट मिला दी। अभी क्या हुआ अभी तो वह दिन आने वाले हैं जब कि समाज को वेद में भी मिलावट देख पड़ेगी। आर्य

समाज ने श्राद्ध के श्लोक मनुस्मृति में प्रक्षिप्त माने हैं समाज ने यह समझा है कि श्राद्ध प्रकरण माल चबाने के लिये पोप लोगों ने मनु में मिला दिया है। जिस श्राद्ध प्रकरण को समाज ने प्रक्षिप्त माना उसी श्राद्ध प्रकरण को वेद के ५०० मंत्र कह रहे हैं ५०० मंत्रों में से एक मंत्र मैं लिखता हूं उसको आप देखना। श्राद्ध करने वाला प्रथम अग्नि से प्रार्थना करता है कि—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धाये चोद्धिताः।
सर्वांस्ता नग्न आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥

अ० का० १८ मं० २ मंत्र ३४

हे अग्ने जो पितर गाड़े गये जो पड़े रह गये और जो अग्नि में जला दिये गये जो उद्धित फेंके गये उन सबको हवि भक्षण के लिये बुला ला।

कहिये इस मन्त्र में कहे पितर जीवित हैं या मृतक। यहां पर जरा आप ही विचार लें कि वह जीवित पितर कौन हैं जो गाड़े गये हैं और जो पड़े रह गये हैं। क्या किसी देश या जाति में पितर जीवित ही गाड़ दिये जाते हैं आज तक तो यह रिवाज कहीं पर है नहीं शायद अब नये सभ्य इसको करते हों द्वितीय क्या जीवित पितर पड़े रह गये क्या जीवित भी पड़े रह जाते हैं पितर हैं कि भूसा और जरा उन पितरों को तो बतलावो वह कौन हैं जो जीवित ही जला दिये गये हों मेरी समझ में ऐसा श्राद्ध तो किसी देश और किसी जमाने में न हुआ होगा कि जिस में जीवित ही पितर जला दिये जावें यही तो नये वेदपाठियों की पालसी है कि श्राद्ध बतलाकर पितरों की हत्या करें खैर—

इतनी बात अच्छी है कि राज्य दयालु गवर्नमेंट का है कि जिसके राज्य में कोई किसी को सता नहीं सकता नहीं तो अब तक क्या था श्राद्ध के लिये सब पितर अग्नि में जला दिए जाते फिर वह पितर कौन हैं जो फेंक दिए गये क्या जीवित पितरों को बाहर भी फेंक दिया जाया करता है? यदि यह वैदिकजीवित पितरों का श्राद्ध जारी होगया तो बड़ा धर्म बढ़ेगा और जब मरे का श्राद्ध मानते हैं तब ठीक हो जाता है क्योंकि या तो पितर पड़े ही रह गये होंगे और या चिता में जलाये गये होंगे या फिर द्रव्य की कमी से फेंक ही दिये गये होंगे। इस मन्त्र के अर्थ को जीवित पितरों में कैसे घटाओगे (सङ्गति बिठलाओगे) जरा इस का भी

तो कुछ उत्तर मिले, बटलोही में एक ही चावल टटोला जाया करता है बस बानगी तो जीवित पितरों के श्राद्ध की आगई क्या अब भी जीवित पितरों का ही श्राद्ध माना जावेगा। इस मन्त्र में कहे मृतक पितरों के श्राद्ध को न मानना वेद से साफ २ इन्कार करना है अब यह अंधेर बहुत दिन चल नहीं सकता या तो आर्यसमाज को मृतक श्राद्ध ही मानना होगा और नहीं तो वेद से ही इन्कार करना होगा।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि वह पुराणों के समान जान बूझ कर ग्रन्थ का ग्रन्थ ही तो अनार्ष नहीं। भाषा ग्रन्थ मात्र को स्वामीजी ने त्याज्य नहीं लिखा, सत्यार्थ प्र० खोल कर देखिये पृ० ७१ पं० २७ में यह लिखा है कि "रुक्मिणी मङ्गलादि और सब भाषाग्रन्थ" इस लिखने से स्पष्ट विदित होता है कि रुक्मिणी मङ्गल के सदृश श्रीकृष्ण महाराय के शुद्ध चरित्रों को अश्लील अयुक्त रीति पर वर्णन करने वाले ही भाषाग्रन्थ त्याज्य हैं न कि सत्यार्थप्रकाशादि उत्तम ग्रन्थ रुक्मिणी मंगल आदि सब भाषा ग्रन्थ का मतलब रुक्मिणी मंगल या उसके सदृश समझना यह पं० तुलसीराम की खुल्लमखुल्ला हठधर्मी है सब का मतलब तो यही होता है कि जितने भाषा ग्रन्थ हैं नहीं मालूम सब का अर्थ दो एक या रुक्मिणी मंगल के सदृश आप कैसे करते हैं। फिर रुक्मिणी मंगल में भगवान श्रीकृष्ण को क्या कलंक लगा दिया यही लिखा है कि रुक्मिणी का हरण किया यह तो संस्कृत ग्रन्थों में भी लिखा है फिर भाषा के ग्रन्थों से क्या दुश्मनी है रुक्मिणी मंगल कोई प्रमाणिक ग्रन्थ नहीं है तथापि उसको मिथ्या दोष लगाना क्या यही स्वामी दयानन्द का महर्षित्व है पं० तुलसीराम तुलसीकृत रामायण को दबा गये। स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि तुलसीकृत रामायण को मत मानो पं० ज्वालाप्रसादजी ने लिखा कि इसमें क्या असत शिक्षा है कि जिस से न मानें तुलसीकृत रामायण के मानने से मूर्ति पूजा और अवतार आदि विषय का ज्ञान होगा और फिर वह पुरुष स्वामी दयानन्द के जाल में फँस नहीं सकता इस कारण से दयानन्द ने इसको बुरा बतलाया है यदि कोई दूसरा कारण होता तो उसको स्वामी दयानन्द स्वतः लिखते या पं० तुलसीराम लिखते मेरठीय पंडित तो तुलसीकृत रामायण पर पूरे ही मौनी बाबा बन गये।

जिसकी बदौलत हजारों पतिव्रता स्त्रियों का धर्म नष्ट होगया जिसकी करामात से आज ब्राह्मण जाति भंगी और ईसाई मुसलमानों के साथ होटलों में मांस और

शराब का मजा उड़ाती है जिस पुस्तक से आज करोड़ों मनुष्य घृणा करते हैं जिस को अशुद्ध समझ कर आर्यसमाजी प्रत्येक आवृत्ति में काट छांट करके उसका शरीर बदलते हैं जिसके अन्याय को देख कर पं० बद्रीदत्त आर्यसमाजी आदि को उसका खण्डन करना पड़ा जिसकी बदौलत आर्यसमाज में घास मांस पार्टी हो गई जिसके महत्व से बाबू और ब्राह्मण पार्टी बन कर आर्यसमाज में दुश्मनी फैली जिसको पेशावर की दो अदालतों ने व्यभिचार फैलाने वाला यह ग्रन्थ है ऐसा फैसला दे दिया उस सत्यार्थप्रकाश को उत्तम और धर्म ग्रन्थ मानना मनुष्यों की आंखों में दिन दोपहरी धूल झोकना है जो पं० तुलसीराम के लिये अयोग्य और उनके पाण्डित्य में धब्बा लगाने वाला है।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी मुहूर्त का खण्डन करते हैं हम इसके ऊपर अपनी तरफ से कुछ भी नहीं लिखते पाठकों से केवल यह प्रार्थना करते हैं कि वे पं० तुलसीराम के मुहूर्त्त खण्डन को ही पढ़ लें इस खण्डन में पं० तुलसीराम ने मुहूर्तों का मण्डन भी किया है। मण्डन कर के आप इतनी बात से खण्डन करते हैं कि मुहूर्त वही ठीक है जिस में सुगमता पड़े। इन्हों ने यह अपने मन से ही लिख दिया वेद शास्त्रादि का प्रमाण खण्डन में कुछ नहीं दिया हालांकि मिश्रजी ने सुश्रुत आदि का प्रमाण भी दिया किन्तु पं० तुलसीराम ने सुश्रुत आदि को चुटकियों में ही उड़ा दिया। इस खण्डन को कोई भी सभ्य मनुष्य खण्डन नहीं कह सकता और न यह खण्डन खण्डन कहलाने के योग्य है यदि आर्यसमाज इसको खण्डन मानती है तो फिर हम भी कहते हैं कि तुम्हारा सत्यार्थप्रकाश अधार्मिक है और पाप फैलाने वाला है कोकशास्त्र है इस लिये अमान्य है यदि आर्यसमाज हमारे इस लेख पर सत्यार्थप्रकाश का खण्डन समझ कर उसको छोड़ दे तो फिर हम भी समझ लें कि तुलसीराम ने मुहूर्तों का खण्डन कर दिया।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने यह लिखा था कि जो यह दशा है तो ब्राह्मणादि ग्रन्थों में भी आपके कथनानुसार असत्य है तो विषवत् होने से इनका भी त्यागन करना चाहिये इसके ऊपर पं० तुलसीराम ने दो तीन जगह कुछ थोड़ा २ लिखा है। एक तो यह कि "यह आपस्तम्ब की यज्ञ परिभाषा है" दूसरे यह कि "पूर्वा पर प्रसङ्ग देखिये" इन दोनों लेखों में आर्यसमाज के मत की जितनी पुष्टि होती है उस को आर्यसमाजी ही समझते होंगे हम तो यह समझे हैं कि पं० तुलसीराम नाहक

में भास्कर प्रकाश के पन्ने काले कर रहे हैं और उस में ऐसा एक भी वाक्य नहीं कि जिससे दयानन्द के लेख की पुष्टि हो या मिश्र ज्वालाप्रसाद का पक्ष गिरता हो और हमें कलम उठानी पड़ती हो।

स्वामी दयानन्दजी ने प्रमाणिक ग्रन्थों में उपाङ्ग भी लिये है आज आर्यसमाज में करीब दो लाख के आर्यसमाजी हैं किन्तु शोक के साथ लिखना पड़ता है कि उन दो लाख में से एक को भी यह पता न लगा कि उपाङ्ग किस को कहते हैं इससे मालूम होता है कि आर्यसमाजी जबरन ही आर्यसमाजी बनना चाहते हैं यह बिना पढ़े ही इतने पण्डित हो गये हैं कि अब इनको ग्रन्थ देखने की कोई आवश्यकताही नहीं रही यदि ये उपाङ्गों का ज्ञान कर लेते तो फिर इन को सनातन धर्म के ऊपर कोई भी शंका न रहती और जिन पुराणों का यह रात दिन खण्डन करते हैं उनका खण्डन यह कभी स्वप्न में भी नहीं करते। आज हम आपको यह दिखलाते हैं कि उपाङ्ग किसको कहते हैं। देखिये —

"पुराणं न्यायमीमांसा धर्मशास्त्राण्युपाङ्गानि"

शब्द कल्पद्रुम कोष ।

अर्थ–पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्म शास्त्र, ये उपाङ्ग हैं।

स्वामी दयानन्दजी उपाङ्गों को प्रमाण मानते हैं उपाङ्गों में पुराण शामिल हैं स्वामी दयानन्दजी ने पुराणों को प्रमाण माना किन्तु समाज उन पुराणों का खण्डन करती है समाज को होशियारी में आकर विचार करना चाहिये जो स्वामी दयानन्द आर्यसमाज के प्रवर्तक हैं जिनको आर्यसमाज विद्वानों में उत्तम विद्वान् मानती है जिनको महर्षि की पदवी देती है किन्तु उनके प्रमाण माने उपाङ्गों को प्रमाण नहीं मानती यह क्या बात है ? बात यही है कि स्वामी दयानन्द को विद्वान महर्षि आदि अवश्य मानते हैं किन्तु साथही साथ प्रत्येक आर्यसमाजी यह भी मानता है कि जितना विद्वान् जितना ज्ञाता मैं हूं इतना ज्ञाता आज तक पृथिवी पर न व्यास हुआ न बालमीकि। नवीरजानन्दन दयानन्द आर्यसमाजी दयानन्द की उस बात को मानेंगे कि जो उनके मन में उत्तम मजेदार मालूम होगी जिस बात को मन नहीं मानेगा वह हर्गिज २ न मानी जावेगी। स्वामी दयानन्द महर्षि थे तो क्या इससे यह मानी हैं कि वे आज कल के आर्यसमाजियों से विद्वान् थे वह तो सैकड़ों बाते ऐसी लिख गये जिनको आर्यसमाजी नहीं मानते। जब कि स्वामी दयानन्द को आर्यसमाज

विद्वान नहीं समझती, उनके लिखे को भी सत्य नहीं मानती फिर कालूराम या पं० ज्वालाप्रसादजी के समझाने पर क्या मानेगी। समाज माने या न माने किन्तु स्वामी दयानन्दजी ने तो पुराणों को प्रमाण माना है प्रत्येक शास्त्रार्थ में समाज को अपने धर्म पुस्तक पुराण मानने होंगे यदि समाज पुराणों से इन्कार करेगी तो उस को यह लिख देना होगा कि हम स्वामी दयानन्द की एक भी बात नहीं मानेंगे। अब यह अन्धेर नहीं चलेगा कि जब मनपसन्द मानने योग्य लेख आगया तब तो उसको महर्षि और आप्त बना दिया और नहीं तो दयानन्द भी मनुष्य थे उनसे भी गलती होना सम्भव है ऐसी २ बातें बनाकर स्वामीजी के गुरू बन बैठें।

पुराण विषय।

काल के हेर फेर से यह शताब्दी कुछ ऐसी आगई है कि जिसमें प्रत्येक मनुष्य अपने को बुद्धिमान, लायक और देशोद्धारक समझने लगा है इसी परही समाप्ति नहीं कि केवल अपने को ही बुद्धिमान समझता हो किन्तु साथही साथ दूसरों को बेवकूफ समझने का विचार भी अति पुष्ट होगया है इसी कारण से आज प्रत्येक लेख और प्रत्येक पुस्तक पर एतराज होते हैं।

इसके अलावा एक और भी खूबी मनुष्यों में आगई कि इनके एतराजों के उत्तर भी दे दिये जावें इनकी चाल भी बन्द करदी जावे तथापि ये मानने को तैयार नहीं इसमें प्रधान कारण यह है कि मनुष्यों के दिमाग में यह भर गया है कि संसार का कर्ता ईश्वर वगैर: कोई है नहीं इसको नेचर बनाती है और ईश्वर का मानना यह मूर्ख ओल्ड लोगों का वाहियात ढकोसला है इसी कारण से आज मनुष्य धर्म का नाम सुनकर दूर भागता है इसी कारण से आज मनुष्यों का धर्म पर विश्वास नहीं आज मनुष्य यही चाहता है कि किसी प्रकार धर्म का पचड़ा दूर हो और मन माने गुलछर्रे उड़ें ऐसे समय में संस्कृत ज्ञाताओं का यह काम है कि वे लेकचर देकर या लेख लिखकर मनुष्य समुदाय को धर्म पर लावें और उनके अन्दर वे ऐसे भाव पैदा करें कि जिनसे इसको ईश्वर सत्ता का ज्ञान हो और यह मनुष्य समुदाय अपने जीवन को पवित्र जीवन बनावें किन्तु संस्कृत वेत्ताओं में से पं० तुलसीराम उन्हीं के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। आप कहीं पर तो स्मृति का खण्डन करते हैं, कहीं पर वेद का, कहीं पर ईश्वर का और कहीं पर पुराण का। आज पं० तुलसीराम

का लेख पुराण खण्डन पर चलता है जिन पुराणों को स्वामी दयानन्दजी उपाङ्ग मान कर प्रमाण मानें आज उन्हीं पुराणों का पं० तुलसीराम वह खण्डन करेंगे कि स्वामी दयानन्द की भी बुद्धि ठिकाने आ जावेगी।

सबसे प्रथम आप लिखते हैं कि "पुराणों में विष" जिसका अर्थ यह है कि पुराणों में ज़हर। यह लिख कर आप लिखते हैं "तिलकों में विरोध" इस हैडिंग के पश्चात् पद्म पुराण का श्लोक देते हैं वह यह है—

उर्ध्व पुण्ड्र विहीनस्य श्मशान सदृशं मुखम्।
अवलोक्य मुखं तेषा मादित्य मवलोकयेत्॥ १॥

अर्थ—जो लम्बा तिलक (वैष्णवी मार्गका) धारण नहीं करता उसका मुंह श्मशान के तुल्य है अतएव देखने योग्य नहीं कदाचित देख पड़े तो इसका प्रायश्चित्त करे अर्थात् तुरन्त सूर्य का दर्शन कर लेवे॥ १॥

तृतीय श्लोक शिव पुराण का यह दिखलाते हैं—

विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्ष धारणम्।
नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजे दन्त्यजं यथा॥ ३॥

अर्थ—विभूति (भस्म) जिसके माथे पर नहीं और अङ्ग में रुद्राक्ष नहीं पहिने मुंह से शिव शिव ऐसा न कहे वह चाण्डाल की नाईं त्याज्य है॥ ३॥

इन दो श्लोकों से पं० तुलसीराम यह सिद्ध करते हैं कि प्रथम श्लोक में तो उर्ध्व पुराड (वैष्णवी) तिलक लगाना लिखा और तृतीय श्लोक में भस्म लगानी लिखी एक बात लिखते दो तिलक के लिखने से भेद आ गया मालूम होता है पं० तुलसीराम भेद से कुछ देश हानि समझते हों।

इन दो श्लोकों में से एक में वैष्णवी तिलक का लगाना लिखा और दूसरे में भस्म किन्तु प्रथम श्लोक में भस्म की निन्दा नहीं और न तीसरे में वैष्णवी तिलक की ही निन्दा है अभिप्राय यह है कि यातो वैष्णवी तिलक लगाओ नहीं तो भस्म कुछ न कुछ मस्तक पर अवश्य लगाओ कोरे नमस्ते मत बन जाओ सूने मस्तक से बाजारों में मत घूमो। इस में दो तिलक का विधान है भेद क्या हो गया यदि ऐसा

ही भेद माना जावेगा तो फिर मनु में भी भेद आ जावेगा यहां पर द्विजों में यज्ञोपवीत, कटी सूत्र, दण्ड, वस्त्रादि भिन्न भिन्न बतलाये हैं यदि इससे भेद होगा तो फिर वेद में भी भेद आ जावेगा जो वेद प्रथम तो "द्वो सुपर्णा सयुजा सखाय" श्रुति से जीव ब्रह्म का भेद कह रहा है और फिर "पुरुष एवेद सर्वं यद्भूतम्" आदि से अभेद कह रहा है यहां क्या करोगे जरा कोई समाजी इसका भी तो पता दे। देवभक्ति तो वेद और पुराणों ने रुचिपर रक्खी है कोई को हलवा पूरी अच्छी लगती है और कोई दाल भात में ही मग्न है जिस प्रकार भोजन में रुचि की वैचित्र्यता है इसी प्रकार भक्ति में भी जानिये जिनको विष्णु से प्रेम है वह विष्णु की भक्ति करें और उन्हीं के तिलक लगावें और जिसको शिवरूप प्रिय है वह शिवभक्त बने यह तो रुचि पर निर्भर है--

रुचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिल नाना पथजुषां।
नृणामे को गम्य स्त्वमसि पयसामर्णव इव।

जिन पुराणों पर आप भेद का कलङ्क लगाते हैं उनमें तो ब्रह्मा विष्णु शिव का स्वप्न में भी भेद नहीं भेद तो पं० तुलसीराम की बुद्धि में है पुराण तो जोर के साथ कह रहे हैं कि—

यो ब्रह्मासतु वै विष्णुर्यो विष्णु समहेश्वरः।
एकामूर्ति त्रयो देवा ब्रह्मविष्णु महेश्वराः

जो ब्रह्मा है वही विष्णु है और जो विष्णु है वही महादेव है यह ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों देव एक ही ब्रह्म की मूर्ति हैं इसी को वेद ने भी "सब्रह्मासविष्णु सरुद्रः" इत्यादि श्रुति से कहा है ये समस्त ब्रह्म के ही उपासक हैं इसको भेद कहता कौन है भेद तो बाबू पार्टी और ब्राह्मण पार्टी में है जो एक तो कहती है कि वेद मानो और दूसरी कहती है कि वेदों को छप्पर पर रक्खो ब्राह्मण चमार सब की रिश्तेदारियां करवाओ।

इसके आगे दूसरे और चौथे श्लोक को भी देखिए—

ब्राह्मण कुल जो विद्धान भस्मधारी भवेद्यदि।

वर्जये त्तादृशं देवि मद्योच्छिष्टं घटंयथा ॥

अर्थ—ब्राह्मण कुलोत्पन्न जो विद्वान होकर भस्म धारण करे उसको शराब के झूठे बासन की नाईं त्याग देवे।

यस्तु सन्तप्त शङ्खादि लिङ्ग चिन्ह धरो नरः।
स सर्व यातना भोगी चाण्डालो जन्म कोटिषु ॥

अर्थ—जो मनुष्य तपे हुये शंखादिकों के चिन्ह को धारण करता है वह सब नरक यातनाओं को भोगता है और कोटिजन्म पर्यन्त चाण्डाल होता है।

या तो पं० तुलसीराम इन श्लोकों के अर्थ में निन्दा समझ बैठे हैं और नहीं तो जान बूझ कर शिव वैष्णवों को पुराणों से घृणा करवाने का उद्योग करते हैं इनमें नाम मात्र को भी किसी की निन्दा नहीं किन्तु इन श्लोकों का भाव यह है कि प्रत्येक मनुष्य अपने उपास्य देव और अपने ही कृत्य को सर्वोत्तम समझे ऐसा न हो कि अपने मार्ग से घृणा कर अपने उपास्य देव को छोड़ दूसरे मार्ग में चला जावे और आर्यसमाजियों के गुरू महात्मा धर्मपाल जिस प्रकार मज़हब बदलते रहते हैं इसी प्रकार कभी किसी रूप का ध्यान करें और कभी किसी के ऐसा करने पर वही हाल होता है कि "दोनों दीन से गयेरे पांड़े हलवा रहे न मांड़े" यदि एक स्थान में स्थिर होके न रहे तो फिर कहीं का भी नहीं रहता। और यदि हम समझ लें कि पं० तुलसीराम का ही अर्थ ठीक है ऐसा मानने से समस्त वेद पुराणादि की संगति ठीक नहीं बैठती संगति बिगाड़ कर जो अर्थ होता है वह अर्थ ही कहलाने के योग्य नहीं पं० तुलसीराम के अर्थ में नीचे लिखी संगतियां बिगड़ती हैं जिनसे वेद उपनिषद पुराण आदि समस्त ग्रन्थों के आशय बिगड़ जाते हैं।

(१) वेद यह कह रहा है कि "स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवः" अर्थात् वही ईश्वर ब्रह्मा है और वही विष्णु और वही रुद्र वही शिव है बस अब पुराण इसके विरुद्ध कभी न कहेंगे क्योंकि जिस विषय को वेद वर्णन करता है पुराण भी विस्तार रूप से उसी विषय को वर्णन करते हैं वेद ने अवतार "मूर्तिपूजा" श्राद्ध तीर्थ महत्व आदि जिन विषयों का वर्णन किया उनके विरुद्ध पुराणों की लेखनी नहीं चली किन्तु उन्हीं की पुष्टि पर ही पुराणों का विस्तार हुआ है यदि कोई यह कहे कि वेदों में अवतारादि कहां हैं तो इसका उत्तर यह है कि विद्वानों को तो यह

सब विषय वेदों में दिखलाई दे रहे हैं और न किसी विद्वान ने इनके लिये इनकार किया है हां अलबत्ते कुछ लोग कि जिन्हों ने वेद को तो देखा नहीं केवल स्वामी दयानन्द की लकड़ी के फेर में आ गये वही इन विषयों से शिर हिलाते हैं यदि वे इसका विचार करें तो उनको मान लेना पड़ेगा कि यह विषय वेद के हैं गरज कहने की यह है कि इन विषयों को वेद ने कहा तो पुराणों ने भी कहा पुराण हमेशा वेद के अनुकूल रहते हैं जब कि वेद ब्रह्मादि देवों की एकता कह रहा है तब फिर पुराण कैसे भेद कह सकते हैं।

(२) पं० तुलसीरामजी को यह भी खबर है कि वैष्णवों के प्रधान ग्रन्थ श्री मद्भागवत में त्रिपुरासुर के बध के समय और विषपान के समय तथा दक्ष की यज्ञ आदि आदि स्थानों में दिल तोड़ कर शङ्कर की स्तुति की गई है इसी प्रकार शैवों के प्रधान ग्रन्थ शिव पुराण में महादेव के विवाह में ही देखें कि विष्णु की कितनी स्तुति लिखी है जब एक के ग्रन्थ में दूसरे के देव की अत्यन्त स्तुति की गई है तब तो निन्दा वही मानेगा कि जो अकल के पीछे लाठी लिये फिरता हो।

(३) यदि आप सच पूछते हैं तो पुराणों में शैव तो वैष्णव हैं और वैष्णव शैव हैं इसको आप इस प्रकार समझ सकते हैं कि वैष्णवों का इष्ट देव कौन है प्रभु भगवान रामचन्द्र अथवा जगदीश्वर श्रीकृष्णचन्द्र। अच्छा देखना चाहिये कि भगवान रामचन्द्रजी तथा श्रीकृष्णचन्द्रजी ये किसके उपासक हैं? महादेव के। जब महादेव वैष्णवों के इष्ट देव का उपास्य है तब तो वैष्णवों का पहले हो चुका जब कि इनके इष्ट देव शिव हैं तब इनके शैव होने में सन्देह ही क्या है। इसी प्रकार शैवों का उपास्य देव कौन है इसके उत्तर में आप यही कहेंगे कि शिव हैं अब यदि यह सवाल किया जावे कि शङ्कर किस का भक्त है उत्तर में प्रभु राघवराम या त्रिलोकीनाथ कृष्णचन्द्र के। जब कि शैवों के इष्टदेव महादेव का इष्टदेव विष्णु है तब शैवों के इष्टदेव विष्णु पहले हो चुके जब वैष्णव सम्प्रदाय महादेव को अपने इष्टदेव का उपास्य मानती है जब कि शैव लोग भगवान विष्णु को अपने इष्टदेव का उपास्य मानते हैं जब कि एक सम्प्रदाय दूसरी सम्प्रदाय के इष्टदेव को अपने इष्टदेव से उच्चासन दे रही है तब फिर परस्पर निन्दा करती है यह बतलाना कहां तक सच है समाज ने तो इस बात का बीड़ा चबा लिया है कि झूठे कलङ्क लगा कर परस्पर में द्वेष करा कर छोड़ूंगी।

यह विषय वेद उपनिषद पुराण सभी में ठसाठस भरे पड़े हैं जब हम पं० तुलसीराम के अर्थ और भाव को सच मान लेंगे तो इन प्रकरणों की संगतियां कैसे मिलेंगी यहां खण्डन नहीं है कि कोई आर्यसमाजी कर देगा यहां पर संगति बिठलाना है कि जिसमें पाण्डित्य की आवश्यकता है यदि पं० तुलसीराम का अर्थ सत्य समझ लिया जावे तो जहां जहां पर इन प्रकरण में से कोई प्रकरण आवेगा फिर उसको प्रक्षिप्त मानना होगा और क्या उत्तर है आर्यसमाजियों की बुद्धि जहां काम नहीं देती वहां प्रक्षिप्त ही मानते हैं भाव यह है कि हमारे अर्थ से समस्त विषयों की संगति बैठ जाती है और पं० तुलसीराम के अर्थ से संगति बिगड़ती है अब पाठक विचार करलें कि कौन अर्थ ठीक है।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि—

व्यामो हाय चराचरस्य जगतश्चैते पुराणागमा
स्तां तामेवहि देवतां परत्रिका जल्पन्ति कल्पावधि।
सिद्धान्ते पुनरेक एव भगवान विष्णुस्समस्तागमा
व्यापारेषु विविचनं व्यतिकरं नित्येषु निश्चीयते॥

अर्थात् जितने पुराण हैं सब मनुष्य को भ्रम में डालने वाले हैं उनमें अनेक देव ठहराये गये हैं एक ईश्वर का निश्चय नहीं होता केवल एक भगवान विष्णु पूज्य हैं। यही तो पाण्डित्य है पुराण का एक श्लोक लेकर उसी से ही पुराणों का खण्डन कर दिया जिस प्रकार पुराणों में अनेक देव पूज्य हैं इसी प्रकार वेदों में भी अर्यमा, अश्विनीकुमार, वरुण आदि अनेक देव पूज्य हैं इनको वही जानता है जो शतपथ, या कातीयश्रोत सूत्र जानता है या जिसने यज्ञ करवाई है या सायण आदि आदि भाष्य देखे हैं इतने पर भी वेद की श्रुति एक ही ब्रह्म की उपासना करना बतलाती है तो क्या इसी हिसाब से वेद अमान्य न हो जावेगा समाज इसका क्या उत्तर देती है? जो उत्तर समाज वेद के लिए देगी वही हमारे पुराणों के लिए हो जावेगा।

किन्तु समाज ने ठीक उत्तर जब आज तक ही किसी विषय का न दिया तो अब इस विषय में ही क्या देगी हम अपने पाठकों को आयु समाप्ति तक आर्यसमाज के इन्तजार में न छोड़ कर यहां पर ही उत्तर लिखे देते हैं। शास्त्रों में योग्यता के

लिहाज़ से मनुष्य का अधिकार भेद बतलाया है प्रथम अवस्था में मनुष्य कर्मकाण्ड का अधिकारी होता है जब कर्मकाण्ड के द्वारा मन पवित्र हो जावे तब उपासना काण्ड का इसके करने से विपेक्ष निवृत्ति होती है इसके पश्चात् मनुष्य ज्ञानकाण्ड का अधिकारी होता है ज्ञानकाण्ड का अधिकारी यदि यज्ञोपवीत का त्याग करदे कि इस में क्या रक्खा है नाहक में कन्धे पर एक रस्सा सा पड़ा है इसी प्रकार वह चुटिया का भी त्याग करदे तो उसको कोई दोष नहीं और यदि कोई शास्त्र उस समय के लिये शिखा सूत्र को बुरा कहे तो क्या इस लेख को देकर हम कदापि शिखा सूत्र का त्याग कर सकते हैं ? हर्गिज नहीं । हमको दो मंजिलें बीच में रक्खी हैं वह हमसे ऊपर पहुंच गया है अब उसको अपना सिद्धान्त "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" करना पड़ेगा उसको समस्त जगत एक दृष्टि से देखना होगा इसी ऊंचे भाव को लेकर यह परलोक बना है उस समय तो हम पुराणों को वेदों को सब को ही लड़कों का खेल समझेंगे । जिस प्रकार एक लड़का मिडिल में जाता है वह जान तोड़ कर परिश्रम करता है और रोज़ की रोज़ यह कहता है कि बड़ी क्लिष्ट पढ़ाई है किन्तु वही जब ग्रेजुएट हो जाता है तब मिडिल की निन्दा करता है कि इसमें क्या रक्खा है बिना ग्रेजुएट हुये अंगरेजी की कुछ भी लियाकत नहीं होती । बस हूबहू इसी प्रकार ऊंचे भाव वाला भी यह कह सकता है कि पुराणों में क्या रक्खा है कभी किसी का पूजन बतलाते हैं कभी किसी का किन्तु विष्णु के पूजन के बिना संसार बन्धन हर्गिज २ नहीं छुटता । पुराणों के लिये ही क्या वह पुरुष तो वेद के कर्मकाण्ड आदि को भी श्रेयस्कर नहीं समझता उसकी भी निन्दा करता है ।

जिस याज्ञिक विषय में आधे से अधिक वेद की समाप्ति होती है उसी यज्ञ के लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी क्या कहते हैं ज़रा इसको भी पढ़िये—

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्य विपश्चिताः ।
वेद वादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२॥
कामात्मानः स्वर्ग परा जन्म कर्म फलप्रदाम् ।
क्रिया विशेष बहुलां भोगैश्वर्य गतिं प्रति ॥ ४३ ॥

भोगैश्वर्य प्रसक्तानां तयापहृत चेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धि समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥

(श्री० भ० गीता अध्याय २)

हे अर्जुन जो अज्ञानी लोग वेदों के बाद में लगे हुए कामनाओं से मन भरे हुए स्वर्ग तकही पहुंच रखने वाले भोग और ऐश्वर्य के पाने के लिये कर्मों के फल जन्म देने वाली बहुत प्रकार की क्रियायें बताने वाली यह (प्रसिद्ध) फूली २ बातें करते हैं और कहते हैं कि इसके सिवाय और कुछ नहीं है उन भोग और ऐश्वर्य में मन लगाने वालों की जिनका ऐसी बातों में चित्त खेंच रक्खा है बुद्धि निश्चय में आरूढ़ होकर समाधि में नहीं लगती ।

आशय स्पष्ट है कि मनुष्य कामात्मा हैं और सदा अपनेही भोग के वास्ते तरह २ के कर्म करते रहते हैं उनकी बुद्धि अव्यवसायात्मिका है एकत्व पर आरूढ़ नहीं होती जब एकत्व पर आरूढ़ नहीं होती तो एकाग्र होकर समाधि में कैसे लग सकती है जब समाधि नहीं तो ज्ञान कहां जब ज्ञान नहीं तो मोक्ष कहां । यहां पर साक्षात् वेद और उसके कर्म काण्ड दोनों की निन्दा है इस से अधिक निन्दा भी पाई जाती है । सुनिये—

त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।

श्री० भ० गी० अ० २ श्लो० ४५

अर्थ—हे अर्जुन ! वेदों का विषय त्रैगुण्य संसार है किन्तु तू निष्काम हो जा ।

यह सब उसी के लिये हैं जो विधि निषेध से बाहर हो कर्म फल की इच्छा का त्यागकर चुका हो । जिसप्रकार मिडिल की निन्दा केवल ग्रेजुएट के लिये है किन्तु जो मिडिल क्लास में पहुंचनेवाले हैं या जो पहुंच गये किन्तु पास नहीं किया उन के लिये वह मिडिल की पढ़ाई हितकर है इसी प्रकार यह समस्त भाव उसी पुरुष के लिये हैं जो कर्म फल को त्यागकर विधि निषेध से बाहर होगया और जिनके बालक अन्न बिना भूखे मरते हैं और उनके पोषण में रात दिन गुजरता है या यों कहिये कि जो कर्म फल की इच्छा रखते हैं उन के लिये यह श्लोक मानना यह पं० तुलसीराम की यातो भारी भूल है और नहीं तो पुराणों को झूठे कलंक लगाने का विचार है ।

अब इसके आगे पं० तुलसीराम जी "पुराणों में देवताओं की निन्दा" हैडिंग देकर श्रीमद्भागवत के दो श्लोक लिखते हैं—

भवव्रत धरा येच ये चतान्समनुव्रताः ।
पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्र परिपन्थिनः ॥
मुमूक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायण कला शान्ता भजन्तिह्यनसूयवः ॥

"सत्येनास्ति भयंकश्चित" के सिद्धान्तानुकूल जब पुराणों में कलङ्क है ही नहीं तो फिर लगा कौन सकता है । पण्डित तुलसीरामजी के ही लगाये कलङ्क को देख लीजिये पण्डितजी ने "भवव्रत धरा येच येच तान्स मनुव्रता" इस श्लोकसे श्रीमद्भागवत में महादेव की निन्दा दिखलाई है । क्या सच ही यहां पर महादेव की निन्दा है आप संक्षेप से इस इतिहास को सुनलें तो निन्दा का नाम तक भी न रह जावेगा । इसकी कथा श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में वर्णन की गई है उसी कथा को संक्षिप्त रूप में मैं यहां लिखता हूं सुनिये—

एक समय दक्ष जो महादेवजी के श्वसुर थे, उन्होंने विश्वसृज् यज्ञ की । उस यज्ञ के मण्डप में ब्रह्मा तथा इन्द्रादि देव और समस्त ऋषि और प्रजा के प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित सज्जन आकर उपस्थित हुये । दक्ष प्रजापति था इस कारण इसका मान्य, इसकी गौरवता उच्च श्रेणी में गिनी जाती थी । इसके आने से प्रथम सब लोग आ गये थे "दर्बारों का यह नियम होता है कि जब सब लोग आ जावें तब राजा आता है । क्योंकि यदि पहले राजा आ जावे तो प्रतिष्ठित सज्जनों के आने पर उसको बार बार उठ कर ताजीम देनी पड़ती है । इस कारण से सब लोग पहिले ही से आ जाते हैं, सब के बाद राजा आता है जब राजा आता है उस समय सब उठ बैठते हैं और सब की ताज़ीम एक साथ हो जाती है ।" इस नियम के अनुसार सब आकर बैठ गये थे बाद में दक्ष प्रजापति आये । दक्षको देखकर जो लोग उससे हीन श्रेणी के थे सब उठ बैठे । दक्ष ब्रह्मा को प्रणामकर और इशारे से सब को प्रत्यभिवादन कर ब्रह्मा के पास अपने आसन पर बैठ गया, बैठ कर जो पीछे को देखा तो महादेव दिखाई दिये । महादेव को देख कर इनको बहुत क्रोध आ गया । इन्होंने अपने मन में समझा कि जब यह मेरा जामात्र है तो इसको उचित था कि यह

मुझको प्रणाम करे। "जामात्र का श्वसुर को प्रणाम करना स्मृति विहित है और अग्रवाल वैश्य तथा गौड़ आदि ब्राह्मणों में अब भी प्रथा है कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में जो जामात्र को श्वसुर प्रणाम करता है यहां पर विश्वों पर व्यवहार है।" इसने समझा कि जब यह मेरा जामात्र है और जामात्र को प्रणाम करना लिखा है और इसने जो हमको प्रणाम नहीं किया इसको घमण्ड आगया है। यहांपर व्यासजी ने महादेव की प्रशंसा भी अधिक की है और दक्षको इतना क्रोध आगया कि महादेव को शाप देकर भी शान्त न हुआ। आखिर मारे क्रोधके दक्ष वहां से उठ गये। इस शाप को सुनकर नन्दी को भी क्रोध आगया उसने दक्ष को यह शाप दिया कि "यह जगत के ईश महादेव को मनुष्य जानकर उनसे द्रोह करता है इस कारण तत्व "असली सिद्धान्त' से विमुख हो जावे" नन्दी ने इत्यादि और भी बहुत से शाप दिये हैं। दक्ष को शाप और दक्षके यज्ञ कर्त्ताओं को भी शाप दिया इन शापों को सुनकर भृगु को क्रोध उठ आया कि इस ने यज्ञकर्ताओं को क्यों शाप दिया। दक्ष का तो अपराध था किन्तु यज्ञकर्ताओंका तो कुछ अपराध भी नहीं। बिना अपराध शाप देनेवाला अवश्य दण्ड-नीय है ऐसा विचार करते हुये भृगु को क्रोध आगया और उन्होंने क्रोधके वशीभूत होकर यह शाप दिया कि—

भवव्रतधरा येच येच तान्समनुव्रताः।
पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्र परिपन्थिनः॥

यहां तक कि महादेव इन शापों को सुन कर उस स्थान से उठ कर चले भी गये। महादेव के चले जाने के पश्चात् यज्ञका प्रारम्भ हुआ और अपने समयपर वह यज्ञ समाप्त हुआ। यह कथा श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के द्वितीय अध्याय में है।

इसके आगे दक्ष ने द्वितीय यज्ञ का प्रारम्भ किया इस यज्ञ में सती ने शरीर त्याग किया। फिर महादेव के यहां से बीरभद्र ने पहुंच कर दक्ष की यज्ञ का विध्वंस कर दिया। दक्ष भी मर गया समस्त देव अङ्ग भङ्ग होकर ब्रह्मा के पास पहुंचे। उस समय देवों को ब्रह्मा ने समझाया है कि महादेव! जगत के रचना, पालन, संहार करने वाले अज अविनाशी ब्रह्म हैं। उनका अपमान देखने से तुमको यह दण्ड मिला है अब तुम उन्हीं की शरण जाओ, उनके कोई दूसरी बात नहीं। वह देखते ही तुम लोगों का कल्याण करेंगे। "वास्तव में इन अध्यायों में महा-देव की बहुत प्रशंसा की गई है और उनको जगत प्रभु स्वामी बतलाया गया है।"

ब्रह्मा को साथ लेकर सब देव महादेव के पास गये। शङ्करजी इनके साथ आये यज्ञ को पूर्ण करवाया इस समय सब के शाप छूट गये। देखिये श्रीमद्भागवत अब यहां पर विचार करने का अवसर है कि इस स्थान में जो जगह जगह पर महादेव की प्रशंसा लिखी है उसको तो पं० तुलसीराम ने देखा नहीं और शाप का श्लोक देख लिया। उस शाप के श्लोक से महादेव की निन्दा साबित करना चाहते हैं फिर महादेव ने जहां पर शाप दूर करने के उपाय और किसी किसी के शाप दूर किये उसको भी नहीं देखा। क्रोध के वशीभूत होकर भृगु ने जो शाप दिया केवल वही देखा। यदि आज कोई मनुष्य क्रोध के वशीभूत होकर किसी योग्य पुरुष को कोई कलङ्क लगावे तो क्या वास्तव में वह कलङ्क उनमें रहेंगे। गर्ज यह है कि यह महादेव की निन्दा नहीं किन्तु क्रुद्ध भृगु ने महादेव के अनुयायियों की निन्दा की है महादेव की निन्दा तो इस श्लोक में कहीं पर भी नहीं है। जब इस श्लोक में महादेव की निन्दा है ही नहीं तब उस श्लोक से निन्दा साबित करना पबलिक के सामने प्रतिष्ठा को अधः स्थान में लेजानेवाला नहीं तो और क्या है, अभिप्राय यह है कि इस श्लोक में महादेव की निन्दा नाम मात्र को नहीं है और पं० तुलसीराम जी चाहते हैं कि मनुष्य हिन्दूधर्म की तरफ से घृणा करके इसको छोड़ दें ताकि फिर धर्मबन्धन न रहे। इसमें पं० तुलसीराम ने एक और भी चालाकी की। वह यह कि इस श्लोक के आगे एक श्लोक भागवत के प्रथम स्कन्ध का लगा दिया और दोनों को मिलाकर एक अर्थ कर दिया। आप पिछले श्लोक से निन्दा दिखला कर दूसरे श्लोक का अर्थ करते हुए "इसलिये" इतना शब्द अपनी तरफ से मिलाकर दोनों का एक अर्थ करते हैं क्या इसी का नाम इन्साफ है? कहीं की ईन्ट कहीं का रोड़ा–भानमती ने कुनबा जोड़ा"–"टाट की अँगिया मूंज की तनी–कहो मेरे बलमा कैसी बनी" एक श्लोक चतुर्थ स्कन्ध का और दूसरा प्रथम का। पाठकों को पं० तुलसीरामजी की इस कर्तव्यता पर ध्यान देना चाहिये और जरा इस धार्मिक वृत्ति पर गौर करना चाहिये कि समाज किस छल कपट से दूसरे धर्मों पर मिथ्या दोष लगा कर अपनी विजय चाहती है।

चतुर्थ स्कन्ध के श्लोक "भवव्रतधरा" का अर्थ पाठक देख चुके अब प्रथम स्कन्ध के श्लोक पर विचार करें—

मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतीनथ।

नारायण कलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥
रजस्तमः प्रकृतयः समशीला भजन्तिवै ।
पितृ भूत प्रजेशादीन श्रियैश्वर्य प्रजेप्सवः ॥

श्री० भा० प्र० अ० २

अर्थ—मुक्ति की इच्छा रखने वाले सज्जन घोर रूपवाले भूतपतियों (पितृ प्रजेशादि) को छोड़ कर किसी की भी निन्दा से सम्बन्ध न रख शान्त होकर नारायण के रूपों का भजन करते हैं। जिनकी सात्विकी बृत्ति नहीं किन्तु रजस्तम प्रकृति हैं वे द्रव्य, ऐश्वर्य प्रजा की इच्छा से समान शील (स्वभाव) वाले पितृ भूत प्रजेशादि की उपासना करते हैं ।

इस श्लोकमें तो किसी की भी निन्दा नहीं किन्तु यह दिखलाया है कि सात्विकी बृत्ति वाले मोक्ष के लिये नारायण के रूपों की उपासना करते हैं और रज तम प्रकृति वाले द्रव्य ऐश्वर्य पुत्रादि के लिये पितृ भूत प्रजेशादि की उपासना करते हैं नहीं मालूम पं० तुलसीरामको निन्दा कहां से दीख गई फिर "भूतपतीन" इस बहुबचनान्त का अर्थ एकबचन महादेव कैसे कर लिया? पक्षपात वह वस्तु है कि जिस ने व्याकरण को भी धता बुलाया "भूतपतीन्" का अर्थ यदि पं० तुलसीरामजी को नहीं आता था तो श्रीमद्भागवत की प्रसिद्ध टीका श्रीधरी ही देख लेते उसमें लिखा है "भूतय तीनिपितृ प्रजेशादीना मुप लक्षणम्" अर्थात् भूतपति इस बहुवचनान्त शब्द से पितृ प्रजेशादि लेना द्वितीय यह है कि दूसरे श्लोक के मूल में "पितृ भूत प्रजेशादीन्" पद व्यासजी ने भी डाल दिया इन सब को न देख कर "भूतपतीन्" का अर्थ महादेव जबर्दस्ती करलेना सनातन धर्म पर झूठा कलंक लगाना पं० तुलसी राम की प्रकृति का परिचय दे रहा है। मेरे प्यारे समाजियों तुम जरा तो होश में आजावो विचार कर देखो "सब्रह्मा सविष्णु" आदि वेद मन्त्र से महादेव तो नारायण कला हैं फिर महादेव अर्थ क्यों कर होगा। हाय खुदगर्जी तेरा बुरा हो न जानै तू इन समाजियों से क्या २ अनर्थ करवावेगी ।

आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि—

येऽन्यं देवं परत्वेन वदन्त्य ज्ञान मोहिताः ।
नारायणज्जगन्नाथात्तेवैपाखण्डिनो नराः ॥

यह श्लोक लिख कर पं० तुलसीराम बतलाते हैं अर्थ यह है कि जो लोग किसी दूसरे देवता को नारायण से जो जगत का स्वामी है बड़ा करके मानते हैं सो अज्ञानी हैं और लोक में उनको पाखण्डी कहते हैं ।

पं० तुलसीरामजी का अर्थ विलक्षण ही हुआ करता है जब तक यह अपनी तरफ से कुछ न कुछ न मिलालें तब तक इनका अर्थ ही नहीं होता जिस प्रकार वेद भाष्य में अद्भुत २ अर्थ मिला कर सामवेद से मनुष्यों को घृणा करादी यह इसी प्रकार पुराणों से भी करवाना चाहते हैं इस समय वेद के अर्थ से तो कोई प्रयोजन नहीं उसका विचार कभी फिर किया जावेगा किन्तु आज का विचार ऊपर के श्लोक के ऊपर है हम पूछते हैं कि इसके अर्थ में जो "बड़ा करके मानते हैं" यह इबारत लिखी है यह श्लोक के किन अक्षरों का अर्थ है क्या कोई समाजी इसका उत्तर दे सकता है कहीं चालाकियों के भी उत्तर हुए हैं अपनी तरफ से अर्थ गढ़के श्लोक के अर्थ को छोड़ के दोष देना भी समाज की प्रतिष्ठाकारक हो सकता है देखिये हम अर्थ लिखते हैं—

अर्थ—(ये) जो (अज्ञान मोहिताः) अज्ञानी (नारायण जगन्नाथात्) जगत के स्वामी नारायण से (अन्यं देवं) अन्य देव को (परत्वेन) भिन्नता से (वदन्ति) कहते हैं (तेवै) वे (नराः) मनुष्य (पाखण्डिनः) पाखण्डी हैं ।

श्लोक तो नारायण और समस्त देवों से अभेद बतलाता है श्लोक तो "सब्रह्मा सविष्णु सरुद्रः" श्रुति का अनुवाद करता है और पं० तुलसीराम कहते हैं कि इस श्लोक में नारायण से भिन्न देवोंकी निन्दा लिखी है दयानन्द की कृपा से आर्यसमाजियों को स्तुति के स्थान में भी निन्दा ही दीखती है इस श्लोक में देव निन्दा बतलाना कैसा है जैसा कि बालू में घृत निकालना ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं—

एषदेवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ।
नतस्मात्परमङ्किञ्चित् पदं समधिगम्यते ॥

अर्थ यह है कि—महादेव को महान् ईश्वर जानना चाहिये और यह मत समझो कि उससे कोई बड़ा है ।

पं० तुलसीराम की दृष्टि में इस श्लोक में निन्दा है क्योंकि इस में यह लिखा है कि महादेव से बड़ा कोई नहीं यदि कोई आर्यसमाजी यह कहदे कि ईश्वर से कोई बड़ा नहीं तो पं० तुलसीराम की दृष्टि में निन्दा होगई । महादेव विष्णु ब्रह्मा यह समस्त ईश्वर के नाम हैं वास्तव में ईश्वर सब से बड़ा है पं० तुलसीराम महादेव को ईश्वर से भिन्न समझते हैं यह उनकी भूल है ईश्वर एक है और उस के नाम तथा रूप अनेक हैं ।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि—

विष्णु दर्शन मात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते ।
शिव द्रोहान्न सन्देहो नरकं याति दारुणम् ॥
तस्माद्वै विष्णु नामापि न वक्तव्यं कदाचन ॥
यस्तु नारायणं देवं ब्रह्म रुद्रादि दैवतैः ।
समं सर्वै निरीक्षेत स पाखण्डी भवेत्सदा ॥
किमत्र बहु नोक्तेन ब्राह्मणायेप्य वैष्णवाः ।
न स्पृष्टव्या न दृष्टव्या न वक्तव्या कदाचन ॥
वासुदेवं परित्यज्य येऽन्यं देव मुपासते ।
तृषतो जान्हवी तीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥

इन श्लोकों में जो भेद था निन्दा कही जाती है यह भेद या निन्दा नहीं किन्तु उपास्यदेवकी उत्कर्षता (उत्तमता) बतलाई गई है इसके ऊपर केवल यही वक्तव्य है कि सांसारिक दृष्टि (व्यवहार सत्ता) में मानुषी प्रकृति में स्वाभाविक भिन्नता देखने में आती है । विद्वान् और मूर्ख कोई भी इस भिन्नता से बच नहीं सकता, गंभीर और दूरदर्शी मनुष्य इस भिन्नता को पद पद पर अवलोकन करते हैं जड़ और चेतन सभी पर इसका प्रभाव है । मनुष्य का एक कार्य दूसरे से भिन्न है भिन्नता के गोद में लालन और पालन पाकर भिन्नता के दृश्यों में फँसकर यह कब हो सकता है कि आरम्भ में ही हमारे उपासना सम्बन्धी विचार इस भिन्नता से बचे रहें । भिन्नता से जकड़े हुए मनुष्य का भिन्नता से मुक्त होना हँसी खेल नहीं हैं इस भिन्नता की यहां पर ही समाप्ति नहीं किन्तु वेद भगवान् ईश्वर के विषय में भी

इस भिन्नता को स्थान दे रहा है उस एक ही ईश्वर को कहीं पर "एकोरुद्रः" और कहीं "सहस्रधारुद्रः" कहीं पर "आदित्यवर्ण" और अनन्त शिर नेत्रादि अवयववान् और कहीं पर "अपाणि पादः" आदि भेद से वर्णन कर रहा है इस स्थल पर पुराण भी उसी भेद का प्रतिपादन कर रहे हैं। यदि कोई यह प्रश्न करे कि इस भेद और निन्दा की आवश्यकता क्या थी इसका उत्तर यह है कि आदर्श सिद्धान्तानुकूल अभ्यासी को यही लाभदायक हो सकता है कि जिसमें अभ्यासी को जिस कार्य में प्रेरित किया जावे उस अभ्यासी का इष्ट तथा जीवन फल उसकी बुद्धि उसके प्राण का मुख्य फल बतला दिया जावे कि जिसमें उसका आत्मा उसी में नितान्त संलग्न हो। साथ ही यह भी आवश्यकीय है कि उसको दूसरी तरफ से नितान्त बचाया जावे जिससे कि उसके विचार द्विविध न होने पावें। इसी सिद्धान्त को आगे रख कर उपासक के उपास्य देव को ही सर्वोत्तम सर्वफल प्रदातृत्व कहा है आशय यह है कि उपासक को उसी के उपास्य देव की उत्तमता दिखाई। व्यास जी को संदेह था कि अस्थिर चित्त जीव भिन्न भिन्न रूप में भटक कर कहीं यह कहावत चरितार्थ न कर बैठे कि—

इधर के रहे न उधर के।

पुराणों में इसीलिए दूसरे रूपों की हीनता दिखलाई गई है कोई भी काम क्यों न हो चाहे वह सांसारिक हो या पारमार्थिक उसी समय पूर्णोन्नति के परिणाम में जा सकता जब कि कार्यकर्ता का मन प्रतिक्षण उसी में लगा रहे आज संसार में भी प्रत्यक्ष दिखलाई दे रहा है कि जो विद्यार्थी विद्या ग्रहण करने में पूर्ण रूप से संलग्न हो जाते हैं वह विद्यार्थी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हैं और जिनके मन दूसरी दूसरी विद्या या विषयान्तर में घूमा करते हैं वे ठोकर पर ठोकर खाकर नाकामयाब रहते हैं इत्यादि संसार में अनेक दृष्टान्त देखने में आते हैं कि जिन लोगों ने कार्य को सर्वोत्तम अथवा आदर्श समझ कर किया वही कामयाबी पा सके अभिप्राय यह है कि उपासक की जिस देवता में प्रीति है उपासक के लिए पुराणों ने उसी उपास्यदेव को सर्वोत्तम बतलाया है।

इस उपासना विषय अथवा सांसारिक विषयों की उन्नति से अनभिज्ञ विचार से मीलों दूर भागनेवाले मनुष्य इसको परस्पर देवनिन्दा के नाम से प्रसिद्ध करते हैं हमारा यह दावा है कि पुराणों में देव निन्दा है ही नहीं उपासना काल में

अपने इष्ट देव को सर्वोत्तम माना जाता है और दूसरे रूपों की तरफ से उपास्य दृष्टि हटाने का उद्योग किया जाताहै इसका नामहै अनन्यभक्ति अनन्य भक्त ही सर्वोत्तम उपासक होता है अतएव यह भेद उपासनाकालिक भेद है न कि सर्वदा भेद यदि आप सर्वदा भेद मानोगे तो पद्मपुराण की संगति ही नहीं बैठेगी जो पद्मपुराण एक स्थान में विष्णु की प्रशंसा और महादेव की निन्दा कर गया वही पद्मपुराण दूसरे स्थान में महादेव की स्तुति और विष्णु की स्तुति करता है अब बुलाइये किसी आर्य समाजी को जो संगति बिठलावे त्रिकाल में भी संगति नहीं बैठ सकती और हमसे कहिये कि आप ही अपने सिद्धान्तानुसार संगति बिठलावें लीजिये सुनिये विष्णु के उपासक के लिये तो विष्णु रूप की गौरवता और शिव रूप की हीनता दिखलाई है जहां पर महादेव रूप की प्रशंसा और विष्णु की हीनता है वह शिव उपासक के लिए है उपासकावस्था में ही कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड में एक क्या ऐसी संगति कोई समाजी भी बिठला सकता है यदि बिठला दे तो हम पद्मपुराण में देव मानने को तैयार हैं क्या कोई समाजी लेखनी उठाकर समझावेगा ऐसी आशा नहीं।

पुराण इतिहास।

सत्यार्थप्रकाश—

(प्रश्न) क्या आप पुराण इतिहास को नहीं मानते ? (उत्तर) हां मानते हैं परन्तु सत्य को मानते हैं मिथ्या को नहीं (प्रश्न) कौन सत्य और कौन मिथ्या है ? (उत्तर) :—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति ॥

यह गृह्यसूत्रादि का वचन है। जो ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मण लिख आये उन्हीं के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी पांच नाम हैं श्रीमद्भागवतादि का नाम पुराण नहीं (प्रश्न) जो त्याज्य ग्रन्थों में सत्य है उसका ग्रहण क्यों नहीं करते ? (उत्तर) जो जो उनमें सत्य है सो सो वेदादि सत्य शास्त्रों का है और मिथ्या है वह उनके घर का है वेदादि सत्य शास्त्रों के स्वीकार में सब सत्य का ग्रहण हो जाता है जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो

मिथ्या भी उसके गले लिपट जावे इसलिए "असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति" असत्य से युक्त गून्थस्थ सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिए जैसे विषयुक्त अन्न को, (प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है ? (उत्तर) वेद अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस उस का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं जिसलिए वेद हमको मान्य है इसलिए हमारा मत वेद है ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष आर्य्यों को ऐकमत्य होकर रहना चाहिए (प्रश्न) जैसा सत्यासत्य और दूसरे गून्थों का परस्पर विरोध है वैसे अन्य शास्त्रों में भी है जैसा सृष्टिविषय में छः शास्त्रों का विरोध है :—मीमांसा कर्म, वैशेषिक काल, न्याय परमाणु, योग पुरुषार्थ, सांख्य प्रकृति और वेदान्त ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है क्या यह विरोध नहीं है ? (उत्तर) प्रथम तो बिना सांख्य और वेदान्त के दूसरे चार शास्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं लिखी और इनमें विरोध नहीं क्योंकि तुमको विरोधाविरोध का ज्ञान नहीं। मैं तुमसे पूछता हूं कि विरोध किस स्थल में होता है ? क्या एक विषय में अथवा भिन्न भिन्न विषयों में ? (प्रश्न) एक विषय में अनेकों का परस्पर विरुद्ध कथन हो उसको विरोध कहते हैं यहां भी सृष्टि एक ही विषय है (उत्तर) क्या विद्या एक है वा दो, एक है, जो एक है तो व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष आदि का भिन्न भिन्न विषय क्यों है जैसा एक विद्या में अनेक विद्या के अवयवों का एक दूसरे से भिन्न प्रतिपादन होता है वैसे ही सृष्टि विद्या के भिन्न भिन्न छः अवयवों का शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इन में कुछ भी विरोध नहीं जैसे घड़े के बनाने में कर्म समय, मिट्टी, विचार, संयोग, वियोगादि का पुरुषार्थ, प्रकृति के गुण और कुँभार कारण है वैसे ही सृष्टि का जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या मीमांसा में, समय की व्याख्या वैशेषिक में, उपादान कारण की व्याख्या न्याय में, पुरुषार्थ की व्याख्या योग में, तत्वों के अनुक्रम से परिगणन की व्याख्या सांख्य में और निमित्तकारण जो परमेश्वर है उसकी व्याख्या वेदान्त शास्त्र में है। इससे कुछ भी विरोध नहीं। जैसे वैद्यकशास्त्र में निदान, चिकित्सा, औषधि, दान और पथ्य के प्रकरण भिन्न भिन्न कथित हैं परन्तु सब का सिद्धान्त रोग की निवृत्ति है वैसे ही सृष्टि के छः कारण हैं इनमें से एक एक कारण की व्याख्या एक एक शास्त्रकार ने की है इसलिए इनमें कुछ भी विरोध नहीं इसकी विशेष व्याख्या सृष्टि प्रकरण में कहेंगे।

तिमिरभास्कर—

नमस्कृत्यगुरुंशान्तंपुरस्कृत्यश्रुतेर्मतम्
तिरस्कृत्यचमन्दोक्तिं पुराणेकिंचिदुच्यते १

समीक्षा-स्वामीजीने पुराणोंके उड़ानेकी चेष्टा की परन्तु आप से क्या पुराण अन्यथा किये जाते हैं सुनिये पुराण शब्द ऐतरेय शतपथादिका वाचक नहीं है।

अध्याहुतयोहवा एतादेवानांयदनुशासनानिविद्यावाकोवाक्य मितिहासः पुराणङ्गाथानाराशंस्यः यएवं विद्वाननुशासनानि विद्यावाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा नाराशंसीरित्यहरहः स्वाध्यायमधीतेइत्यादि शत० अ० ११ प्र० ३॥ पुनस्तत्रैव क्षीरो दनमांसौदनाभ्यांहवाएवदेवांस्तर्पयति यएवंविद्वान्वा कोवा क्यमितिहासःपुराणमित्यहरहः स्वाध्यायमधीते त एनन्तृप्तास्त र्पयन्ति सर्वैः कामैः सर्वैर्भोगैः। शत० ॥ ११।५।७।८

आशय यह है कि विद्या वाक् वाक्य इतिहास पुराण गाथा नाराशंसी इनका पढ़ना अवश्य है जो इनको अध्ययन करते हैं देवता प्रसन्न होके उनके सब कार्य पूर्ण करते हैं॥

सयथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्यपृथग्धूमाविनिश्चरन्त्येवंवारेऽस्य महतोभूतस्यनिश्वासितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गि रसइतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनु व्याख्या नानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वासितानि॥ श० ४ प्र० ब्रा० ४.

भावार्थः-जिस प्रकार से गीले इंधनके संयोगसे अग्निमें नाना विधि धूम प्रगट होते हैं इसीप्रकार उस परमात्माके ऋक्,यजु,साम, अथर्व, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान यह सब श्वासभूत हैं॥

इसमें इतिहासपुराणादि पांच नाम पृथक् २ ग्रहण कियेहैं तथा और भी कहते हैं।

सहोवाच, ऋग्वेद भगवोध्येमि यजुर्वेदꣳसामवेदमाथर्वणंचतुर्थ मितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳराशिं दैवं निधिंवाको वाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्र विद्याꣳसर्पदेवयजनविद्यामेतद्भगवोध्येमि ॥ छां० प्र० ७

नारद बोले ऋग्वेदको स्मरण करताहूं तथा साम, यजु, अथर्व वेदको स्मरण करताहूं (इतिहासपुराणं पंचमंवेदानांवेदं) और इतिहास पुराण पांचवां वेद पढ़ा है (पित्र्यं) श्राद्धकल्प (राशिं) गणितं दैवमुत्पातज्ञानम् जिससे देवताओंके किये हुए उत्पातका ज्ञान होता है (निधिं) महाकालादि निधिशास्त्र (वाकोवाक्य) तर्कशास्त्र (एकायनं) नीति शास्त्र (देवविद्यां) निरुक्तम् (ब्रह्म विद्याम्) ब्रह्मसम्बन्धी उपनिषद् विद्याकू (भूतविद्यां) भूततंत्रकू (क्षत्रविद्यां) धनुर्वेदकू (नक्षत्रविद्यां) ज्योतिषकू (सर्पदेवयजन विद्यां) सर्प विद्यागारुडिगन्धयुक्त नृत्यगीतादि वाद्य शिल्प ज्ञानकू भी मैं स्मरण करताहूं ॥

देखिये इस छान्दोग्यके वाक्यसे कितनी विद्या सिद्ध होगई और यहांभी पुराण इनसे पृथक्ही ग्रहण कराहै और सुनिये ॥

अरेस्यमहतोभूतस्यनिश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदोः यजुर्वेदःसामवेदो-थर्वांगिरसइतिहासःपुराण विद्या उपनिषदःश्लोका सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टꣳहुतमाशितंपायितमयञ्चलोकः परश्चलोकः सर्वाणिचभूतान्यस्यैवैतानिसर्वाणिनिश्व सितानि ॥ बृह० अ० ६ । ११

उस परमेश्वरके निश्वसित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्व वेद, इतिहास पुराणविद्या उपनिषद् श्लोक सूत्र व्याख्यान अनु-व्याख्यान हैं जिसमें कोई कथाप्रसंग होता है सो इतिहास १ जिसमें सर्गादि जगत्की पूर्व अवस्थाका निरूपण होता है सो पुराण २ उपासना और आत्मविद्याका प्रतिपादक वाक्य है सो विद्या ३ उपास्य देवके रहस्यका नाम उपनिषद् है ४ जो श्लोक

नामसे मंत्र कहे जातेहैं वे श्लोक हैं ५ जो संक्षिप्त अर्थका प्रतिपादक वाक्य है सो सूत्र है ६ जिस वाक्य में तिसका विस्तार होता है सो व्याख्यान है और जिस वाक्यमें व्याख्यानको भी स्पष्ट किया जाय सो अनुव्याख्यान है ॥

पुनः आश्वलायनसूत्र अ० ३ पंचयज्ञप्रकरणम् ।

अथस्वाध्यायमधीयीतऋचोयजूंषिसामान्यथर्वांगिरसोब्राह्मणानिकल्पान्गाथानाराशंसीरितिहासपुराणानित्यमृताहुतिभिर्यदृचोऽधीतेपयसः कुल्याअस्य पितॄन् स्वधाउपक्षरन्ति यद्यजूंषिघृतस्यकुल्यायत्सामानिमध्वः कुल्यायदथर्वांगिरसः सोमस्य कुल्यायद्ब्राह्मणानिकल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीत्यमृतस्यकुल्याःसयावन्मन्येततावदधीत्यैत यापरिदधातिनमो ब्रह्मणे नमोस्त्वग्नये नमः पृथिव्यैनमओषधीभ्योनमोवाचेनमो वाचस्पतयेनमोविष्णवे महते करोमीति ॥

आशय यह है कि जो ऋगादि चारों वेदोंको और ब्राह्मणादि ग्रंथोंको कल्प गाथादि सहित पढ़ते हैं उनके पितरोंका स्वधासे अभिषेक होता है, ऋग्वेदके पढ़नेवालेके पितरोंकू दूधकी कुल्या, यजुर्वेदके पढ़नेवालोंके पितरोंको घृतकी कुल्या, सामके पढ़नेवालेके पितरोंकू मधुकी कुल्या, अथर्वाङ्गिरसके पढ़नेहारेके पितरोंकू सोमकी कुल्या, और ब्राह्मण कल्प नाराशंसी इतिहास पुराणके पाठ करनेवालेके पितरोंकू अमृतकी कुल्या प्राप्त होती है, इस कारण इनका पाठ करना, ईश्वर अग्नि पृथ्वी वाक्पति विष्णु देवको नमस्कार है ॥

और महाभाष्यमेंभी १ आह्निकमें शब्दप्रयोगविषयमें पुराण को पृथक गिनाहै ॥

सप्तद्वीपावसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः सांगाः सरहस्याबहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेद

एकविंशतिधाबह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदो वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोगविषयइति ।

सातद्वीप सहित पृथ्वी तीनों लोक शिक्षाकल्पादि अंगसहित चारों वेद (सरहस्याः) उपनिषद एकसौ एक शाखा यजुर्वेदकी, सहस्र शाखा सामवेदकी, इक्कीस शाखा ऋग्वेदकी, नौ शाखा अथर्ववेदकी (वाकोवाक्यम्,) तर्कादि इतिहास पुराण वैद्यक इनमें शब्दप्रयोग होताहै, यदि नाराशंसीका नामही पुराण होता तौ साङ्ग लिखकर फिर पुराण लिखनेकी क्या आवश्यकता थी, पूर्वोक्त ग्रंथोंके वाक्यसे यह बात सिद्ध है कि ब्राह्मणभाग उपनिषद् सूत्रादिसे पृथक् ही कोई पुराण और इतिहास संज्ञावाले ग्रंथ हैं यदि इतिहासका पुराण विशेषण मानो तो इतिहास पुल्लिग और पुराण नपुंसकलिंग है, सो पुल्लिग और नपुंसक लिंगका विशेषण हो नहीं सक्ता, इससे यह विदित होता है कि पुराणसे इतिहासभी कोई पृथक् ग्रंथ है, सो न्यायके भाष्यकार महर्षि वात्स्यायनजी चतुर्थ अध्याय प्रथम आह्निकके ६२ सूत्रपर जो कथन करते हैं सो आपके सामने दिखाया जाताहै, जिससे विदित हो जायगा कि ब्राह्मणादि भागसे अतिरिक्त कोई पुराणेतिहास संज्ञक ग्रंथ है ॥

समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः । न्या० अ० ४ आ० सू० ६२

(भाष्यम्) तत्र प्राजापत्यामिष्टिं निरूप्य तस्यां सार्ववेदसं हुत्वाऽऽत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेदितिश्रूयते तेन विजानीमः प्रजावित्तलोकैषणायाश्चव्युत्थाय भिक्षाचर्य्यं चरन्तीति, एषणाभ्यश्च व्युत्थितस्यपात्रचयान्तानि कर्म्माणि नोपपद्यन्ते इतिनाविशेषेणकर्तुः प्रयोजकफलं भवतीतिचातुराश्रम्य विधानाच्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्रेष्वेकाश्रम्यानुपपत्तिः तदप्रमाणमितिचेन्न प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते तेवा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यवदन्

'इतिहासपुराणं पंचमंवेदानांवेदइति' तस्मादयुक्तमेतदप्रामाण्यमिति, अप्रमाणेचधर्मशास्त्रस्य प्राणभृतां व्यवहारलोपाल्लोकोच्छेदप्रसंगः दृष्टप्रवक्तृसामान्याच्चाप्रामाण्यानुपपत्तिः यएव मंत्रब्राह्मणस्यद्रष्टारः प्रवक्तारश्च तेखल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्यचेति विषयव्यवस्थापनाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम्, अन्योमंत्रब्राह्मणस्य विषयोऽन्यश्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्राणामिति, यज्ञो मंत्रब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहासपुराणस्यलोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः तत्रैकेनसर्वंव्यवस्थाप्यत इति यथाविषयमेतानिप्रमाणानि इंद्रियादिवदिति ।

(भाषा) प्राजापत्य इष्टिका निरूपण करके उसमें सार्ववेदस नाम याग करनेके अनन्तर अग्निको आत्मामें समारोपण करके ब्राह्मण संन्यासाश्रमको धारण करै ऐसी विधि श्रुतियोंमें लिखी है, इससे जाना जाता है कि प्रजावित्तस्वर्लोकादिकी इच्छासे निवृत्त हुएको यतिधर्मका आचरण करना उचित है, और इसी कारण संन्यासीको पात्र चयानादि क्रियायें नहीं होती, इसहेतु यावत् कर्म मात्रके सभी अधिकारी नहीं हो सक्ते, किन्तु भिन्न भिन्न कर्मोंके भिन्न २ अधिकारी होते हैं, और यदि यह कहो कि हम एकही कोई आश्रम मानेंगे, अनेक आश्रम न मानेंगे तब सभी का कर्माधिकार एकही होगा तो ऐसा नहीं हो सक्ता क्योंकि इतिहास पुराण और धर्मशास्त्र के ग्रंथोंमें अनेक आश्रमकी विधि लिखी लिखाई है, तब एकही आश्रम कैसे हो सक्ता है, नचेत् एक कहो कि इतिहासादि ग्रंथोंका प्रमाणही नहीं मानते हैं, तौ यह भी नहीं हो सक्ता है क्योंकि प्रमाणभूत ब्राह्मण इतिहासादि ग्रंथोंके प्रमाणकी आज्ञा करता है, तथा यह अथर्वाङ्गिरसभी इस का प्रमाण कहते हैं कि इतिहासपुराण वेदोंमें पांचवाँ वेदहै, इससे इनका प्रमाण नहीं है ऐसा कहना महा अनुचित है और धर्मशास्त्र का प्रमाण न करोगे तौ प्राणियोंका व्यवहार लोप होनेसे सृष्टि ही उच्छिन्न होजायगी, और दोनोंके देखने और कथन करनेहारे

भी तौ एकही हैं, जो मंत्रब्राह्मणके द्रष्टा वक्ता हैं, वही धर्मशास्त्र पुराण इतिहासके कहनेहारे हैं, फिर इनका अप्रमाण कैसे होसक्ता है, तथा भिन्न भिन्न विषयोंके व्यवस्थापन करनेसे भी तो यथा विषय इनका प्रमाण है, मंत्र ब्राह्मणका विषय और है और धर्म शास्त्र पुराण इतिहासादिका विषय और है यज्ञ मन्त्र और ब्राह्मण का और लोकवृत्तान्तइतिहासपुराणका, तथालोकवृत्तान्तव्यवस्था पन धर्मशास्त्रका विषय है उनमें से एकसे सबही विषय नहीं व्यव स्थापित होते, इस से यथा विषयमें सबही प्रमाण इन्द्रियोंकी नाईं अर्थात् जैसे रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द इत्यादि सबही विषय किसी एकही इन्द्रीसे नहीं जाने जाते इसकारण इन पांचोंके क्रम से नेत्र जिह्वा नासिका त्वक् कर्ण सभी पृथक्२ प्रमाण माने जाते हैं इत्यादि इससे स्पष्टरूपसे जान पड़ता है कि यज्ञरूप प्रतिनियत असाधारण विषयोंके प्रतिपादक मंत्र ब्राह्मण ग्रंथोंसे अतिरिक्त ही कोई पुराणेतिहास संज्ञक लोकवृत्तरूप असाधारण विषयोंका प्रतिपादक वाक्यकलाप है यदि ब्राह्मणभागोंकी इतिहास पुराण पदार्थता ऋषियोंको अभिमत होती तौ वोह पुराणादिके प्रामा- ण्य व्यवस्थापन करनेकी इच्छासे उनके अप्रामाण्यकी शंका करके (प्रमाणभूत ब्राह्मण इतिहास पुराणोंकी अभ्यनुज्ञा करतेहैं) इत्यादि पूर्वोक्त बहुतसा कैसे कहते, और प्रयास करते ब्राह्मणको इतिहास पुराणसंज्ञक होनेमें वैसा कहना असंगत होता जिसकी बुद्धि कुछभी ठिकाने होगी और कैसाभी मूर्ख क्यों न हो पर अपने प्रमाणका साधक अपने को कभी न कहैगा और सुनिये वेदमें भी इतिहास पुराणका वर्णन है।

सबृहतीं दिशमनुव्यचलत् तमितिहासश्च पुराणञ्च गाथाश्च नाराशꣳसीश्चानुव्यचलन् इतिहासस्यचवैसपुराणस्यच गाथा नांच नाराशꣳसीनांच प्रियंधाम भवति य एवंवेद ॥ अथर्व० का० १५ प्र० ६ अनु० १ मं० १२

SANATAN DHARAM SABHA (१४९५) स॰ ध॰ स॰ SINGAPORE SHRI KRISHNA TEMPLE WATERLOO ST.

यह बात वेदसेभी स्पष्ट होगई अब इसके गोपथ ब्राह्मणका लेख देखिये—

एवमिमेसर्वेवेदानिर्मितास्सकल्पः सरहस्याः सब्राह्मणाःसोपनिषत्काःसेतिहासाःसान्वाख्यानाःसपुराणाःसस्वराःससंस्काराः सनिरुक्ताःसानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्यास्तेषां यज्ञमभिपद्यमानानां छिद्यते नामधेयं यज्ञमित्ये वमाचक्षते (गोपथ पूर्वभागः द्वितीयप्रपाठकः)

यदि ब्राह्मणग्रंथोंहीमें इतिहास पुराणका अन्तर्भाव होता तौ गोपथमें इस प्रकार कल्प ब्राह्मण उपनिषद् इतिहास पुराणादि पृथक् पृथक् कैसे लिखते इससे भी ब्राह्मण से अतिरिक्तही पुराण इतिहास जाना जाता है, इस कारण जो पुराणको इतिहासका विशेषण कहते हैं सो प्रमादी हैं क्योंकि सेतिहासाः सपुराणाः ऐसा पृथक् कहनाही इनमें भेद प्रतीति कराता है, जब इतिहास सहित और पुराण सहित ऐसे दो शब्द कहे तौ निःसंदेह यह दोनों पृथक्ही हैं, और सूत्रकारने भी तौ अश्वमेधप्रकरण में आठवें दिन इतिहास और नवमें दिन पुराण पाठ लिखा है, अब यह तौ निश्चय होगया कि पुराण इतिहास आदि ब्राह्मणों से अतिरिक्तही कोई ग्रंथ है, परन्तु अब पुराण किसे कहते हैं और वोह कैसे बना उनके सुनने वा पढ़ने से क्या लाभ है सो मनुस्मृति और महाभारतादि ग्रंथोंसे दिखलाते हैं, कि महाभारत में भी पुराण सुननेकी विधि लिखी है इससे भारतसे पृथक् पुराण हैं यह सिद्ध होता है॥

स्वाध्यायंश्रावयेत्पित्र्येधर्मशास्त्राणिचैवहि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानिच॥ मनु०

श्राद्धमें वेद धर्मशास्त्र आख्यान इतिहास पुराण सूत्रादि इन सबको सुनावै इससे विदित होता है कि, मनुस्मृति पुराण नहीं हैं किन्तु पुराण किसी और ग्रंथका नाम है और देखिये—

पुराणमितिहासश्च तथाख्यानानि यानि च। महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेवतत् ॥ महाभारते दानधर्मे--ये च भाष्य विदः केचिद्ये च व्याकरणे रताः ॥ अधीयंते पुराणानि धर्मशास्त्राण्यथापि च ॥ ६० अ० ॥

पुराण इतिहास आख्यान महात्माओंके चरित्र नित्य सुनने योग्य हैं १ कोई महाभाष्य जाननेवाले जो व्याकरणमें प्रीति रखते हैं तथा जो धर्मशास्त्र और पुराण भी पढ़ते हैं फिर बाल्मीकीयरामायण बालकाण्डमें राजा दशरथ और सुमन्त्रका सम्बाद इस प्रकार है कि जिससे पुराण प्राचीनही प्रतीत होतेहैं।

एतच्छ्रुत्वारहः सूतो राजानमिदमब्रवीत ॥ श्रूयतां यत्पुरावृत्तं पुराणेषु मया श्रुतम् ॥ बाल्मी० बालकाण्ड ॥

यह सुनकर सूतने एकान्तमें राजासे कहा सुनो महाराज ! यह प्राचीन कथा है जो पुराणोंमें मैंने सुनी है इसके अनन्तर सम्पूर्ण रामजन्मका चरित्र जो भविष्य था सब राजाको सुनाया कि रामचंद्र तुम्हारे यहां उत्पन्न होंगे शृंगी ऋषिको बुलाइये और वैसाही हुआ ॥

एवं वेदे तथा सूत्रे इतिहासेन भारतम् ।
पुराणेन पुराणानि प्रोच्यन्ते नात्र संशयः ॥

इस प्रकार वेदोंमें सूत्रोंमें इतिहाससे भारतका ग्रहण और पुराणोंसे अष्टादश पुराणोंका ग्रहण होता है और महाभारत में लिखा है कि---

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
पश्चाद्भारतमाख्यानं चक्रे तदुपबृंहितम् ॥ महा०

अठारह पुराणोंको व्यासजी संकलित करके फिर महाभारत की रचना करते हुए अब पुराणोंका लक्षण कथन करते हैं ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥

सृष्टिकी उत्पत्ति प्रलय वंशमन्वन्तर वंशानुचरित्र यह पुराणके पांच लक्षण हैं, जिसमें यह पांच लक्षण हो वोह पुराण कहाता है लिंगपुराणके प्रथम अध्याय से विदित होता है कि पुराणोंका बड़ा विस्तार था जो ब्रह्मा जीने बनाये थे व्यासजीने उन विस्तृत ग्रंथोंको संक्षिप्त करके अठारह विभाग करदिये हैं, क्या यह कथायें व्यासजी से पूर्व नथीं जो यह माना जाय कि पुराण नवीन हैं और स्वामीजी ने ३२६ पृष्ठमें (कर्ता) यह शब्द लिखा है जिसके माने बनानेवाले के हैं सो यह उनकी भूल है वहां (कृत्वा) शब्द है (जिसके अर्थ संक्षेप से करकै) के हैं इतिहासोंको महाभारतमें मिलादिया इस कारण इतिहास नाम महाभारत का होगया है इससे यह न समझना चाहिये कि पुराण आधुनिक हैं किन्तु जगत्की पूर्व अवस्था कहनेसेही इनका पुराण नामहै व्यासजीने इन कथाओं का संग्रह किया है और उसमें जिस अवतार और जिस बातकी प्रधानता रक्खी है उसी नामपर उस पुराण का नाम रखदिया है विना पुराणोंके और ऐसा कौनसा ग्रंथ है जिसमें सब पूर्व राजों के चरित्र वर्णन हैं इसी कारण लिखा है कि—

पुराणंमानवोधर्मः सांगोवेदश्चिकित्सितम् ।
आज्ञासिद्धानिचत्वारि नहन्तव्यानि हेतुभिः ॥ १ ॥ भा०

पुराण मनुस्मृति साङ्गवेद चिकित्सा इन चारोंकी आज्ञा स्वतः सिद्ध है जब ब्राह्मणादि ग्रंथ पुराणोंकी महिमा कहते हैं तौ पुराणों को क्यों न माने जहां सज्जन पुरुष बैठे हों उनमें कोई किसी की बड़ाई करै तौ वोह बड़ाई किया हुआ बड़ाई करनेवाले से अलग होता है इसी प्रकार जब पुराणों की महिमा ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें है तौ ब्राह्मणादिकों से अतिरिक्तही कोई पुराण ग्रंथ है यह स्पष्ट विदित होता है और बुद्धिमानों को मानना उचित है ॥

———*———

भास्करप्रकाश—

कोई पूछे कि प्रमाण तो आप को यह देना था कि भागवतादि का नाम पुराण है, शतपथादि का नहीं। आप यह लिखते हैं कि इनका पढ़ना अवश्य है। भला इनका पढ़ना अनावश्यक कौन बताता था। स्वामीजी ने तो यही लिखा है कि भागवतादि पुराण नहीं किन्तु नवीन हैं, शतपथादि पुराण हैं, उन्हीं का पढ़ना आवश्यक है, उन्हीं के पढ़ने से देवता प्रसन्न होते हैं। अच्छा उत्तर दिया ? कोई गावे शीतला, मैं गाऊं मसान।

आप यह तो ध्यान दें कि आप को सिद्ध क्या करना है और सिद्ध क्या करते हैं। मैं फिर स्मरण दिलाता हूं कि "भागवतादि पुराण हैं" यह आपका साध्य है। "शतपथादि पुराण हैं" यह स्वामी जी का साध्य है। अब न तो ईश्वर के श्वास होने से यह सिद्ध होता है कि भागवतादि का नाम पुराण है, न यह सिद्ध होता है कि शतपथादि को पुराण नहीं कहते, किन्तु आप के लेखानुसार इतना अवश्य निकलता है कि पुराणविद्या उपनिषद् श्लोक सूत्र व्याख्यान अनुव्याख्यानादि सब ईश्वर का श्वास है। मैं यह पूछता हूं कि यदि श्लोक ईश्वर के श्वास हैं तो क्या "त्रयोवेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्त्तनिशाचराः" इत्यादि नास्तिकनिर्मित श्लोक भी ईश्वर के श्वास हैं ? इस पक्ष का अच्छे प्रकार खण्डन और इस शतपथ की कण्डिका का अर्थ सब मेरे बनाए "ऋग्वादिभाष्यभूमिकेन्दुपरागे द्वितीयोंऽशः" में लिखा है, जिन को विशेष जिज्ञासा हो, वहां देखलें।

साध्य की सिद्धि का यहां भी पता नहीं। क्योंकि इससे भी ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं हैं, यह भी सिद्ध नहीं होता और न यह होता है कि भागवतादि का नाम पुराण है। किन्तु तात्पर्य यह है कि इस सूत्र में स्वाध्याय [पढ़नेरूपी] यज्ञ को पितृयज्ञ की उपमा दी गई है कि जैसे पितरों की सेवा दुग्ध घृतादि से की जाती है वैसे ब्रह्मचारी जो गुरुकुल में रहता है वह अपने माता पिता को घर छोड़ आता है, उसका वेदादि पढ़ना ही मानो पितृसेवा है। वह जो ऋग्वेद पढ़ता है सो ही मानो पितरों के लिए दूध की कुल्या [नहर] बहाता है, यजुः पढ़ता है सो घृत की, जो साम पढ़ता है सो मधु की, जो अथर्व पढ़ता है सो सोम की, जो ब्राह्मण ग्रन्थों को पढ़ता है जो कि कल्प गाथा नाराशंसी इतिहास पुराण कहाते हैं सो मानो अमृत की नहरें बहाता है। इस से यह तो सिद्ध न हुआ कि ब्राह्मण ग्रन्थ

पुराण नहीं हैं, न यह कि भागवतादि पुराण हैं, किन्तु चारों वेदों को कह कर फिर ब्राह्मणों को वेदों के पश्चात् और पृथक् गिनाने से ब्राह्मणों का वेदों से पृथक् होना, वेद न होना, वेदों से दूसरी श्रेणी का होना और उनके पुराण इतिहास गाथादि नाम होना ही पाया जाता है।

यदि उक्तमहाभाष्य में यहीं ब्राह्मण पद भी आता और इतिहास पुराण शब्द भी भिन्नविषयक आते तो सिद्ध हो जाता कि ब्राह्मण से इतिहास भिन्न हैं परन्तु जब ब्राह्मण पद नहीं और इतिहास पुराण शब्द हैं तो हम कह सकते हैं कि ये ही पद ब्राह्मण के ऐसे भाग के नाम हैं जिस में कोई कथाप्रसङ्ग है वह ब्राह्मण भाग इतिहास है। जैसे :—

जनमेजयोह वै पारिक्षितोमृगयाञ्चरिष्यः हंसाभ्याम शिक्षः नुपावतस्थइति तावूचतुर्जनमेजयं पारिक्षितमभ्या जगाम। सहोवाच नमोवां भगवन्तौ कौनुभगवन्त विति। गोपथ। प्रपाठक २ ब्रा० ५॥

यहां परीक्षित के पुत्र जनमेजय की मृगयायात्रा और दो परमहंसों (सन्यासियों) का मिलना उनको नमस्कार करके पूछना कि आप कौन हैं? इत्यादि इतिहास है और सृष्टि के आरम्भ समय के ऋषियों का वर्णन जिस में हो वह ब्राह्मण ग्रन्थों का भाग "पुराण" कहाता है। जैसे :—

अग्नेर्ऋग्वेदोवायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः। शतपथ। ११। ५।

अग्नि वायु आदि ऋषियों से ऋगादि वेद हुवे। अग्नि वायु आदि तत्व न थे किन्तु जीव विशेष थे। यह सायणाचार्य अपनी ऋग्वेदभाष्य भूमिका में लिखते हैं :—

जीवविशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात॥

अर्थात जीव विशेष अग्नि वायु आदित्यों ने वेदों को प्रकट किया है। इस से इस रीति से इतिहास और और पुराणये दोनों नाम ब्राह्मणों के ही हुवे। इतिहास पुराण का जो अर्थ हमने किया और ब्राह्मण ग्रन्थों के उदाहरण दिये यही अर्थ आप भी द० ति० भा० पृ० ४६ पं० १७ में लिखते हैं कि "जिस में कोई कथा प्रसङ्ग होता है सो इतिहास। जिसमें जगत की पूर्वावस्था सर्गादि का निरूपण होता है सो पुराण" सो ये दोनों बातें ब्राह्मण ग्रन्थों में (जैसा कि हमने

ऊपर गोपथ और शतपथ का प्रमाण दिया) भी पाई जाती हैं, इससे ये इतिहास पुराण हुवे। यदि कोई यह शङ्का करे कि एक ही स्थान पर ब्राह्मण पुराण इतिहास गाथा नाराशंसी ये सब नाम क्यों आये हैं जब कि ये सब एकार्थ हैं। तौ उत्तर यह है कि "ब्राह्मण" यह सामान्य नाम है और इतिहास पुराण गाथा नाराशंसी आदि उसके विशेषों के नाम हैं। जैसे "गृह" सामान्य शब्द है और हर्म्य (महल) भवन शाला आदि उसके विशेष हैं। इसी प्रकार यहां भी जानो। और आपने जो यह कहा कि साङ्ग कहने से अङ्गों में नाराशंसी भी आ जाती फिर साङ्ग लिख कर पुराण क्यों पृथक लिखते। सो महाशय! क्या आप वेदों के छः अङ्गों को भी नहीं जानते कि शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द और ज्योतिष ये छः अङ्ग कहाते हैं। इन में कल्प कहने से श्रौतसूत्रादि का गृहण है। और पुराण इतिहास ये दो नाम ब्राह्मणों के उस विशेष भाग के हैं जिसमें ऊपर लिखे अनुसार कथादि का प्रसङ्ग है। और यह भी जानना चाहिये कि यदि उपनिषदादि मिलाकर सब वेद हैं तो "चत्वारोवेदाः" कह कर फिर "सरहस्याः" इत्यादि की क्या आवश्यकता रहती। भिन्न गृहण से जाना जाता है कि ये गृन्थ वेद से भिन्न ही हैं।

एक ही गृन्थ का सामान्य विषय एक होता है और उसी गृन्थ के विशेष भागों के विशेष विषय भिन्न भिन्न होते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण सामान्य का विषय यज्ञ है। यह लिख कर ब्राह्मण के वे विशेष भाग जिनका नाम पुराण और इतिहास है, जिन के दो उदाहरण भी हमने ऊपर लिखे हैं, उन भागों का भिन्न "लोकवृत्त" विषय है। इस कथन से विषय भेद ही सिद्ध होता है, गृन्थ भेद नहीं। क्या एक गृन्थ में अनेक विषय नहीं होते? आप के ही इस द० ति० भा० में अनेक विषय हैं, फिर क्या यह एक गृन्थ नहीं? और यह कि इतिहास पुराण की प्रामाणिकता में ब्राह्मण ने प्रमाण दिया है कि यह पञ्चम वेद है। इस काउत्तर यह है कि वेद तो ४ ही हैं। इतिहास पुराण को पञ्चमवेद कहना उस की प्रशंसा है, जैसे किसी पुरुष की प्रशंसा में कहते हैं कि यह तो दूसरा युधिष्ठिर है वा दूसरा बृहस्पति है। यथार्थ में युधिष्ठिर वा बृहस्पति दूसरे नहीं हैं परन्तु धर्मात्मा और विद्वान अधिक होने से दोनों की उपमा दी जाती है। इसी प्रकार इतिहास पुराण संज्ञक ब्राह्मण भाग की यह प्रशंसा है कि ये पांचवां वेद है। क्या आप यथार्थ में जैसे चारों वेद अपोरुषेय हैं अर्थात किसी पुरुष के बनाये नहीं इसी प्रकार यह

समझते हैं कि इतिहास पुराण भी वास्तव में ५ वां वेद हैं और यह भी औषधेय हैं ? यदि ऐसा है तौ आप अन्य पौराणिकों के सदृश ये भी न मानते होंगे कि पुराणों के कर्त्ता व्यास हैं ! अन्त में आप को भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यह वाक्य प्रशंसापरक है । यदि यह कहो कि ब्राह्मण का कोई भाव पुराण है तो उसमें अपनी प्रशंसा आप ही क्यों की गई, तौ उत्तर यह है कि मनु ने भी अपनी प्रशंसा में यह कहा है कि—

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोन्यानि कानिचित ।

अर्थात अल्पविद्या वाले लोगों के बनाये ग्रन्थ आज बनते हैं, कल नष्ट होते हैं, जो कि इस मनु के अतिरिक्त कोई ग्रन्थ हैं। इस से मनु से अपना प्रमाण और प्रशंसा, दूसरों (अलपविद्यारचितों) का अपमान और निन्दा की है, सो ठीक है । यदि अपने विषय में उचित प्रशंसा वा कथन कोई न करे तो दूसरे द्वारा प्रशंसा न होने तक उस में श्रद्धा वा प्रामाण्य कैसे हो । यदि अपने विषय में स्वयं प्रामाणिकता का कहना अच्छा नहीं तो आपने ही अपने इस द० ति० भास्कर की प्रशंसा और प्रामाणिकता को जताने के लिये आरम्भ में सुर्खी से ग्रन्थों के नाम और टाइटिल पेज पर "वेदब्राह्मण शास्त्र स्मृति पुराण वैद्य-कादि प्रमाणों से अलंकृत" यह प्रशंसा और प्रामाण्य क्यों लिखा है और जब आप ने ही टाइटिल पेज पर वेद शब्द लिखकर फिर ब्राह्मण और पुराण शब्द भिन्न लिखे हैं तो औरों को क्यों कहते हो कि पुराण ५ वां वेद है । यदि पुराण ५ वां वेद हैं तो जैसे वेद कहने से ऋग्, यजुः, साम, आथर्व इन ४ का अर्थ आ जाता है, वैसे हीं ५ वें का भी अर्थ आ जाता ॥

वेद में सामान्य शब्द इतिहास पुराणादि हैं, किसी शिवपुराण अग्निपुरा-णादि आप के अभिमत पुराण का नाम नहीं। वेद में यदि "मनुष्य" शब्द आ जावे तो क्या आप कहेंगे कि देखो वेद में मनुष्य शब्द है और हम (पं० ज्वाला-प्रसाद) भी मनुष्य हैं इस लिये हमारा वर्णन वेद में आया है। इस का सविस्तर उत्तर मेरे बनाये "ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दुपरागे द्वितीयोऽशः" में छपा है, वहां देख लीजिये। जैसे आपने महामोहविद्रावण, सत्यार्थ—भास्कर, सत्यार्थविवेक, मह-तावदिवाकर, मूर्त्तिरहस्य, मूर्त्तिपूजा आदि पुस्तकों के आशयों को इकट्ठा करके पिष्टपेषण किया है वैसा हम अच्छा नहीं समझते ॥

आप तो अभी पुराणों को ५ वां वेद लिख चुके हैं फिर "सर्वे वेदाः" कहने में इतिहास भी (जो आप के लेखानुसार ५ वां वेद है) अन्तर्गत था, फिर "सेतिहासाः" क्यों कहा ? इस लिए आप का तर्क आप ही के पक्ष में दोषारोपण करता है। ब्राह्मण शब्द सामान्य कह कर भी ब्राह्मणान्तर्गत उपनिषद् और इतिहास का फिर से गिनाना यह सूचित करता है कि ब्राह्मण वा वेद के जिस भाग में विशेष कर ब्रह्मविद्या है उस भाग का नाम भिन्न उपनिषद् पड़ा और जिस ब्राह्मण भाग में लोकवृत्तान्त है उस का नाम भिन्न इतिहास पड़ा। इसी से वे पुनः भी गिनाए गये। "भगवद्गीता" महाभारत के अन्तर्गत है परन्तु विशेष प्रकरण का विशेष नाम "भगवद्गीता" यह भिन्न भी है। इसी प्रकार यहां जानिये।

धन्य हैं ! आप का ऐसे निश्चय हो जाता है तभी तो इतना पुस्तक बढ़ाय बैठे। भला "८ वें ९ वें दिन में पुराण इतिहास सुनना आदि इससे यह कैसे सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों से पुराणादि पृथक हैं ? प्रत्युत यह सिद्ध हो गया कि सूत्रकार के समय में आप के माने व्यासकृत १८ पुराण तो थे ही नहीं, इससे सूत्रकार ने ब्राह्मण ग्रन्थों ही को लक्ष्य करके इतिहास पुराण का पाठ लिखा है। व्यासजी से पूर्व भी कई राजाओं ने अश्वमेध यज्ञ किये उन यज्ञों में ८ वें ९ वें दिन ब्राह्मण ग्रन्थों ही का पाठ किया होगा।

द० ति० भा० पृ० ५० और ५१ में मनु, महाभारत, वाल्मीकीयरामायण, अमरकोष के श्लोक जिन में पुराणशब्द और पुराण का लक्षण है, लिखे हैं परन्तु उन में से किसी में भी ब्रह्मवैवर्त्तादि का नाम पुराणहै "यह नहीं लिखा तो फिर सामान्य पुराण शब्दमात्र आने से कुछ भी सिद्धि नहीं हो सक्ता हां, इस पुराण सिद्धिप्रकरण भरमें केवल एक एक श्लोक द० ति० भा० पृ० ५० में लिखा है कि-

एवं वेंदे तथा सूत्रे इतिहासेन भारतम्।
पुराणेन पुराणानि प्रोच्यन्ते नात्र संशयः॥

सो इस श्लोक का कुछ पता नहीं लिखा कि यह किस ग्रन्थ का श्लोक है। हमारी समझ में तो यह पं० ज्वालाप्रसाद का ही कृत्य है। जैसा इस श्लोक में लिखा है कि "इस प्रकार वेद व सूत्र में इतिहास से भारत और पुराण से पुराणों का ग्रहण है इस में संशय नहीं"। ऐसा ऊपर के लिखे वेद ब्राह्मण महाभाष्यादि में

कहीं भी नहीं। मनु, रामायण को तो आप भी व्यासजी से पूर्व रचित मनाते हैं फिर मनु वा वाल्मीकि के प्रमाणों से व्यासकृत पुराणों का गृहण करना अज्ञान नहीं तो क्या है ? इति।

समीक्षा—स्वामी दयानन्दजी बड़े मजे के मनुष्य थे आप को यहां बहुत ही दूर की सूझी आप यहां पर पुराणों को तो गप्प बतलाते हैं और शतपथादि ब्राह्मण जो कि वेद हैं उनको पुराण बतलाते हैं इस के ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र "मध्याहुतयोहवा" "पुनस्तत्रैवक्षीरोदन" यह दो प्रमाण शतपथ के देकर दिखलाते हैं कि पुराण और इतिहास को तो ब्राह्मण ग्रन्थ भी प्रमाण मानते हैं इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि पुराण मान्य हैं इस को कौन नहीं मानता किन्तु प्रश्न तो यह है कि श्रीमद्भागवतादि पुराण हैं और ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं इस के ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी को लिखना था सो कुछ नहीं लिखा इस के ऊपर यदि कोई ज्ञाता विचार करे तो मालूम हो जावेगा कि स्वामी दयानन्द के दो एतराज हैं एक तो यह कि पुराण प्रमाण नहीं दूसरा यह कि शतपथादि ब्राह्मण पुराण हैं इन दो प्रश्नों में से प्रथम प्रश्न का उत्तर मिश्र ज्वालाप्रसादजी ने दिया है कि पुराणों को तो ब्राह्मण भी प्रमाण मानते हैं स्वामी दयानन्दजी ने जो ब्राह्मणों को पुराण बतलाया है इस कपोल कल्पित मनगढंत सिद्धान्त का उत्तर आगे दिया जावेगा प्रथम प्रश्न की पुष्टि में मिश्र ज्वालाप्रसादजी और भी प्रमाण देते हैं "सयथार्द्रैन्धाग्नेः" और "सहोवाच ऋग्वेद भगवोऽध्येमि" "अरेस्यमहतोभूतस्य" "सप्तद्वीपावसुमती" इन प्रमाणों से यह पुष्टि होगई कि पुराणमान्य और प्रमाण हैं इस के अलावा पं० ज्वालाप्रसादजी ने यह भी सोचा कि समाजी लोग बैठकबाजी बहुत किया करते हैं जब उनका सिद्धांत गिरने लगे तब वे अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिये चाणक्यनीति आदि को स्वतः प्रमाण मान लेते हैं और यदि उनके सिद्धान्त में हानि पहुंचावे तो फिर वे ब्राह्मणादि के प्रमाण को प्रमाण नहीं मानते इसी रीति का अवलम्बन करके सम्भव है कि कोई आर्यसमाजी यहां के लिखे हुए ब्राह्मणादि के प्रमाणों को प्रमाण न माने और यह कह उठावे कि मिश्र ज्वालाप्रसादजी ने जिन ग्रन्थों का प्रमाण दिया है वे समाज को मान्य नहीं किसी मनुष्य को यह कहने का अवसर न मिले इस लिये पं० ज्वालाप्रसादजी "सबृहतीं दिशमनुव्यचलत्" यह अथर्व वेद का भी प्रमाण देते

हैं कि पुराणों को तो वेद भी प्रमाण मानता है इन सब मन्त्रों के प्रत्युत्तर में पं० तुलसीराम केवल यह लिखते हैं कि पं० ज्वालाप्रसादजी को यह सबूत देना चाहिये कि ब्राह्मण ग्रन्थों को छोड़कर शिवपुराणादि का नाम पुराण कहां लिखा है किन्तु पं० तुलसीराम यह न समझे कि मिश्र ज्वालाप्रसाद यहां पर केवल इतना सिद्ध करते हैं कि पुराण प्रमाण हैं उनके प्रमाण होने में कोई भी मनुष्य बाधा नहीं डाल सकता जब कि वेद भी पुराणों को प्रमाण मानता है तब फिर ऐसा कौन आस्तिक होगा जो पुराणों के लिये शिर हिलावे ।

अब रही बात यह कि श्रीमद्भागवतादि पुराण हैं इस में पहिले तो आर्य-समाज को यह सबूत देना चाहिये कि श्रीमद्भागवतादि पुराण नहीं हैं इस में यह प्रमाण है इस में तो स्वामी दयानन्द एक भी प्रमाण नहीं दे सके और न कोई आधुनिक समाजी दे सकता है यदि कोई समाजी यह कहने लगे कि स्वामी दयानन्दजी ने तो "ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान्गाथा नाराशंसीरिति" यह प्रमाण दे दिया है इस के ऊपर हम कह सकते हैं कि प्रमाण नहीं दिया किन्तु एक निन्दित चालाकी चलकर संसार के मनुष्यों की आंखों में धूल झोंकी है गृहसूत्र के नाम से इतना पाठ अपने मन से गढ़कर तैयार किया है ऐसा पाठ किसी भी गृहसूत्र में नहीं है जब स्वामीजी को यह मालूम हुआ कि मनुष्य गृहसूत्र देख लेंगे और हमारी चालाकी खुल जावेगी इस बात को छिपाने के लिये स्वामी दयानन्द ने गृहसूत्र के आगे आदि पद मिला दिया है अर्थात् इस प्रमाण के नीचे लिख दिया कि "यह गृहसूत्रादि का वचन है" जब इतने पर भी मन न भरा तब आगे लिखते हैं कि "जो ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण लिख आये" जो पाठ स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है वह ऐतरेय शतपथादि किसी ब्राह्मण में भी नहीं है क्या कोई भी समाजी स्वामी दयानन्द के लिखे प्रमाण को कहीं पर दिखला सकता है त्रिकाल में भी नहीं दिखला सकता जब किसी स्थान में भी ऐसा पाठ नहीं फिर मनगढंत कपोल कल्पित पाठ से यह कैसे सिद्ध होगया कि ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण हैं और श्रीमद्भागवतादि पुराण नहीं इसके अलावा "ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान्गाथा नाराशंसीरिति" इस पाठ का यह कौन अर्थ कर सकता है कि शतपथादि ब्राह्मणों का नाम पुराण है स्वामी दयानन्दजी तथा दो लाख आर्यसमाजियों को भले ही विभक्ति का ज्ञान न हो किन्तु जरा सा व्याकरण पढ़ा हुवा मनुष्य भी यह जान लेगा कि यह समस्त पद द्वितियान्त कर्म और कर्म के विशेषण हैं इस संस्कृत में न कर्त्ता है न

किया ऐसे कान पूँछ कटे संस्कृत का अर्थ वही करेंगे कि जिन को कभी स्वप्न में भी संस्कृत के अक्षरों से काम न पड़ा हो स्वामी दयानन्दजी ने इन पदों को द्वितियान्त लिखा और अर्थ प्रथमान्त का किया अर्थात् कर्म को कर्त्ता बनाया इस महान् अन्धेर का भी कुछ ठिकाना है न तो यह पाठ किसी ग्रन्थ का है और न इसका यह अर्थ ही होता है न कोई दूसरा प्रमाण है फिर कोई भी विचारशील मनुष्य कैसे मान ले कि शतपथादि ब्राह्मणों का नाम पुराण है इस के अलावा इसी पाठ में यह कहां से निकल पड़ा कि श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थों का नाम पुराण नहीं जब कि आर्यसमाज का दावा ही गलत है फिर पं० ज्वालाप्रसादजी को सफाई देने की क्या आवश्यकता स्वामी दयानन्द का दावा तो गलत निकला अब कोई आर्यसमाजी दावा उठावे और उस के सत्य होने का प्रमाण दे नहीं तो इन कपोल कल्पित लेखों से कोई भी मनुष्य शतपथादि वेद ग्रन्थों को पुराण और श्रीमद्भागवतादि पुराण ग्रन्थों को गप्प नहीं मानेगा ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसादजी "एवमिमेसर्वे वेदानिर्मिताः" गोपथ ब्राह्मण देकर यह साबित करते हैं कि शतपथादि ब्राह्मणों को पुराण नहीं कहते किन्तु पुराण और इतिहास इन से भिन्न हैं इस मन्त्र में "सब्राह्मणः" पदपृथक् है जिस से शतपथादि ब्राह्मण लिये गये हैं और "सेतिहासाः" पद पृथक् है जो प्रकट करता है कि इतिहास ब्राह्मणों से भिन्न हैं और "सपुराणाः" पद पृथक् है कि जिस से स्पष्ट हो रहा है कि इतिहास और पुराण ब्राह्मण ग्रन्थों से भिन्न हैं यदि ब्राह्मण ग्रन्थ ही इतिहास और पुराण होते तो "सेतिहासाः" "सपुराणाः" पद क्यों देते इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि आप तो अभी पुराणों को ५ वां वेद लिख चुके हैं फिर "सर्ववेदाः" कहने में इतिहास भी (जो आपके लेखानुसार ५ वां वेद है) अन्तर्गत था फिर "सेतिहासाः" क्यों कहा इस लिये आप का तर्क आप ही के पक्ष में दोषारोपण करता है। ब्राह्मण शब्द सामान्य कह कर भी ब्राह्मणान्तर्गत उपनिषद और इतिहास का फिर से गिनाना यह सूचित करता है कि ब्राह्मण वा वेद के जिस भाग में विशेष कर ब्रह्म विद्या है उस भाग का नाम भिन्न उपनिषद पड़ा और जिस ब्राह्मण भाग में लोक वृत्तान्त है उस का नाम भिन्न इतिहास पड़ा। इसी से वे पुनः भी गिनाये गये जैसे "भगवद्गीता" महाभारत के अन्तर्गत है परन्तु विशेष प्रकरण का विशेष नाम "भगवद्गीता" यह भिन्न भी है। इसी प्रकार यहां जानिये ।

पं० तुलसीरामजी का लिखना कि पहिले तो ब्राह्मण शब्द सामान्यता से लिखा है और फिर ब्राह्मणों के अन्तर्गत उपनिषद् और इतिहास होने से ब्राह्मण ग्रन्थों के भाग साबित करने के लिये इतिहास और पुराण पद दिये हैं उपरोक्त पं० जी ब्राह्मण ग्रन्थों के उन भागों को इतिहास पुराण मानते हैं कि जिन में कुछ कथा मिलती है यह मन्तव्य पं० तुलसीराम ने अपने मन से गढ़ा है इस में कोई प्रमाण नहीं और इतिहास का विषय आने से ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण और इतिहास नहीं हो जाते यदि वास्तव में कथा आने से इतिहास और पुराण हो जाते हैं तब तो स्वामी दयानन्द के माने हुए वेद भी इतिहास पुराण हो जावेंगे क्यों कि वेद में भी कथायें आती हैं जैसे कि—

तस्या वैमनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् । वैन्योधोकतां कृषिं च सस्यं चाधोक ॥ सोदक्रामत्सा सुसुरा नागच्छत्ताम सुरा उपाह्वयन्त एहीतितस्या विरोचनः प्राल्हादिवत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् ।

अं० का ८ अ० ५ सू० १३

इन मन्त्रों में वेन के पुत्र पृथु द्वारा पृथिवी का दुहा जाना और वैवस्वत मनु तथा प्रहलाद के पुत्र विरोचन का बछरा बनना साफ लिखा है इस कथा को देखते हुए पं० तुलसीराम आदि आर्यसमाजियों के मत में वेद भी पुराण हो गये अब समाजियों के वेद का पता न रहा और पं० तुलसीराम ने जो यह लिखा कि "सर्वेवेदाः" तो लिख ही दिया फिर पञ्चमवेद होने से इतिहास पुराण भी वेद में आ गए अब इतिहास पुराण का लिखना ज्वालाप्रसाद के माने हुए पञ्चम वेद पर आघात करता है इसका उत्तर हमारी तरफ से यह है कि स्पष्ट करने के लिए वेद के भाग लिखे हैं ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद ने "अथस्वाध्यायमधीयीत" आश्वलायन गृह सूत्र का प्रमाण दिया है इसमें भी "ब्राह्मणानि" यह पद पृथक और "इतिहास पुराणानि" पद पृथक पड़ कर इतिहास पुराणों का ब्राह्मणों से पृथक होना सिद्ध करता है इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि साध्य की सिद्धि का यहां भी पता नहीं । क्योंकि इस से भी ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं हैं यह सिद्ध नहीं होता और न

यह होता है कि भागवतादि का नाम पुराण है जब कि इस मन्त्र में "ब्राह्मणानि" यह पद भिन्न और इतिहास पुराणानि यह पद भिन्न पड़े हैं जब कि गृहसूत्र ब्राह्मणों से पुराणों को भिन्न कह रहा है फिर हम को नहीं मालूम कि साध्य की सिद्धि में क्या बाधा है और यह क्यों साबित नहीं होता कि पुराण इतिहास ग्रन्थ ब्राह्मणों से भिन्न हैं यहां पर तो पं० तुलसीराम का वह हाल हुवा कि "चौबे गये थे छब्बे होने दुबे होकर आये" गृहसूत्र के प्रत्युत्तर में यह साबित करना था कि पुराण इतिहास यह नाम ब्राह्मण ग्रन्थों के ही हैं यह तो कुछ नहीं कर सके किन्तु पं० ज्वालाप्रसाद के अर्थ को देखकर घबरा गये और मृतक पितरों का श्राद्ध सिद्ध न हो जावे इस लिये गृहसूत्र के अर्थ को ही बदल बैठे आप लिखते हैं "तात्पर्य यह है कि इस सूत्र में स्वाध्याय [पढ़नेरूपी] यज्ञ को पितृयज्ञ की उपमा दी गई है कि जैसे पितरों की सेवा दुग्ध घृतादि से की जाती है वैसे ब्रह्मचारी जो गुरुकुल में रहता है. वह अपने माता पिता को घर छोड़ आता है उस का वेदादि पढ़ना ही मानों पितृ सेवा है। वह जो ऋग्वेद पढ़ता है सो ही मानों पितरों के लिये दूध की कुल्या [नहर] बहाता है यजुः पढ़ता है सो घृत की जो साम पढ़ता है मधु की जो अथर्व पढ़ता है सो सोम की जो ब्राह्मण ग्रन्थों को पढ़ता है जो कि कल्प गाथा नाराशंसी इतिहास पुराण कहाते हैं सो मानो अमृत की नहरें बहाता है। इस से यह तो सिद्ध न हुवा कि ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं है न यह कि भागवतादि पुराण हैं किन्तु चारों वेदों को कहकर फिर ब्राह्मणों को वेदों के पश्चात् और पृथक् गिनाने से ब्राह्मणों का वेदों से पृथक् होना वेद न होना वेदों से दूसरी श्रेणी का होना और उन के पुराण इतिहास गाथादि नाम होना ही पाया जाता है।

इस में प्रथम तो स्वाध्याय को पितृ यज्ञ की उपमा दी पं० तुलसीराम का यह लेख बिल्कुल अनर्गल है क्योंकि सूत्र में कोई उपमा वाचक शब्द नहीं फिर इस मन्त्र में कांगड़ी या बृन्दाबन का गुरुकुल भी नहीं लिखा गुरुकुल भी पं० तुलसीराम ने अपनी तरफ से मिलाया है इसके आगे जो ऋग्वेद पढ़ता है सो ही मानो पित्रों के लिये दूध की कुल्या (नहर) बहाता है पं० तुलसीराम ने जो यह अर्थ किया है यह भी मन गढंत है क्योंकि सूत्र में न तो कोई ऐसा पद है कि जिसका अर्थ हम मानो करलें और न कोई ऐसी ही क्रिया है कि जिसका अर्थ बहाता करलें यहां पर पं० तुलसीराम की समस्त चालाकियें बन्द हो गईं और फर्जी अर्थ तैयार करने लगे जिस का मतलब यह है कि कहीं ज्वालाप्रसाद का अर्थ सत्य न हो जावे जिस से

मृतक पितरों का श्राद्ध मानना पड़े यह चालाकियां अब नहीं चल सकतीं गृहसूत्र से मृतक पितरों का श्राद्ध उड़ाना संसार की आंख में लाल मिर्च का सुर्मा डालना है गृह में तो मृतक पितरों का श्राद्ध उसी प्रकार ठसाठस भरा पड़ा है जैसे कि वेद में पुष्टि के लिये एक सूत्र हम नीचे लिखते हैं और उसकी पुष्टि में मनु भी देते हैं पढ़िये—

आधत्तपितरो गर्भ मितिमध्यमं पिण्डं पत्नी प्राशनीयात् ।

अर्थ—"आधत्त पितरोगर्भम्" इस मन्त्र को बोलते समय मध्यम पिण्ड को पत्नी खावे । क्या कहीं ऐसा भी होता है मध्यम पिण्ड जो पितामह का भोजन है उसको तो खा जावे श्राद्ध करने वाले की स्त्री और वह बाबा थाली पर से सूखा उठ कर बाजार को चला जावे यदि यह जीवित पितरों का श्राद्ध मान लिया जावे तो यह श्राद्ध नहीं होगा किन्तु यह जीवित पितरों का तिरस्कार या अनादर होगा इसी के ऊपर आगे मनु भी लिखते हैं ।

पतिव्रता धर्म पत्नी पितृ पूजन तत्परा ।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी ॥
आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधा समन्वितम् ।
धनवन्तं प्रजावन्तं सात्विकं धार्मिकं तथा ॥

मनु० ३ । २६२ । २६३

अर्थ—पितृ पूजन में तत्पर विवाहित पतिव्रता पुत्र की इच्छा करने वाली स्त्री "आधत्त पितरो गर्भम्" इस मन्त्र के उच्चारण होते हुए मध्यम पिण्ड को भक्षण करे ऐसा करने से आयु वाले यशवान् बुद्धिमान् धनी सात्विक धर्मात्मा पुत्र को उत्पन्न करती है अब पाठक विचार लें कि यह श्राद्ध जीवित पितरों का है या मृतकों का ।

मुझे विश्वास है किसी समय में भी कोई आर्यसमाजी इस पर लेखनी नहीं उठा सकता गर्ज कहने की यह है कि पं० तुलसीराम ने सूत्र में पृथक् पढे इतिहासादि पर दी पर समाधान न दिया और जिस मृतक पितरों के श्राद्ध पर भास्कर-प्रकाश का आधा पन्ना काला किया उसको भी गृह्यसूत्र से न उड़ा सके "स्वाध्याय मधीयीत" इस सूत्र में "ब्राह्मणानि" पद पृथक् और "इतिहासः पुराणानि" पद

पृथक् पड़े हैं जो साबित करते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों से इतिहास पुराण संज्ञ ग्रन्थ भिन्न हैं क्या किसी समय में कोई आर्यसमाजी इसके उत्तर के लिये लेखनी उठावेगा हमें तो विश्वास है कि कोई मनुष्य साहस भी नहीं कर सकता गोपथ ब्राह्मण और गृह्यसूत्र से साबित हो गया कि ब्राह्मण ग्रन्थों से इतिहास पुराण पुस्तक भिन्न हैं विचार शील इसको अपने मन में विचार सकते हैं कि पं० तुलसीराम हठ पर हैं या मिश्र ज्वालाप्रसाद् जी।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद् मिश्र व्याकरण के महाभाष्य के प्रथम आन्हिक "सप्त द्वीपा वसुमती" प्रमाण देकर लिखते हैं कि यदि नाराशंसी का नाम पुराण होता तो साङ्ग लिख कर फिर पुराण लिखने की क्या आवश्यकता थी इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि "यदि उक्तमहाभाष्य में यहीं ब्राह्मण पद भी आता और इतिहास पुराण शब्द भी भिन्न विषयक आते तो सिद्ध हो जाता कि ब्राह्मण से इतिहास भिन्न हैं परन्तु जब ब्राह्मण पद नहीं और इतिहास पुराण शब्द हैं तो हम कह सक्ते हैं कि ये ही पद ब्राह्मण के ऐसे भाग के नाम हैं जिसमें कोई कथाप्रसङ्ग है वह ब्राह्मण भाग इतिहास है"।

पं० तुलसीराम ने जो यह लिखा है कि ब्राह्मण पद आता और इतिहास पुराण शब्द भी आते तो सिद्ध हो जाता कि इतिहास पुराण ब्राह्मण से भिन्न हैं परन्तु जब ब्राह्मण पद नहीं फिर इतिहास पुराण भिन्न कैसे मान सकते हैं गोपथ ब्राम्हण और आश्वलायन गृह्यसूत्र में इतिहास पुराण पद ब्राह्मण शब्द से भिन्न आये हैं क्या वहां पर आप ने या आर्यसमाज ने मान लिया कि इतिहास पुराण ब्राह्मण ग्रन्थों से भिन्न हैं इस बात को तो समस्त संसार जान गया है कि जब इन का मन गढ़ंत सिद्धान्त कटेगा तब यह वेद और स्वामी दयानन्द के लेख को भी नही मानेंगी उसको भी सोलह आने मिथ्याही कहेंगे फिर पं० ज्वालाप्रसाद की तो कथा ही दूसरी है यह क्या बात है कि महाभाष्य में ब्राह्मण पद आता तो पं० तुलसीराम मान लेते और गोपथ तथा आश्वलायन सूत्र में आया तब न माना साफ झलक रहा है कि पं० तुलसीराम को जब कोई रास्ता न मिला तब यही लिख दिया कि ब्राह्मण पद पृथक् होता तो मान लेते यदि समाज ने माननाही सीखा होता तो हम को इस ग्रन्थ लिखने की क्या आवश्यकता थी।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो लिखा था कि "यदि नाराशंसी का नाम ही पुराण होता तो साङ्ग लिख कर फिर पुराण लिखने की क्या आवश्यकता थी" पं०

तुलसीराम ने इस का क्या उत्तर दिया इसके बारे में तो एक अक्षर भी न लिखा क्यों न लिखा क्या वास्तव में बुद्धि ने काम नहीं दिया जिस बात का उत्तर नहीं देसकते उसको न मानना क्या यह साबित नहीं करता कि आर्यसमाज पूरे आग्रह पर है न किसी बात का उत्तर दे सकती है और न वैदिक ग्रन्थों को प्रमाण मानती है।

इसके आगे पं० तुलसीराम जी लिखते हैं कि ब्राह्मणों के उन भागों का नाम इतिहास है कि जिन में कथा है जैसे कि "जनमेजयो हवै" इस गोपथ ब्राह्मण से यह दिखलाया कि ब्राह्मणों में इतिहास है और इतिहास होने की वजह से ब्राह्मणों का ही नाम इतिहास पुराण है हम इस बातको पहिले ही लिख आये हैं कि यदि कथा होने से ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण हैं तब तो इनके वेद भी इतिहास पुराण हो जावेंगे तिमिरभास्कर की टिप्पणी में इसी विषय को पं० ज्वालाप्रसाद जी दिखाते हैं—

सभद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परीक्षितः अथर्व का० २० पु० १२७

अर्थात् राजा परीक्षित के राज्य में सब मनुष्य आनन्द करते थे इसके ऊपर पं० तुलसीराम जी भास्कर प्रकाश की टिप्पणी में लिखते हैं कि यहां अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का नाम नहीं है किन्तु इस का अर्थ यह है कि चारों ओर देखनेवाले राजा के राज्य में प्रजा सुख से बढ़ती है क्या मजे की बात है कि अभिमन्यु का लड़का परीक्षित आजावे तभी तो इतिहास बने नहीं तो इतिहास ही नहीं कहला सकता फिर पं० तुलसीराम ने वह कौन सा सबूत दिया कि जिस से यह परीक्षित अभिमन्यु का लड़का नहीं था और अपने लिखे ब्राह्मण में क्या सबूत दिया कि जिससे वह अभिमन्यु का लड़का ही था आर्यसमाज का एक यह भी सिद्धान्त है कि कथा किसी मनुष्य की यदि किसी पुस्तक में होगी तो वह पुस्तक कथा वाले मनुष्य के बाद बनी होगी इस सिद्धान्त के अनुसार राजा जनमेजय के बाद ही गोपथ ब्राह्मण बना है जिस को आज समाज स्वतः प्रमाण मानती है तुलसीराम के लेख में गोपथ ब्राह्मण आधुनिक और तुलसीराम का लिखा परीक्षित अभिमन्यु का पुत्र था इस में प्रमाण भाव तथा अथर्व वेद का परीक्षित अभिमन्यु का लड़का नहीं था यह तीन दोष आगये हैं जिनका दूरीकरण पं० तुलसीराम से नहीं हुआ अब देखना चाहते हैं आगे को कोई आर्यसमाजी इन दोषों को दूर करता है या सर्वदा के लिये आर्यसमाज के ऊपर पड़े रहते हैं।

पं० तुलसीराम ने अपने लिखे परीक्षित को खास एक व्यक्ति माना और पं० ज्वालाप्रसाद के लिखे परीक्षित को चारों तरफ देखने वाला सामान्य राजा कहते हैं आपने जो यह अर्थ किया है कि चारों तरफ देखने वाले राजा के राज में प्रजा सुखी रहती है यह सत्य है या असत्य इसका पता अब आगे लगता है हम आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि हिरण्याक्ष तथा हिरणकश्यपु व रावण तथा वेन शिशुपाल व कंस यह चारों तरफ देखते थे या एक पूर्व दिशा की तरफ ? यदि आर्यसमाजी यह उत्तर दें कि ये तो एक ही तरफ देखते थे इसके ऊपर हमारा प्रश्न होगा कि क्या तीन दिशाओं की तरफ इन की आंखें बंद हो जाती थीं ? यदि ये कहें कि ये तो चारों तरफ देखते थे तो फिर आर्यसमाजी बतलावें कि इनके राज्य में प्रजा कितनी सुखी थी पूर्वोक्त समस्त राजा चारों तरफ देखते थे किन्तु इनके राज्य में प्रजा दुख ही पाती थी फिर वेद का यह कहना कि चारों तरफ देखने वाले राजा की प्रजा सुख पाती है सोलह आने मिथ्या हो गया क्या वेद में यही महत्व है कि वह झूठे लेख लिख कर मनुष्यों को धोखे में डाले वास्तव में वेद सत्य है ईश्वरी ज्ञान है किन्तु आर्यसमाजियों का यह सिद्धान्त है कि वेद के इस प्रकार के मिथ्या अर्थ किये जावें कि जिन अर्थों से लोक में से वेद का महत्व उड़ जावे इसी सिद्धान्त का अनुसरण करके पं० तुलसीराम ने अथर्ववेद का यह अर्थ किया है वेद का महत्व भी जाता रहा और पं० तुलसीराम यह भी सबूत नहीं दे सकते कि हमारा अर्थ सत्य है इस पर तो हमको यही कहना पड़ता है कि "दोनों दीन से गये रे पांड़े। हलुवा रहे न माड़े" वेद भी मिथ्या हो गया और वेद से इतिहास भी न उड़ा।

इसके अलावा वेद में असम्भव दोष भी आवेगा यह हो ही नहीं सकता कि जो एक तरफ देखता हो वह दूसरी तरफ न देख सके यह प्रत्यक्ष के विरुद्ध है हां अलबत्ते एकाक्षी में यह बात घट सकती है दूसरी आंख न होने के कारण वह सर्वदा एक ही तरफ देखा करता है सम्भव है कि पं० तुलसीराम का यही अभिप्राय हो कि एक आंख वाले राजा के राज्य में प्रजा सुखी रहती है यह भी गलत क्योंकि दो नेत्र वाले राजा के राज में भी प्रजा सुख पाती है यहां पर भी वेद में असम्भव और मिथ्यात्व दोष बने रहते हैं जो त्रिकाल में नहीं हटते मालूम होता है कि पं० तुलसी राम वैदिक ग्रन्थों को मानने को तैयार नहीं और उत्तर में समर्थ नहीं जो बन पड़ता है सो लिख देते हैं चाहे धार जाय या रहे।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद जी लिखते हैं कि यजुर्वेद के अध्याय १२ और मन्त्र ४ में स्वामी दयानन्द ने भी वामदेव्य ऋषि का जाना तथा पढ़ाया साम किया है इस मन्त्र में वामदेव ऋषि की सूक्ष्म कथा मौजूद है इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि "वामदेव तो ऋषि पर्याय हैं किसी व्यक्ति का नाम नहीं" यह पढ़कर हंसी आती है स्वामी दयानन्दजी तो व्यक्ति का नाम लिखते हैं (उनका लेख यह है कि वामदेव ऋषि ने जाने व पढ़ाये) और पं० तुलसीराम ऋषि का पर्याय बतलाते हैं आज तो पं० तुलसीरामजी स्वामी दयानन्द के लेख को भी मिथ्या ही मानते हैं पं० तुलसीराम पर ही क्या मुनहसिर है आज जितने भी आर्यसमाजी हैं वे सब अपने को स्वामी दयानन्द से विद्वान् मानते हैं स्वामी दयानन्दजी में तो इतनी विद्वत्ता ही नहीं थी कि वे इनके सामने बोल सकते जब कि आज कल के आर्यसमाजी वेद और खास स्वामी दयानन्द के लेख को ही नहीं मानते तो फिर कोई किस रीति से आर्यसमाज को धार्मिक सुसायटी कह सकता है यहां पर तो "गुरु गुड़ और चेला चीनी हो गये" पं० तुलसीराम स्वामी दयानन्द से भी बढ़ गये जो वामदेव को ऋषि का पर्याय बतलाते हैं ऋषि का पर्याय तो बतलाया किन्तु पर्याय होने में कुछ सबूत नहीं दिया पं० तुलसीराम तो क्या सबूत देंगे किन्तु दो लाख आर्यसमाजी भी यह सबूत नहीं दे सकते कि वामदेव ऋषि पर्याय हैं।

स्वामी दयानन्द के अर्थ को तुलसीराम क्या खंडन कर सकेंगे कोई भी खंडन नहीं कर सकता स्वामीजी के पक्ष में बड़ा जबर्दस्त गवाह पाणिनीय ऋषि है यह अष्टाध्यायी में लिखते हैं कि—

वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ४ । २ । ९

अर्थ--वामदेव से "दृष्टं साम:" इस अर्थ में ड्यत् और ड्य यह प्रत्यय हों इसका उदाहरण यह है कि "वामदेवेनदृष्टं साम वामदेव्यम्" अर्थात् समाधी अवस्था में जो सामवेद वामदेव ऋषि ने देखा उस साम का नाम "वामदेव्य" है यहां पर पाणिनीयजी खास व्यक्ति को लेते हैं न कि ऋषि पर्याय को स्वामी दयानन्द के इतने पुष्ट सिद्धान्त को तुलसीराम का खंडन करना नाहक में पन्ने काले करना है।

इसके आलावा यदि हम पं० तुलसीराम के मन्तव्यानुसार वामदेव्य ऋषि का पर्याय मानलें तो चारों वेद समाज के मत में वामदेव्य हो जावेंगे क्योंकि

ऋषियों ने चारों ही वेद जाने और पढ़ाये हैं वास्तव में सामवेद के कुछ मन्त्रों का नाम वामदेव्य है जो कि वामदेव ऋषि को समाधी में दीखे किन्तु पं० तुलसीराम के मत में समस्त ही वेद वामदेव्य होगया मुझे नहीं मालूम कि पं० तुलसीराम ऐसा अयोग्य लेख क्यों लिखते हैं सामवेद में कुछ मन्त्र वामदेव्य कहलाते हैं क्योंकि उनको वामदेव ने जाना है वामदेव का इतिहास यजुर्वेद में है इसको स्वामी दया-नन्द अपनी लेखनी से लिखते हैं इसको देखकर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र लिखते हैं कि यदि इतिहास होने के कारण से ब्राह्मणों का नाम पुराण है तब तो वेद भी पुराण हो जावेंगे इस का उत्तर न तो पं० तुलसीराम ने दिया है और न कोई आर्य समाजी आगे को दे सकता है बस यह बात साफ खुल गई कि सूक्ष्म इतिहास होने पर किसी ब्राह्मण ग्रन्थ का नाम पुराण नहीं है यदि ऐसा है तब तो समाज के मत में वेद भी पुराण ही है।

इस के आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि "अग्नेर्ऋग्वेदोवायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः। शतपथ ११। ५" अग्नि वायु आदि ऋषियों से ऋगादि वेद हुवे। अग्नि वायु आदि तत्व न थे किन्तु जीव विशेष थे। यह सायणाचार्य अपनी ऋग्वेदभाष्य भूमिका में लिखते हैं "जीव विशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात्" अर्थात् जीव विशेष अग्नि वायु आदित्यों ने वेदों को प्रकट किया है। इस से इतिहास और पुराण ये दोनों नाम ब्राह्मणों के ही हुवे। पं० तुलसीराम को जब कुछ उत्तर नहीं मिलता तब वे प्रकरण को छोड़कर प्रकरणान्तर में चले जाया करते हैं इसी सिद्धान्त के अनुसार यहां पर भी यही चाल चली है पुराणों का निर्णय छोड़कर वेदोत्पत्तिपर भाग चले इस चालाकी का कारण यह है कि जिस विषय का निर्णय हो रहा है वह रह जावे और दूसरा विषय छिड़ जावे न यह ते हो न वह हो "अग्नेर्ऋग्वेदः" इस लेख से पं० तुलसीराम का क्या मतलब है ब्राह्मणों में इतिहास कथा है इस बात को तो सभी मानते हैं कि ब्राह्मण और संहिता दोनों में ही कुछ कुछ कथा है जब यह बात मानी हुई है फिर अधिक प्रमाण की क्या आवश्यकता, आवश्यकता इस बात की थी कि पं० तुलसीराम इस बात को सिद्ध करते कि वेदों में कथा नहीं है सो तो पं० तुलसीराम क्या कोई भी आर्यसमाजी सिद्ध नहीं कर सकता कि वेदों में कथा नहीं यह तो पिछले लेख से सिद्ध होगया कि वेदों में इतिहास हैं यदि पूर्व के प्रमाणों से आर्यसमाजको संतोष नहीं है तो फिर इतिहास के दिखलानेवाले दो चार मन्त्र हम नीचे लिखते हैं हमें आशा है कि विचारशील आर्यसमाजी इन प्रमाणों को

देखकर अपने मन में विचार करेंगे कि वास्तव में वेद में इतिहास हैं या नहीं प्रमाण नीचे लिखता हूँ—

(१) नमोनीलग्रीवाय (यजु०) अर्थात् नीला है गला जिस का ऐसे महादेव को नमस्कार है इस में महादेव का इतिहास है (२) भृगुणामङ्गिरसातपञ्चम् (यजु०) भृगु की संतान अङ्गिरसों ने तप किया इस में अङ्गिरसों का इतिहास है (३) इदं विष्णुर्विचक्रमेत्रेधानि दधे पदं समूढ मस्यपा७ सुरे (यजु० ५ । १५) अर्थात् विष्णु ने इस दृश्यमान् संसार को नापा और तीन पैर रक्खे इस मन्त्र में बामनावतार का इतिहास है (४) इन्द्रो दधीचो अस्थिभिवृत्राण्य प्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव (ऋ० अष्टक १ अध्याय ५) अर्थात् इन्द्र ने दधीचि ऋषि की अस्थियों के वज्र से वृत्रासुर को काटा और ९९ हजार राक्षसों को मारा (५) अपां फेनेन न मुचेः शिर इन्द्रोद्वतर्थः । विश्वाय दजयास्पृधः (ऋ० मं० ८ अनु ६) अर्थात् इन्द्र ने समुद्रफेन से नमचि के शिर को काटा इसमें नमचि का इतिहास है इत्यादि सैकड़ों इतिहास वेद में मौजूद हैं जब वेद में इतिहास मौजूद हैं फिर यह कौन कह सकता है कि वेद में इतिहास नहीं कपट थोड़े ही दिन चलता है अन्त को खुल जाता है इतिहास होने से ब्राह्मण पुराण हैं तो फिर इसी नियम से वेद भी पुराण हैं इसके ऊपर कोई भी लेखनी नहीं उठा सकता वेदों में इतिहास का होना और वेदों को पुराण न मानना सिद्ध करता है कि चाहे ब्राह्मणों में छोटे २ लाख इतिहास दिखलाये जावें किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थ त्रिकाल में भी पुराण नहीं हो सकते जब इतिहास दिखाने से ब्राह्मण ग्रन्थों का इतिहास पुराण होना सिद्ध ही नहीं होता तो फिर "अग्नेर्ऋग्वेदः" के लिखने का क्या प्रयोजन है ।

यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि वेदोत्पत्ति दिखलाने के लिये "अग्नेर्ऋग्वेदः" लिखा है इस का तो यहां पर प्रकरण ही नहीं जब प्रकरण ही नहीं फिर क्यों लिखा गया इस का लिखना साबित करता है कि पं० तुलसीराम की लेखनी प्रकरण पर कुछ नहीं लिख सकती अतएव प्रकरणान्तर में पहुंचे हम नहीं चाहते थे कि विषयान्तर में जावें किन्तु पं० तुलसीराम के लेख के उत्तर के लिये जाना पड़ा प्रथम तो यह कि सायण ने अपनी ऋग्वेद भाष्य भूमिका में यह कहीं नहीं लिखा "जीव विशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदाना मुत्पादितत्वात्" हम ने तो सायण की ऋग्वेद भाष्य भूमिका के पन्ने दो तीन बार उथले किन्तु यह पाठ कहीं पर भी नहीं मिला

और यदि किसी अन्य प्रेस की छपी हुई पुस्तक में यह पाठ हो और सायण का ही लिखा हो तब भी मानने के योग्य नहीं (१) इस में वेदों का उत्पादित (उत्पन्न) होना लिखा है वेद का उत्पन्न होना मानना बड़ी भारी भूल है वेद नित्य हैं क्योंकि यह नित्य ब्रह्म का ज्ञान है नित्य का उत्पन्न होना बन ही नहीं सकता ऋषियों का सिद्धान्त है कि—

नकश्चिद्वेद कर्तास्याद्वेदस्मर्ता स्वयं भुवः ।

वेद का बनाने वाला कोई भी नहीं वेद का स्मरण करने वाला ब्रह्मा है किसी ने भी वेद की उत्पत्ति नहीं मानी केवल स्वामी दयानन्द ने मानी है जब आज तक समस्त वैदिक शास्त्र वेदों को नित्य मानते हैं उसके विरुद्ध "जीवविशेषैः" इस लेख को कोई विचार शील कैसे मान लेगा कि जिसमें वेदों का उत्पन्न होना लिखा है । (२) कई एक वेद मन्त्रों पर भी पानी फिर जाता है क्योंकि वेद मन्त्रों में वेद के कर्ता अग्निवायु आदित्य जीव विशेष नहीं मानें वेद बड़े जोर के साथ कहताहै कि-

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वंयो वै वेदांश्च प्रहिणोतितस्मै ।
तᳬहदेवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहंप्रपद्ये ॥

श्वेता श्वेत० अ० ६ मं० १८

इस मन्त्र में स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्मा के अन्तःकरण में वेद का प्रादुर्भाव हुआ जब अग्नि वायु और आदित्य के द्वारा वेद होना मानेंगे तो इस मन्त्र पर हड़ताल लगानी पड़ेगी और भी लीजिये—

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा मथर्व्याय ज्येष्ठपुत्रायप्राह ॥१॥
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ।
स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिर से परावराम् ॥२॥
शौन को ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ ।
कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥ ३ ॥ तस्मै
स हो वाच ॥ द्वै विद्ये वेदितव्य इतिहस्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति

परा चैवापरा च ॥ ४ ॥ तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्व्वेदः सामवेदो ऽथर्व्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥

इन मन्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि सब से प्रथम सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा पैदा हुआ और उसने परा और अपरा विद्या अपने बड़े लड़के को पढ़ाया यहां पर भी वेद का स्मरण होना ब्रह्मा को ही बतलाया गया है इन पांच मन्त्रों के लिये समाज को हड़ताल पीस कर तैयार करनी चाहिये आर्यसमाज ने शास्त्रों की संगति बिठलाना हँसी खेल समझ रक्खा है यह खंडन नहीं है संगति है यदि स्वामी दयानन्द के मन गढ़ंत अग्नि, वायु, आदित्य के द्वारा वेद का प्रकट होंना मानेंगे तो फिर इन ६ मन्त्रों की संगति कैसे बैठेगी यदि कोई मनुष्य हौसला रखता हो तो फिर संगति बिठला कर देखै कोशिश करने पर भी सात लाख जन्म में भी नहीं बैठेगी स्वामी दयानन्द ने वेद के इन ६ मन्त्रों के उड़ाने के लिये ही अग्नि, वायु, आदित्य को ऋषि बनाया है इसके सिवाय और कुछ भी प्रयोजन नहीं।

अब हम आपको "अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः" का अर्थ बतलाते हैं यह पाठ केवल शथपथ में ही नहीं किन्तु गोपथ में भी हैं "अग्नेर्ऋग्वेदं वायोर्यजुर्वेदमादित्यात्सामवेदम्" ॥ गोपथ के अलावा यह पाठ तैत्तरीय ब्राह्मण में भी है "ऋग्वेदएवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात्" इसके अलावा यह पाठ मनु में भी है "अग्निवायु रविभ्यस्तुत्रयं ब्रह्म सनातनम् । दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थमृग्यजुः साम लक्षणम्" इस विषय में समाज की तरफ से इतने प्रमाण दिये जा सकते हैं यदि कोई और प्रमाण मिलै तो उसका भी यही मतलब होगा अब हम इसका उत्तर लिखेंगे उत्तर लिखने से पहिले कुछ कारण ऐसे और बतलाते हैं जिन से यह सिद्ध होता है कि यह ऋषि नहीं और इन के हृदय में वेदों का ज्ञान नहीं हुआ (३) अग्नि, वायु, आदित्य इनके आगे कहीं पर भी ऋषि पद नहीं दिया ऋषि पद का प्रयोग स्वामी दयानन्द ने स्वतः अपने मन से कर लिया है इस लिये इन का ऋषि कहना फर्जी (काल्पनिक) है यदि कोई आर्यसमाजी यह दावा करे कि वास्तव में यह ऋषि थे तो फिर वह प्रमाण दे कि इनको ऋषि के नाम से कहां लिखा है और साथ ही साथ यह भी बतलावे कि यह ऋषि किस के पुत्र थे और

इन की सन्तान कौन २ थी इन्हों ने वेदों को जान कर फिर किस को पढ़ाया इनके होने का समय कौन था तथा कितने वर्ष तपस्या करने के बाद यह ऋषि कहलाये जब इनके पहिले वेद नहीं थे तो फिर ये आप्त कैसे हुए इसके ऊपर यदि कोई सायण की भूमिका का लेख दे तो वह नहीं माना जावेगा क्योंकि समाज सायण के लेख को प्रमाण नहीं मानती और सनातनधर्मी भी ऐसी दशा में किसी भी भाष्यकार के लेख को प्रमाण नहीं मानते जब कि वह लेख आर्ष लेख के विरुद्ध पड़ता हो उसमें वेदों का उत्पन्न होना लिखा हो जो सर्वथा वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध है इसके अलावा यह पाठ भी सायण भूमिका में नहीं है सायण के नाम से नया पाठ स्वामी दयानन्द ने अपने आप बनाया है इस लिये इस प्रमाण को छोड़ कर समाजियों को अन्य प्रमाण देना चाहिये अन्य प्रमाण इन को त्रिकाल में भी नहीं मिल सकता आर्यसमाज के सिद्धान्त की पुष्टि में कहीं पर भी कोई अक्षर नहीं मिलता अतएव समाज का यह पक्ष कि यह ऋषि थे यहीं पर समाप्त हो जाता है।

(५) "ऋग्वेद" "यजुर्वेदः" तथा "सामवेदः" यह शब्द पुलिङ्ग हैं और गोपथ ब्राह्मण में ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदं सह कर्मणि द्वितीया विभक्ति दी है जिसका अर्थ यह होता है कि "अग्नि से ऋग्वेद को और वायु से यजुर्वेद को और आदित्य से सामवेद को" अब यहां पर कर्ता नहीं है कर्ता और मानना पड़ेगा यदि इन से वेद उत्पन्न हुए हैं तब तो वेदों में कर्ता में प्रथमाविभक्ति होना चाहिये यहां पर वेदों को कर्म माना है अतएव इन तीन ऋषियों के द्वारा उत्पन्न होना वही मानेगा जिसको कर्ता कर्म का भी ज्ञान न हो यहां पर क्रिया और कर्ता दोनों का अध्याहार होगा तब ऐसा पाठ बनेगा कि "अग्नेर्ऋग्वेदं वायोर्यजुर्वेदं मादित्यात्सामवेदं दुदोह" जिस का अर्थ यह हुआ कि अग्नि से ऋग्वेद को और वायु से यजुर्वेद को और आदित्य से सामवेद को दूहा गोपथ ब्राह्मणके अर्थ में अग्न्यादि के द्वारा वेदों का उत्पन्न होना नहीं लिखा किन्तु दूहा जाना लिखा है यदि कहो कि "दुदोह" इस क्रिया का अध्याहार आप ने अपने मनसे किया है इसके ऊपर हमारा उत्तर यह है कि गोपथ के पाठ में क्रिया नहीं है इस वास्ते क्रिया का तो अध्याहार करना ही होगा यदि कोई कहे कि हम किसी दूसरी क्रिया का अध्याहार कर लेंगे जैसा कि आपने अपने मन से किया है इसका उत्तर यह है कि आप किसी दूसरी क्रिया का अध्याहार कर ही नहीं सकते और हमने भी अपने मन से नहीं किया इस के लिये आप मनु को देखिये मनुजी

क्या लिखते हैं "दुदोह यज्ञ सिद्धयर्थ मृग्यजुः साम लक्षणम्" यहां पर क्रिया "दुदोह" पड़ी है।

(६) शतपथ में सूर्य और गोपथ तथा तैत्तिरीय के पाठ में तो आदित्य है किन्तु मनु के पाठ में रवि शब्द है अब आर्यसमाजियों को बतलाना चाहिये कि ऋषि का नाम सूर्य था या कि आदित्य या रवि, क्या सूर्य देव के जितने नाम हैं उस ऋषि के वे सब नाम थे कहीं पर सूर्य और कहीं पर आदित्य कहीं रवि लिखना साबित करता है कि वे ऋषि नहीं थे बलिक सूर्य देव थे और सूर्य के द्वारा यजुर्वेद का मिलना श्रीमद्भागवत में पाया भी जाता है देखिये—

एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूप धरो हरिः।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः॥

(द्वादश स्कंध)

इस रीति से सूर्य भगवान् ने महर्षि याज्ञवल्क्य को माध्यन्दिनी शाखा अर्थात् वाजसनेयी संहिता का ज्ञान दिया है जिस के ऊपर स्वामी दयानन्दजी ने भाष्य किया है यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि हम श्रीमद्भागवत को प्रमाण नहीं मानते ऐसी हालत में हम यह कहेंगे कि हम ने आप के मानने का ठेका नहीं लिया है आप चाहे वेदों को भी न मानें ठेका केवल स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों का है स्वामी दयानन्द जी श्रीमद्भागवत को प्रमाण मानते हैं उन्हों ने अपने बनाये सत्यार्थ प्रकाश में श्रीमद्भागवत को ही नहीं बलिक समस्त पुराणों को प्रमाण माना है वे लिखते हैं कि हम अङ्ग और उपाङ्गों को प्रमाण मानते हैं उपाङ्गों में १८ पुराण आगये हैं इस कारण स्वामी दयानन्द को पुराण प्रमाण हैं आज धरातल पर कोई एक भी ऐसा आर्यसमाजी नहीं है कि जो यह साबित कर दे कि उपाङ्गों में पुराण नहीं हैं पुराणों का उपाङ्ग होना अतएव स्वामी दयानन्द को श्रीमद्भागवत ही नहीं किन्तु समस्त पुराण प्रमाण है।

(७) इसके अलावा और २ ऋषियों के द्वारा भी वेद ज्ञान संसार में फैला है इसका पता भी वैदिक ग्रन्थों से पाया जाता है इसको हम व्याकरण से दिखलाते है देखिये—

दृष्टं साम। ४। २। ७। तेनेत्येव। वसिष्ठेन दृष्टंवासिष्ठं साम अस्मिन्नर्थेऽण डिद्वा वक्तव्यः॥ उशनसा दृष्टमौशनम्।

औशनसम् । कलेर्ढक् । ४ । २ । ८ । कलिना दृष्टं कालेयं साम । वाम. देवाड्ड्यड्ड्यौ । ४ । २ । ९ । वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम् ।

व्याकरण के इन प्रमाणों से सिद्ध है कि वसिष्ठ और उशना तथा कलि और वामदेव आदि २ ऋषियों को भी समाधी में वेद ज्ञान हुआ है ऋग्वेद के मूल में प्रकरण पड़ता है कि त्रित आदि ऋषियों के द्वारा भी संसार में वेद का ज्ञान फैला है जिन ऋषियों के द्वारा ब्रह्मा के पश्चात् कुछ २ मन्त्रों का ज्ञान संसार में आया उन सब का नाम हिन्दुसाहित्य में अङ्कित है किन्तु इन तीन ऋषियों का नाम कहीं पर भी नहीं आया नहीं मालूम स्वामी दयानन्द ने डारवीन की भांति कोई नई थ्यूरी तो चलाना नहीं चाहा है ।

(८) इस के अलावा शतपथ ब्राह्मण में जहां पर "अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः" यह लिखा है वहीं पर इस के ऊपर "तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त" लिखा है उसके नीचे "अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः" पाठ है अर्थात् शतपथ में पूरा पाठ इस प्रकार है—

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्ने ।
ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ॥

श० का ११ । ५

पं० तुलसीराम ने आधे पाठ को छिपाया है उनके मन में यह खटक गया था कि यदि हम समस्त पाठ को लिख देंगे तो स्वामी दयानन्द के मनगढंत सिद्धान्त की बनावट खुल जावेगी इस लिये आधा छिपा लिया परन्तु क्या कोई मनुष्य संसार में शतपथ नहीं जानता शतपथ देखा गया देखते ही पं० तुलसीराम की चालाकी ऊपर आगई धर्म निर्णय में छल कपट करना आर्यसमाज ने खूब सीखा है और इसी से इस का कल्याण होगा क्या कोई भी आर्यसमाजी ऐसे पुरुषों को धार्मिक के नाम से पुकार सकता है कि जो लोग पद पद पर कपट कर धोका देते हैं अस्तु अब इस में यह लिखा है कि तपे हुए अग्नि, वायु, सूर्य, से ऋग्० यजु० साम० प्रकट हुए क्या वास्तव में सच ही यह तीनों ऋषि थे क्या ईश्वर ने इनको

चूल्हे या भट्टी अथवा भाड़ में तपाया था और जब यह तप गये बिल्कुल लाल हो गये तब इन को वेदों का ज्ञान हुआ था इन का तपाया जाना ही सिद्ध करता है कि यह ऋषि नहीं थे किन्तु वायु, अग्नि, सूर्य जड़ थे इन आठ युक्तियों से हम दयानन्द के सिद्धान्त को गिराते हैं यदि कोई आर्यसमाजी आगे को लेखनी उठावेगा तो फिर स्वामी दयानन्द की मानी वेदोत्पत्ति वेद विरुद्ध और अनर्गल सिद्ध करने के लिये १६ युक्ति और देंगे परन्तु हमें तो विश्वास है कि स्वामी दयानन्द के लेखों की कलई खुल गई और अब आगे को उनके लेख सत्य करने के लिये कोई भी पुरुष साहस नहीं कर सकता अतएव इस को यहीं छोड़ता हूं और वेदों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई अग्नि, वायु, सूर्य यह कौन हैं इन का ठीक निर्णय लिखता हूं आगे पढ़िये। ब्रह्माने प्रथम देवताओं को रचा फिर वेद को प्रकट किया—

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥

मनु० अ० १ श्लो० २२

अर्थ—उस ब्रह्मा ने देवताओं के गण को और इंद्रादिक प्राणियों को तथा कर्म्म स्वभावों को अप्राणि पाषाणादिकों को और साध्य जो देवता विशेष हैं तिन के समूह को ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों को और सूक्ष्म साध्यनाम देवता विशेष के समूह को उत्पन्न किया ॥ २२ ॥

अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुः साम लक्षणम् ॥

मनु० अ० १ श्लो० २३

अग्निवायुरविभ्यास्त्वित्यादि। ब्रह्म ऋग्यजुः सामसंज्ञं वेद त्रयं अग्नि वायु रविभ्य आकृष्टवान्। सनातनं नित्यं। वेदापौरुषेयत्वपक्ष एव मनोरभिमतः। पूर्व कल्पे ये वेदास्त एव परमात्मूर्तेर्ब्रह्मणः सर्वज्ञस्य स्मृत्यारूढाः। तानेव कल्पादौ अग्नि वायु रविभ्य आचकर्ष। श्रौतश्चायमर्थो न शङ्कनीयः। तथाच

श्रुतिः—"अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेद आदित्यात्सामवेदः" इति। आकर्षणार्थत्वा दुहि धातोर्नाग्निवायुरवीणाम कथित कर्मता किंत्वपादानतैव। यज्ञसिद्ध्यर्थं त्रयी संपाद्यत्वाद्य ज्ञानां आपीन स्थक्षीर वद्विद्य माना नामेव वेदानामभि व्यक्ति प्रदर्शनार्थं आकर्षण वाच को गोणो दुहिः प्रयुक्तः।

भावार्थ—"अग्नि, वायु, रविभ्यः" इत्यादि का अर्थ लिखते हैं अग्नि, वायु, रवि से ऋग्यजु साम नाम वाले तीन वेद को ब्रह्म ने खींचा वेद सनातन और नित्य हैं वेदों को जो अपौरुषेय माना है अर्थात् यह वेद पुरुष (ब्रह्म) के भी बनाये नहीं क्योंकि नित्य सनातन हैं यही पक्ष ठीक सिद्ध होता है पूर्व कल्प में भी वेद थे वे ही वेद परमात्मा (ईश्वर) की मूर्त्ति जो ब्रह्मा है उसकी स्मृति में आये उन्हीं वेदों को कल्प के आदि में अग्नि, वायु, रवि, से आकर्षण किया इस अर्थ में शंका न करना क्योंकि "अग्नेर्ऋग्वेदः" इत्यादि श्रुति कहती है अब एक बात व्याकरण की कहते हैं ये वेद अग्न्यादि से आकर्षित हुए इसी कारण से अग्नि, वायु, रवि इनको दुह धातु की अकर्मता रही यदि आकर्ष न माना जावे तो द्विकर्म दुह धातु का कर्म हो जावेंगे इनको अकथित कर्मता नहीं अपादानता है अतएव "अग्नि, वायु, रविभ्यः" यह अपादान में पञ्चमी विभक्ति है यज्ञ की सिद्धि के अर्थ वेदत्रयी में जो कहे यज्ञ हैं उन यज्ञों के अर्थ जैसे आपीन (थैन) अनेक देशों के भेद से जिसके अनेक नाम हैं उस आपीन स्थित दूध की भांति प्रथम ही विद्यमान जो वेद हैं उनके प्रकटता दिखलाने के लिये आकर्षण वाचक दुह धातु का प्रयोग है।

अर्थात् जैसे इस कल्प में वेद हैं पूर्व कल्प में यह ऐसे ही थे क्योंकि यह नित्य सनातन है और की तो क्या कहें यह ईश्वर के भी बनाये नहीं पूर्व कल्प में जब प्रलय हुआ यह उस समय भी लीन अवस्था में रहे जब इस कल्प की रचना हुई तब यह वेद रूपी ज्ञान इसी प्रकार अग्नि, वायु, रवि तत्वों में समाया था जैसे कि इस समय पञ्च तत्व में ईश्वर समा रहा है कल्प के आदि में परमात्मा की साकार मूर्त्ति जो ब्रह्मा है उसकी स्मृति में आया कि पूर्व कल्प में ईश्वरीय ज्ञान वेद था और अब

वह अव्यक्त रूप से अग्नि, वायु, रवि तत्व में मिला है उसको पृथक् करना चाहिये[1] उसने अपनी अनन्त शक्ति से तीनों तत्वों को तपाया[2] इसके पश्चात् वेद को इनमें से खींच कर प्रकट कर अपने पुत्र अर्थवा[3] को पढ़ाया अर्थवा ने अङ्गिरा को और अङ्गिरा ने भारद्वाज को इस प्रकार यह ईश्वरीय ज्ञान संसार में फैला इसके पश्चात् भी कुछ २ मन्त्र किसी २ ऋषि को समाधि अवस्था में मिले[4] उनके नाम भी खास वेद व्याकरणादि में लिखे हैं वेद के प्रकट होने का मार्ग शास्त्रों में इस प्रकार बतलाया है इन सबको न देखकर स्वामी दयानन्द ने तत्वों को ही ऋषि मान लिया बस इसी एक उदाहरण से पाठक जान सकते हैं कि दयानन्द को वेदों का कितना ज्ञान था हम अपनी लेखनी लिखते क्या अच्छे लगें।

अब इस वेदोत्पत्ति को छोड़कर फिर इतिहास पुराण पर चलिये पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि यही अर्थ आप भी द० ति० भा० पृ० ४६ पं० १७ में लिखते हैं कि "जिस में कोई कथा प्रसङ्ग होता है सो इतिहास जिस में जगत् की पूर्वावस्था सर्गादि का निरूपण होता है सो पुराण" सो ये दोनों बातें ब्राह्मण ग्रन्थों में (जैसा कि हमने ऊपर गोपथ और शतपथ का प्रमाण दिया) भी पाई जाती हैं इस से ये इतिहास पुराण हुवे। पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो कुछ लिखा है वह सोलह आने चौसठ पैसे सत्य है किन्तु पं० तुलसीराम की समझ ही विलक्षण है या तो समझ में नहीं आया या जान बूझ कर छिपाते हैं पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने यही तो लिखा कि जिस में जगत की पूर्वावस्था और सर्गादि का निरूपण होता है सो पुराण है पं० तुलसीराम ने नहीं मालूम सर्गादि पद का क्या अर्थ किया है एक सर्ग और आदि पद करके चार विषय और लिये जाते हैं ऐसे ५ विषय जिस में हों उस का नाम पुराण हैं नीचे देखिये—

सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम्॥

अर्थ—सर्ग, विसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशचरित्र, ये पांच विषय जिस में हों उसका नाम पुराण है पं० तुलसीराम तो क्या कोई भी आर्यसमाजी वंश का वर्णन

१ यहां तक मनुस्मृति का अर्थ है २ यह शतपथ कहता है ३ यह मुण्डकोपनिषद कहता है ४ यह मल ऋग्वेद और अष्टाध्यायी आदि व्याकरण के ग्रन्थ कहते हैं।

और मनुओं का हाल तथा वंश के मनुष्यों के चरित्र किसी ब्राह्मण ग्रन्थ में नहीं दिखला सकते जब कि यह माना है कि पांच विषय जिसमें पूरे हों उस को पुराण कहते हैं फिर तीन विषय जिन ब्राह्मण ग्रन्थों में बिल्कुल ही नहीं और सर्ग तथा प्रतिसर्ग जैसे होने चाहिये वैसे नहीं जब उन में पांच विषय ही नहीं फिर नहीं मालूम स्वामी दयानन्द के मिथ्या लेख के सत्य करने को पं० तुलसीराम क्यों साहस करते हैं पांच विषय न होने के कारण ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं हो सकते ।

इतिहास के विषय में पं० ज्वालाप्रसादजी ने यह बतलाया कि जिस में कथा प्रसङ्ग हो उसको इतिहास कहते हैं पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि बस इस लक्षण से ब्राह्मण ग्रन्थ ही इतिहास हैं क्योंकि उन में मनुष्यों की कथा आती है यहां पर भी पं० तुलसीराम आग्रह के पंजे में पड़े हैं क्योंकि संहिता और ब्राह्मणों में किसी खास मनुष्य के विषय में कुछ जरा सा लेख मिलता है इसको कथा प्रसङ्ग या इतिहास नहीं कहते विस्तार पूर्वक मनुष्यों के चरित्रों का वर्णन जिस में हो उसको इतिहास कहते हैं यह लक्षण ठीक महाभारतादि ग्रन्थों में घट सकता है न कि ब्राह्मणों में यदि ब्राह्मणों में यह लक्षण हैं तो फिर आर्यसमाजी बतलावें कि राजा रघु तथा दलीप या पृथु या वेन आदि २ राजाओं की कथा ब्राह्मणों ने कहां लिखी है न सही इनकी किसी और ही राजा की पूरी कथा दिखलावें सो त्रिकाल में कहीं मिल नहीं सकती इस के अलावा यदि पं० तुलसीरामजी के कथनानुसार हम ब्राह्मण ग्रन्थों को ही इतिहास मान लें तब तो भारत का सारा गौरव नष्ट हो जावेगा सृष्टि के आदि से हिन्दुस्तान में मुसलमानों के आने तक या जहां तक के राजाओं की कथा महाभारतादि इतिहासों में लिखी है उनका पता भी न लगेगा राम रावण संग्राम और महाभारत युद्ध आदि २ कई एक संग्रामों का भी बे पता हो जावेंगे हिन्दू जाति का समस्त गौरव नष्ट हो जावेगा मालूम होता है कि पं० तुलसीराम अपने देश का गौरव नष्ट करके देशोन्नति करना चाहते है यह आर्य-समाज की देशोन्नति है जिस के बारे में रात दिन समाज की प्रशंसा की जाती है कि समाज देशोन्नति करेगी हम अधिक क्या कहें महाभारत ग्रन्थ पर कई स्थान में "इतिहास" यह शब्द लिखा है स्वामी दयानन्दजी के मत में महाभारत ग्रन्थ ईश्वर कृत है इसके लिये धर्मप्रकाश के द्वितीय समुल्लास पृ० १५२ पर लिखा स्वामी दयानन्द का दिया शोलेतूर का विज्ञापन पढिये जब कि स्वामी दयानन्दजी महाभारत को ईश्वरकृत मानते हैं और उसमें इतिहास नाम से महाभारत को

पुकारा गया है नहीं मालूम पं० तुलसीराम उसको इतिहास क्यों नहीं मानते क्या तुलसीराम की दृष्टि में स्वामी दयानन्द का लेख कुछ भी महत्व नहीं रखता जब यह स्वामी दयानन्द के लेख को ही नहीं मानते फिर पं० ज्वालाप्रसाद के लेख को न मानें तो क्या कोई आश्चर्य है यदि नहीं मानते तो न मानें किन्तु स्वामी दयानन्दजी तो महाभारत को इतिहास मानते हैं इससे अधिक प्रमाण देना फिजूल समझता हूं।

इसके आगे पं० तुलसीराम जी लिखते हैं कि "चत्वारो वेदाः" कह कर फिर "सर हस्याः" इत्यादि की क्या आवश्यकता रहती। भिन्न ग्रहण से जाना जाता है कि ये ग्रन्थ वेद से भिन्न ही हैं। इस लेख के लिखने से समाज का कोई लाभ नहीं और न पं० ज्वालाप्रसादजी ने इस पर कोई आपत्ति की है उन्होंने तो यह लिखा था कि "साङ्गाः" लिख कर इतिहास पुराण लिखना साबित करता है कि पुराण इतिहास ग्रन्थ भिन्न हैं किन्तु इसके ऊपर तो पं० तुलसीरामजी मौन ही धारण कर बैठे।

इस के आगे पं० ज्वालाप्रसादजी न्याय दर्शन के वात्स्यायन भाष्य को लिख कर दिखलाते हैं कि वात्स्यायन भाष्य में तो पुराण और इतिहास को ५ वां वेद बतलाया है इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी वही लिखते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों को ही पुराण इतिहास कहते हैं ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण और इतिहास हैं इस में पं० तुलसीराम ने कोई प्रमाण नहीं दिया केवल लिख देते हैं और जो कुछ भी आगे लिखा है सब समस्त ब्राह्मण ग्रन्थों के ही लिये लिखा है किन्तु कोई यह तो बतलावे कि ब्राह्मण ग्रन्थों को पुराण और इतिहास अमुक जगह लिखा है।

इस के आगे पं० ज्वालाप्रसादजी ने "सबृहतीं" वेद मन्त्र का प्रमाण दिया है कि इस मन्त्र में वेद ने पुराणों को प्रमाण माना है इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि वेद में सामान्य शब्द इतिहास पुराणादि हैं किसी शिवपुराण अग्निपुराणादि आप के अभिमत पुराण का नाम नहीं। वेद में यदि "मनुष्य" शब्द आजावे तो क्या आप कहेंगे कि देखो वेद में मनुष्य शब्द है और हम (पं० ज्वालाप्रसाद) भी मनुष्य हैं इस लिये हमारा वर्णन वेद में आया है। इसका सविस्तार उत्तर मेरे बनाये "ऋगादिभाष्य भूमिकेन्दूपरागे द्वितीयोऽशः" में छपा है वहां देख लीजिये। जैसे आप ने महामोहविद्रावण, सत्यार्थभास्कर, सत्यार्थविवेक, मह-

ताब दिवाकर, मूर्त्तिरहस्य, मूर्त्तिपूजा आदि पुस्तकों के आशयों को इकट्ठा करके पिष्टपेषण किया है वैसा हम अच्छा नहीं समझते। वेद में सामान्य शब्द पुराण है इसी कारण से समस्त अठारह पुराणों का ग्रहण हो जावेगा क्योंकि जब किसी खास का नाम नहीं होता ऐसी दशा में समस्त का ही ग्रहण हुआ करता है यह नियम "त्यक्तानुवन्धे सामान्य ग्रहणम्" अटल है वेद में यदि मनुष्य शब्द आजावे तो बेशक पं० ज्वालाप्रसादजी अकेले का ग्रहण नहीं होगा किन्तु मनुष्यमात्र का होगा इस के लिये तो पं० तुलसीराम स्वतः ही स्वीकार करते हैं। यदि हम अकेले किसी पुराण का ग्रहण करते उस दशामें तो पं० तुलसीराम को पं० ज्वालाप्रसादजी का उदाहरण देना उचित था किन्तु जब हम समस्त पुराणों का ग्रहण करते हैं ऐसी दशा में एतराज करना बिल्कुल अयोग्य और भूल है।

इस के आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि इस के लिये हमारा बनाया ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दुपरागे द्वितीय अंश में देखना क्या खूब रही यह उत्तर नहीं है किन्तु एक किताब के बेचने का नोटिस है जो आप ने वहां लिखा वह लेख क्या यहां पर नहीं लिख सकते थे फिर आपने उस में कौन सी बढ़िया बात लिख दी। उस में भी तो यही लिखा है कि ब्राह्मणों को पुराण कहते हैं लिख तो दिया मगर प्रमाण के स्थान में तो वहां पर भी शून्य भगवान् की ही कृपा है।

इस के आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि हम आप की भांति के मनुष्य नहीं जैसे आप ने महामोहविद्रावण, सत्यार्थभास्कर, सत्यार्थविवेक, महताब दिवाकर, मूर्त्तिरहस्य, मूर्त्तिपूजा आदि पुस्तकों के आशयों को इकट्ठा करके पिसे हुए को पीसा है ऊपर लिखे हुए ग्रन्थों के कर्त्ताओं ने अपनी अपनी बनाई पुस्तकों में समस्त प्रमाण वैदिक ग्रन्थों के लिखे हैं इन पुस्तकों के निर्मात्ताओं ने एक भी प्रमाण स्वतः नहीं बनाया गर्ज़ यह है कि प्रमाण इन के बनाये नहीं किन्तु वेदादि सच्छास्त्रों के हैं यदि वे ही प्रमाण पं० ज्वालाप्रसादजी ने दयानन्द तिमिरभास्कर में लिख दिये तो इस में हानि क्या होगई हानि तो जब समझी जाती जब कि उपरोक्त ग्रन्थों के कर्त्ताओं के बनाये हुए प्रमाणों को पं० ज्वालाप्रसादजी अपने बनाये करके लिख देते मिश्रजी ने तो वह ग्रन्थ बनाया कि जिस को देखकर सैकड़ों मनुष्यों ने समाज को तिलांजलि दे दी और जो आज भी बड़े बड़े महोपदेशकों के बगल में दबा रहता है और आप जो अपनी इतनी बड़ाई करते हैं आप के बनाये भास्करप्रकाश को तो पं०

शिवशंकर आदि शास्त्रार्थ में कह देते हैं कि हम भास्करप्रकाश की बात को नहीं मानते पं० तुलसीराम ने तो बिना विचारे जो जी में आया लिख मारा है इसके अलावा जो मनुष्य धर्मप्रकाश को देखता है वही भास्करप्रकाश की प्रशंसा करता है शुरू से आखिर तक एक विषय की भी तो पुष्टि न कर सके फिर नहीं मालूम आप अपनी प्रशंसा क्यों करते हैं जब उत्तर न दे सके तब पं० ज्वालाप्रसाद को उलाहिना देकर ही भास्करप्रकाश के पन्ने काले कर दिये। इसी वेद मन्त्र पर आपने इतनी आल्हा गाई एक तिहाई पृष्ट काला किया और पं० ज्वालाप्रसादजी से सौतों कैसी लड़ाई ठानी किन्तु तिमिरभास्कर के लेख का भी कुछ उत्तर दिया उत्तर में तो केवल जीरो ही रहा।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसाद जी ने "एतच्छ्रुत्वारहः सूतः" बालकाण्ड का श्लोक लिख कर यह दिखलाया है कि महर्षि वाल्मीकि कहते हैं कि अब तुम उस कथा को सुनो जो हमने पुराणों में सुनी है जो कथा वाल्मीकि में कही है वह कथा ब्राह्मण ग्रन्थों में नहीं है किन्तु पुराणों में है इस कारण से भागवतादि को ही पुराण कहते हैं इसके ऊपर पं० तुलसीराम जी मौन ही हो बैठे।

इसके अलावा अश्वमेधयज्ञ और मृतक पितरो के श्राद्ध में पुराणों का सुनना पं० ज्वालाप्रसादजी ने प्रमाण देकर लिखा है इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी यह लिखते हैं कि धन्य है! आप का ऐसे निश्चय हो जाता है तभी तो इतना पुस्तक बढ़ाय बैठे। भला "८ वें ६ वें दिन में पुराण इतिहास सुनना आदि" इस से यह कैसे सिद्ध होगया कि ब्राह्मणों से पुराणादि पृथक् हैं प्रत्युत यह सिद्ध होगया कि सूत्रकार के समय में आप के माने व्यासकृत १८ पुराण तो थे ही नहीं इससे सूत्रकार ने ब्राह्मण ग्रन्थों ही को लक्ष्य करके इतिहास पुराण का पाठ लिखा है। व्यास जी से पूर्व भी कई राजाओं ने अश्वमेध यज्ञ किये उन यज्ञों में ८ वें ६ वें दिन ब्राह्मण ग्रन्थों ही का पाठ किया होगा।

बड़ी खुशी की बात है कि पं० तुलसीरामजी ने वेदों में अश्वमेधयज्ञ का तो होना माना जिससे स्वामी दयानन्दकृत वेद भाष्य अप्रमाणिक हो गया स्वामी दयानन्दजी ने अपने भाष्य में वेदों से समस्त यज्ञों को धता बुला दिया स्वामी दयानन्दजी तो वेदों में अश्वमेधादि यज्ञ ही नहीं मानते और तुलसीराम उन का होना मानते हैं पाठक इस विरोधपर स्वतः विचार करसकते हैं कि गुरू सच्चा या चेला।

और व्यासजी ने तो पुराणों के श्लोक बना दिये हैं पुराण ज्ञान तो अनादि है व्यास को भी पुराणों का उपदेश देवर्षि नारद से हुवा है नारद को सनतकुमार से, सनतकुमार को ब्रह्मा से, फिर आप कैसे कहते हैं कि उस समय में पुराण नहीं थे इस विषय की पुष्टि के लिये पुराण देखिये ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी "एवं वेदे" इस श्लोक पर कहते हैं कि यह श्लोक बिना पते का है मालूम होता है कि पं० ज्वालाप्रसादजी ने ही गढ़ा है हम इस श्लोक को फेरे लेते हैं इस का पता पं० ज्वालाप्रसादजी से पूछेंगे यदि मिल गया तो आर्यसमाज को उत्तर देना होगा नहीं तो कोई आवश्यकता उत्तर की नहीं ।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसादजी ने "एतच्छ्रुत्वारहः" "पुराणमितिहासश्च" "अष्टादश पुराणानि" "सर्गश्च प्रति सर्गश्च" "पुराणं मानवोधर्मः" बाल्मीकीय रामायण और महाभारत के इन श्लोकों से यह दिखलाया कि श्रीमद्भागवतादि को ही पुराण कहते हैं इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि द० ति० भा० पृ० ५० और ५१ में मनु महाभारत बाल्मीकीय रामायण अमरकोष के श्लोक जिन में पुराण शब्द और पुराण का लक्षण है लिखे हैं परन्तु उन में से किसी में भी "ब्रह्मवैवर्त्तादि का नाम पुराण है" यह नहीं लिखा तो फिर सामान्य पुराण शब्द मात्र आने से कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता ।

जब पं० तुलसीराम से उत्तर देते न बना तब यही लिख दिया कि उन में भागवतादि पुराणों का नाम कहीं पर भी नहीं है बाल्मीकीय रामायण के श्लोक में साफ लिखा है कि मैं अब उन कथाओं को सुनाता हूं जो पुराणों में लिखी हैं आगे जो कथा सुनाई है वे सगर, भगीरथ, बलि आदि की हैं क्या इन से श्रीमद्भागवतादि पुराणों का ग्रहण नहीं हो गया क्या ब्राह्मण ग्रन्थों में भी ऊपर के राजाओं की कथा लिखी हैं क्या जवाब है मौनता के सिवाय और कुछ भी उत्तर नहीं हो सकता ।

"अष्टादश पुराणानि", इस श्लोक में पुराणों की संख्या १८ और इन के निर्माता व्यास को बतलाया क्या सचही ब्राह्मण ग्रन्थ १८ हैं और वे सब वेद व्यास ने बनाये हैं यदि नहीं तो फिर १८ संख्या देने से या वेद व्यास कर्ता बतलाने पर श्रीमद्भागवातादि पुराणों का ग्रहण नहीं होगा जबरन संसार को अन्धा बनाना तास्सुब नहीं तो और क्या है ।

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च" इस श्लोक में पांच लक्षण होने से पुस्तक का नाम पुराण रक्खा गया है क्या सच ही ब्राह्मण ग्रन्थों में यह पांच बातें हैं यदि नहीं हैं तो श्रीमद्भागवतादि को पुराण क्यों न माना जावे।

"पुराणं मानवो धर्म" इसमें जब एक स्थान में पुराण और दूसरे स्थान में साङ्ग वेद पड़ा है तो फिर पुराण शब्द से श्रीमद्भागवतादि क्यों न लिये जावें ब्राह्मण ग्रन्थ तो साङ्ग वेद में आजावेंगे किसी का भी उत्तर न देना और केवल यह लिख देना कि भागवतादि पुराण नहीं लिये जा सकते क्या किसी विचारशील मनुष्य को तोषदायक हो सकता है हम जोर देकर कह सकते हैं कि इस विषय में आर्य-समाज चारों खाने चित्त गिरी और पं० तुलसीरामजी कुछ भी न लिख सके और स्वामी दयानन्द की मिथ्या कल्पना ऊपर आगई अब आगे को देखना है कि समाज इस विषय पर लेखनी उठाती है या पुराणों को प्रमाण मानती है।

तिलकादि।

सत्यार्थप्रकाश—

जो विद्या पढ़ने पढ़ाने के विघ्न हैं उन को छोड़ देवें जैसा कुसंग अर्थात् दुष्ट विषयीजनों का संग, दुष्टव्यसन जैसा मद्यादि सेवन और वेश्यागमनादि, बाल्या-वस्था में विवाह अर्थात् पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुरुष और सोलहवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना, पूर्ण ब्रह्मचर्य्य न होना, राजा, माता, पिता और विद्वानों का प्रेम वेदादि शास्त्रों के प्रचार में न होना, अतिभोजन, अतिजागरण करना, पढ़ने पढ़ाने परीक्षा लेने वा देने में आलस्य, वा कपट करना, सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना, ब्रह्मचर्य्य से बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धन की वृद्धि न मानना, ईश्वर का ध्यान छोड़ अन्य पाषाणादि जड़ मूर्त्ति के दर्शन पूजन में व्यर्थ काल खोना, माता, पिता, अतिथि और आचार्य्य, विद्वान् इन को सत्य मूर्त्ति मान कर सेवा सत्संग न करना, वर्णाश्रम के धर्म को छोड़ ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कंठी, मालाधारण, एकादशी, त्रयोदशी आदि व्रत करना, काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती, गणेशादि के नामस्मरण से पाप दूर होने का विश्वास,

पाखंडियों के उपदेश से विद्या पढ़ने में अश्रद्धा का होना, विद्या धर्म योग परमेश्वर की उपासना के बिना मिथ्या पुराणनामक भागवतादि की कथादि से मुक्ति का मानना, लोभ से धनादि में प्रवृत्त होकर विद्या में प्रीति न रखना, इधर उधर व्यर्थ घूमते रहना इत्यादि मिथ्या व्यवहारों में फँस के ब्रह्मचर्य्य और विद्या के लाभ से रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं ।

आजकल के संप्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या सत्संग से हटा और अपने जाल में फँसा के उनका तन मन धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़ कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखंड जाल से छूट और हमारे छल को जान कर हमारा अपमान करेंगे इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके अपने लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिये तन मन धन से प्रयत्न किया करें (प्रश्न) क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें ? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे ? और इन के पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषेध है:—

स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः ॥

स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है (उत्तर) सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है । तुम कुआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं । और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय का दूसरा मन्त्र है:—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याᳪं शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥ यजु० अ० २६ । २ ॥

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसारऔर मुक्ति के सुख देने हारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आ, वदानि) उपदेश करता हूं वैसे तुम भी किया करो । यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही को वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है स्त्री और शूद्रादि वर्णों को नहीं (उत्तर) (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्य्याय)

वैश्य (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अति शूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुना कर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों। कहिये अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की ! परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है। इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा क्योंकि "नास्तिको वेदनिन्दकः" वेदों का निन्दक और न मानने वाला नास्तिक कहाता है। क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता ? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने सुनने का शूद्रों के लिये निषेध और द्विजों के लिये विधि करे ? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य्य और अन्नादि पदार्थ सब के लिये बनाये हैं वैसे ही वेद भी सब के लिये प्रकाशित किये हैं और जहां कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है और जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है देखो वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाणः—

ब्रह्मचर्य्येण कन्यायुवानंविन्दतेपतिम्॥ अथर्व०कां० ११।प्र०२४।अ०३।मं० १८॥

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवति विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्य्येण) ब्रह्मचर्य्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवति होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् (युवानम्) पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये (प्रश्न) क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें ? (उत्तर) अवश्य, देखो श्रौत सूत्रादि में:—

इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्॥

अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो

यज्ञ में स्वर सहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृतभाषण कैसे कर सके भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़ के पूर्ण विदुषी हुई थीं यह शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है। भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर संग्राम घर में मचा रहै फिर सुख कहां! इसलिये जो स्त्री न पढ़ें तो कन्याओं की पाठशाला में अध्यापिका क्यों कर हो सकें तथा राजकार्य न्यायाधीशत्वादि, गृहाश्रम का कार्य्य जो पति को स्त्री और स्त्री को पति प्रसन्न रखना घर के सब काम स्त्री के आधीन रहना इत्यादिकाम बिना विद्याके अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते।

देखो आर्य्यावर्त्त के राजपुरुषों की स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात् युद्ध विद्या भी अच्छे प्रकार जानती थीं क्योंकि जो न जानती होतीं तो कैकयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्योंकर जा सकतीं? और युद्ध कर सकतीं! इसलिये ब्राह्मणी और क्षत्रियों को सब विद्या, वैश्या को व्यवहार विद्या और शूद्रा को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिये वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिये क्योंकि इनके सीखे बिना सत्याऽसत्य का निर्णय, पति आदि से अनुकूल वर्त्तना, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घर के सब कार्य्यों को जैसा चाहिये वैसा करना कराना वैद्यक विद्या से औषधवत् अन्न पान बनाना और बनवाना नहीं कर सकतीं जिससे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहैं शिल्प विद्या के जाने बिना घर का बनवाना वस्त्र आभूषण आदि का बनाना बनवाना गणित विद्या के बिना सब का हिसाब समझना समझाना वेदादि शास्त्र विद्या के बिना ईश्वर और धर्म को न जान के अधर्म से कभी नहीं बच सके। इसलिये वे ही धन्यवादार्ह और कृतकृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों के ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सासु, श्वशुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट, मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोश अक्षय है इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाय अन्य सब कोश व्यय करने से घट जाते हैं और दायभागी भी निजभाग लेते हैं और विद्या कोश का चोर वा दायभागी कोई भी

नहीं होसकता इस कोश की रक्षा और बृद्धि करनेवाला विशेष राजा और प्रजा भी हैं।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥ मनु० ७। १५२ ॥

राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रख के विद्वान् कराना जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उसके माता पिता को दण्ड देना अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का वा लड़की किसी के घर में न रहने पावे किन्तु आचार्यकुल में रहैं जब तक समावर्त्तन का समय न आवे तब तक विवाह न होने पावे ॥

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते। वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ मनु० ४। २३३ ॥

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, बस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेद विद्या का दान अतिश्रेष्ठ है। इस लिये जितना बन सके उतना प्रयत्न, तन, मन, धन से विद्या की बृद्धि में किया करे। जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान् होता है। यह ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा संक्षेप से लिखी गई है इस के आगे चौथे समुल्लास में समावर्त्तन और गृहाश्रम की शिक्षा लिखी जायगी ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते
शिक्षाविषये तृतीयः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ३ ॥

तिमिरभास्कर—

क्योंजी मस्तकपर तिलक लगाने में कौनसी हानि है इस के लगाने में कौनसा पाप है तिलक बहुधा चन्दन का लगाते हैं जिस से चित्त प्रसन्न हो शीतलता आरोग्यता होती है, परन्तु तिलक लगाने में भेद इस कारण होगये कि जैसे आपने नमस्ते की परिपाटी अपनी समाज में चलाई है कि जहां नमस्ते किया कि दयानन्दी मालूम होगये परमात्मा जयति कहतेही इन्द्रमणि के पंथी विदित होने लगे, इसीप्रकार ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र आदि तिलकों

से यह बात स्पष्ट होजाती है कि यह अमुक पुरुष के शिष्य हैं जैसे शेर के चिह्न से गवर्नमेंट की वस्तु सेना आदि विदित होती हैं वैसे ही यह चिह्न हैं और देवता के पूजन उपरान्त स्वयं भी तिलक धारण करै जिस देवता के अर्चन पूजन तिलक का जो विधान है वैसाही आप तिलक धारण करै जिस से बिना पूछे उसका उपासना वृत्तान्त विदित होजाय वाल्मीकिरा० अयो० का० सर्ग १६। ९ रामचन्द्र का तिलक लगाना लिखा है॥

वराहरुधिराभेण शुचिना च सुगंधिना।
अनुलिप्तं परार्ध्येन चन्दनेन परंतपम्॥

अर्थ—महाराज रामचन्द्र सुगंधियुक्त लाल चन्दन लगाये थे चन्दन के गुण राजनिघंटु में इसप्रकार हैं॥

श्रीखंडं कटुतिक्तशीतलगुणं स्वादेकषायं कियत्पित्तभ्रांतिवमिज्वरक्रिमितृषासंतापशांतिप्रदम्।
वृष्यं वक्त्ररुजापहं प्रतनुते कीर्तिं तनोर्देहिनां
लिप्तं सुप्तमनोजसिंधुरमदारंभातिसंरंभदम्॥ १॥
वेट्टचंदनमतीव शीतलं दाहपित्तशमनं ज्वरापहम्।
छर्दिमोहतृषिकुष्ठतैमिरोत्कासरक्तशमनं च तिक्तकम्॥ २॥

चंदनके गुण यह हैं कटु तिक्त शीतल स्वादिष्ठ कसैला है और पित्त भ्रांति वमन ज्वर गरमी कृमि तृषा संताप इनकी शान्ति करनेवाला वृष्य मुखरोगहारक देह में लगाने से कान्ति का देनेवाला और सुगंधि करनेहारा है तथा रुचिकारक है १ मलयागिरि के निकट के पर्वतों पर जो चंदन होता है उसे वेट्ट कहते हैं वोह चंदन अत्यन्त शीतल है दाह पित्त ज्वर का शान्तिकारक व मनोमोहन तृषा कुष्ठ तिमिर कास रक्तदोष का शमन करनेहारा और तिक्त भी है आप तिलक लगाना निषेध करते हैं देखिये इस विषय में मनुजी लिखते हैं॥

मंगलाचारयुक्तःस्यात्प्रयतात्माजितेन्द्रियः ।
जपेच्चजुहुयाच्चैवनित्यमग्निमतन्द्रितः ॥ १४५ ॥
मंगलाचारयुक्तानांनित्यञ्च प्रयतात्मनाम् ।
जपतांजुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते ॥ १४६ ॥

चंदन रोली आदि का लगाना मंगल है गुरु सेवा आचार है इन दोनों से युक्त हो तथा बाहरी भीतरी शौच से युक्त जितेंद्रिय रहै गायत्री आदि का जप और होम को नित्य आलस्य रहित होकर करै ॥ १४५ ॥ चंदन आदि लगाने गुरुसेवा करने जितेंद्रिय रहने गायत्री जप और हवन करने से दैवी मानुषी उपद्रव नहीं होते हैं ॥ १४६ ॥ मनु० अ० ४ त्र्यायुषंजमदग्नेः० इसयजु० अ० ३ मं० ६२ से यज्ञकी विभूति लगाते हैं।

यदि स्वामीजी चंदन लगाते होते तौ बुद्धि की भ्रांति न होती न मगज को इतनी गरमी चढ़ती पर आपके चेले वार्षिकोत्सव में खूब चंदन लगाते हैं यह बड़ी विपरीत करते हैं परन्तु एक दिन लगाने से बुद्धि शुद्ध नहीं होती होय कहां से उस एक दिन में भी उस में बहुतेरी केशर डाल देते हैं जिस से बुद्धिज्यों की त्यों रहती है और जय गणेश शिव देवी आदि नाम आप ईश्वर के लिख चुके हैं तौ क्या इन नामों से पाप दूर न होंगे ईश्वर का नामही पाप दूर न करैगा तो क्या आपके कल्पित ग्रन्थ दूर करैंगे इस की विशेष महिमा नाम तीर्थ और व्रत तथा देव प्रकरण में लिखेंगे जिसप्रकार से नामादि जपने से मनुष्यों के पाप दूर होते हैं।

भास्करप्रकाश—

"नमस्ते" चिन्ह नहीं किन्तु शिष्टाचार है। और चिन्ह होना और बात है तथा पापनिवृत्ति का उपाय समझना और बात है । स्वामीजी पापनाशक विश्वास का खण्डन करते हैं। और भिन्न २ वेदविरोधी सम्प्रदायों के चिन्ह धारण करना भी अच्छा नहीं । आप को चन्दन के गुण बताते हैं सो तो केवल लेपन और क्वाथादि

में पान करने को हैं जिससे कोई नकार नहीं करता। स्वामीजी चन्दन केशर आदि लगाते थे और आर्य लोग भी लगाते हैं, उन की बुद्धि शुद्ध है। आप के ऊर्ध्व-पुण्ड्रादि में चिताभस्म के तिलक का विधान होने से मुर्दे के राख का बुरा प्रभाव आप के शैव अनुयायियों पर पड़ा है इसी से वैदिकधर्म के विरोधी बने हैं॥

समीक्षा—स्वामी दयानन्दजी ने बालकों के लिये दुर्व्यसनों का निषेध किया है बहुत अच्छा लिखा है वास्तव में माता पिता को दुर्व्यसनों से बच्चों को बचाना चाहिये तथापि एक किन्तु तो हम यहां पर भी लगावेंगे वह यह है कि समाज वेद को छोड़ कर और किसी पुस्तक को प्रमाण नहीं मानती अब हम यह पूछना चाहते हैं कि यह कौन वेद मन्त्र का अर्थ है ? कल को कोई मनुष्य यह लिख देगा कि अपना घर और अपनी टट्टी साफ़ रक्खो काम बहुत अच्छा है किन्तु यह किसी मज़हब से ताल्लुक नहीं रखता इसी प्रकार स्वामी दयानन्दजी ने यहां पर लिखा है जिस का कि वेद में कहीं भी जिक्र नहीं। अब पूछना यह है कि समाज स्वामी दयानन्द के लेख को मानती है या वेद को ? वेद २ चिल्लाते जाना और जो जी में आवे वह लिखते जाना छल नहीं तो और क्या है ?

इस के आगे स्वामी दयानन्दजी ने स्त्री का विवाह १६ वर्ष की अवस्था में लिखा है यह ठीक ही लिखा क्योंकि अमेरिका आदि देशों में इसी अवस्था में स्त्रियों के विवाह होते हैं। अमेरिका जो २ काम करता है वही आर्यसमाज का धार्मिक सिद्धान्त है और उसी को वेद ने लिखा है आश्चर्य की बात है कि हिन्दुओं के वेदों में अमेरिका का समस्त आचरण लिखा किन्तु हिन्दुओं का एक भी आचरण या धर्म रीति या रस्म वेद में नहीं मिलते वास्तव में वेद में जो बातें हैं उनको छिपा कर और गला घोट कर उस के अर्थ बदल कर जबर्दस्ती अमेरिका के आचरणों का कानून बनाया जा रहा है क्या कोई आर्यसमाजी वेद धर्म शास्त्र पुराण, इतिहास में यह दिखला सकता है कि १६ वर्ष की कन्या का विवाह अमुक ग्रन्थ में लिखा है और यों कहने के लिये और लिखने के लिये तो ८० वर्ष की स्त्री का विवाह कह सकते हैं और लिख सकते हैं।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि अन्य पाषाणादि जड़ मूर्ति के दर्शन पूजन में काल न खोना बहुत ही अच्छा बतलाया। मनुष्य को क्या करना चाहिये ईश्वर की मूर्ति के न दर्शन करने चाहिये और न पूजन करना चाहिये और न उसमें मन लगाना चाहिये मन लगाने के लिये तो स्वामी दयानन्दजी ने पीठ (कमर) का हाड़ बतला दिया है जब मन लगाना हो फौरन कमर के हाड़ में लगा ले और यदि पूजन करना हो तो स्वामी दयानन्द ने संस्कार विधि के चौल (चूड़ा) प्रकरण में लिख दिया है कि पूजन नाई के छूरे का करना उससे वर मांगना और उसको नमस्ते करना भला इस इतने ऊंचे विचार का क्या ठिकाना ? क्या सच ही आज तक किसी भी आर्यसमाजी ने इसका विचार किया कि नाई का छुरा तो पूजें और देव मूर्तियों को धता बुलावें यही तो आर्यसमाजियों की तरक्की है।

देव मूर्त्ति कभी न पूजैं, पूजैं छुरा जो नाइयों का।
यही हाल संस्कारविधि में, आर्यसमाजी भाइयों का॥

छूरा पूजना अच्छा या ईश्वरकी मूर्त्ति ? इसका विचार पाठकोंके ऊपर छोड़ताहूं।

जब कि वेद में बड़े जोर के साथ मूर्त्तिपूजन लिखा है तब फिर ईश्वर की आज्ञा को छोड़कर एक मामूली मनुष्य के लेख में बंधकर क्या कोई विचारशील मनुष्य मूर्त्तिपूजन को छोड़ सकता है यहां पर हम अधिक तो प्रमाण नहीं देंगे अधिक प्रमाण तो आगे दिये जावेंगे किन्तु यज्ञ में होनेवाली हिरण्यमयी प्रजापति की मूर्त्ति का कुछ थोड़ासा लेख लिखते हैं। कात्यायन श्रौतसूत्र में लिखा है कि प्रजापति की मूर्त्ति सुवर्ण की बनाई जाती है—

(१) तस्मिन् रुक्म मधः पिण्ड ब्रह्मजज्ञानमिति।

कात्या० श्रौत० सू० १७।४।२।

अर्थ—स्वफलक पत्र पर सुवर्ण के विन्दु (पिण्ड) बनाता जावे और "ब्रह्म यज्ञानम्" इस मन्त्र को बोलता जावे इसी को शतपथ कहता है।

(२) अथ रुक्म मुपदधाति।

शतपथ० ७।४।१।१०

यह सुवर्ण पुरुष स्थापन शतपथ में अच्छी तरह से लिखा है देखिये—

(३) अथ पुरुष मुपदधाति स प्रजापतिः सोग्निः स यजमानः स हिरण्यमयो भवति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरग्निरमृतꣳ हिरण्यममृत मग्निः पुरुषोभवति पुरुषोहि प्रजापतिः।

श० ७।४।१।१५

अर्थ—स्थूल प्रपञ्चाभिमानी विराट् पुरुष ही अग्निरूप है और सूक्ष्म पञ्चाभिमानी हिरण्यगर्भ हैं। वह हिरण्यगर्भ रूप ही वर्त्तमान है और अग्नि का प्रतिकृति रूप हिरण्य पुरुष है। इस कारण वह पुरुषाकृति के योग्य है। उभय प्रतीक में एक ध्येय का प्रतिकृति कहते हैं इस को शतपथ स्वयं कह रहा है जो ज्योति हिरण्य है वही ज्योति अग्नि है वही अमृत है वही अग्नि पुरुष और वह पुरुषही प्रजापति है।

(४) उत्तान प्राञ्चाꣳ हिरण्य पुरुषं तस्मिन हिरण्य गर्भ इति।

कात्यायन कल्प सूत्र० १७।४।३

अर्थ—रुक्मके ऊपर हिरण्य पुरुष स्थापन करें अर्थात् पूर्वभिमुख उत्तिष्ठमान हिरण्य पुरुषको "हिरण्यगर्भः" इसमन्त्र से सुवर्ण फलक के ऊपर स्थापन करै।

(५) हिरण्यं कास्माध्रियते आयम्य मान मिति वाहियते जनाज्जनमिति वाहित रमणं भवतीतिवाहृदय रमणं भवतीति॥

निरुक्त० २।१०

अर्थ—जिस सुवर्ण का यह पुरुष बनता है उस की प्रशंसा निरुक्त करता है कि शिल्पियों से विस्तारित होने से हिरण्य कहलाता है। दुर्भिक्षादि में हित है तथा सर्वदा सब को रमण कराने से सोने को हिरण्य कहते हैं। इस के आगे—

नमो ऽस्तु सर्वेभ्योयेके च पृथिवी मनु।
ये अन्तरिक्षे दिवितेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥

यजु० १३।६

इस मन्त्र से उस पुरुष की प्राण प्रतिष्ठा होती है। प्राण प्रतिष्ठा से मूर्ति में शक्ति उत्पन्न होती है। इसको शतपथ कहता है।

अथ साम गायति एतद्वैदेवा एतं पुरुष मुपधाय समेता दश मेवा पश्य न्यथैतच्छुष्कं फलकम् ॥ २२ ॥ ते अब्रुवन् उपत ज्जानीत यथा स्मिन् पुरुषे वीर्यं दधा मेतिते अब्रुवंश्चतय ध्वमिति चितिमिच्छतेति वाच तद् ब्रुवंस्तदिच्छत यथास्मिन्पुरुषे वीर्यं दधामिति ॥ २३ ॥ तेचतय मानाः एतत्सामा पश्यं स्तद गायं स्तदस्मिन्वीर्य मध धुस्तथै वास्मिन्नयमेतद्दधाति पुरुषे गायति पुरुषे तद्वीर्यंदधाति चित्रे गायति सर्वाणिहि चित्रा ण्यग्निस्तमुपधीयन पुरस्तात्परोयान्ने नमायमग्निर्हि न सदिति ॥ २४ ॥ अथ सर्प नामै रुपतिष्ठते इमे वै लोकाः सर्पाः ॥

शत० ७ । ४ । १-२२-४४

अर्थ—पूर्वकाल में जब देवताओं ने हिरण्यमय पुरुष को सुवर्ण फलक के ऊपर किया तब यह परामर्श किया कि वह सुवर्ण पुरुष चेतना से रहित शुष्क फलक के समान है तब फिर सब बोले कि इस हिरण्य पुरुष में शक्ति प्रादुर्भाव के निमित्त परामर्श करो। सब देवताओं ने इस बात का अनुमोदन किया कि इसमें वीर्य स्थापन करें वह देवता मीमांसा करते हुए तब (नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० या इषवो यातु० ये वामी रोचते०) इन तीन मन्त्र रूप साम की उपलब्धि को प्राप्त हुए और इस मन्त्र रूप साम हो गाया तब उस हिरण्यमय पुरुष में वीर्य अर्थात् फलप्रादयक शक्ति को स्थापन किया। इसी प्रकार यह यजमान भी इसी साम के बल से इस पुरुष में सामर्थ्य का विधान करता है। तात्पर्य यह ऊपर के तीन मन्त्र पढ़ने से पुरुष में सामर्थ्य का विधान करता है। तात्पर्य यह ऊपर के तीन मन्त्र पढ़ने से पुरुष में सामर्थ्य प्रकट होती है। "चित्रं देवानां०" यह मन्त्र यजु० ७ । ४२ का है। वहां जो धर्मरूपता में सूर्य और अग्नि की एकता प्रतिपादन की है वह चित्ररूप से और हिरण्य गर्भ चित्र रूप होता ही है। इस से वही हिरण्य पुरुष का शरीर है इससे हिरण्य पुरुष का विधान करके यजमान उसके आगे गमन न करें ऐसा करने से अनिष्ट होता है। सर्प नाम तीन मन्त्रों से यजमान हिरण्य पुरुष का उपतिष्ठ मान करें।

आवाहन।

(१) आह्वानञ्च निविदाम्।

आश्व० श्रौ० सू० १५ अ० ५ कं० ६

(२) तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं।
मित्रमदितिं दक्ष मस्त्रिधम्॥
अर्य मणं वरुणं सोम मश्विना॥
सरस्वतीनः सुभगामयस्करत्॥

ऋ० वेद भा० १ अ० ६ व १५ मं० ३

अर्थ—हम पूर्वकालीन नित्य वाणी से भग, मित्र, अदिति, दक्ष, अर्यमा, वरुण, सोम, अश्विनीकुमार, सरस्वतीको आवाहन करते हैं। ये हमको सुखकारक हों।

पाठक बृन्द! वेद इत्यादि में अनेक मन्त्र आवाहन के हैं जिनसे मूर्त्ति में देवशक्ति आती है। यह मन्त्र वेद का है जिन को देखे बिना वेद में मूर्ति पूजन नहीं है कि डुग्गी पीटी जा रही है।

पूजन का मन्त्र।

अर्चन्त प्रार्चन्त प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उतपुरं न धृष्णवर्चत॥

ऋ० अष्ट० ६ अ० ५ सू० ५८ मं० ८

अर्थ—हे अध्वर्यु आदि जनों तुम परमात्मा (इन्द्र) का पूजन करो स्तुति विशेष से पूजन करो। प्रियमेधस सम्बन्धी तुम पूजन करो। हे पुत्रो! तुम इन्द्र का पूजन करो जैसे घर्षण पुरुष को पूजते हो वैसे ही पूजन करो।

देखिये पूजा भी खास वेद में ही मौजूद है।

भोग।

अथैन मुप विश्यामि जुहोति आज्येन पञ्चगृहीतेन तस्थोक्तो वन्धुः सर्वतः परिसर्वञ्सर्वाभ्य एवैन मेतद्दिग्भ्योऽन्नेन प्रीणाति०

शत० ७।४।१।३२

इसी का कात्याय० श्रौ० सू० अ० १७ कं० ४ सू० ७

उपविश्यपंच गृहीतं जुहोति पुरुषे कृणुष्वपाज इति प्रत्यृचं प्रतिदिश मपरि सर्पम् ।

अर्थ—कृणुष्व पाज इत्यादि पांच मन्त्रों से पञ्चधा गृहीत घृत से होम करे । चार मन्त्रों से ४ दिशाओं में पञ्चम मन्त्र से अग्नि में आहुति दे जिस दिशा में अग्नि में आहुत दे स्वयं भी उसी दिशा में चले इन मन्त्रों से हिरण्य पुरुष को नैवेद्य लगाया जाता है कारण यह है कि पूर्व में "हिरण्यगर्भ" इस में "कस्मै देवाय हविषा विधेम" ऐसा कहा है कि हम प्रजापति की आहुति से उपासना करते हैं ।

पाठक बृन्द ! हिरण्य पुरुष की प्रतिमा का निर्माण पूजन आप देख चुके । अब इसका निर्णय आपके ऊपर छोड़ता हूं कि वेद में मूर्तिपूजन है या नहीं । इतना और बतलाये देता हूं कि इन सब विषयों को पं० ज्वालाप्रसादजी ने तिमिरभास्कर में लिखा था तथापि भास्करप्रकाश निर्माता पं० तुलसीराम ने इस के उत्तर में एक अक्षर भी न लिखा ऐसी सफाई से विषय को हजम किया कि मानो यह लेख तिमिरभास्कर में है ही नहीं ।

जब कि वेद मूर्ति पूजा के लिये इतनी विधि दे रहा है तब फिर इतने वेद पर कलम फेर कर मूर्ति पूजा कैसे छोड़ी जा सकती है ? क्या पं० तुलसीरामजी स्वामी दयानन्दजी के लेख को सत्य और वेद, को असत्य मानते हैं यदि ऐसा नहीं तो फिर मूर्ति पूजा क्यों छोड़ दी जावे इसका प्रयोजन हमारी समझ में नहीं आया सम्भव है कि प्रतिनिधि समझाने की कुछ कोशिश करे ।

इसके आगे तिलकों के विषय में कुछ लिखा है इसका उत्तर पश्चात् दिया जावेगा । प्रथम व्रत के खण्डन का उत्तर सुनिये—स्वामी दयानन्दजी एकादशी से आदि लेकर समस्त व्रतों का खण्डन करते हैं इन व्रतों को बुरा बतलाते हैं एकादश्यादि व्रत मामूली पुरुषों के लिखे नहीं किन्तु आप्त लोगों के लिखे हैं स्वामी दयानन्द के खण्डन से कोई विचारसील उनको छोड़ नहीं सकता व्रत का रखना फिलास्फी आदि से सिद्ध है । एकादशी व्रत में दश इन्द्रिय और एक मन इन ग्यारह को अपने २ विषय से हटा कर जगत के प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की सेवा में लगा कर ग्यारह ही को अपने वश किया जाता है इसी का नाम योग है। स्वामीजीने

इस विज्ञान के ऊपर जरा भी दृष्टि नहीं डाली किन्तु यही ध्यान रक्खा कि हम सब से उलटे चलेंगे और सब को गालियां देंगे जो दूसरों के लिये कुवा खोदता है वह आप ही गिरा करता है इसी कहावत के अनुसार जो स्वामी दयानन्दजी यहां पर व्रत को बुरा बतलाते हैं वे ही अपनी बनाई संस्कारविधि उपनयन प्रकरण में ब्रह्मचारियों से व्रत रखवाते हैं। नीचे पढ़िये—

"पयोव्रतो ब्रह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः" यह शतपथ ब्राह्मण का बचन है। जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो उससे तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये। उन व्रतों में ब्राह्मण का लड़का एक बार वा अनेक बार दुग्ध पान क्षत्रिय का लड़का (यवागू) अर्थात् यव को मोटा दल के गुड़ के साथ पतली जैसी कि कढी होती है वैसी बना कर पिलावें और (आमिक्षा) अर्थात् जिस को श्रीखण्ड वा सिखण्ड कहते हैं वैसी जो दही चौगुना दूध एक गुना तथा योग्य खांड केशर डाल के कपड़े में छान कर बनाया जाता है उसको वैश्य का लड़का पी के व्रत कर अर्थात् जब २ लड़कों को भूख लगे तब २ तीनों वर्णों के लड़के इन तीनों पदार्थों ही का सेवन करें अन्य पदार्थ कुछ न खावें पीयें। अब इन समाजियों से पूछिये कि व्रत रखना अच्छा है या बुरा जिस काम को स्वामी दयानन्द बुरा बतलाते हैं उसी को आप भी करवाते हैं इसका सारा अभिप्राय यह है कि हमारे गोल में आवो।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी तीर्थों का भी खण्डन करते हैं तीरथ में जाने वाले मनुष्यों को बुरा समझते हैं यदि वास्तव में तीर्थ जाना बुरा है तो स्वामी दयानन्दजी ने बहुत ही बुरा किया जो १२ वर्ष तक नग्न हो कर गंगातट पर विचरा किये। यदि तीर्थ जाने वाले मूर्ख हैं तो फिर स्वामी दयानन्दजी कौन ? इसका विचार आर्यसमाज को करना चाहिये मनुष्य गृहस्थ में रह कर भगवत आराधना और सत्संगादि कुछ भी नहीं कर सकता। जिस समय मनुष्य तीर्थ को तैयार होता है तब अपने घर का वह काम जो हफ्ता भर में होता एक ही दिन में कर लेता है और जो कुछ रह जाता है अपने मन में विचार करता है कि इसको आकर करूंगा घरसे रवाना होते ही भगवती जान्हवी और शंकर में मन लगाता हुआ जय गंगाजी की, जय गंगाजीकी पुकारता हुआ तीर्थ को चला जाता है। वहां जाकर स्नान ध्यान दान करता है और महात्माओं का सत्संग करता हुआ उपदेश सुनता हुआ संसार

के प्रभु ईश्वर की तरफ मन को ले जाता है । स्वामी दयानन्दजी इससे मोक्ष होना नहीं मानते उनकी सम्मति में आर्यसमाज का प्लेट फारम लगा कर सब धर्मों के खण्डन किये बिना बड़े २ आचार्य ऋषि मुनि महात्माओं को गाली सुनाये बिना कभी मोक्ष हो ही नहीं सकती । आर्यसमाज को यह अच्छी प्रकार जान लेना चाहिये कि स्वामी दयानन्दजी वेद का बहाना लेकर आर्यसमाज के द्वारा वेद का ही खण्डन करवाते हैं जिस तीर्थ महत्व को वेद प्रतिपादन कर रहा है उस तीर्थ सेवा को स्वामी दयानन्द के कहने पर कोई धार्मिक मनुष्य कैसे छोड़ सकता है ? स्वामीजी जिस तीर्थ महत्व को बुरा बतलाते हैं वेद उसकी महिमा गाता है । देखिये—

इमंमेगंगेयमुने सरस्वतिशुतुद्रिस्तो मंसचतापरुष्णया ।
असिकन्यामरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये श्रणुह्यासुषोमया ॥

ऋ० म० १० अ० ३ सू० ७५ मं० ५

अर्थ—हे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि तुम संपूर्ण मेरे यज्ञ को सन्मुख होकर सेवन करो हे अरुद् वृधे आर्जीकीये परुष्णी असिक्नी वितस्ता सुषोमा के साथ मेरे यज्ञ को सेवन करो मेरी स्तुतियों को सब प्रकार से सुनो । ५ निरु० उत्तष० अ० ३। २६ में ऊपर लिखे अनुसार व्याख्यान है ।

जब वेद तीर्थों की महिमा इस प्रकार गा रहा है तब फिर तीर्थों को न मानना वेद की जड़ काट कर गिराना है । इसके आगे स्वामी दयानन्दजी रामकृष्ण नारायण गणेशादि के नाम स्मरण से पाप दूर होने का विश्वास झूठ बतलाते हैं आपने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में यह नाम ईश्वर के बतलाये और अब कहते हैं कि इन नामों का लेना ही व्यर्थ है यदि सचमुच व्यर्थ है तो आप ने आर्याभिविनय में ईश्वर के नाम लेकर बड़ी २ प्रार्थना की हैं वे सब व्यर्थ ही होंगी । इसके आगे श्रीमद्भागवतादि पुराणों का फिर भी खण्डन करते हैं । एकही बात को कई बार लिखना क्या यह पुनरुक्तदोष नहीं है न्याय दर्शन में महर्षि गौतम ने "तद प्रमाण्य मनृित व्याघात पुनरुक्त दोषेभ्य" सूत्र में यह दिखलाया है कि झूठ व्याघात पुनरुक्त इन तीनों दोषों में से यदि कोई दोष वेद में भी आजाय तो वेद को भी मत मानो । नहीं मालूम सत्यार्थप्रकाश के बारे में समाजी लोग क्या इस सूत्र को भूल गये यदि वास्तव में पुराण मिथ्या ही हैं तब तो आर्यसमाजियों को एकादश समु-

ल्लास में लिखी राजवंशावली निकाल डालना चाहिये । यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि वह तो दूसरे ग्रन्थ से बनी है तो इस का उत्तर यह है कि वह दूसरा ग्रन्थ पुराणों से ही बनाया गया है पुराणों ही का खण्डन करें और पुराणों ही के लेख सत्यार्थप्रकाश में भरें इस बुद्धिमानी का कौन ठिकाना ।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि आजकल के संप्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या सत्सङ्ग से हटा और अपने जाल में फंसा के उनका तन मन धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़ कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखण्ड जाल से छूट और हमारे छल को जान कर हमारा अपमान करेंगे। स्वामी दयानन्दजी गाली देना खूब जानते थे नहीं मालूम यह सब दिन गाली ही दिया करते थे क्या । गालियों का उत्तर गाली देना यह भी अच्छा नहीं इस वास्ते गालियों के ऊपर तो हम कुछ नहीं लिखेंगे लेकिन गालियों के सेठ स्वामी दयानन्दजी से यह अवश्य पूछेंगे कि किस सम्प्रदायने या किस पंडित ने क्षत्रिय वैश्य को वेद या विद्या पढ़ने से रोका है क्या कोई आर्य-समाजी इस विषय में कोई प्रमाण दे सकता है । हमारी समझ में कोई लेखनी उठाने का साहस भी नहीं कर सकता । और स्वामी दयानन्द ने जो ब्राह्मणों के जिम्मे ये मिथ्या कलंक लगाया है इस का प्रयोजन यह है कि क्षत्रिय वैश्य अपने मन में यह समझ लें कि ब्राह्मणों ने हमारे साथ में बहुत बुराई की है यह समझ कर ब्राह्मणों को घृणा की दृष्टि से देखें जिस से देश में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में फूट होजावे और देशकी तरक्की हो । आर्यसमाज तो डींग मारा करती है कि स्वामीजी देश का हित चाहते थे परस्पर में प्रेम चाहते थे परन्तु इस लेख से परस्पर प्रेम की सारी कलई खुल जाती है और यह सिद्ध हो जाता है कि स्वामीजी की लेखनी और आर्यसमाज का जन्म देश में फूट डालने के ही लिये हुआ है ।

जो कलंक स्वामी दयानन्दजी ने इस लेख में ब्राह्मणों के ऊपर लगाया है वही कलंक आर्यमित्र ता० २४–२–१४ में बा० घासीराम ने ब्राह्मणों के ऊपर लगाया इसके खण्डन में पं० छुट्टनलाल स्वामी ने जो उत्तर दिया उसको अक्षरसः हम नीचे लिखते हैं देखिये वेदप्रकाश वर्ष १८ मास ३ पृ० ८१ ।

हमको आश्चर्य है ।

आर्यमित्र २४–२–१४ का पढ़ कर हमको आश्चर्य हुआ कि श्री बा० घासी-रामजी एम० ए० जैसे मतिमान् पुरूष भी पुरोहितों और ब्राह्मण जातिमात्र से हृदय

में शत्रुभाव रखते हैं। हम अब तक इसी विचार में थे कि आर्यजाति में नामधारी मात्र लोग ही ऐसे संकुचित विचार रखते होंगे जैसे कि बाबू घासीरामजी की लेखनी से निकले हैं। जब कि श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पदप्राप्त अंग्रेजी के विद्वान् कानून के निधन महान् पुरुषों के ऐसे थोथे और परस्पर ईर्ष्या उत्पन्न करनेवाले लेख उनकी लेखनी से निकलें तब ऐरे गैरों की तो कथा ही क्या है। पुरोहितों का हित इतिहासों में देखिये। जहां राणा प्रताप जैसों की जान बचाने को पुरोहितों ने अपनी जान खो दी। ब्राह्मणों ने वेदों को कण्ठ कर के निर्धन रहना स्वीकार किया। हम नहीं जानते कि बाबू साहब जैसे इतिहासवेत्ता और संस्कृत में भी कुछेक प्रवेश रखनेवाले किस प्रमाण से कहते हैं कि ब्राह्मणों ने वेद को अपनी मौरूसी समझ रक्खा है।

बाबूजी! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य द्विज मात्र को वेदाधिकार दिया गया है। यदि वेदादि का किसी को न देने का अधिकार किसी जाति को होता तो हमारी समझ में तो यह आज्ञा देते कि धन रखने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही है। बाबूजी क्या वेद क्या सत्य सब आलस्यप्रमाद से अन्यों के पूर्वजों ने छोड़ा था छोड़ रहे हैं। हमें बताओ जब स्वामी दयानन्द ने भी अधिकार दिया तो भी आपने एम० ए० अंग्रेज़ी में न कर के शास्त्री परीक्षा क्यों नहीं दी या अपने पुत्रों को गुरुकुल में क्यों नहीं पढ़ाते।

हम सच कहते हैं कि आप लोग ऐसे थोथे द्वेष भरे विचार लिख कर आर्य समाज में आग बर्षाने का काम न कीजिये। शान्ति सिखाइये। स्वामी दयानन्द से पहिले बा० तोताराम आदि जैसे बुद्धिमान् वैश्य थे। किसी को संस्कृत पढ़ाने से या वेद पढ़ाने से नहीं रोका गया। परन्तु यास्काचार्य उपदेश करते हैं कि—

विद्याहवै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टे हमस्मि।
असूयकायानृजवेऽयताय नमा ब्रूया वीर्यवतीतथास्याम्॥

इत्यादि में बताया है कि निन्दक कुटिल दुर्व्यसनी पुरुषों को मुझे मत दो। इसलिये निन्दकों को किसी ने न पढ़ाया तो इस में किसी जाति मात्र से वेद को नहीं छिपाया गया।

दूसरी बात यह है कि पूर्वकाल में तो सभी वर्ण वेद वेदाङ्ग पढ़ते थे फिर जब ब्राह्मणों ने न पढ़ाया तो अपने पिताओं से ही क्यों न पढ़ लिया ।

बाबू साहब को कोई प्रमाण प्रस्तुत करना चाहिये कि वेद पढ़ने से ब्राह्मणों ने आपके पूर्वजों को कैसे रोका नाहक किसी से बैर भाव रखना आर्यता नहीं है ।

ब्राह्मण भी ग्रहण समय दान लेना बुरा समझते हैं तब हम नहीं जानते कि बाबूजी के प्रोफेसर को किस पामर ने ग्रहण होते हुवे यह कह दिया कि पुण्य करो राहु ने चन्द्रमा को पकड़ रक्खा है । कहीं स्वप्न देखा होगा । ग्रहण के समय पुण्य करो धर्म करो ऐसा भङ्गी कहते हैं । ब्राह्मणों को गाली देना वृथा है । छोटी आयु में बेटों का विवाह करना बुरा है पर कोई आंखों के रोग से बहूजी के कहने से प्रोफेसर होकर भी १० । १२ वर्ष की अवस्था में विवाह कर दे तो इस में ब्राह्मणों का क्या दोष है । स्वामी दयानन्द ने गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था बताई है इस को प्रत्येक बुद्धिमान् जान सकता है । परन्तु हमारे स्वतन्त्रता प्राप्त बाबू साहब को पहले अपना ही वर्ण का वर्णन बता देना चाहिये और जिस वर्ण में आप हों उसी में नाते रिश्ते विवाह काज करने चाहिये । नहीं तो प्रोफेसर के ग्रहण के समान ही प्लीडर साहब भी अन्ध विश्वासी ही समझे जावेंगे । क्या आप भी पुरोहितों के पंजे में पड़े हैं स्वामीजी की खोली हुई बेड़ी फिर क्यों पहिनाते हैं । हमारे कई एक मित्र और आर्य अपने कुलक्रमानुसार वेदों का अक्षर बिना पढे ही त्रिवेदी चतुर्वेदी लिखते हैं । यथा बनारसीप्रसाद चतुर्वेदी । गुप्त, वर्म्मा, शर्म्मा, सब कुछ कुलाम्नायानुसार करते हैं । और दूर क्यों यदि गुण कर्मों को देखें तो कई आर्य भी नहीं कहा सकते आर्य भी केवल बंश अवतंस होने से ही हैं । "ऋषिसन्तान" होने का ही हम को गर्व है बस ब्राह्मण बंश में पैदा होने से शर्मा नहीं तो वैश्य बंश में होने से गुप्त ही क्यों क्षत्रिय कुल के क्षत्रिय कौन से कर्मों से हैं । आर्यकुल के आर्य ही क्यों । बस बिना वेद विज्ञान जाने कोई द्विज नहीं रह सकता । अब जो मौजूदा वैश्य क्षत्रिय केवल बंशके घमण्डी यज्ञोपवीत पहनते हैं सब को जनेऊ निकाल डालने चाहिये क्या ।

उत्तर देनेवालों को नम्बरवार निम्नस्थ प्रश्नों का उत्तर देना चाहिये—

(१) किस आर्षग्रन्थ में क्षत्रिय वैश्यों को वेद पाठ का निषेध किया गया वह किस ब्राह्मण ने बनाया ?

(२) किस अनार्ष स्मृति में भी क्षत्रिय वैश्यों को वेद पाठ का निषेध किस ब्राह्मण ने किया ?

(३) किसी पुराण में भी किस ब्राह्मण ने क्षत्रिय वैश्यों को वेद पाठ का अनधिकारी लिखा ?

(४) वेद छोड़कर अन्य संस्कृत व्याकरणादि पढ़ाने में किसी भी जाति को निषेध किस ब्राह्मण ने किया है ?

छुट्टनलाल स्वामी ।

जिस विषय पर आर्यसमाजी ही लेखनी चलाते हैं जिस को मिथ्या समझ पं० छुट्टनलाल ही खण्डन करते हैं उस के ऊपर कलम उठाना व्यर्थ समझता हूं । स्वामी दयानन्दजी के लेख इतने अयोग्य हैं कि उन के लेखों का खण्डन करे विना आर्यसमाजियों से भी नहीं रहा जाता बाज बाज आर्यसमाजी तो स्वामी दयानन्द के समस्त सिद्धान्तों को वेद विरुद्ध बतलाते हैं जैसे अर्जुन मासिकपत्र ऊर्दू के सम्पादक पं० राजनारायण शर्म्मा ।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी स्त्री को वेद पढ़ना लिखते हैं जिसका उत्तर पूर्व इसी समुल्लास में लिख दिया गया है वहां पर ही पाठक देख लें अब तिलक की कथा चलती है । स्वामी दयानन्दजी ने तिलक का खण्डन किया है इस के ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र लिखते हैं कि (१) तिलक लगाने में क्या हानि है इस में कौन पाप कूद पड़ा इस में तो लाभ है इस में पं० ज्वालाप्रसादजी ने "श्रीखण्ड" आदि एक श्लोक राज निघण्टू का भी दिया है जिस में चन्दन के गुण बतलाये हैं (२) चिन्ह भेद या चन्दन भेद विशेष ज्ञान के लिये होता है और इस को स्वामी दयानन्द ने भी रक्खा है । नमस्ते की फौरन जान लिया कि यह पुरुष दयानन्दी है जहां आत्माजयति कहा कि फौरन मालूम होगया कि यह पुरुष इन्द्रमणि के पंथ का है जहां पर शेर का चिन्ह आया कि फौरन पहिचान लिया कि यह वस्तु बृटिश गवर्नमेंट की है । इसीप्रकार त्रिपुण्ड्रादि से फौरन पहिचान लिया जाता है कि यह अमुक पुरुष का शिष्य है इससे लाभ है या हानि (३) देवता के पूजन के उपरान्त स्वयं तिलक धारण करने की विधि है जैसा तिलक देवता का हो वैसा ही तिलक धारण करना चाहिये (४) बाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि प्रभु राघव कुल दिवाकर भगवान रामचन्द्रजी भी सुगन्धियुक्त लाल चन्दन लगाये थे इस में मिश्र

जी ने "वराहरुधिरेण" एक श्लोक भी प्रमाण में दिया है (५) मनुसे यह भी दिख-लाया कि चन्दन लगाना मंगल है (६) यह भी बतलाया कि मनु अध्याय ४ में "त्र्यायुषं जमदग्ने" इस यजुर्वेद अ० ३ मन्त्र ६२ से यज्ञ की विभूति लगाना लिखते हैं (७) आर्यसमाजी चन्दन नहीं लगाते इस से उनके दिमाग में भ्रांति हो जाती है (८) जब चन्दन लगाना बुरा है या पाप है तो आज कल के समाजी उत्सवों पर क्यों लगाते हैं (९) दयानन्द चन्दन क्यों लगाते थे ?

इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि "नमस्ते चिन्ह नहीं किन्तु शिष्टाचार है" इस के ऊपर हम को एक बात याद आगई-एक "जाट" गयाजी गया था जब वह लौटकर आया तब अपनी माता से बोला कि मां मैंने काशी के समस्त पण्डित जीत लिये माता बोली कि बेटा यह बात तो असम्भव है तू एक अक्षर नहीं पढ़ा और काशी में बड़े बड़े विद्वान् पण्डित हैं उनसे तू कैसे जीत सकता है मुझे मालूम पड़ता है तू झूठ बोलता है। माता की इस बात को सुनकर वह बोला कि इस का तो सहल उपाय है इस में लिखने पढ़ने की क्या आवश्यकता थी इस का तो उपाय मैंने यह किया था कि चाहे कोई कुछ भी कहे किसी की भी न सुने अपनी ही कहता जावे। ठीक यहीहाल पं० तुलसीराम का है चाहे कोई कितना समझावे वेद दिखलावे किन्तु यह महात्मा किसी की बात नहीं मानते इन्हें तो दयानन्द की बात सच्ची करनाहै यदि कहीं पर दयानन्द लिख दें कि एक रोज एक ऊँट को बिल्ली ले गई तो फिर उस की पुष्टि के लिये पं० तुलसीरामजी यही लिखेंगे कि हमने अपनी आंख से बीस बार देखा है वास्तव में बिल्ली ऊँट को उठा ले जाती है। ये स्वामी दयानन्दजी की बात को पुष्ट करेंगे चाहे धर्म कर्म दोनों से ही हाथ धोने पड़ें किन्तु स्वामी दयानन्द की असम्भव बात की पुष्टि करे बिना न रहेंगे। यही हाल नमस्ते के ऊपर है स्वामी दयानन्दजी इसी नमस्ते के ऊपर हरिद्वार में मुन्शी इन्द्रमणि से शास्त्रार्थ में हार गये और मध्यस्थ पं० भीमसेनजी ने फैसला दे दिया कि स्वामीजी मुन्शीजी ठीक कहते हैं आप का कथन अयोग्य है (२) दूसरे फिर मुरादाबाद में स्वामी दयानन्द और मुन्शी इन्द्रमणि से इसी नमस्ते पर विवाद चला अन्तिम फल यह हुआ कि समस्त मनुष्यों के सन्मुख स्वामी दयानन्दजी ने अपने श्रीमुख से यह कह दिया कि मुन्शी वास्तव में परस्पर में नमस्ते कहना अयोग्य है स्वामी दयानन्दजी जब अपने मुह से अयोग्य बतला गये (३) किसी भी वैदिक ग्रन्थ में जब परस्पर में नमस्ते करने की आज्ञा नहीं (४) इस के विरुद्ध जब कि मनुस्मृति अध्याय २

श्लोक १२१, १२२, १२३, १२४, १२५ में अभिवादन प्रत्यभिवादन की आज्ञा दी है (५) जब कि हिन्दु साहित्य में शिष्ट परम्परा में कहीं पर भी दोनों तरफसे नमस्ते किसी ने न की (६) जब कि स्वामी दयानन्द ने न किसी को कभी नमस्ते की और न चिट्ठी में लिखी (७) जब कि "प्रत्यभिवादे शूद्रे ८ । २ । ८२" आदि आदि व्याकरण के सूत्र अभिवादन प्रत्यभिवादन करना कह रहे हैं (८) जब कि व्याकरण में छन्द को छोड़कर गद्य में "तुभ्यं" के स्थान में "ते" आदेश हो ही नहीं सकता जब कि "नमस्ते" शब्द ही नहीं बन सकता (९) जब कि नमस्ते करने पर अपने पुरुषाओं का अनादर होता है उन को एक वचन देकर उन को "तू" तड़ाक कहना है जब कि मनु ने इस के ऊपर प्रायश्चित्त लिखा है (१०) जब कि स्वामी दयानन्दजी ने संस्कार विधि में उपनयन के समय में "अभिवादन प्रत्यभिवादन" करना ही लिखा यदि इतने लेख पर पानी फेर इस का कुछ भी उत्तर न दे पं० तुलसीराम नमस्ते को शिष्ट परम्परा लिखें तो क्या कोई उन की लेखनी को पकड़ सकता है यह तो वही बात हुई कि हम ने किसी की भी न सुनी जो हमारे मन में आया वही कह दिया यदि किसी आर्यसमाजी को अपने धर्म के सत्य होने का अभिमान हो तो फिर वह "नमस्ते" को शिष्ट परम्परा से सिद्ध करे और यों लिखने से क्या होता है कलम अपनी दवात अपनी कागज अपना जो चाहे सो लिखो किन्तु हम यह दावे से कहते हैं कि नमस्ते शिष्ट परम्परा नहीं किन्तु चिन्ह है जिस को दावा हो वह लेखनी उठावे ।

इसके अलावा पं० ज्वालाप्रसादजी ने "परमात्मा जयति" चिन्ह दिखला तथा बृटिश गवर्नमेंट का शेर का चिन्ह दिखलाया इस का क्या उत्तर दिया कुछ नहीं इस को तो हड़प्पही कर गये इस के अलावा अब जो आर्यसमाजी उत्सवों पर अपने अपने मस्तक पर पीतल का ओ३म् लगाते हैं क्या यह भी शिष्ट परम्परा है यह आर्यसमाजी होने का चिन्ह है आप चिन्हों से बचकर जावोगे कहां घबराइये मत चिन्ह आप रखते हैं ।

आगे चलकर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि स्वामीजी पापनाशक विश्वास का खण्डन करते हैं इस के उत्तर में प्रथम हम पं० तुलसीराम से यह पूछते हैं कि आर्यसमाजी जो मस्तकों के ऊपर "ओ३म्" लगाते हैं इस से पाप नाश होता है या नहीं यदि कहो कि होता है तो फिर क्या ईश्वर ने यह इकरारनामा लिख दिया है

कि आर्यसमाजी जो "ओ३म्" का चिन्ह लगावें उस से पाप नाश हो किन्तु सनातन धर्मी जो चन्दन लगावें उस से पाप का नाश न हो यदि इसके उत्तर में पं० तुलसीराम कहें कि पाप का नाश तो नहीं होता तो क्या यह "ओ३म्" केवल दिखलाने मात्र को ही मानते हैं क्या "ओ३म्" लगाना भी समाजियों ने फैशन में दाखिल कर लिया है अच्छा फैशन बनाया वेद के बीजभूत ओंकार की मिट्टी ख्वार करके छोड़ी। वर्त्तमान आर्यसमाज तो पाप के विषय में चूं नहीं कर सकती क्योंकि इन के मत में तो आध पाव घी लेकर जहां चार मन्त्र बोलकर अग्नि में घी डाला कि फौरन भङ्गी चमार ईसाई मुसलमान शर्म्मा बन गया जिस पाप से उस का जन्म इन जातियों में हुआ है उस पाप का नाश होगया और वह मनुष्य आर्यसमाज का महात्मा गुरु ऋषि होगया जिन वेद मन्त्रों में इतने पाप नाश करने की शक्ति हो यदि उन्हीं वेद मन्त्रों से चन्दन लगाया जावे तो पाप का नाश क्यों न होगा इस का उत्तर देना प्रतिनिधि का फ़र्ज़ है "नौ सौ चूहे खाय बिलैया हज्ज को चली" जिन वेद मन्त्रों के जोर से मुसलमान आदि को ब्राह्मण बना लिया जाता है अब समाज का क्या मुंह है कि उन्हीं वेद मन्त्रों की आज्ञा से लगे चन्दन को पापनाशक होने का निषेध कर ने यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि हम तो मुसलमान आदिकों की शुद्धि ही नहीं मानते और न स्वामी दयानन्द ने ही मानी है इस के ऊपर हम यही कहेंगे कि "एके घर में दो मता तो कुशल कहां से होय" आप पहिले अपने घर का तो निश्चय करिये कि शुद्धि वैदिक है या अवैदिक जब आप अपने घर को एक नहीं कर सकते जब कि आप का उपदेश समाज ही नहीं मानती फिर आप का और स्वामी दयानन्द का क्या मुंह है कि दूसरों की आलोचना करें और यदि हम यही मान लें कि शुद्धि गलत सोलह आने वेद विरुद्ध है और आज कल के अंगरेजी वाले बाबू जबर्दस्ती आर्यसमाजी बनते हैं और यह वेद को नहीं मानते बल्कि वेद का बहाना लेकर धर्म का नाश करते हैं इन का जो नाम आर्यसमाज की मेम्बरी में लिखा गया यह समाजों की भूल है और पं० तुलसीराम तथा दयानन्द का ही लेख सत्य है इस कोटी में हमारा यह उत्तर है कि स्वामी दयानन्द के मत में तो ईश्वर के नाम का जप करने से भी पाप दूर नहीं होता चन्दन लगाने की तो बात ही क्या है स्वामीजी के मत में तो खण्डन करने और दूसरों को गालियां सुनाने से पाप नाश होता है।

अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि चन्दन लगाने से पाप दूर होते हैं जो काम विधि से किया जाता है वही ठीक फल देता है विधि में व्यतिक्रम या तार-

तन्यता अथवा अंग भंग होने पर उस कार्य की सिद्धि नहीं होती कि जिस कार्य सिद्धि के लिये अनुष्ठानादि किया जाता है इस को स्वतः वेद ही कहता है प्रत्यक्ष में यही देखने में आता है। उपासना में देवता का शेष चन्दन अपने शिर पर धारण करना यह विधि है यदि चन्दन न लगाया जावे तो ऐसी दशा में विद्धयनुसार अनुष्ठान नहीं होता अतएव चन्दन लगाना आवश्यकीय है क्योंकि यह उपासना विधि का अंग है उपासना का फल यह है कि पाप नाश होकर ईश्वर के दर्शनों का होना तत्पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति होनी इस को वेद इसप्रकार कहता है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुनाश्रुतेन।
यमेवैष बृणुतेतेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विणुते तनुᳬस्वाम् १

मुण्ड० उप० मुण्ड० ३ मन्त्र० ३

अर्थ—आत्मा बहुत बकवादी होने से नहीं मिलता और बुद्धिवान् तथा वेद वेत्ता होने से भी नहीं मिलता जो पुरुष ईश्वर की उपासना करता है वही आत्मा को पाता है और उसी को परमात्मा अपने शरीर के दर्शन देता है।

दर्शन करने के पश्चात् क्या होता है इस को वेद यों बतलाता है—

भिद्यतेहृदयग्रन्थीश्छिन्दते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टेपरावरे ॥ २ ॥

मुण्ड० उप० मुण्ड० २ मन्त्र ८

अर्थ—जिससमय परावर आत्मा (ब्रह्म) दर्शन देता है उस समय हृदय की ग्रन्थी (गांठ) खुल जाती है समस्त संशय मिट जाते हैं और समस्त कर्मों का नाश हो जाता है।

अब यहांपर आर्यसमाजी क्या उत्तर देते हैं वह देखना है और चन्दनसे पाप नष्ट होते हैं इस के ऊपर कुछ अधिक लिखना भी नहीं किन्तु इतना विचार अवश्य करना है कि पं० तुलसीराम जान बूझकर वेद पर हड़ताल लगाकर स्वामी दयानन्द के मिथ्या लेख की पुष्टि क्यों करते हैं करें पं० तुलसीरामजी के लेख से दयानन्द के लेख की पुष्टि नहीं होती किन्तु पं० तुलसीराम का पूर्ण पक्षपाती होना सिद्ध होता है।

पं० तुलसीरामजी लिखते है कि "और वेद विरोधी सम्प्रदायों के चिन्ह

धारण करना भी अच्छा नहीं" आर्यसमाज को छोड़कर और कोई सम्प्रदाय ही वेद विरोधी नहीं। लिख देने से कुछ नहीं होता सबूत दीजिये। शैव वैष्णव आदि में कौन वेद विरोधी हैं इस का सबूत न तो पं० तुलसीराम दे सके न कोई आर्यसमाजी आगे को दे सकता है। इसके ऊपर तो समाज को शिर नीचाही रखना पड़ेगा। यदि कोई आर्यसमाजी यह कहे कि जब ये सम्प्रदाय वेद विरोधी ही नहीं तो पं० तुलसीराम ने मिथ्या लिखा क्यों? इसके ऊपर हम बड़े जोरके साथ कहेंगे कि पूर्वोक्त पण्डितजी ने सत्य लेख कौनसा लिखा। दयानन्दकी झूठी बातों के अनुकूल वेदशास्त्रको बनाना क्या आर्यसमाज इस को सत्य मानती है दूसरे यह सत्य के कारण नहीं किन्तु देशोन्नति के लिए लिखा है कि जो मनुष्य हमारे लेख को देखेगा वह सम्प्रदायों को वेद विरोधी अवश्य कहेगा जिसको कहेगा उसको क्रोध आवेगा मार पीट होगी बस यही देशोन्नति है। आर्यसमाज का मुख्य सिद्धान्त यही कि भारतवर्ष के एक एक मनुष्य में द्वेष भाव करवा दिया जावे और आर्यसमाज इसीको देशोन्नति समझती है। ज़रा आर्यसमाज की देशोन्नति के ऊपर भी विचार करें। यदि कोई समाजी यह सिद्ध कर सकता हो कि अमुक सम्प्रदाय वेद विरोधी है तो वह द्वेष को दूर फेंक कर प्रकट करे कि अमुक अमुक सम्प्रदाय वेद विरोधी हैं।

हमने ऊपर यह लिखा है कि आर्यसमाज वेद विरोधी है उसका हम प्रमाण देते हैं देखिये (१) वेदों में अश्वमेधादि यज्ञों का वर्णन है समाज ने उनको निकाल कर वेदों के अमेरिकन अर्थ कर लिए (२) ग्यारह सौ इकतीस शाखाओं में से केवल चार शाखाओं को प्रमाण माना (३) उपनिषद् और ब्राह्मण जो वेद हैं उनको लिखा कि वेद ही नहीं (४) वेद स्त्री को पातिव्रत धर्म की आज्ञा देता है किन्तु आर्यसमाज उनको विधवा विवाह और ग्यारह पति ब्याज में सिखलाता है (५) वेद ने वर्ण जन्म से माना आर्यसमाज विद्या से अदलाबदला करता है (६) वेद शूद्र और स्त्रियों को वेद पढ़ने का निषेध करता है आर्यसमाज इसका द्वेषी है (७) वेद में जगह जगह पर अवतारों का वर्णन है आर्यसमाज इनको मानता नहीं (८) वेदमें मूर्तिपूजन लिखा हैं समाज इसका खण्डन करताहै (९) वेद में मृतक पितरों का श्राद्ध है आर्यसमाज इसको गपोड़ा बतलाता है इत्यादि सैकड़ों प्रमाण दिये जासकते हैं। जो आर्यसमाज सम्प्रदायों को वेद विरोधी साबित करता है वास्तव में आर्यसमाजही वेद विरोधी है और पं० तुलसीराम उसीमें जाकर फँसे इनका भी वही हाल है कि "खुदरा फज़ीहत दीगरा नसीहत" आप तो वेद विरोधी पारटी के उपदेशक बनें और दूसरों को नसी-

हत करें। पं०जी सम्प्रदायों का वेद विरोधी होना त्रिकालमें भी सिद्ध नहीं होसकता और यों लिखने को आपके हाथ में कलम है चाहै जो लिख दें।

पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो चन्दन के गुण बतलाए वे लेपन और क्वाथादि में हैं उनसे कौन इनकार करता है ठीक है पं० तुलसीराम की समझ में चन्दन को मस्तक पर रख कर या तो सड़ाया जाता है नहीं तो दूध गर्म किया जाता होगा। बातें न बनाइये यदि लेपन में गुण है तो मस्तक पर चन्दन का लेप ही तो किया जाताहै जिससे लाभ पहुंचे उसको क्यों छोड़ दें स्वामी दयानन्द मना करते हैं केवल इसलिए? गुण का तो अच्छा उत्तर दिया समाजियों को समझना चाहिए कि चन्दन मस्तक पर गुण करता है या नहीं।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि स्वामीजी चन्दन केशर आदि लगाते थे और आर्य लोग भी लगातेहैं उनकी बुद्धि शुद्ध है। जयराधाकृष्ण की। जिस चन्दन लगाने के खण्डन में स्वामी दयानन्द और पं० तुलसीराम की लेखनी उठी उसी को यह सब लगाते हैं यदि ऐसा है तो फिर हमको क्यों मना करते हो? जिस चन्दन से तुम्हारी बुद्धियां पवित्र होगई वही हमको बुरा क्यों इसका क्या उत्तर है? हमको चन्दन लगाने को मना करना और आर्यसमाजी लगावें तो उनकी बुद्धियां पवित्र होजावें यह क्या है? यह खुल्लमखुल्ला पक्षपात है। चाहे आर्यसमाजी दिन में दो दफा चन्दन लगाते हों और चाहे स्वामी दयानन्द दिन में २४ बार समस्त शरीर में चन्दन लगाते हों किंतु बुद्धि दोनों की शुद्ध नहीं? आप स्वामी दयानन्दका उदाहरण इसप्रकार समझ सकते हैं कि सत्यार्थप्रकाश में अवतार का खण्डन लिखा और यजुर्वेद अध्याय ५ मन्त्र ६ के भाष्य में ईश्वर को "नाबालिग" बच्चा लिख दिया। सत्यार्थप्रकाश में मूर्ति पूजा का खण्डन और सन्ध्या में ईश्वर की मानसिक परिक्रमा लिख दी जो बिना मूर्ति माने हो ही नहीं सकती। मन्तव्य मन्तव्य में जीव, ईश्वर प्रकृति नित्य माने और समाज के प्रथम नियम में प्रकृति जीव का कर्ता ईश्वर बना दिया जिसका बनाया सत्यार्थप्रकाश आज तक शुद्ध न हो सका ग्यारह कलेवर बदले फिर भी अशुद्ध। इन बातों को देखकर हम कह सकते हैं कि शुद्ध की तो बात ही दूसरी ऐसा तो मामूली बुद्धि वाला भी नहीं लिख सकता इससे तो मालूम होता है कि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र की बतलाई बुद्धि की दशा ठीक है यदि कोई आर्यसमाजी कहै कि न सही स्वामी दयानन्द की बुद्धि शुद्ध समाजियों की बुद्धि ठीक पवित्र

होगई यह भी बात गलत। जिस दिन समाजियों की बुद्धियां पवित्र हो जावेंगी उस दिन खण्डन और गालियों को छोड़ बिचार के ऊपर आजावेंगे। यदि समाजियों की बुद्धि पवित्र हो जावे तब तो भारतवर्ष में न कोई किसी को बुरा कहे और न कोई किसी का शत्रु ही रहे। आज यू० पी० में जो बाबू दल तथा पण्डित पार्टी बना कर महाभारत ठान दिया क्या यह पवित्र बुद्धि ही का नमूना है ? इसी वर्ष पञ्जाब प्रतिनिधि के चुनाव पर जो लिखे पढ़े आर्यसमाजियों में गाली गलोज और मार पीट हुई क्या यह पवित्र बुद्धि का ही फल है ऐसी हालतों को देख लाचार हो कर हम को मानना पड़ता है कि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र का लेख पत्थर की लकीर है इनकी तो बुद्धि वैसी है जैसी मिश्रजी ने लिखी है।

इस के आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि "आप के ऊर्ध्व पुण्ड्रादि में चिताभस्म के तिलक का विधान होने से मुर्दे के राख का बुरा प्रभाव आप के शैव अनुयायियों पर पड़ा है इससे वैदिक धर्म के विरोधी बने हैं" मुर्दे की भस्म लगाने का किस वेदादि ग्रन्थ में विधान है पं० तुलसीराम ने बतलाया तो होता। शंकर ने स्वतः तो मुर्देकी भस्म लगाई किन्तु भक्तको शंकरपर मुर्देकी भस्म लगाना यह कहां पर लिखा है ? पं० तुलसीराम तो क्या बतलावें संसार भर के आर्यसमाजी ही बतला दें यदि नहीं बतला सकते तो फिर पं० तुलसीराम ने जो इसका विधान बतलाया वह मिथ्या है इतना कहने में क्यों लज्जा आती है। पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो यह बतलाया था कि यज्ञकी भस्म लगाना वेदमें लिखाहै इसका क्या उत्तर दिया ? इसका उत्तर यही तो हुआ कि चाहे हजार बार वेद बतलावे उसको न माना जावेगा क्योंकि स्वामी दयानन्द इसका खण्डन कर गये हैं स्वामी दयानन्द की बुद्धिको वेद कर्ता ईश्वर की बुद्धि नहीं पहुंच सकती। चन्दन और भस्मका लगाना वेद विधि है शिष्ट परम्परा से लगता चला आताहै ये दोनों प्रमाण पं० ज्वालाप्रसादजी देचुके इनको छोड़ देना और वेद विरुद्ध स्वामी दयानन्द के लेख पर विश्वास कर बैठना यह कोई भी विचारशील मनुष्य से नहीं होसकता यह तो उसी से होगा जो स्वामी दयानन्द के हाथ बिक चुका हो।

और पं० तुलसीराम जो यह लिखते हैं कि अतएव शैव मत अनुयायी वेद विरोधी होगये। यह भी गलत। क्या सबूत दिया जिससे हम शैवोंको वेद विरोधी मान लें पं० जी सबूत नहीं देखते हुक्म चढ़ाया करते हैं। जब ये वेदोक्त मन्त्रों में प्रति-

पाद्य शिव विष्णु आदि ब्रह्मके रूप की प्रतिमा बनाकर नित्य पूजन करते हैं फिर हम कैसे मान लें कि ये वेद विरोधी हैं ये मृतक पितरों के श्राद्ध भी करते हैं वेद के अमेरिकन अर्थ भी नहीं करते ये तो त्रिकाल में भी वेद विरोधी नहीं इनको वेद विरोधी कहना सोलह आने मिथ्या है।

वेदधर्म।

तिमिरभास्कर—

क्या जो कुछ आप ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है उसमें आप ने सब वेद ही के मंत्र लिखे हैं जब आप का मत वेद ही है तौ क्यों चरक सुश्रुत स्मृति उपनिषदादि में घुसते हो वेद ही के मंत्र सब लिखे होते कोई यज्ञ किया होता तौ जानते कि तुम्हारा मत वेद है वेद में आप के यही लिखा होगा कि संन्यासी रुपये जोड़े नफेसे पुस्तकैं बेचे दुशाला ओढ़े।

इति श्रीदयानन्दतिमिरभास्करेसत्यार्थप्रकाशान्तर्गततृतीयसमुल्लासस्य खंडनं सम्पूर्णम्।

भास्करप्रकाश—

वेद अन्य सब ग्रन्थों का मूल है इसलिये स्वामीजी ने वेद और वेद के अविरुद्ध अन्य शास्त्रों के प्रमाण दिये हैं। संन्यासी (स्वामीजी) ने रुपये नहीं जोड़े, न नफे से पुस्तक बेचे किन्तु लोकोपकारार्थ आर्यों ने सम्मति करके स्वामी जी के द्वारा वैदिक धर्म सम्बन्धी पुस्तकों के प्रचारार्थ वैदिक यन्त्रालय स्थापित किया था और है, स्वामीजी ने उस में का स्वयं कुछ नहीं भोगा। आप ज़रा काशी के स्वामी विशुद्धानन्दजी आदि पर तौ दृष्टि डालिये कि कैसा ठाठ व विभूति है।

इति तुलसीराम स्वामिविरचिते भास्करप्रकाशे तृतीयसमुल्लास—मण्डनम्।

समीक्षा—स्वामी दयानन्दजी ने यह लिखा कि हमारा मत वेद है जो कुछ वेद ने करना कहा उस को हम करते हैं और वेद ने जिसको छोड़ना लिखा उसको हम छोड़ते हैं। इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रजी लिखते हैं कि "क्या जो कुछ आपने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है उस में आपने सब वेदही के मन्त्र लिखे हैं जब आप का मत वेदही है तौ क्यों चरक सुश्रुत स्मृति उपनिषदादि में घुसते हो वेद ही के मन्त्र सब लिखे होते कोई यज्ञ किया होता तौ जानते कि तुम्हारा मत वेद है वेद में आप के यही लिखा होगा कि संन्यासी रुपये जोड़े नफे से पुस्तकें बेचै दुशाला ओढ़े" इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि "वेद अन्य ग्रन्थों का मूल है" इस लिये स्वामीजी ने वेद और वेद के अविरुद्ध अन्य शास्त्रों के प्रमाण दिये हैं संन्यासी (स्वामीजी) ने रुपये नहीं जोड़े, न नफे से पुस्तक बेंचे किन्तु लोकोपकारार्थ आर्यों ने सम्मति करके स्वामीजी के द्वारा वैदिक धर्म सम्बन्धी पुस्तकों के प्रचारार्थ वैदिक यन्त्रालय स्थापित किया था और है, स्वामीजी ने उस में का स्वयं कुछ नहीं भोगा। आप ज़रा काशी के स्वामी विशुद्धानन्दजी आदि पर तौ दृष्टि डालिये कि कैसा ठाठ व विभूति है। पं० तुलसीराम का यह लिखना कि वेद सब ग्रन्थों का मूल है इसलिये स्वामी दयानन्द ने वेद और वेद के अविरुद्ध अन्य शास्त्रों के प्रमाण दिये हैं यह लिखना संसार को धोखा देना और दिन दोपहर आंखों में धूल झोकना है। वेदसे विरुद्ध अविरुद्ध कैसा यदि ऐसा माना जावे कि जो वेद कहे वही अन्य शास्त्र कहें तो अविरुद्ध यदि वास्तव में यही अविरुद्ध है तो फिर वेदके ही मन्त्र प्रमाण में क्यों नहीं दिये ? यदि स्वामी दयानन्दजी ने न दिये तो फिर पं० तुलसीराम ही देते या कोई आर्यसमाजी अभी प्रमाण दे। त्रिकाल में भी तो नहीं मिलेंगे। जब कुछ उत्तर न बना तब उन को वेदानुकूल लिख दिया यदि उन्हीं मन्त्रों को हम प्रमाण दें तो वे ही वेदविरुद्ध होजावें। पं० तुलसीराम धर्मका उपदेश करते हैं कि मनुष्यों को चालबाजियां सिखलाते हैं। प्रथम समुल्लास की द्वितीयावृत्तिकी भूमिकामें जो झूठ बोला यह किस वेद मन्त्र में लिखा है कि झूठ बोलना तथा धोखा देना मनुष्य का धर्म है ? ब्रह्मादि जो ईश्वर के स्वरूप हैं उन्हीं का खण्डन वेद से किया होता मित्रादि देवताओं का खंडन करके इनको ईश्वर के नाम बतलाये इसी में वेद का प्रमाण दिया होता। ओंकार प्रकरणमें जो ओंकार के महत्व मोक्षदातृत्व को नष्ट किया उसी में प्रमाण दिया होता।

द्वितीय समुल्लास में जो बाल शिक्षा लिखी उसमें चाणक्य के ही "माता शत्रु पिता बैरी" प्रमाण से काम चलाया उसमें वेद का प्रमाण देते गर्भाधान की त्याज रात्रियों में ही वेद का प्रमाण लिखते। क्यों योनि संकोचन आपने वेद से ही लिखा क्या सच ही वेद कोकसार से भी बढ़गया। भूत प्रेत निर्णय में वेदने भूत प्रेतका अस्तित्व और उसको दूरकरने का उपाय बतलाया उसको स्वामीदयानन्द या किसी दूसरे आर्य समाजीने मान लिया ? स्वामी दयानन्दजी ने जो जगह जगहपर बुजुर्गों को गालियां दीं क्या यह भी वेद की ही आज्ञा थी ? गालियां देनेवाले सभ्यता से गिरे मनुष्य को महर्षि की पदवी देना यह किस वेद में लिखा है सूर्यादि ग्रहों को स्वामीजी ने जड़ बतलाया क्या यह भी वेद की ही आज्ञा है ज्योतिषशास्त्र का फल असत्य है यह किस वेद में लिखा मिला ? स्वामी दयानन्द ने शोलेतूर के विज्ञापन में अष्टाध्यायी, महाभाष्य, भृगुसंहिता, महाभारतादि २१ ग्रन्थ ईश्वरकृत लिखे यह भी वेद से ही देखकर लिखे होंगे। मन्त्रों के फल का खण्डन जो स्वामी दयानन्द ने किया यह किस वेद में लिखा है ? गर्भ में ही बच्चे को पढ़ाकर पण्डित बना देना भी चारोंही वेदों में लिखा होगा। पढ़ने पढ़ाने का जो कानून स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा यह किस वेद के कौन मन्त्र में कहा है इसी का कोई पता चलावै। स्त्री शूद्र को वेद पढ़नेका निषेध रहते भी स्वामी दयानन्द ने दोनों को अधिकार देदिया क्या इसी का नाम वेदानुकूल है ? "यथेमांवाचं कल्याणीम्" वेद मन्त्र का जान बूझ कर अर्थ लौटना अर्थ का अनर्थ कर मनुष्यों को धोखा देना स्वामी दयानन्द के इस काम को कोई वेद मन्त्र कहने की आज्ञा देता है। क्या गायत्री मन्त्र का जो अर्थ स्वामी दयानन्द ने किया यह वेदानुकूल है ? यदि है तो ऐसा अर्थ किस मन्त्र में लिखा है। स्वामी दयानन्दजी ने जो प्राणायाम करना बतलाया क्या इस में भी कोई वेद मन्त्र मिलता है ? यदि मिलता है तो मन्त्र दिखलाओ। आचमन से कफ निवृत्ति किस वेद में लिखी है ? क्या जैसा मन से हो वैसा ही बोले वेद में स्वाहा शब्द का अर्थ यही है ? हवन से वायु शुद्ध होना किस वेद में लिखाहै ? यज्ञपात्र जो दयानन्द ने फ़र्ज़ी बनवाये क्या कोई आर्यसमाजी उनको वेद में दिखला सकता है ? गुरुकुल किस वेद में लिखा है यदि नहीं लिखा तो इस विषय में पुराण को स्वतः प्रमाण क्यों माना? गुरुकुल का अर्थ पाठशाला किस वेद में लिखा है इस का ही कोई पता चलावे। वेद के सृष्टिक्रम पर हड़ताल लगाकर जो स्वामी दयानन्द ने वेद विरोधी मनमाना सृष्टि क्रम लिखा क्या इसी का नाम तो वेदानुकूल नहीं ? पाठन पाठन विधि जो स्वामी

दयानन्द ने लिखी यह किस वेद में लिखी है ? स्वामी दयानन्द ने सिद्धान्तकौमुदी आदि पुस्तकों को जाल ग्रन्थ लिखा यह किस वेद में मिला ? जिन पुराणों के महत्व को वेद गान कर रहे हैं उनकी निन्दा लिखना भी वेद का मानना कहा जा सकता है ? जिन देवताओं का आह्वान यज्ञों में होता है उनका खण्डन करना किस वेद में लिखा है ? तिलक का खण्डन जो स्वामी दयानन्द ने लिखा वह किस वेद के किस मन्त्र में मिला ? स्वामीदयानन्द ने प्रथम, द्वितीय, तृतीय समुल्लास में जितने विषय लिखे एक में भी वेद का एक मन्त्र न लिखा फिर वेदानुकूल कैसा ? वेद के नाम से मनुष्यों को नास्तिक बनाना यह कहां तक छिपा रहेगा और इस वेदानुकूल और वेद विरुद्ध की चालबाजी को अब कहां तक छिपाओगे अब सब जान गये कि जिस प्रमाण को आर्यसमाज पेश करता है वह वेदानुकूल हो जाता है और जिस प्रमाण को सनातन धर्मी दे वह वेद विरुद्ध हो जाता है इससे साफ साबित होता है कि आर्य समाज नास्तिक पार्टी है वास्तव में वह किसी पुस्तक को भी प्रमाण नहीं मानती किन्तु चालाकियों से काम चलाती है। वेदानुकूल और वेद विरुद्ध के ऊपर पं० राम-सहाय वाजपेयी भजनोपदेशक कालपी ने एक भजन में लिखा है कि "घसने व फौरन निकलने की बाबा ने कुंजी बताई है"। पं० तुलसीराम अब बतलावें कि वेद को छोड़ कर चरकादि के प्रमाण क्यों दिये ? क्या उत्तर है ? कुछ नहीं। सर्वदा के लिए मौनव्रत की उपासना करनी होगी।

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रजी ने लिखा है स्वामीजी ने औरों को धर्म बतलाया किन्तु आपने तो रुपये जोड़े दुशाला ओढ़े यह सन्यासी के लिये कहां लिखा है ? इसके ऊपर पं० तुलसीराम जब कुछ उत्तर न दे सके तब लिखा कि यह काम लोकोपकारार्थ किया स्वामीजी ने कुछ नहीं भोगा वैदिक यन्त्रालय स्थापित किया आप स्वामी विशुद्धानन्द की तरफ तो देखिए यह भी कोई उत्तर है कि विशुद्धानन्द को देखिये यदि विशुद्धानन्दजी कोई बुरा काम करें तो फिर स्वामी दयानन्द को भी कोई निषेध नहीं ? जो जो काम स्वामी दयानन्द ने किये वे स्वामी विशुद्धानन्द ने नहीं किये स्वामी दयानन्द ने चन्दा मांगा उससे पुस्तकें छपाईं फिर उनका व्यापार किया उन को मोल बेचा बुकसेलर बने उसमें मनमाना मुनाफा लिया। संन्यासी को दान देना चाहिये इस विषय का मनु के नाम से श्लोक भी गढ़ा कि रुपया मिलते ही कोट बूट धारण किये एक हुक्का खरीदा गया उसमें चांदी की मुहनाल लगी जब वह दिल्ली में खो गई तब नौकर को सैकड़ों गालियों की दक्षिणा मिली। भंग महारानी की भी

कृपा होने लगी कई एक सज्जन संन्यासी समझकर आटा दाल आदि (सीधा) दे जाया करते थे दयानन्दजी उसको बेचकर दाम गांठ में बांधते थे। स्वामीजी बढ़िया से बढ़िया भोजन करते थे डासन के बूट और दुशाला आदि उत्तम कपडे पहिनते थे। पं० तुलसीराम की दृष्टि में भोग ही नहीं भोगते थे। वाहरे पक्षपात तू जो चाहे वह कहलावे। इस के अलावा स्वामीजी ने जान बूझकर पुस्तकों पर झूठे कलंक लगाये जैसा कि श्रीमद्भागवत पर "हिरण्याक्ष का पृथिवी को चटाई बना कर ले जाना" "हिरण्यकश्यपु के द्वारा स्तम्भ का गर्भ होना और प्रहलाद का उस पर चींटी चलते देखना" आदि आदि "वेद व्यासजी को कसाई लिखना" और "हिन्दुओं के यहां का भोजन न करना" क्योंकि मूर्त्ति पूजते थे इन को छोड़कर मुसलमानोंके यहां का भोजन करना जो गोवध करते थे आर्यसमाजियों को मनुष्य मांस खाने का उपदेश देना यह संसार को उपदेश किया या उपकार किया जो आज तक सत्यार्थप्रकाश में लिखा है समाजी इन सब को जान गये कि वास्तव में ये सब विषय स्वामीजी ने झूठ लिखे इतना समझ कर भी सत्यार्थप्रकाश से नहीं निकालते क्योंकि यदि ये विषय निकल जावें तो फिर संसार को धोखा देना जो समाज का मुख्य काम है उसमें हानि पहुंचेगी अपना व्रत पालन के लिये उसको रख छोड़ा है। इसके अलावा आर्यसमाजियों को बैल आदि नर पशु और गौ का मारना लिखा फिर वेद के अमेरिकन अर्थ गढे इत्यादि काम तो स्वामी विशुद्धानन्दजी ने नहीं किए और न इतने भोगही भोगे कि जितने स्वामी दयानन्दजी ने भोगे और जितने पाप प्रचारक काम किये इतने काम तो विशुद्धानन्द तो क्या किसी ने भी नहीं किये। बस सिद्ध होगया कि आर्यसमाज वेदानुकूल धर्म नहीं है और जो कुछ यह धर्म धर्म चिल्लाते हैं स्वतः उसके अनुकूल करना भी नहीं चाहते। पाठकवर्ग स्वतः विचार सकते हैं कि पं० तुलसीराम धर्म की रक्षा के लिये लिख रहे हैं या पक्षपात कर रहे हैं।

इतिश्रीकालूरामविरचितेधर्मप्रकाशेतृतीयसमुल्लासः।

ब्रह्मप्रेस इटावाकी सर्वोत्तम पुस्तकें

आर्यमतनिराकरण प्रश्नावली।

सनातनधर्मी सज्जनों को विपक्षियों से शास्त्रार्थ और शंकासमाधान करने के लिये जैसी पुस्तक की आवश्यकता है यह वैसीही पुस्तक है इसका प्रथम संस्करण छपते ही छूमन्तर होगया था, मांगों की भरमार देखकर इस का द्वितीय संस्करण छपाना पड़ा अब इस में प्रश्नों की संख्या भी अधिक बढ़ा दी गई है। प्रश्नों की संख्या अब ४०० सौ से ऊपर पहुंच गई है इस पुस्तक को हाथ में लेकर आप आर्य-समाजियों के कट्टर से कट्टर पण्डित को बात की बात में पछाड़ सकते हैं, इसमें जो प्रश्न छापे गये हैं उन का जवाब आर्यसमाजी एक जन्म में तो क्या सात जन्मों में भी नहीं दे सकते मूल्य सिर्फ ।)

दयानन्दमतविद्रावण

यह पुस्तक भी आर्यसमाजियों के मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के खण्डन में बनाई गई है पुस्तक की भाषा बडी रोचक और दिलचस्प है इसमें जिस खूबसूरती के साथ थोड़े ही में सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदर की गई है वह देखने योग्य है पुस्तक देवरी जिला सागर निवासी लाला भवानीप्रसाद नम्बरदार की बनाई हुई है। मूल्य सिर्फ ।) आना है।

लीजिये ! लीजिये !! शीघ्रता कीजिये !!!

षोडशसंस्कारविधि

जिस को देखने के लिये सहस्रों सनातनधर्मी सज्जन वर्षों से प्रतीक्षा कररहे थे वही पुस्तक षोडशसंस्कारविधि छपकर तैयार है। इस में १६ संस्कारों का साङ्गोपाङ्ग विधान है, ऊपर मूल संस्कृत में विधान लिखकर नीचे भाषा टीका दी गई है जगत्प्रसिद्ध पं० भीमसेन शर्मा सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व ने इस पुस्तक की रचना स्वयं की है इसी से आप समझ सकते हैं कि पुस्तक कैसी हुई होगी, सोलहों संस्कारों के एकत्र विधान की कोई पुस्तक अभी तक कहीं नहीं छपी थी इस पुस्तक से यह अभाव मिट गया, इससे साधारण पढे लिखे भी प्रत्येक संस्कार को विधि पूर्वक करा सकते हैं प्रत्येक द्विजाति को इस पुस्तक की एक प्रति मंगानी चाहिये। मूल्य २) है। शीघ्रता कीजिये थोडी ही पुस्तकें छपी हैं।

पता—मैनेजर, ब्रह्मप्रेस, इटावा।

SINGAPORE
SRI KRISHNA TEMPLE WATERLOO ST.

श्रीः

मूर्तिपूजा

इस पुस्तक में ६ अध्याय हैं । प्रथम अध्याय में—यह दिखलाया है कि अफ्रिका, अमेरिका, यूरोप, एशिया, आदि २ भूमण्डल के समस्त देशों में मूर्तिपूजन पूर्व में होता रहा था और अब भी होता है । जिस देश में जिस मूर्ति का पूजन होता है उसका स्वरूप व नाम भी बतलाया है । यह भी लिखा है कि स्वामी दयानन्द ने जिन वेद मन्त्रों से मूर्तिपूजा का खण्डन किया है उनका यह अर्थ त्रिकाल में भी नहीं हो सकता खण्डनात्मक अर्थ फ़र्ज़ी और मिथ्या है । "नतस्य प्रतिमा अस्ति" इस निषेधात्मक मन्त्र से ही यज्ञ में मूर्ति स्थापित होती है । मूर्तिपूजन समस्त युगों में होता रहा है । द्वितीय अध्याय में—वेद से ईश्वर के अङ्गों का वर्णन, मूर्ति पूजन करने की आज्ञा, और उस का फल, मनुस्मृति, अष्टाध्यायी, महाभाष्य से भी मूर्तिपूजन की सिद्धि दिखलाई है । तृतीयाध्याय में—स्वामी दयानन्द लिखित मूर्तिपूजन दिखलाया है । सन्ध्या में ईश्वर की मानसिक परिक्रमा, आर्याभिविनय की रीति से ईश्वर को खीर खिलाना और दवाई पिलाना, पञ्चमहायज्ञविधि के अनुसार वृक्षों और भद्रकाली को भोग लगाना, "घृतेन सीता मधुना" इस मन्त्र से खेत के पहटा (पटेला) का पूजन करना, संस्कारविधि के अनुसार ओखली मूसल को नित्य भोग धरना, संस्कारविधि के लेख से कुश और नाई के छुरे का पूजन करना, दिखलाया गया है अर्थात् यह सिद्ध किया है कि समाजी लोग ईश्वर की प्रतिमा का तो निषेध करते हैं किन्तु स्वामी दयानन्द के लेखानुसार ऊपर लिखी मूर्तियों को पूजते हैं । चतुर्थ अध्याय में—यज्ञ में जिन मूर्तियों का पूजन होता है वेद के मन्त्रों के द्वारा विस्तार से दिखलाया है । पञ्चम अध्याय में स्वामी दयानन्द और पं० तुलसीराम तथा अन्य अन्य समाजियों की तर्कों के मुंहतोड़ उत्तर दिये गये हैं जिन को सुनकर आर्यसमाजियों के मुंह बंद हो जाते हैं । षष्ठाध्याय में—आज कल के होने वाले मूर्तिपूजन के व्याख्यान लिखे हैं। मासिकपत्रिका सरस्वती प्रयाग, ब्राह्मण सर्वस्व मासिकपत्र इटावा, सनातनधर्म पताका मुरादाबाद, ब्रह्मचारी मासिकपत्र हरिद्वार आदि ने इसकी बहुत प्रशंसा छापी है । यह अद्वितीय ग्रन्थ है इस पुस्तक के निर्माता पं० कालूराम शास्त्री हैं और मूल्य ॥।) है ।

कामताप्रसाद दीक्षित,

अमरौधा, (कानपुर) ।

श्रीः

उपहार

स्वामी दयानन्द कृत असली सत्यार्थप्रकाश सन १८७५ में छपा था। इस सत्यार्थप्रकाश में मांस से हवन करना, मृतक पितरों का श्राद्ध, इस श्राद्ध में मांस का पिण्ड देना, बैल आदि पशुओं को यज्ञ में मारना, तथा गोबध करना स्वामी दयानन्दने आर्यसमाजियों के लिए वेद धर्म बतलाया है। इस सत्यार्थप्रकाश को देखकर आर्यसमाजी घबराते हैं। इस सत्यार्थप्रकाश के जिस विषय को सनातनधर्मी पबलिक को सुनाते हैं आर्यसमाजी फौरन कह देते हैं कि झूठे कलंक लगाते हैं। स्वामी दयानन्दजी जो इतने बड़े विद्वान थे, जो महर्षि थे, क्या वे ऐसी अयोग्य बातें लिखेंगे यह कोई मान सकता है इत्यादि बातें बनाकर कहने वाले को मिथ्यावादी बनाना चाहते हैं। बडे दिन की तारीख सन १९१३ शहर मेरठ की सनातन-धर्म-सभा के उत्सव पर यही मामला हुआ। मोहनलाल आर्यसमाजी ने कहा कि यदि कोई मनुष्य स्वामी दयानन्दकृत प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में गोबध करना बतला दे तो मैं आर्य समाज छोड़ दूं नहीं तो पं० रलियारामजी अमृतसर सनातन धर्म छोडें दोनों के इकरारनामे हुए किन्तु मेरठ में वह सत्यार्थप्रकाश न मिला तब मैंने पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र से चिट्ठी लिखवाई उनके घरसे सत्यार्थप्रकाश आया वह दिखलाया गया। मोहनलाल ने आर्यसमाज में इस्तीफा दे दिया। इन दिक्कतों को दूर करने के लिये हमने "प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश मर्दन" ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ में मोटे टाइपमें समस्त सत्यार्थप्रकाश दिया है फिर छोटे टाइप में इसका खण्डन छपा है। मूल्य इस पुस्तक का ३) और डाक महसूल पृथक् है। किन्तु धर्मप्रकाश के ग्राहकों से बजाय ३) के एक रूपया लिया जावेगा डाक महसूल यहां भी अलग है। यह उपहार उन्हीं सज्जनों को दिया जावेगा जिन के ३) पेशगी आगये हैं। लेने वाले सज्जनों को आडर जल्द भेजना चाहिये जिन सज्जनों का आडर ३० नवम्बर तक नहीं आवेगा उनको हम उपहार न दे सकेंगे।

कामताप्रसाद दीक्षित,

अमरौधा, (कानपुर)।

नोट—हमने ग्राहकों से पूछा है उनकी सम्मति आतेही पुस्तक छपने लगेगी।

धनुर्धर-अर्जुन

—:o:—

यह जीवन-चरित्र हिन्दी के सुलेखक और "भीष्म पितामह" व "नर-शार्दूल अभिमन्यु" आदि के रचयिता श्री व्रजमोहन झा ने लिखा है और हमने अभी प्रकाशित किया है। भाषा इसकी शुद्ध और बहुत ही सरल है। पुस्तक उपन्यास की शैली में लिखी गई है अतः रोचक भी इतनी है कि एकबार हाथ में लेकर बिना पूरा किए रखने को जी नहीं चाहता। अर्जुन के वीरत्व-पूर्ण कामों को ऐसी ओजस्विनी भाषा में वर्णन किया है कि कायर हृदय भी इसके एकबार पढने से जोश में हिलोरें लेने लगता है। इसके अतिरिक्त हमारे इस केवल एक ही चारित्र के पढने से महाभारत की अधिकांश बातें विदित हो जाती हैं क्योंकि महाभारत में अर्जुन ही का चरित्र सबसे बड़ा है।

वीरता के अतिरिक्त इस नर-व्याघ्र के चरित्रसे साहसिकता, निर्भीकता, जितेन्द्रियता गुरुभक्ति, भ्रातृस्नेह, व प्रतिज्ञा पालन आदि अनेकानेक विषयों पर समयोपयोगी शतशः शिक्षाप्रद उदाहरण पद पद पर प्राप्त होते हैं।

गीता का सारांश भी इसमें है। श्लोकों के नीचे हिन्दी अनुवाद दिया गया है और विषय को ऐसी सरल रीति से समझाया है कि गीता की शिक्षा का एक चित्र मनुष्य के चित्त पर चित्रित हो जाता है। इस उच्च धर्म शिक्षा के अतिरिक्त सम्पूर्ण पुस्तक के पढ़ने से यह विश्वास हो जाता है कि अपने धर्म पर स्थित रह कर उद्योग करने से मनुष्य सब कुछ कर सकता है अतः महा आलसी और अत्यन्त अकर्मण्य पुरुष के मन में भी कर्म करने की इच्छा होने लगती है।

विद्यार्थियों व नवयुवकों का जीवन देश, जाति व भाषा के प्रति हितकर बनाने के लिए तो यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। अन्य स्त्री पुरुषों के लिए भी समान उपयोगी पाठ्य व उपादेय है। इतना होते हुए भी इस ३०० पृष्ठ की अत्यन्त मनोहर छपी हुई पुस्तक का मूल्य ॥~), साधारण जिल्द सहित ॥=), कपड़े की सुन्दर जिल्द सहित ॥।) है डाकव्यय पृथक्।

मिलने का पता :—

मैनेजर, मरचंट प्रेस, रेलगंज कानपुर।

श्रीः

श्राद्ध

इस पुस्तक में ४ अध्याय हैं। प्रथमाध्यायमें [क] स्वामी दयानन्दकृत श्राद्ध का लक्षण (तारीफ़) डिफिनेशन की अशुद्धता दिखलाई गई है कि इस में अति व्याप्ति दोष है और इस लक्षण से विवाह, द्विरागमन, गृहनिर्माण, सभा का उत्सव, आदि २ समस्त काम श्राद्ध होजाते हैं [ख] वेद में श्राद्ध मृतक पितरों का ही लिखा है इस विषय को वेद मंत्र देकर विस्तार से लिखा है। द्वितीयाध्यायमें यह दिखाया है कि जीवित पितरों का जो श्राद्ध है यह मनगढ़न्त है इसकी पुष्टि में वेदादि का कोई भी प्रमाण आज तक न मिला है और न आगे को मिल सकता है। तृतीयाध्याय में इस बात का सबूत है कि स्वामी दयानन्दजी मृतक पितरों का ही श्राद्ध तर्पण मानते थे। सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि में अब भी मृतकों का ही श्राद्ध तर्पण लिखा है। चतुर्थाध्याय में उन शंकाओं का मुंहतोड़ उत्तर दिया गया है कि जो शंका आर्यसमाजी सनातन धर्मियों से किया करते हैं (१) अन्यके कर्म का फल अन्य को कैसे मिल सकता है श्राद्ध करे पुत्र और उसका फल भोगे पिता (२) ब्राह्मणों का पेट क्या लेटरबाक्स है जो इधर डाला और उधर पितरों को मिल गया (३) श्राद्ध का भोजन ब्राह्मणों को ही क्यों खिलाया जावे (४) दश बीस ब्राह्मण जिमाकर क्या पितरों का पेट फाड़ना है (५) हमारे पिता तो गधा होगए अब हम पूरी कचौरी क्यों खिलावें (६) पितरों को भोजन मिलने की कोई रसीद है। इत्यादि पश्चात् यह दिखलाया है कि श्राद्ध सदा से होता है और मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु रामचन्द्रजी ने अपने पिता दशरथ का श्राद्ध बन में करके यह मर्यादा दिखलाई है कि श्राद्ध अवश्य करना चाहिए और वह मृतक पितरों का ही होता है। इस पुस्तक के रचयिता पं० कालूरामजी शास्त्री हैं और इसका मूल्य ।) है।

वेद व्याख्याता पं० भीमसेन के यहां की "श्राद्धमीमांसा ।)" तथा "आर्यमत निराकरण प्रश्नावली ।)" वा "दयानन्दमत विद्रावण ।)" भी मौजूद हैं मिलनेका पता—

भवदीय—

हनुमानदास ब्रजवल्लभ पुस्तकालय,
चौक बाजार, कानपुर।

कामताप्रसाद दीक्षित,
अमरौधा (कानपुर)।